नरेश मेहता के खण्डकाव्यों में कथ्य और शिल्प

हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद
की पी-एच. डी. (हिन्दी) उपाधि हेतु
प्रस्तुत
शोध-प्रबन्ध
का
सार

1992

प्रस्तुतकर्त्री

पुलिवर्ति तिरुपतम्मा, एम.फिल्.

अध्यक्ष
डॉ. शशि मुदीराज
पी-एच.डी., डी. लिट्.
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग,
हैदराबाद विश्वविद्यालय,
हैदराबाद–500 134.

निर्देशिका
डॉ. नूरजहाँ बेगम
23/9/92
एम.ए. (हिन्दी), एम.ए. (संस्कृत), पी-एच.डी., डी.लिट्.
रीडर, हिन्दी-विभाग,
हैदराबाद विश्वविद्यालय,
हैदराबाद–500 134.

CERTIFICATE

This is to certify that Kum. **Pulivarthi Tirupathamma** M.A., M.Phil., is a bonafide student of the Department of Hindi, University of Hyderabad, and the thesis entitled **"NARESH MEHTA KE KHAND KAVYON MEIN KATHYA AUR SHILP"** is a bonafide record of her research work done under my supervision for the award of Ph.D. Degree in Hindi.

Noorjahan Begum
23/9/92

Hyderabad

Date:

(Dr. Noorjahan Begum)
Supervisor

18/11/92
Prof. & Head, Dept. of Hindi
School of Humanities
University of Hyderabad
HYDERABAD-500 134

16.11.92
DEAN
SCHOOL OF HUMANITIES,
University of Hyderabad,
Hyderabad-500 134.

DECLARATION

I here by declare that this thesis entitled "NARESH MEHTA KE KHAND KAVYON MEIN KATHYA AUR SHILP" has been written by me under the guidance and supervision of **Dr. Noorjahan Begum** M.A. (Hindi) M.A. (Sanskrit) Ph.D. Reader in Department of Hindi, University of Hyderabad for the award of **Ph.D. Degree** in Hindi.

I also declare that thesis is the result of my own effort and has not been submitted to any other University before for any Degree or Diploma.

P. Tirupathamma

(P. Tirupathamma)

Hyderabad

Date :

विषयानुक्रमणिका

क्रम			पृष्ठ संख्या
	प्राक्कथन	...	1 - 6

प्रथम अध्याय

	कवि व्यक्तित्व और नरेश मेहता	...	7 - 88
1.	नरेश मेहता - वंशगत परिवेश	...	8 - 17
2.	नरेश मेहता के व्यक्तित्व की विशेषताएं	...	17 - 22
3.	युगीन परिवेश और नरेश मेहता	...	22 - 50
	3.1. राजनैतिक	...	24 - 30
	3.2. आर्थिक	...	30 - 33
	3.3. सामाजिक	...	34 - 41
	3.4. धार्मिक	...	41 - 44
	3.5. सांस्कृतिक	...	44 - 50
4.	साहित्यक परिवेश	...	50 - 88
	4.1. छायावाद पूर्व युग	...	51 - 52
	4.1.1. छायावाद	...	53 - 56
	4.2. छायावादोत्तर युग	...	56 -

पृष्ठ संख्या

4•2•1•	प्रगतिवाद	•••	56 - 59
4•2•2•	प्रयोगवाद	•••	59 - 62
4•2•3•	नई कविता	•••	62 - 67
4•2•4•	नवगीत	•••	67 - 72
4•2•5•	नयागीत काव्य	•••	72 - 76
4•2•6•	राष्ट्रीय काव्य	•••	76 - 82
4•2•7•	जनवादी कविता	•••	82 - 88
4•2•8•	निष्कर्ष	•••	88 -

द्वितीय अध्याय

	नरेश मेहता का काव्य : मिथकीय युगबोध : कथ्य		89 - 213
1•	मिथक से तात्पर्य	•••	89 - 92
1•1•	कथ्य	•••	92 - 93
1•2•	नरेश मेहता के खण्ड काव्यों में कथ्य का परिवेश	•••	93 - 94
2•	आख्यानक काव्य : मिथकीय स्रोत	•••	94 - 102
2•1•	रामायणाख्यानक काव्य	•••	95 - 100
2•2•	महाभारताख्यानक काव्य	•••	100 - 101
2•3•	ऐतिहासिकाख्यानक काव्य	•••	101 - 102
3•	मिथक एवं युगबोध	•••	102 - 112
3•1•	मिथक की सामाजिक भूमिका	•••	112 - 151

पृष्ठ संख्या

3·1·1·	व्यष्टि एवं समष्टि का प्रश्न	···	115 - 122
3·1·2·	यथार्थबोध	···	122 - 128
3·1·3·	सामाजिक आग्रह	···	128 - 132
3·1·4·	समष्टि से मिलने की चाह	···	132 - 136
3·1·5·	समष्टि कल्याण का स्वर	···	137 - 142
3·1·6·	अस्पृश्यता	···	142 - 151
3·2·	मिथक की राजनैतिक भूमिका	···	151 - 212
3·2·1·	स्वाधीनता की चेतना का जागरण	···	153 - 158
3·2·2·	शोषण के विरुद्ध युद्ध और हिंसा की स्वीकृति	···	159 - 164
3·2·3·	उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद का विरोध	···	164 - 168
3·2·4·	युद्ध और शांति	···	168 - 174
3·2·5·	लघुमानव की प्रतिष्ठा	···	174 - 179
3·2·6·	जनतांत्रिक भावादर्श	···	180 - 195
3·2·7·	अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता	···	196 - 205
3·2·8·	खण्डित व्यक्तित्व	···	206 - 212
3·2·9·	निष्कर्ष	···	213 -

तृतीय अध्याय

	नरेश मेहता का काव्य : सांस्कृतिक चेतना	···	214 - 316
1·	सांस्कृतिक चेतना	···	215 - 220
1·1·	संस्कृतिगत मूल्य	···	220 - 257

पृष्ठ संख्या

1·1·1· धर्म ... 221 - 224

1·1·2· आध्यात्मिकता ... 224 - 225

1·1·3· नारी गौरव ... 225 - 231

1·1·4· राष्ट्रीय भावना एवं गाँधीवादी विचार दर्शन ... 232 - 237

1·1·5· अनुकरण की प्रवृत्ति ... 238 - 239

1·1·6· विश्वबंधुत्व की भावना ... 239 - 255

1·1·7· समन्वित दृष्टिकोण ... 255 - 257

1·2· आचार विचार ... 257 - 281

1·2·1· सम्बन्धों का संतुलन ... 257 - 276

1·2·1·1· पारिवारिक सम्बन्ध ... 260 - 261

1·2·1·2· माता-पिता-पुत्र का सम्बन्ध ... 262 -

1·2·1·3· पिता-पुत्र का सम्बन्ध ... 262 - 263

1·2·1·4· पति-पत्नी सम्बन्ध · 263 - 266

1·2·1·5· स्त्री-पुरुष सम्बन्ध ·· 266 - 267

1·2·1·6· भाई-भाई का सम्बन्ध ... 267 - 269

1·2·1·7· गुरु-शिष्य का सम्बन्ध 269 - 270

1·2·1·8· भक्त और भगवान का सम्बन्ध ... 271 - 272

1·2·1·9· व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध ... 272 - 273

1·2·1·10· राजा और प्रजा का सम्बन्ध ... 273 - 276

पृष्ठ संख्या

1·2·2· नारी का आत्म संघर्ष ... 277 - 278

1·2·3· नारी विद्रोह भावना ... 278 - 281

1·3· सांस्कृतिक समन्वय ... 281 - 288

1·3·1· स्थूल एवं सूक्ष्म का समन्वय ... 282 - 284

1·3·2· धरती एवं स्वर्ग का समन्वय ... 284 - 285

1·3·3· बहिरंतर का समन्वय ... 285 - 288

1·4· सांस्कृतिक आदर्श ... 288 - 315

1·4·1· सांस्कृतिक आदर्शों का युगीन परिवेश · 290 - 300

1·4·1·1· राजनीतिक आदर्श ... 291 - 292

1·4·1·2· सामाजिक आदर्श ... 293 - 295

1·4·1·3· मूल्यगत आदर्श ... 296 - 299

1·4·1·4· नैतिक आदर्श ... 299 - 300

1·4·2· यांत्रिक सभ्यता का विरोध ... 300 - 304

1·4·3· बुद्धिवाद का विरोध ... 304 - 309

1·4·4· ह्रासोन्मुख आदर्शों के विनाश की आकांक्षा एवं उत्कर्षोन्मुख आदर्शों की स्थापना ... 309 - 315

1·4·5· निष्कर्ष ... 316

पृष्ठ संख्या

चतुर्थ अध्याय

	नरेश मेहता का काव्य : वैचारिक पृष्ठ भूमि	...	317 - 385
1.	आधुनिकता बोध	...	317 - 327
2.	प्रगतिशीलता	...	327 - 331
3.	अस्तित्ववाद	...	331 - 337
4.	कालबोध	...	338 - 343
5.	क्षणवाद	...	343 - 347
6.	मृत्युबोध	...	347 - 356
7.	समाजवाद	...	357 - 361
8.	मानववाद	...	361 - 367
9.	अपमानबोध	...	367 - 371
10.	संशय	...	371 - 375
11.	संत्रास	...	375 - 377
12.	कर्मवादी जीवन दर्शन	...	377 - 381
13.	नैतिकदायित्व बोध	...	381 - 384
14.	निष्कर्ष	...	385

पंचम अध्याय

	नरेश मेहता का काव्य : शिल्प विधान	...	386 - 517
1.	काव्य के रूप	...	387
	1.1. खण्ड काव्य : प्राचीन एवं अर्वाचीन	...	387 - 393
	1.2. नरेश मेहता के खण्ड काव्य	...	393 - 399

पृष्ठ संख्या

2·	प्रतीक विधान	...	399 - 435
2·1·	शीर्षक की प्रतीकात्मकता	...	400 - 402
2·2·	सर्गों की प्रतीकात्मकता	...	402 - 403
2·3·	पात्रगत प्रतीक	...	404 - 411
2·4·	सांस्कृतिक प्रतीक	...	411 - 416
2·5·	रामकथा के प्रतीक	...	416 - 418
2·6·	महाभारत कथा के प्रतीक	...	418 - 419
2·7·	ऐतिहासिक कथा के प्रतीक	...	419 -420
2·8·	सैद्धांतिक प्रतीक	...	420 - 422
2·9·	दार्शनिक प्रतीक	...	422 - 428
2·10·	राजनैतिक प्रतीक	...	424 - 428
2·11·	प्राकृतिक प्रतीक	...	429 - 435
3·	बिम्ब विधान	...	436 - 454
3·1·	ऐन्द्रिय बिम्ब	...	437 - 450
3·1·1·	संवेद्यबिम्ब : दृश्य बिम्ब	...	438
3·1·2·	स्थिर बिम्ब	...	438 - 440
3·1·3·	गतिशील बिम्ब	...	440 - 441
3·1·4·	व्यापार बिम्ब	...	441
3·1·5·	दैनिक जीवन बिम्ब	...	441 - 442
3·1·6·	सांस्कृतिक बिम्ब	...	442 - 443
3·1·7·	दार्शनिक बिम्ब	...	443 - 444
3·1·8·	अन्य संवेद्य बिम्ब	...	444
3·1·9·	स्पर्श बिम्ब	...	445 - 447

पृष्ठ संख्या

		3·1·10· प्राण बिम्ब	···	447 - 448
		3·1·11· नाद या श्रव्य बिम्ब	···	448 - 450
	3·2·	मानस बिम्ब	···	450 - 454
		3·2·1· भाव बिम्ब	···	450 - 452
		3·2·2· विचार बिम्ब	···	453
		3·2·3· वैज्ञानिक एवं यांत्रिक बिम्ब	···	454
4·	भाषा		···	454 - 505
	4·1·	शब्द विधान	···	455 - 468
		4·1·1· तत्सम शब्द	···	456 - 459
		4·1·2· तद्भव	···	459 - 462
		4·1·3· देशी	···	462
		4·1·4· ग्रामीण शब्द	···	462
		4·1·5· विदेशी	···	462 - 466
		4·1·6· नवीन शब्द	···	466 - 468
	4·2·	छन्द	···	469
	4·3·	मुहावरे	···	469 - 480
	4·4·	उपमान योजना : अलंकार	···	480 - 501

			पृष्ठ संख्या
4.4.1.	उपमालंकार	...	481 - 487
4.4.2.	संदेहालंकार	...	487 - 490
4.4.3.	अन्त्यानुप्रास	...	490 - 494
4.4.4.	रूपकालंकार	...	494
4.4.5.	स्मरणालंकार	...	494 - 496
4.4.6.	उदाहरणालंकार	...	496 - 497
4.4.7.	उत्प्रेक्षालंकार	...	497 - 498
4.4.8.	उल्लेखालंकार	...	498 - 499
4.4.9.	तद्गुणालंकार	...	500
4.4.10.	स्वभावोक्ति अलंकार	...	500 - 501
4.5.	नवीन उपमानों का प्रयोग	...	501 - 505
5.	शैली	...	506 - 516
5.1.	इतिवृत्तात्मकता और शैली	...	506
5.2.	नाटकीय शैली : संवादात्मकता	...	506 - 509
5.3.	प्रश्नोत्तर शैली	...	509 - 512
5.4.	तर्कशैली	...	512 - 515
5.5.	मनोवैज्ञानिक शैली	...	515 - 516
5.6.	निष्कर्ष	...	517
	उपसंहार	...	518 - 524
	परिशिष्ट : आधार तथा सन्दर्भ ग्रन्थ सूची	...	525 - 536

प्राक्कथन

आज के वैज्ञानिक एवं बौद्धिक युग में जहाँ एक ओर नवीनता एवं आधुनिकता के प्रति विशेष आग्रह पाया जाता है, वहीं दूसरी ओर पौराणिक एवं ऐतिहासिक संदर्भ में भारतीय परम्परा के प्रति विशिष्ट रुचि भी दृष्टिगत होती है। ईसा की उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उद्वेलित भारतीय समाज में विज्ञानाश्रित आधुनिक विचारों के जो नए अंकुर प्रस्फुटित हुए थे, उन्हें बीसवीं सदी में अनुकूल भूमि प्राप्त हुई और क्रमशः विकसित होते हुये देखा जा सकता है। पाश्चात्य संस्कृति के सम्पर्क में प्राचीन भारतीय मूल्यों को अच्छी तरह परखने का अवसर मिल गया। यथार्थ भूमि पर चिन्तन करने से यहाँ के बुद्धि प्रवण लोगों ने अनुभव किया कि युग के सन्दर्भ में जो कालबाह्य है उसका व्यामोह व्यर्थ है और जो कालग्राह्य है उसकी उपेक्षा भी पूर्णतः घातक है। इस तरह वैचारिक धरातल पर जो तर्क संगत एवं बुद्धि सम्मत था वह प्रत्यक्ष जीवन में शनैः शनैः सहजता से व्यवहृत भी होने लगा। प्राचीन भारतीय संस्कृति के अत्यावश्यक तत्वों की रक्षा करते हुए नवीन आधुनिक दृष्टि का प्रभाव यहाँ के राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक क्षेत्रों में सहजरूप में दृष्टिगोचर होने लगा। सामाजिक जीवन के इस परिवर्तन का बिम्बन स्वाभाविक रूप से साहित्य जगत पर भी दिखाई देने लगा।

भारतीय समाज के मनोविज्ञान को साहित्यकारों ने भली भाँति पहचान लिया था। साहित्य के माध्यम से यदि नए युग की अधुनातन विचारधारा से समाज में जागृति करनी हो तो पुराणों व इतिहासों के विख्यात सूत्रों का आधार ग्रहण करना उन्हें आवश्य प्रतीत हुआ। पौराणिक एवं ऐतिहासिक कथाओं का आश्रय ग्रहण कर अपने अभीप्सित कथ्य को व्यंजित करने का प्रयास साहित्यकारों ने मध्ययुग में भी किया है, परन्तु वह अप्रस्तुत कथन जीवन से कहीं दूर आध्यात्मिक अलौकिक भूमि पर ले जाता था। हाँ कहीं-कहीं व्यंजना के रूप में तत्कालीन राजनीतिक एवं सामाजिक स्थिति का संकेत ऐसे प्रबन्ध काव्यों

में अवश्य मिलता है, परन्तु ऐसी काव्य कृतियों का प्रधान लक्ष्य पौराणिक अथवा ऐतिहासिक कथा का प्रस्तुती करण मात्र था, जो आधुनिकता के संदर्भ में वर्ज्य माना जाता है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में काव्य के अन्य रूपों के समान खण्ड काव्य का भी सर्वांगीण विकास हुआ है। इस दृष्टि से यह युग सचमुच हिन्दी खण्ड काव्य परम्परा का स्वर्ण युग है। इसका एक प्रमुख कारण भी है कि - काव्य के इतर रूपों की जितनी प्रमुखता के साथ संस्कृत एवं हिन्दी विद्वानों द्वारा विवेचना हुई है, खण्ड काव्य की उतनी नहीं। यही उपेक्षा खण्ड काव्य साहित्य एवं उसके काव्य रूप विषयक शोध कार्य के साथ भी हुई है। आधुनिक युग के अनेक कवियों ने इस काव्य रूप को लेकर अनेक खण्डकाव्य लिखे हैं। पौराणिक कथावस्तु को कथा स्रोत के रूप में लेकर उसे आधुनिक संदर्भ में प्रस्तुत किया है। पुराख्यान से प्रभावित काव्यों की परम्परा आधुनिक हिन्दी साहित्य की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अधिक विकसित एवं सुदृढ़ मिलती है।

आधुनिक साहित्य के केन्द्र में आम आदमी का स्थान सर्वोपरि है। उसके सुख-दुख, अनुभव, संघर्ष, जीवन की विभीषिकाएँ सब साहित्य की प्राय: सभी विधाओं की सृजन की भूमिका में है और उनके अनेक रूप अभिव्यक्ति पा रहे हैं। आधुनिक कवियों में नरेश मेहता अपने परिवेश के प्रति अधिक सजग एवं सक्रिय रहते हुए सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक समस्याओं के समाधान के सूत्र भी खोजते आ रहे हैं। उनकी दृष्टि स्वाभाविक रूप से अपने अतीत साहित्य की ओर भी गई है। आज के युग की क्रांति जिन नैतिक मूल्यों की पृष्ठ भूमि पर निर्मित है वे ही परिस्थितियाँ रामायण एवं महाभारत के सन्दर्भों में भी घटित हुयी है। अनेक वैयक्तिक और सामाजिक आदर्शों के लिए समाज और भारतीय साहित्य इन प्रभाव सम्पन्न काव्यों का ऋणी रहा है। अत: कवि इन प्राचीन काव्यों की आख्यानगत प्रभाव परम्परा का सबसे अधिक ऋणी है। वह पुराख्यानों को आधार मानकर युगानुरूप नवीन दिशानिर्देश

करता रहा है । उनके काव्य के स्वरूप को यथावत समझने के लिए पुराख्यान की इस प्रभाव परंपरा का अध्ययन अपने आप में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है । कवि ने इन पौराणिक कथाओं के आधार पर हमारी सांस्कृतिक चेतना के समृद्ध स्वरूप की रक्षा ही नहीं की है वरन् उनकी बुद्धि एवं तर्क सम्मत व्याख्या भी की है ।

नयी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर के रूप में नरेश मेहता प्रसिद्ध हुए हैं । वे एक बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार हैं । उन्होंने मुक्तक, खण्डकाव्य, उपन्यास, नाटक, एकांकी, कहानी आदि विधाओं को स्वीकार कर अपने सृजनात्मक साहित्य को मंडित किया है । इनके खण्डकाव्य अपनी विशेषताओं को लेकर बहु प्रशंसित हैं। इनका विशद विश्लेषण को देखने पर हमारे सम्मुख स्वतः ही अनेक प्रश्न उपस्थित होते हैं । क्या ये समस्त काव्य कृतियाँ आधुनिक भावबोध के वाहक हैं ? क्या इन समस्त कृतियों में केवल आधुनिकता का ही स्वर गूँज रहा है ? केवल आधुनिक युग में लिखी गई है इसलिए उन्हें वास्तविक रूप में आधुनिक कहना कहाँ तक समीचीन है ? आज के वैज्ञानिक एवं बौद्धिक युग में पौराणिक एवं ऐतिहासिकता को आधार बना कर लिखी गई इनकी काव्य-कृतियों के पीछे क्या रहस्य निहित है ? इन जिज्ञासाओं के समाधान के हेतु आधुनिकता के संदर्भ में इन खण्डकाव्यों का विश्लेषण करना आवश्यक प्रतीत हुआ । विषय की व्यापकता और गंभीरता को ध्यान में रखकर इनके साहित्य पर शोध कार्य करने की इच्छा जब मेरे मन में जगी तभी मुझे हैदराबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में पी•एच-डी• उपाधि के लिए प्रवेश भी प्राप्त हुआ । जब शोध के लिए विषय चयन का समय आया तो मैं ने नरेश मेहता के साहित्य की ओर अपनी जिज्ञासा व्यक्त की । विभाग ने मुझे उनके खण्डकाव्यों को केन्द्र में रखकर अध्ययन करने की सलाह दी ।

युगीन संवेदना के स्वाक्षर पक्षधर नरेश मेहता के काव्यों में व्यक्त कथ्य सम्बन्धी संवेदनाएँ और शिल्प सम्बन्धी विशेषताएं मेरी जिज्ञासा को प्रेरणा प्रदान करती रही है।

अध्ययन की जो योजना बनी हैउसके अनुसार प्रस्तुत कार्य पाँच अध्यायों में विभक्त किया गया है । योजना का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है —

प्रथम अध्याय - कवि व्यक्तित्व और नरेश मेहता से संबंधित है । इस अध्याय में कवि का जन्म पारिवारिक संबंधी विवरण दिया गया है । इसमें इनके जीवन एवं जीवन धारा को प्रभावित करते हुए कवि व्यक्तित्व को प्रदान करनेवाली युगीन परिस्थितियों का अनुशीलन किया गया है । युगीन परिवेश से प्रभावित कवि के रूप में समकालीन साहित्य के प्रति उनके साहित्यिक देन सम्बन्धी विवरण दिया गया है ।

द्वितीय अध्याय में - " आख्यानक काव्य मिथकीय युगबोध तथ्य " विश्लेषण पर प्रकाश डाला गया है । इसमें काव्य के कथा स्रोतों का परिचय दिया गया है । पौराणिक पात्रों से संबद्ध मिथकों को प्रस्तुत करने की अपेक्षा युगीन संवेदना को व्यक्त करने के पीछे निहित कवि का उद्देश्य इस अध्याय में चर्चित है । वैयक्तिक, सामाजिक और राजनैतिक जैसे विभिन्न धरातलों पर मानवीय विसंगतियों एवं उसमें व्याप्त विरोधाभासों का मिथकीय धरातल पर विश्लेषित करना युगबोध का सशक्त आयाम बन गया है । इस दृष्टि से नरेश मेहता के खण्ड काव्यों के कथ्य की समालोचना इस में हुई है ।

तृतीय अध्याय नरेश मेहता का काव्य : सांस्कृतिक चेतना से संबंधित है । इसमें भारतीय संस्कृति, सभ्यता, मानवीय सम्बन्धों एवं सांस्कृतिक समन्वय पर विचार किया गया है । भारतीय संस्कृति को दृष्टि में रखकर धर्म, अहिंसा, करुणा आदि उसके तत्वों पर विचार किया गया है । युगीन परिवेश के संदर्भ में सांस्कृतिक आदर्शों की स्थापना की आवश्यकता को स्पष्ट किया गया है । अतिशय बौद्धिकता के खण्डन की आवश्यकता को स्पष्ट किया गया है । पाश्चात्य संस्कृति के सम्पर्क में भारतीय

संस्कृति के स्वस्थ रूप एवं गौरव का दर्शन किया गया है । आज विभिन्न रूपों में इस संस्कृति में प्रवेश पानेवाले विकृतियों को दृष्टि में रखकर सांस्कृतिक चेतना को जगाने की आवश्यकता को स्पष्ट किया गया है ।

" नरेश मेहता का काव्य : वैचारिक पृष्ठ भूमि " - चतुर्थ अध्याय का शीर्षक है । काव्य की वैचारिक पृष्ठ भूमि में प्रगतिशील, अस्तित्ववादी, समाजवादी एवं मानववादी विचार धाराओं को स्थान देकर उन्हें आधुनिकता के संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है । समुन्नत युगबोध के विविध आयामों (यथा - आधुनिकता बोध, अस्तित्व बोध, कालबोध, संशय, संत्रास, अपमानबोध आदि) का समकालीन जीवन की ज्वलंत समस्याओं का निरूपण और निदान के परिप्रेक्ष्य में सशक्त एवं सार्थक प्रतिफलन हुआ है । प्रकारान्तर से ये ही विचार सरणियाँ काव्य को युगों तक जीवित रहने के लिए आवश्यक अमरता प्रदान करती है ।

पंचम अध्याय - " नरेश मेहता का काव्य: शिल्प विधान " से सम्बन्धित है । इसमें खण्डकाव्यों की शिल्प विधि का काव्य रूप, प्रतीक विधान, बिबं विधान, उपमान योजना, भाषा शैली आदि के संबंध पर विचार किया गया है । इनकी विशेषताओं को अनेक उपशीर्षकों के अंतर्गत रखकर अध्ययन किया गया है ।

उपसंहार में नरेश मेहता के खण्डकाव्य में वर्णित कथ्य और शिल्पगत विशेषताओं को रेखांकित किया गया है ।

शोध कार्य एक सामूहिक अनुष्ठान है । इसमें गुरुजनों, पंडितों एवं मित्रों का सहयोग अपेक्षित रहता है । मैं उन सभी को धन्यवाद प्रकट करती हूँ, जिनकी सहायता मुझे मिली है । मैं सर्व प्रथम मेरी निर्देशिका आदरणीया डा॰नूरजहाँ बेगम जी के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिन्होंने मेरी रुचि के अनुकूल शोध विषय का चयन कर उसकी परिसमाप्ति के लिए सभी प्रकार से प्रोत्साहित कर पग-पग पर मेरा निर्देशन

किया है । उनकी सहनशीलता, मूल्यवान सलाहों एवं प्रोत्साहन के प्रति विशेष आभार प्रकट करती हूँ । प्रो॰ ब्रिजेन्द्र नारायण सिंह जी के प्रति मैं अपनी आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने विषय चयन के समय विभागाध्यक्ष के रूप में मुझे इस दिशा में काम करने के लिए स्वीकृति देकर प्रोत्साहित किया है । विशेषकर प्रो॰ के॰ वेंकटरमणा राव जी के प्रति आभार प्रदर्शन करना मैं अपना पुनीत कर्तव्य मानती हूँ । उन्होंने अत्यंत वात्सल्यता एवं करुणा के साथ इस कार्य को सम्पन्न करने में अपना सहयोग दिया है । ऐसे ही विभागाध्यक्ष प्रो॰ शशि मुदिराज जी एवं अन्य गुरुजनों के प्रति मैं सादर प्रणाम समर्पित करती हूँ । इसके साथ में उन लेखकों के प्रति अत्यंत आभारी हूँ, जिनकी रचनाएँ संदर्भ ग्रन्थों के रूप में मेरे अध्ययन का सम्बल बनी है । सामग्री संकलन में सहायक होने वाले हैदराबाद विश्वविद्यालय के ग्रन्थालय एवं उसके अन्य सदस्यों के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ । अध्ययन के लिए अनेक सुविधाओं को प्रदान करके मुझे प्रोत्साहित [illegible] । हैदराबाद विश्वविद्यालय के प्रति हार्दिक धन्यवाद अर्पित करती हूँ । सुन्दर रूप से टैपिंग करने की ओर से मैं श्री अरुण कुमार जी को भी विशेष आभार प्रकट करती हूँ

शोधाध्ययन के समय आद्यंत मुझे प्रोत्साहन सहित सलाह देनेवाले मेरे सहृदय प्रिय मित्रों में श्री देवी, स्वर्णलता, वासन्ति, पद्मावती एवं सुब्बलक्ष्मी के प्रति आभार प्रदर्शित करती हुई अत्यंत प्रसन्नता का अनुभव करती हूँ । इसके साथ वसुंधरा, नसीरा, एवं अन्य मित्रों के प्रति भी अत्यंत आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे प्रूफरीडिंग में सहायता दी है ।

अंत में मैं अपने माता-पिता एवं परिवार के अन्य सदस्यों की उत्साह वर्धक प्रेरणाओं के प्रति भी विशेष कृतज्ञता प्रकट करती हूँ । उनके प्रति आभार प्रदर्शन औपचारिकता मात्र होगी । अस्तु उनकी प्रेरणा, वात्सल्य एवं शुभाशंसा की ही मंगलाकांक्षा करती हूँ ।

पी॰ तिरुपतम्मा

(पी॰ तिरुपतम्मा)

प्रथम अध्याय

कवि व्यक्तित्व और नरेश मेहता

प्रथम अध्याय

कवि व्यक्तित्व और नरेशमेहता

आधुनिक हिन्दी साहित्य में सप्तकों और नयीकविता की विशाल सृजन भूमि पर जो कुछ विशिष्टतम कवि-व्यक्तित्व अंकुरित, पल्लवित एवं विकसित हुए तथा अपने पुष्प-गन्ध एवं फलसम्पदा से हिन्दी-जगत को परितृप्त एवं परिपूर्ण किये उनमें एक विशिष्टतम नाम नरेशमेहता का है। साहित्य में उनका आगमन किस प्रकार हुआ है, उन्हें कवि व्यक्तित्व किस प्रकार प्राप्त हुआ है। अपनी युगीन परिस्थितियों से वह किस प्रकार प्रभावित हुए हैं इत्यादि के बारे में परिचय प्राप्त करना यहाँ अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि एक विराट व्यक्तित्व की परिवेशगत पृष्ठभूमि ही कवि का मूल्यांकन करने में सहायक सिद्ध होती है।

नरेशमेहता का नाम आज इतना प्रसिद्ध हो गया है कि पाठक उन्हें इस नाम के अतिरिक्त अन्य किसी नाम से जानते ही नहीं। नरेशमेहता का वास्तविक नाम है पूर्णशंकर शुक्ल। मेहता एक पदवी है जो इनके पूर्वजों को गुजरात-यात्रा के समय प्रदान की गयी थी। नरेश नाम की घटना इस प्रकार है कि हाईस्कूल के लिये पूर्णशंकर नरसिंहगढ़ गये थे, अपनी बुआ के घर। नरसिंहगढ़ का राजघराना साहित्यानुरागी था। नरसिंहगढ़ की राजमाता प्रतिवर्ष किसी न किसी श्रेष्ठ साहित्यकार को अपने यहाँ सम्मानपूर्वक आमंत्रित करती थीं। इस राजमाता ने पूर्णशंकर में काव्य-प्रतिभा देखकर इनका नाम नरेश रख दिया। इस प्रकार पूर्णशंकर नरेशमेहता हो गये।

1· नरेशमेहता – वंशगत परिवेश :-

श्री नरेशमेहता का जन्म 15 फरवरी सन् 1922 को मालवा के शाजापुर नामक स्थान पर हुआ । वे गुजराती ब्राह्मण थे । संस्कार से आर्षपरम्परा में निष्णात थे । इनके पिता बिहारीलाल एक रजिस्ट्रार थे । इनके तीन विवाह हुए । प्रथम पत्नी निस्संतान ही देवलोक सिधारीं । दूसरी पत्नी से एक कन्या शान्ति हुई और तीसरी पत्नी से एक पुत्र हुआ जो आज कवि नरेशमेहता के नाम से प्रसिद्ध है । नरेशमेहता जब केवल डेढ़ वर्ष के ही थे तब इनकी माता जी का देहावसान हो गया । बिहारीलाल शुक्ल के दो भाई थे । एक पं॰शंकरलाल मेहता और दूसरे रामानारायण थे । रामनारायण की अकाल मृत्यु समुद्र में स्नान करते हुए हो गई थी । इस मृत्यु से परिवार के सभी सदस्यों को गहरी चोट लगी । तीनों पत्नियों तथा भाई के वियोग से उत्पन्न संत्रास, दुःख तथा जीवन के अन्य आघातों के कारण पंडित बिहारीलाल शुक्ल जीवन से विरक्त हो गए । इसलिए वह अपने इकलौते पुत्र की देखभाल करने में असमर्थ हो गए ।

नरेशमेहता के दूसरे चाचा श्री शंकरलाल मेहता धार राज्य में एक विद्यालय में हेडमास्टर थे और बाद में डिप्टी कलेक्टर हो गये थे । वे बड़े ही दबंग व्यक्तित्व-वाले व्यक्ति थे । पढ़े लिखे और सुसंस्कृत रुझानवाले । जहाँ एक ओर मोटर, बंगला और नौकर चाकर से परिपूर्ण वैभवशाली उनका घर था वहीं उनमें कविता और कला के प्रति भी गहरी रुझान थी । वे स्वयं ब्रजभाषा में कविताएँ लिखते थे । फारसी का भी उन्हें अच्छा ज्ञान था । कविता कुसुम नाम से एक ब्रजभाषा का संकलन भी उन्होंने किया जो दो भागों में प्रकाशित हुआ था । गणित में भी उनकी गहरी रुचि थी । विदेशों से गणित की पुस्तकें मँगा कर उनका अध्ययन करते थे । उनके शौक भी विचित्र एवं विविध थे । बढ़ईगीरी, फोटोग्राफी, कालीन बुनना और शतरंज उनकी हाबी थी । उन्हें केवल एक ही सन्तान थी, एक बच्ची, जिसका

नाम अन्नपूर्णा था । उसकी भी मृत्यु बचपन में ही हो गई । इन्हीं चाचा जी ने बालक नरेशमेहता को अपने पुत्र के रूप में स्वीकार कर लिया था । 3,4 वर्ष की उम्र में ही नरेशमेहता जी अपने चाचा के पास चले गये थे । वहाँ का सम्पन्न वातावरण ही नरेशमेहता का बचपन का वातावरण था । जहाँ कविता, कला और भौतिक सुख-सुविधा की पूरी व्यवस्था थी । इसकाल के नरेशमेहता एक ऐसे बालक थे जिन्हें कहीं कुछ ऊपरी तौर पर कष्टकर नहीं था । फिर भी गहराई में, अत्यन्त गहराई में माँ की मृत्यु और पिताजी से विछोह की कसक बालक नरेशमेहता के मन में जरूर बनी रही होगी । लेकिन चाचा के स्नेह तथा भौतिक सुख सुविधाओं के कारण वे जीवन में रुचि लेने लगे । बिहारीलाल पुत्र के प्रति अपने दायित्व को भूलकर सदा अपने में डूबे ही रहे थे । लड़के का दायित्व भी उनसे एक प्रकार से छिन सा ही गया था । इधर नरेशमेहता का बचपन सारी ऊपरी पूर्णताओं में विलास की मंजिले पार कर रहा था । एक बार उन्होंने रामकमल राय से इस प्रकार कहा था - "मेरे व्यक्तित्व में दो व्यक्तित्व स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं । साहित्यक असंग व्यक्तित्व मेरे पिता का है और उदार, उल्लसित और वैभवपूर्ण व्यक्तित्व मेरे चाचा का । "[1] नरेशमेहता जी के पिता की मृत्यु जब वे 23 वर्ष के हो चुके थे तब हुई । उन्होंने अपने निकटतम सम्बन्धियों की मृत्यु अति निकट से देखी थी । मृत्यु से उत्पन्न दुःख, करुणा, अकेलापन एवं कुण्ठा को उन्होंने स्वयं भोगा था । ममत्व, सुरुचिपूर्ण वातावरण एवं राजसी-वैभव का समावेश इन करुणापूर्ण परिस्थितियों के साथ ही उनके व्यक्तित्व का निर्माण हुआ ।

विधुर चाचा की परिवारहीनता, अनुशासनप्रियता एवं राजसी-वैभव ने नरेशमेहता के स्वभाव में संकोच तथा आत्मचिन्तन की भावना भी भर दी थी । चाचा और बड़ी बहिन शान्ति दीदी की लेखकीय प्रतिभा का प्रभाव नरेशमेहता जी

---

1. नरेशमेहता-कविता की उर्ध्वयात्रा - रामकमलराय - पृ. 18.

पर भी पड़ा । उस समय की प्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिकाओं सरस्वती, माधुरी और चाँद आदि में उन दोनों की रचनाएँ प्रकाशित होती रहती थीं । चाचाजी तो ब्रजभाषा के पण्डित ही थे, उर्दू-फारसी का भी उन्हें पर्याप्त ज्ञान था । उनकी आठ-दस पुस्तकें प्रकाशित भी हो चुकी थीं । शान्ति दीदी एक अच्छी कवयित्री थीं । इस प्रकार घर के साहित्यिक वातावरण का प्रभाव उनपर पड़ा । उस समय नरेशमेहता का सृजनात्मक मन ज्यादा तर शान्ति दीदी से जुड़ा हुआ था । "उन्होंने अपनी दस वर्ष के उम्र में सन् 1932 में 'दो भौंहें हैं' नाम से एक कविता लिखी । यही इनकी पहली रचना है ।"[1]

सन् 1932 में केवल 20 वर्ष की वय में ही शान्ति दीदी की मृत्यु हो गयी और उनकी काव्य प्रतिभा का लाभ हिन्दी संसार अधिक नहीं प्राप्त कर सका । शान्ति दीदी की जो काव्य संभावनाएँ अभिव्यक्ति नही पा सकी थीं वे विभिन्न प्रकार की अनुभूतियाँ प्राप्त कर नरेशमेहता जी के काव्य में अभिव्यक्त होने लगीं । नरेशमेहता अपने चाचा के यहाँ छठवी कक्षा तक ही शिक्षा प्राप्त की । उसके बाद पढ़ने के लिए वे नरसिंहगढ़ चले गये जहाँ उनके बुआ का घर था । वहीं उन्होंने सात से लेकर दस वी कक्षायें उत्तीर्ण कीं । पालनपोषण का सारा खर्च चाचाजी ही वहन करते थे ।

नरेशमेहता अपनी किशोरावस्था में नरसिंहगढ़ की प्राकृतिक शोभा से बहुत प्रभावित हुए । यहाँ उन्होंने अपनी स्कूली पढ़ाई के अतिरिक्त अन्य पुस्तकों का भी अध्ययन किया । राबिन्सन क्रूसो से लेकर हिटलर की आत्मकथा [मीनकैम्फ] तक का अध्ययन इन्होंने यहीं किया । किशोर मानस पर यूरोप की

1· नरेशमेहता कविता की ऊर्ध्वयात्रा – रामकमल राय – पृ· 18·

चित्रात्मकता का गहरा प्रभाव पड़ा । उस समय देश के भीतर भी बहुत कुछ घटित हो रहा था । स्वतन्त्रता आन्दोलन तीव्र रूप में था । भगतसिंह की फाँसी ने पूरे किशोर एवं युवा-मन को आन्दोलित कर दिया था । उस समय की राजनीतिक परिवेश से वे अछूते नहीं रह सके । भगतसिंह की मृत्यु के पश्चात् महात्मागांधी के सिद्धान्तों से प्रभावित होकर खादी टोपी खरीदकर पहन लिया । बागी की गजलें खरीद कर पढ़ी । नरसिंहगढ़ के जीवनकाल में ही उनके राजनीतिक एवं साहित्यिक जीवन की गति में और सक्रियता आई । यहीं इन्हें कवि बनने की प्रेरणा मिली । देश की समस्याओं पर हस्तलिखित पत्रिका प्रकाशित कर अपनी सम्पादकीय प्रतिभा प्रकट की और अनेक काव्य गोष्ठियों में अपनी काव्य-कला का प्रदर्शन किया । अब उन्होंने बकायदे कविता लिखना शुरू कर दिया था । यात्रावृत्तान्त का नरेशमेहता को बड़ा आकर्षण था । सत्यदेव परिव्राजक का अमेरिका भ्रमण छपा था जिसे नरेशमेहता ने कई बार पढ़ा । उसी समय जर्मन जागरण का बिगुल जैसे पुस्तकें भी नरेशमेहता ने पढ़ीं । अब इन्होंने कहानियाँ लिखना शुरू किया । इनकी पहली कहानी 'रेशमीरूमाल' लाहौर की मासिक पत्रिका शान्ति में छपी । सन् 1940 के आस-पास भी इन्होंने कुछ कहानियाँ लिखीं । इन सभी कहानियों की चर्चा 'एक समर्पित महिला' नामक कहानी संग्रह में हुई ।

नरसिंहगढ़ से हाईस्कूल की पढ़ाई पूरी करके आगे की शिक्षा प्राप्त करने अपने 18 वर्ष की उम्र में उज्जैन आये । यह समय सन् 1942 का था । स्वतन्त्रता संग्राम पूरे यौवन पर था । सारे देश के युवक और विद्यार्थी इस संग्राम में प्राणों को हथेली पर लिये जूझ रहे थे । नरेशमेहता ने इस संग्राम में सक्रिय रूप से भाग लिया । अनेक वारण्ट इनके चारों ओर घूम रहे थे किन्तु क्रान्तिकारी नरेशमेहता उन सबसे बचते हुए अपने कार्य में लगे रहे । इस क्रान्तिकारी जीवन में जहाँ वे गोलीबारी और बम-विस्फोटों के धमाकों में भाग-दौड़ करते रहे वहाँ रवीन्द्र

रवीन्द्र, उमर खैय्याम और महादेवी वर्मा के काव्य की रहस्यमयी, मादक और गीतात्मक धाराओं में भी निमग्न होते रहे। विदेशी लेखकों में इन्हें गोर्की और बर्नार्डशॉ ने सब से अधिक प्रभावित किया।

उज्जैन में अध्ययन करते हुए भी इन्होंने लगभग दस कहानियाँ लिखा था। इनमें से एक कहानी 'हम जिसे जिन्दगी कहते हैं' एक कहानी पत्रिका की प्रतियोगिता में पुरस्कृत भी हुई थी। उज्जैन में वे पूरी तौर पर सक्रिय थे। साहित्य और राजनीति दोनों क्षेत्र उनकी उत्कण्ठा और सक्रियता को आहूत कर रहे थे। पैसे बराबर चाचा के यहाँ से आते थे। चाचा के साथ बिताये गये बचपन के कुछ वर्ष बालक नरेशमेहता के भीतर एक खर्चीला सामन्ती स्वभाव का निर्माण कर चुके थे, वे शाहखर्ची से रहते थे। चाचा ने मनीआर्डर के साथ एक बार कुछ चुभती हुई चेतावनी भी दे डाला था। बस क्या था ? नरेशमेहता के भीतर बैठा वह असंग स्वाभिमान फन फना उठा। उसने मनीआर्डर वापस कर दिया। इतनी ही नहीं, आगे चाचा का कोई पैसा कभी भी स्वीकार नहीं किया, जीवन पर्यन्त। इस एक घटना से नरेशमेहता के स्वभाव का गहरा विश्लेषण हो सकता है। उनकी फकीरीका, उनके स्वाभिमान का, उनके संकल्प का, उनकी मंगलकांक्षिणी रचना धर्मिता का बीजमंत्र इस घटना में खोजा जा सकता है। उसके बाद नरेशमेहता ने कितनी ही यातनाएँ भोगी, वे अभाव के कितने ही मर्मान्तिक अनुभवों से गुजरे, परन्तु उन्होंने कभी भी उलटकर अपने सगे चाचा की ओर नहीं देखा। डिप्टी कलेक्टर के रुतबे में ढला हुआ चाचा का व्यक्तित्व लगातार प्रतीक्षमान रहा होगा कि लड़का एकबार हाथ फैला दे, फिर तो उस पर कुछ भी वारा जा सकता था परन्तु यह नहीं होना था, नहीं हुआ। यातना, अभाव, संकल्प और रचनाशीलता की कड़ियों से जुड़ा हुआ एक नया व्यक्तित्व निर्मित होना था और वह हुआ।

राजनीतिक गतिविधियों तथा आर्थिक कारणों से नरेशमेहता को मालवा में रहकर अध्ययन का क्रम बनाये रखना असम्भव प्रतीत होने लगा । एकदिन केवल बत्तीस रुपये की पूंजी अपने पिताजी से लेकर वे काशी जा पहुँचे । नरेशमेहता ने काशी के विषय में स्वयं कहा है कि " काशी सदा एक नारिकेल फल जैसी ही लगी, ऊपर से कठोर, भीतर से जलयुक्त । "[1] यहाँ उन्होंने अनेक यातनाओं का सामना करते हुए भी अपनी असाधारण लगन से काशी विश्वविद्यालय से बी॰ए॰ तथा एम॰ए॰ उपाधियाँ प्राप्त कीं । काशी विश्व - विद्यालय के साहित्यिक एवं सांस्कृतिक वातावरण ने इनके कवि व्यक्तित्व के विकास को प्रेरणा तथा प्रोत्साहन दिया । विद्वान गुरुजनों के सम्पर्क में आने से इनकी साहित्यिक प्रतिभा का महत्त्वपूर्ण विकास होने लगा । भाषा और संस्कृति की जागरूकता के साथ ही इन्हें वैदिक कविता के प्रति भी प्रेरणा प्राप्त हुई । यहाँ इन्होंने अनेक कहानियाँ भी लिखी । यहीं पर वेदाध्ययन भी पूरा किया । नरेशमेहता का कवि व्यक्तित्व पूरी तरह आर्ष चिन्तन शीलता में डूबा हुआ है । सारे प्रतीक और मिथक की अवधारणायें उनके चिन्तन और अनुभव का सहज अंग बन गई है । उनकी सम्पूर्ण शब्दावली उसी आर्ष परम्परा से सुसंस्कृत हुई है ।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में सैनिक शिक्षा प्राप्त करने से श्री नरेशमेहता अंग्रेजी शासन की सेना में "सैकिन्ड लैफ्टिनेन्ट के पद पर चुन लिये गये और ईराक मोर्चे पर जाने के आदेश इन्हें मिल गये । काशी विश्वविद्यालय अपनी राष्ट्रीय परम्परा में दृढ़ था और इसीलिये युद्ध में अंग्रेजों को सहयोग देने के विरुद्ध था । तत्कालीन उपकुलपति डा॰सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने अपने विश्व - विद्यालय के छात्र नरेशमेहता को ब्रिटिश सेना में नहीं जाने दिया । सेना में न

1॰ नयी अनुभूति - नरेशमेहता - भूमिका - कुलदीप - पृ॰ 20॰

जाने से नरेशमेहता आर्थिक संकट में तो पड़े किन्तु देहरादून में छ: माह के सैन्य-शिविर में उन्हें जो प्रशिक्षण मिला, उसके फलस्वरूप वहीं इन्होंने अपना प्रथम उपन्यास लिखा - ट्रेन्चेज के पीछे से । इस उपन्यास में राजनीतिक दृष्टिकोण ही प्रमुख था, अत: वहाँ के अंग्रेज सैनिक अधिकारियों ने इसकी पाण्डुलिपि जब्त कर दी । इसके बाद भी उन्होंने अनेक उपन्यास लिखे फिर भी वे मूलत: कवि ही रहे । इस प्रकार उन्हें जीवन में अनेक प्रकार के अनुभव प्राप्त हुए जो उनके कवि व्यक्तित्व की सशक्त भूमिका बनें ।

हिन्दी में एम०ए० करने के पश्चात् इन्होंने शोध-कार्य आरम्भ किया, किन्तु जीविका की समस्या ने इन्हें शोध-कार्य से विरत कर दिया और विवश होकर पत्र-पत्रिकाओं के लिये रचनाएँ करने लगे । बाद में इन्हे लखनऊ आकाश - वाणी में कार्यक्रम संचालक का पद प्राप्त हुआ । सन् 1948 से लेकर 1952 तक इसी पदपर रहे । लखनऊ में कुछ दिन तक प्रगतिशील लेखक संघ के सम्पर्क में रहकर बाद में उनसे अलग हो गये । सन् 1952 में उनका ट्रान्सफर नागपुर में हुआ । नरेशमेहता का राजनैतिक रूझान उस समय तक कम्युनिस्टपार्टी से सम्बन्धित थी । अपनी इसी राजनैतिक गतिविधियों के कारण उन्हें नौकरी को छोड़ना पड़ा । सन् 1948-49 में लखनऊ-प्रयाग में रहते समय उन्होंने डूबते मस्तूल " नामक उपन्यास लिखा जो सन् 1954 में प्रकाशित हुआ । सन् 1954 से 1959 तक अपने भाई श्री नंदकिशोर भट्ट के साथ दिल्ली में रहे । इस समय केवल लेखन को ही अपना प्रधान काम बनाया । 1954 में दिल्ली आने के बाद अपनी साहित्यिक अभिरूचि एवं प्रतिभा के आधार पर कुछ साहित्य सेवा करने का विचार किया । यहाँ एक साहित्यिक पत्रिका निकाली, किन्तु उसका दूसरा अंक आज तक नहीं निकल सका । दूसरी बार कुछ अधिक तैयारी के साथ 'कृति' नामक महत्त्वपूर्ण पत्रिका निकाली जो हिन्दी की एक सुरूचिपूर्ण और श्रेष्ठ पत्रिका के रूप में प्रसिद्ध हुई । सन् 1957 में उनका विवाह महिमा जी से हुआ । सन् 1959 में विशेष परिस्थितियों वश नरेशमेहता को

दिल्ली छोड़ देनी पड़ी और तब से इलाहाबाद में हैं । दिल्ली के विषय में नरेशमेहता का दृष्टिकोण है कि – "दिल्ली जो न नादिर शाह की हुई, न तैमूरलंग की, वह भला एक हिन्दी कवि की क्या होती ।"[1]

प्रयाग में रहने के इस संकल्प को इनके कवि जीवन का शुभारम्भ मान सकते हैं । यहाँ इन्होंने दो वर्ष तक अनेक कठिनाइयों का सामना किया । प्रयाग के साहित्यिक वातावरण ने इन्हें अकेला बना दिया क्योंकि परिमल के साहित्यकार उन्हें कम्युनिस्ट मानकर उनसे विरोध करने लगे । एक कम्युनिस्ट लेखक होते हुए भी आर्ष साहित्य और वैदिक मूल्यों के प्रति उनकी श्रद्धा को देखकर कम्युनिस्ट लेखक उनको कम्युनिस्ट नहीं मानते थे । इतना ही नहीं जीवन की अनेक गहरी समस्याओं का समाधान भी उन्हें कम्युनिस्ट दर्शन में नहीं मिला । फलत: इन सभी से सम्बन्ध विच्छेद करना पड़ा । इनके साथ पुस्तक प्रकाशन की समस्या थी । उन्हें अपनी लिपियों को लेकर अनेक प्रकाशकों के पास जाना पड़ा । समय के साथ बाहर का संघर्ष कम होने लगा । अब प्रयाग के लोक भारती प्रकाशन का ध्यान उनकी ओर गया । वहीं से उनकी सारी रचनाएँ प्रकाशित होने लगी । इनमें से संशयकी एकरात का प्रकाशन सुरेश ग्रोवर ने किया । इसीबीच परिमल के साहित्यकारों से सम्बन्ध पुन: स्थापित होने लगा । अब वे राजनीति या कम्युनिस्ट पार्टियों से सम्बन्ध विच्छेदकर उनसे दूर रहने लगे । समय के साथ नरेशमेहता जी की मूल दृष्टि भी अधिक परिष्कृत होती चली गई । कवि और गद्यकार के रूप में वे आगे बढ़ते गये ।

सन् 1943 में अज्ञेय के सम्पादन में प्रथम तारसप्तक के साथ दूसरा सप्तक का भी प्रकाशन हुआ । दूसरा सप्तक में इनको स्थान मिल गया। वे लेखक और कवि के रूप में दूसरा सप्तक के बाद प्रसिद्ध हो गए । अत:

1· नयी अनुभूति – नरेशमेहता – भूमिका – पृ· 22·

प्रयोगवाद के विकास में इनका महत्वपूर्ण स्थान है । अपनी काव्य यात्रा के दौर में वे छायावादी कवियों से प्रेरणा पाकर उसी ढंग से कविताएँ लिखी । प्रारम्भ में इन्हें प्रेरणा देनेवाले कवियों में महादेवी वर्मा, नरेन्द्रनाथ शर्मा और बच्चन ही प्रमुख रहे । बाद में इन्होंने प्रयोग की दृष्टि को अपनाकर छायावाद और प्रगतिवाद के महत्व को स्वीकार करने से इनकार किया । कवि अपने बदलते हुए युगीन सन्दर्भों के साथ जुड़ना चाहता था इसलिए ही प्रयोगशील दृष्टि को अपनाया । प्रयोगवादी नवीनताओं की झोंक में भी वे अन्य कवियों की तरह कला-बाजी का शिकार नहीं हुए । स्वस्थ सामाजिकता केलिए उन्होंने उद्दीपनों को समझा । साथ ही व्यक्ति के अन्य सापेक्ष्य को भी । सन् 1950 के बाद वे प्रयोगवादी कवि नयी कविता के समर्थक बन गये हैं । आज नयीकविता के प्रवन्धकारों में इनका स्थान सुरक्षित है । अतः नयीकविता के प्रमुख हस्ताक्षर श्री नरेशमेहता ने नये मानवमूल्य, नये भावबोध और चिन्तन की सामाजिक भूमिका को लेकर, नवीन प्रतीकों, उपमानों, अप्रस्तुत विधानों और बिम्बों के माध्यम से अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करने का प्रयास किया । उनकी वैयक्तिक अनुभूतियाँ सुन्दर कल्पना से सज्जित होकर नूतन भावचित्र प्रस्तुत करने में समर्थ बन गयीं । नयी कविता के अनुरूप नवगीत, नया गीत काव्य, नया राष्ट्रीयकाव्य और जनवादी कविता जैसे काव्य प्रवृत्तियों को अपने काव्य में स्थान दिया । लोकगीतों के आधार पर अनेक गीतों का सृजन भी किया । इस प्रकार कवि का शिल्पी मानस निकट सहजता से मानवीय औदात्य को अपने काव्य में विविध प्रकार की कल्पना छवियों द्वारा उकेर सका है । शब्दाडंबरों से भाषा को संस्कारित करते हुए उसे नई अर्थवत्ता और गहरी प्रदान की । कवि ने अपने पौराणिक आख्यानक काव्यों के माध्यम से आज की पीढ़ी के सामने अपरिष्कृत ज्वलंत समस्याओं को मानवीय धरातल पर समाधान देने का प्रयास किया । सन् 1943 से लेकर अभी तक के सभी साहित्यिक आंदोलनों से वे पूर्णतः परिचित थे । खण्डकाव्य के अतिरिक्त कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक,

लेख और निबन्ध आदि सभी प्रमुख साहित्यिक विधाओं पर अपनी लेखकीय प्रतिभा का प्रदर्शन किया । प्रयाग में रहकर इन्होंने रंगमंच को भी नये ढंग से व्यवस्थित करने का प्रयास किया । इस प्रकार नरेशमेहता का कवि व्यक्तित्व दस वर्ष की आयु में अंकुरित होकर युगीन उत्क्रान्तियों, भावानुभूतियों टकराहटों के बीच से जूझता हुआ भी निरन्तर पल्लवित होता रहा । वास्तव में नरेश - मेहता जैसे कवि व्यक्तित्व को युगीन अन्तर्विरोधों की देन के रूप में मान सकते हैं ।

2. नरेशमेहता के व्यक्तित्व की विशेषताएँ

मानव अपने जीवन को सामाजिक धरातल पर जीता हुआ वैयक्तिक स्तर पर भोगता है । जिस समाज और युग में वह जी रहा है उस समाज और युग की विभिन्न संस्थाएँ उसके जीवन को एक विशिष्ट रूप देती हैं, उसके व्यक्तित्व को एक विशेष साँचे में ढालती हैं । मानव एक कृत्रिम परिवेश में रहता है । यह कृत्रिम परिवेश उसे सांस्कृतिक विरासत के रूप में मिलता है । सांस्कृतिक प्रशिक्षण साधारण मानव जाति के सदस्य को विशिष्ट व्यक्ति में परिणत करता है । भारतीय संस्कृति तथा वाङ्मय में रचना और रचनाकार को पृथक नहीं देखा गया । किसी भी रचना के अंतरंग को जानने के लिए सर्जक को जानना आवश्यक है और सर्जक को जानने के लिए उसके परिवेश और मानव विकास को जानना जरूरी है ।

नरेशमेहता के व्यक्तित्व के दो पहलू हैं - एक तो हर आदमी से दोस्ती करना पर समाज से दूर रहना, दूसरे हर चीज के पीछे मुड़कर चलते जाना । आज वह जिस जगह हैं उन्हें जहर लगती है ।[1] इन शब्दों से कवि के मानसिक

---

1. दूसरा सप्तक - अज्ञेय - पृ. 107

गठन का पता चलता है कि इनका कवि व्यक्तित्व और काव्य व्यक्तित्व एक दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। कवि नरेशमेहता एकान्तप्रिय हैं। इनकी एकान्तप्रिय स्थिति पर लोग उन्हें अहंवादी और व्यक्तिवादी कहते हैं, लेकिन नरेशमेहता स्वयं व्यक्तिवादी धारा का विरोध करते हैं। एक कवि के लिए आंशिक अहंवाद आवश्यक है। बचपन से ही नरेशमेहता आस-पास के लोगों के विचारों की उपेक्षा करते थे और अपनी धारणा पर चट्टानकी तरह दृढ रहते थे। एक साहित्यकार की अस्मिता इसी में है कि वह अपनी धारणाओं पर चट्टान की तरह दृढ रहे।

पिता का वीतरागत्व, चाचा का संरक्षण, माता की अकालमृत्यु, पैतृक वैष्णवभाव की मनोभूमि पर नरेशमेहता के व्यक्तित्व का निर्माण हुआ। प्रारम्भ से सुविधाओं के स्थान पर अभाव मिले। अभावों के फलस्वरूप कवि का व्यक्तित्व अन्तर्मुखी बना। किशोर जीवन के अनुभवों ने कवि के जीवन में कड़वाहट भरी और उनका संवेदनशील मन भीड़ में अकेला महसूस करने लगा। कवि की यौवनावस्था पर प्रकृति का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा जब वह नरसिंहगढ़ में थे। इस प्रकृति के प्रभाव ने उत्सवा में आकर प्रकृति के महाकाव्य का रूप लिया।

किसी भी कवि के व्यक्तित्व पर उसके परिवेश का प्रभाव अनिवार्य है कवि का एक निजी जीवन होता है जिसमें उसका प्रेम, संघर्ष, पीड़ा तथा संकल्प विकल्प होते हैं। अपने जीवन के अनुभवों और अनुभूतियों से जुड़कर या मुक्त होकर वह सृजन करता है। कभी-कभी जीवन का अनुभव विशिष्ट बिम्ब या प्रतीक के रूप में छनकर आता है। वास्तव में रचनाकार रचना करते हुए अनुभूति को ही स्थापित करता है। रचनाकार के दायित्व के विषय में कवि नरेशमेहता का अपना दृष्टिकोण है कि " बिना भोगेकृति रचना नहीं हो सकती। ऐसा भोगना सुन्दरतम के साथ-साथ विकृतता के साथ भी करना होता है।

रचना प्रक्रिया के स्तर पर सुन्दर और विकृति में कोई भी भेद नहीं होता । इसीलिए कलाकार का दायित्व वस्तुत: अपने और रचना के प्रति सम्भव हो सकता है । यह बात दूसरी हैं कि प्रकारान्तर से वह अन्य के प्रति भी दायित्वपूर्ण हो जाए । इसीलिए कला को मूलत: असंग होना चाहिए । "[1]

नरेशमेहता के व्यक्तित्व की विशेषताओं को उनके काव्य में देखा जा सकता है । नयी कविता के प्रमुख कवियों में अपने महत्त्वपूर्ण सामर्थ्य के बावजूद एक हद तक उपेक्षा का शिकार कवि-व्यक्तित्व श्री नरेशमेहता का रहा है । इसके कारण कई हैं । सब से पहला कारण तो कवि का स्वभाव प्रतीत होता है जो सांसारिकता से अपने को यथा सम्भव अलग करके अपने एकान्त काव्य-साधना में रत रहने का संकल्प लेकर चलता रहा हैं । दूसरे नरेशमेहता शनै: शनै: अपनी सर्जना को उस विराट परिवेश से जोड़ते चले गये । कवि मन भी प्राय: उन तात्कालिक पार्थिव अनुभूतियों से ही जुड़े रहना पसन्द करता है जो हमारी प्राथमिक स्तर की प्रवृत्तियों से सम्बद्ध रखती है । चाहे वह भोजन, वस्त्र के क्षेत्र का हो अथवा काम और प्रेम की क्षेत्र की ।

ये अनुभूतियाँ तत्काल हमें छेड़ती हैं । प्रभावित करती हैं । इसलिए उनकी पकड़ हमारे मन पर तत्काल होती है । छायावादी कवि जब प्रकृति की चर्चा करता है तो उसके बहाने मन की गाँठों को ही खोलता है ।[2] लेकिन नरेशमेहता अपनी प्रकृति परक कविताओं के माध्यम से संस्कृति का शोध करते हैं। नयी शिल्प योजना के माध्यम से कवि ने संध्या, दिवा, रात्रि, मेघ, वसन्त तथा

1· प्रथम फाल्गुन - नरेशमेहता - पृ· 133·

2· हिन्दी कविता का वैयक्तिक परिप्रेक्ष्य - रामकमलराय - पृ· 189·

उषा का चित्रण किया है । उनकी उषस सम्बन्धी कविताएँ प्रकृति के माध्यम से एक अलग व्यक्तित्व रखती है । उषस कविता में प्राची के दिक्पाल इन्द्र द्वारा सोने का आलोक छिटकाया है । इस अवसर पर विहग-शिशु रूपी गन्धर्वों के मुख से मधु श्लोक फूटते है तथा धरित्री अनेक मन्त्रों से उषा के रथ का आह्वान करती है ।[1] भिक्षु-भिक्षुणी, मोम बत्तियाँ, शिलालेख, उत्सव, सामगान व वैदिक वातावरण की शब्दावली से नरेशमेहता ने अनेक सांस्कृतिक बिम्बों की सृष्टि की हैं । ये सारे प्रतीक देश की प्राचीन संस्कृति से जुड़े हैं । कवि अपनी निजी जीवन की कटु-मधु वैयक्तिक अनुभूतियों से ऊपर उठकर अपनी चेतना को उन प्रतीकों और परम्पराओं में प्रसारित करता है , जहाँ उसे वहीं औप - निषदिक और वैदिक चेतना का संस्पर्श मिलता है ,वहीं प्रकृति के उन शाश्वत रूपों का दर्शन होता है , जिन्होंने सदा-सदा से हमारे देश की ऊर्ध्वोन्मुखी चेतना को प्रेरित किया है ।[2]

विराट के साक्षात्कार की साधना कवि की सबसे बड़ी विशेषता हैं । सृष्टि की विराटता के साथ उनकी सर्जन शीलता जुड़ती है । उन्हें क्रमश : प्रत्येक स्थान पर किसी उपनिषद् की रचना का आभास होता रहा है । उसकी इस मनोभूमि के परिणाम स्वरूप उत्सवा प्रकाश में आई ।

नरेशमेहता मानव के ऊन्नयन के उद्गाता तथा मानवतावादी कवि हैं । उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में वैयक्तिक सन्दर्भ देखे जा सकते हैं । 'चाहता मन' कविता में उन्होंने मानव की असमर्थता व्यक्त की हैं जो विगत को नही लौटा सकता । इसमें कवि की स्मृति उसे किसी के चिड़ियों सरीखे श्वेत आँचल का सुखद संस्पर्श देती हैं ।[3] कवि की चेतना इस स्मृति से

1· दूसरा सप्तक - नरेशमेहता - पृ· 128·

2· हिन्दी कविता का वैयक्तिक परिप्रेक्ष्य - रामकमलराय - पृ· 190·

3· बोलने दो चीड़ को - नरेशमेहता - पृ· 10·

निकल विपथगा के भाव में गहराने लगती हैं, जिसे नरेशमेहता ने पूरी आस्था से चित्रित किया है । देह चाहे प्राचीरों में घिरी रहे लेकिन भाव उन्मुक्त हो लता मण्डप में फैले रहें कवि की अपनी चेतन-पृथ्वी, परिस्थिति, स्थान या पुरजन तक ही सीमित नही उसमें पीड़ा को भी स्थान मिला है । सामान्यत: पीड़ा जीवन को निष्क्रियता से जोड़ती है लेकिन पीड़ा सब कुछ सहकर कुछ कर गुजरने की भावना रखती है । अत: नरेशमेहता दर्द को सहने का सन्देश देते हैं। दर्द की अभिव्यक्ति करना छल है । जैसे ही जीवन की समस्याएँ युगीन सन्दर्भों में विकसित होती हैं पीड़ा बोध उसे जकड़ लेता है । उसकी नसें चटकने लगती हैं और रोम-रोम से पीड़ा फूट पड़ती है । जिन शामों की गन्ध में डूबकर वह खिल उठता है, जो शामें उत्पीत करती हैं वे ही शामें उसे बीमार लगती है। लेकिन नरेशमेहता अपनी पतझर की उदास सन्ध्या को भी उत्सव करने की मानसिकता में है परन्तु संसार में सन्ध्या को उत्सव बनाने की परि - स्थितियाँ उन्हें आसानी से प्राप्त नहीं - क्योंकि मै इसे उत्सव नहीं कर सकता, मेरे पास एक उदास सन्ध्या थी, लेकिन किसी के पास उत्सव नहीं था । यह संकल्प और परिस्थिति का द्वन्द्व हैं । विकास की दृष्टि से द्वन्द्व विलीन हो जाता है क्योंकि कवि की अनुभूति विराट का साक्षात्कार है । धीरे-धीरे परिस्थितियों का बंधन टूट जाता है और पूरे संसार में एक ही संगीत सुनाई देने लगती है।

कवि ने अपनी नियति को मेरा समर्पित एकान्त नदी के माध्यम से स्वीकार किया है । नदी तो सिन्धु की वाग्दत्ता है वह उस तक पहुँचेगी ही । उत्सवा में मानवीय अनुभूतियों तथा उदात्तताओं का मिश्रण है । कवि के अन्त: और बाह्य व्यक्तित्व एक विरोधाभास में जीनेवाला व्यक्तित्व है जो एकान्त में कोलाहल और कोलाहल में निर्जनता की कामना करता है। उनके व्यक्तित्व का परिचय इन शब्दों में मिलता है - " हम में से प्रत्येक के अन्तरतम में

एक ऐसा अभिव्यक्त व्यक्तित्व निहित होता है जिसे स्वयं हम भी नही जानते होते । वही व्यक्तित्व जब अभिव्यक्त होता है तो सभी को आश्चर्य होता है । [1] 'तुम मेरा मौन हो' में कवि ने अव्यक्त को महत्व दिया है । मौन इसका आधार है यहाँ कवि का मत है कि जो अभिव्यक्त हो गया वह समाप्त हो गया । कवि मौन रहकर ही सब कुछ व्यक्त करता है ।

इस प्रकार कवि श्री नरेशमेहता अपनी आत्म-सत्ता को उस विराट सत्ता की अनुभूति में लीन कर रहे हैं जहाँ सब मंगलमय, गरिमामय तथा विराट मय हैं ।

3. युगीन परिवेश और नरेशमेहता :-

परिवेश वह वातावरण है जिसमें हम जीवन-निर्वाह करते हैं । इसमें वर्तमान की सुगन्ध है । डा॰श्याम शर्मा के शब्दों में, परिवेश को हम ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक गति विधियों, स्थितियों से निर्मित एक प्रकार के वातावरण को कह सकते हैं जिसमें मानसिक विचार भी परिवेश के निर्माण में सहायक होते हैं और जिसमें व्यक्ति अपने आप को देख पाता है, या अतीत और वर्तमान का मिला-जुला हुआ रूप हम परिवेश में देखते हैं । "[2] अतः समाज में प्रत्येक सामाजिक को परिवेश में ही अपना जीवन व्यतीत करना होता है, भले ही जीवन निर्वाह की प्रक्रिया भिन्न हो । इससे स्पष्ट होता है कि युगीन परिस्थितियों से ही साहित्य का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है । व्यक्ति और समाज के प्रति विभिन्न सम्बन्ध, संघर्ष, संकट तथा समस्याएँ कवि के परिवेश

---

1. प्रथम फाल्गुन - नरेशमेहता - पृ॰ 232.
2. आधुनिक हिन्दी नाटकों में नायक - डा॰ श्याम शर्मा - पृ॰ 64.

का अंग बनते हैं और कवि इस परिवेश को अपनी रचना में अधिकाधिक व्यापकता प्रदान करता है। कवि का परिवेश जितना व्यापक होगा उसकी संवेदनाएँ उतनी ही गहरी और व्यापक होंगी तथा सम्प्रेषण भी उतना ही गम्भीर और विराट होगा। वास्तव में परिवेश की प्रकृति व्यापक गतिशील होती है तथा लेखक निरंतर परिवेश के बदलते सन्दर्भों में व्यापक जीवन मूल्यों के अन्वेषण में प्रवृत्त रहता है। कवि की सृजनात्मकता युगीन परिवेश का स्वयं निर्माण करती है। वह अपनी रचना में इस परिवेश का पुनर्रचना करता है। यह तभी संभव है, जब लेखक अपने परिवेश के साथ आत्मीय और गहरी संलग्नता रखे तथा अनुभूति के स्तर पर परिवेश से जुड़ा रहता है। परिवेश के साथ कवि का सृजनात्मक जुड़ाव प्रामाणिक और ईमानदार रचनाओं का आधार बनता है।

आधुनिक हिन्दी काव्य पूर्ववर्ती काव्य परम्परा से भिन्नता लिए हुए है, यह युगीन परिस्थितियों के कारण ही है। आज के जीवनमूल्य पूर्ववर्ती जीवनमूल्यों से नितान्त भिन्न हैं। स्वतन्त्रता के पश्चात् युगीन व्यक्ति के व्यक्तित्व में एकनया मोड़ उपस्थित हुआ है। परतन्त्र भारत का व्यक्ति स्वतन्त्रता के पश्चात् जिस आशा और आकांक्षा की प्रतीक्षा में था वह उस के लिए कल्पना तक ही सीमित रही। आधुनिक कवि इस विघटन का अपवाद नहीं है। नये कवियों ने इन परिस्थितियों को भोगा है तथा विषयानुकूल अपनी मान्यताओं को अभिव्यक्ति प्रदान की है। आधुनिक कवि श्री नरेशमेहता के संशय की एकरात, महाप्रस्थान, शबरी, प्रवादपर्व और प्रार्थना पुरुष आदि खण्डकाव्य उस परिवेश की उपज है जिसे इस काव्य के कवि ने अपने चारों ओर ही नहीं अपने भीतर भी अनुभव किया है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में हमारा तात्पर्य उनके खण्ड काव्य से है। नया काव्य विषय एवं शैली दोनों क्षेत्रों में संक्रान्ति उपस्थित करता है। अब धीरे-धीरे पुराने मूल्यों के स्थान पर नवीन जीवन मूल्य उपस्थित होते जा रहे हैं। अतः काव्य-शिल्प तथा विषय के नियामकतत्त्व, युगीन परिस्थितियों का आँकलन प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में अपेक्षा रखता है -

3.1. राजनैतिक

हमारे साहित्य का इतिहास राजनीतिक इतिहास का अपेक्षी रहा है। साहित्य के सर्वांगपूर्ण ज्ञान के लिए राजनीतिक इतिहास से परिचय प्राप्त करना वांछनीय है। सुविधा की दृष्टि से अंग्रेजी प्रभुत्व काल को दो भागों में विभाजन हो सकता है — स्वातन्त्र्यपूर्व काल एवं स्वातन्त्र्योत्तर काल।

स्वातन्त्र्य पूर्व काल के साहित्य की राजनीतिक पृष्ठभूमि में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के राज्य की स्थापना, प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम, भारत में विक्टोरिया शासन की प्रतिष्ठा, इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना, संसार के महायुद्ध, गाँधीजी का असहयोग आंदोलन, स्वराज्य पार्टी की स्थापना, जिन्ना का कांग्रेस से जाना और मुस्लिम लीग में सम्मिलित होना, कांग्रेस का सरकार से परिषदों के रूप में कार्य, पाकिस्तान पृथक होना इत्यादि अनेक महत्त्वपूर्ण घटनायें हैं।

भारतीय नवजागरण तथा राष्ट्रीय आंदोलनों में कांग्रेस का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह एक ऐसी प्रयोगशाला है जिसमें नवजागरण तथा राष्ट्रीय आन्दोलनों के लिए महत्त्वपूर्ण उपादानों की निर्मिति होती रही है। स्वतंत्रता के पश्चात् शासन सत्ता कांग्रेस के हाथों सौंप दी गई। विभाजन के अवसर पर साम्प्रदायिक दंगों ने सारे राष्ट्रीय जीवन को झकझोर किया। परिणाम स्वरूप वर्षों की साधना से प्राप्त आजादी का स्वप्न विकृत सा हो गया। गाँधीजी ने कहा "यदि हमने साम्प्रदायिकता के इस जहर को समाप्त न किया तो वर्षों के परिश्रम से प्राप्त आजादी छिन जाएगी। हमें हर कीमत पर इस जहर को शान्त करना होगा।"[1] गाँधीजी तथा अन्य नेताओं के

---

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य - डॉ. रामगोपाल सिंह चौहान - पृ. 20 से उद्धृत

अशान्त परिश्रम से पुनः शांति स्थापित हो रही थी । महात्मागाँधी ने दंगों को शान्त करने के लिए बंगाल और बिहार का दौरा किया । इससे साम्प्रदायिकता की आग कुछ बुझ गई । लेकिन एक वर्ग के लोगों को गाँधीजी की नीति अच्छी नहीं लगी । अतएव उनकी हत्या का षड्यन्त्र रचा गया और 30 फरवरी 1948 को नाथूराम विनायक गोडसे के हाथों वे मारे गये । यहाँ तक के प्रमुखतः 1914 से लेकर 1948 तक की राजनीतिक घटनाओं का वर्णन हमें नरेशमेहता कृत 'प्रार्थनापुरुष' में मिलता है । श्री राजूरकर के शब्दों में - राष्ट्रपिता के उत्सर्ग ने साम्प्रदायिकता के प्रेत को दफन कर दिया । उनके रक्त ने राष्ट्रीयता की फैली हुई नींव को सीमेन्ट बनकर सशक्त कर दिया । उनके निर्वाण के अवसर पर भारत में एकता की जो अद्भुत लहर दिखाई दी थी, वह अपूर्व थी । बापू गये, किन्तु भारत को बचा गये । "1

राष्ट्रपिता महात्मागाँधी के देहान्त के उपरान्त जवहरलाल नेहरू कांग्रेस पार्टी के संचालकसरदार वल्लभ भाई पटेल के साथ शासन चक्र चलाने लगे । 26 नवम्बर 1949 ई. को देश का संविधान बनकर तैयार हुआ तथा 26 जनवरी 1950 को भारत नवीन विधान के अनुसार सर्वसत्ताधारी गणतन्त्रात्मक राज्य घोषित कर दिया गया । डा.राजेन्द्र प्रसाद को राष्ट्रपति के पदपर नियुक्त किया गया । तब से नवोदित भारत राष्ट्र प्रगति के पथपर उत्तरोत्तर बढ़ता चला जा रहा है । इस नये संविधान के साथ देश में अनेक नयी पार्टियों का आविर्भाव भी हुआ । पंडित जवहरलाल नेहरू स्वतन्त्र भारत के प्रथम प्रधान मंत्री बनें । नेहरू युग (1950 - 64) में देश का विकास पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा शुरू हुआ । नयी पीढ़ी के लेखकों और समीक्षकों ने देश की स्वतंत्रता को नवीन रूप में देखना प्रारम्भ किया और नूतन कल्पनाओं द्वारा अपनी रचनाओं में

---

1. भारत का राजनीतिक इतिहास - राजकुमार - पृ. 370.

भारत के भावी स्वरूप को प्रस्तुत किया । सन् 1951 के बाद राजनीतिक परिवेश में कुछ स्थिरता दिखाई पड़ने लगी । सन् 1952 में भारत गणराज्य का प्रथम निर्वाचन हुआ । इस चुनाव में कांग्रेस की जीत हुई । लेकिन नेहरू युग में रची गयी समाजवादी कल्पना का मोह जल्दी ही भंग होने लगा । स्वतंत्रता के बाद जवहरलाल नेहरू ने विदेशी विभाग को अपने अधीन में रखकर अन्तराष्ट्रीय सम्पर्क को बनाने का प्रयत्न किया । तटस्थ विदेशी नीति के लिए प्रतिष्ठा भी मिली । स्वतंत्र भारत ने अपनी आदर्शवादी तटस्थ विदेशी नीति से संसार के अमेरिका, रूस और चीन जैसी तीन महान शक्तियों को प्रभावित किया । इसके बाद भारत ने चीन से मिलकर पंचशील सिद्धान्तों की घोषणा की । इस पंचशील के सिलसिले में चीन ने तिब्बत को हड़प लिया । सन् 1962 में चीनी आक्रमण तक भारत की विदेशी नीति सुदृढ रही । अक्तूबर सन् 1962 में चीन ने भारतपर आक्रमण करके भारत के हजारों मील भूभाग को हड़प लिया । नेहरूजी की प्रखर राजनीति के कारण अंत में भारत की जीत हुई । कवि श्री नरेशमेहता ने 1962 में 'संशयकी एकरात' नामक खण्ड काव्य की रचना की । इसमें युद्ध और शांति की समस्याओं पर विवेचन प्रस्तुत किया गया है । इस कृति पर नेहरू युग की प्रखर मानसिकता का गहरा प्रभाव है ।

सन् 1962 के चुनावों में कांग्रेस की लोकप्रियता को थोड़ा धक्का लगा । 27 मई सन् 1964 ई. में महान नेता पंडित जवहरलाल नेहरू की मृत्यु हुई । लाल बहदुर शास्त्री प्रधान मंत्री बनें । सन् 1965 में शास्त्री के समय में भारत को पाकिस्तान से युद्ध करना पड़ा । 1962 में चीनी आक्रमण और 1965 में पाकिस्तान से युद्ध हुआ । इस युद्ध के कारण भारत की तटस्थ नीति और सह अस्तित्व की भावना हिलने लगी । सन् 1966 में हुई ताशकन्द समझौता ने भी देश के उत्साह में कोई वृद्धि नहीं की । इस समय भारतवासियों में

एकता, दृढ़ता एवं राष्ट्रीय चेतना की जो लहर दिखाई दी वह अद्भुत एवं अनुपम है। 1966 में शास्त्री जी के आकस्मिक निधन के बाद श्रीमती इंदिरा - गाँधी प्रधान मन्त्री बनी। 1967 का चुनाव तो कांग्रेस के लिए घातक सिद्ध हुआ। परिणाम स्वरूप कांग्रेस के पुराने मत भेदों का पदार्पण हुआ और राष्ट्रपति जाकिर हुसैन की मृत्यु के कारण रिक्त पद के लिए चुनाव के प्रश्न को लेकर कांग्रेस दो दलों में विभक्त हो गई, प्रथम में तो इन्दिरागाँधी समर्थक तथा द्वितीय में इंदिरागाँधी विरोधी दल। फरवरी सन् 1970 में संसद का नया मध्यावधि चुनाव हुआ जिसमें केन्द्र में सत्ता बहुमत से कांग्रेस के हाथ में आ गई तथा भारत में जनतन्त्र की जड़े मजबूत होने लगी है। सन् 1971 में बंगाल देश की स्वतंत्रता को लेकर भारत और पाकिस्तान के बीच युद्ध हुआ। बंगाल देश तो स्वतन्त्र हुआ लेकिन इस युद्ध के कारण भारत की बहुत आर्थिक क्षति हुई। सन् 1960 के बाद चीन और पाकिस्तान युद्धों के कारण भारत की तटस्थ विदेशी नीति को जो धक्का लगा, आज बंगाल देश के उत्थान से उसे पुन: प्रतिष्ठा मिल गई। विश्व भर में भारत की ख्याति फैलने पर भी सरकार देशीय समस्याओं को दूर करने में असफल रही। आन्तरिक समस्यायें चारों ओर व्याप्त हुई। श्रमिकों, छात्रों तथा अन्य सभी वर्गों के लोगों के आंदोलनों से देश में अशांति का वातावरण फैल गया। सन् 1971 के पाकिस्तान युद्ध के विजयोत्साह को शिमला समझौता ने अशांति में गिरा दिया। इस समझौते से बुद्धजीवी व्याकुल होने लगे। देश में अशांति बढ़ती जा रही थी। भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, रिश्वतखोरी, कामचोरी आदि अपनी अपनी चरम सीमाओं तक पहुँचने लगें। शिक्षित युवकों में बेरोजगारी के कारण निराशा, कुण्ठा और अपराधवृत्ति आदि मानवीय क्षयी भावनाओं का जन्म होने लगा। देश के युवकों ने भ्रष्टाचार विरोधी दलों से मिलकर श्रीमती इंदिरागाँधी से त्याग पत्र माँगने के लिए एक विशाल रैली चलाने के लिए प्रयत्न किया। रैली आयोजन के एक दिन पूर्व जून 1975 को भारत में

आपत् स्थिति की घोषणा की गई । इससे देश भर में हल-चल पैदा हुई । आपत्काल में अनेक नेताओं के साथ अधिक संख्या में जनता को भी नजरबंद किया गया । क्रमश: इन सभी जनविरोधी कर्मों के साथ सरकार को अपनी गलतियों को स्वीकार करना पड़ा । इससे यह विदित हो गया है कि स्वतंत्रता के बाद इतने वर्ष तक एक छत्र शासन रहने पर भी दायित्वपूर्ण ढंग से राष्ट्र विकास के लिए कुछ भी नहीं हो पाया । प्रजातंत्रिक युग में प्रजा को अपनी सरकार से कुछ पूछने या विरोध प्रकट करने का अधिकार नहीं । यह आपत्काल 19 महीने तक अमल में रहा । इसीबीच श्रीमती इंदिरागांधी के 20 सूत्रों तथा संजयगांधी के पाँच सूत्री कार्यक्रमों की घोषणा सामने आई । जिसका फल मिला-जुला रहा । कवि श्री नरेशमेहता ने 1977 में 'प्रवाद पर्व' नामक खण्ड काव्य की रचना की । इसमें 1975-76 वर्षों में उठे ज्वलंत प्रश्नों का मानवीय धरातलपर समाधान देने का प्रयत्न किया ।

कांग्रेस सरकार की जनविरोधी नीतियों के कारण जनता क्षोभ से भरी थी । फलत: 1977 के आम चुनावों में कांग्रेस हार गई । जनतापार्टी अधिकार में आई । अपनी पार्टी के अन्तर्विरोधों के कारण वह जल्दी ही टूट गयी । भारतवासियों को इस घिनौने खेल से उत्पन्न हुई समस्याओं को बहुत कठिनाई से स्वीकार करना पड़ा । इसके साथ ही उन्हें कभी-कभी राजनीतिज्ञों के छल-कपट का शिकार भी होना पड़ा । इस प्रकार के परिवेश में रहनेवाली जनता क्षोभ और पीड़ा से व्याकुल हो उठी । जनवरी 1980 के संसदीय चुनावों में श्रीमती इंदिरागांधी पुन: अधिकार में आई । इसबार उनकी पार्टी का नाम कांग्रेस-आई रखा गया । इस के बाद अनेक पार्टियाँ प्रकाश में आई । इन सभी के बीच में होनेवाले संघर्षों के कारण देश में अस्थिरता तथा अशांतिपूर्ण वातावरण फैल गया । नेता प्रजा से मुँह मोड़कर राजधानियों की ओर दौड़ने लगे । वे व्यक्ति से ज्यादा पार्टी बदलने को अधिक महत्व देने लगे । फलत: वे जनता के विश्वासपात्र नहीं बन सकें ।

सन् 1952 से लेकर आज तक के आम चुनावों में इस देश में जो परिवेश उभरा, जिस प्रकार की नैतिकता जन्मी, जिस प्रकार की जीवन व्यवस्था पनपी, उन सब को नये कवियों ने अपने काव्य का विषय बनाया। सन् 1984 में श्रीमती इंदिरा गाँधी की हत्या के बाद भारत के संविधान ने उनके पुत्र राजीव गाँधी को अपने नेता के रूप में चुन लिया। उनकी पार्टी भी देश की आन्तरिक समस्याओं को समाधान देने में सफल नहीं हुई। फलत: जनवरी सन् 1990 के चुनावों में कांग्रेस की पराजय हुई। सन् 1991 के चुनावों में कांग्रेस पार्टी फिर अधिकार में आई। पी॰वी॰नरसिंहाराव को प्रधान मंत्री के रूप में चुना गया। इसीबीच में कुछ दिनों के लिए जनतापार्टी तथा नेशनलफ्रन्ट अधिकार में रही तथा राजीव गाँधी की हत्या जैसी घटनायें हुई।

इस प्रकार के सम्पूर्ण राजनीतिक परिवेश से यह स्पष्ट होता है कि स्वतंत्रता के बाद की पीढ़ी को कुण्ठा, निराशा, घुटन, अविश्वास और भ्रष्टाचार से भरा हुआ वातावरण मिला है। स्वतंत्रता के बाद का राजनीतिक वातावरण भ्रष्टाचार से कलुषित हो गया है। राष्ट्र का कोई महत्व नहीं रहा। नेताओं में अर्थ तथा अधिकार की कामना अधिक दिखाई पड़ रही है। उनके साधन इतने निकृष्ट हो गये हैं कि जिससे समाज में चोरी, आतंकवाद, बेईमानी, गुंडागर्दी आदि का बोलबाला हो गया है। स्वतंत्रा के पूर्व जिस प्रकार के निस्वार्थी एवं त्यागी नेता हम को मिले है आज वही देश में एक बार नेता बन कर उसे अपना जन्म सिद्ध अधिकार मानकर किसी हालत में भी उसे छोड़ना नहीं चाहते हैं। जनता के कल्याण के लिए बनाये गये बड़े-बड़े बाँध, सड़कें, नहरे, कारखाने और उद्योग आदि देश के प्रमुख कार्य क्षेत्र कुछ स्वार्थी व्यक्तियों के हाथों में पड़ने से उसका लक्ष्य ही बदल रहा है। उसका प्रयोजन जनता तक नहीं पहुँच रहा है। विश्वविद्यालयों से निकले डिग्रीवाले विद्यार्थी बेरोजगारी के कारण भूखे मर रहे है तथा आत्महत्या करने में भी संकोच नहीं कर रहे हैं। अपने परिवेश से पनपा हुआ नेता सम्पूर्ण परिवेश से लाभ

उठाना चाहता है । ऐसे निराशामय वातावरण में जन्मा हुआ व्यक्ति का जीवन सभी प्रकार से दुर्घर्ष हो रहा है । ऐसे ही निराशामय वातावरण में विवश होकर जीवन संग्राम में विजयी होने की आशा से कवि अपनी लेखनी लेकर दौड़ रहा है । नरेशमेहता भी उनमें से एक है ।

3·2· आर्थिक

ब्रिटिश शासनकाल में भारत की आर्थिक दशा अत्यन्त शोचनीय थी । ईस्ट इण्डिया कम्पनी से शासन-सूत्र इंगलैंड की सरकार के हाथ में पहुँचने के बाद भी इस स्थिति में विशेष सुधार नहीं हो सका । अंग्रेजों का मुख्य लक्ष्य व्यक्तिगत व्यापार विस्तार था । उसके पास भारत की जनता के सार्थ चिन्ता के लिए स्थान नहीं था । जमींदारी प्रथा उनकी शासन पद्धति का एक महत्वपूर्ण अंग थी । इससे अंग्रेजों के हाथ उत्तरोत्तर मजबूत हो गये । किसान, मजदूर और मध्यवर्ग में गरीबी घर करती जा रही थी । उन्हें एक ओर तो विदेशी शासकों से संघर्ष करना था और दूसरी ओर उनका संघर्ष अपने देशी शोषकों, बड़े, जमींदारों और पूँजी पतियों के विरुद्ध था ।[1] जवाहरलाल नेहरू ने भारत की इस स्थिति का चित्रण करते समय लिखा है कि - " रिश्वत, धोखा, हिंसा, मारपीट आदि साधन अंग्रेजों के साधारण हथियार थे जिनके द्वारा अंग्रेज भारत की भोली-भाली जनता पर डाके डालते थे । "[2] रेल, डाक, तार आदि की व्यवस्था अंग्रेजों ने अपनी आर्थिक और राजनीतिक सत्ता की सुविधा की दृष्टि से की । अतः दुर्भिक्षग्रस्त क्षेत्रों में अन्न पहुँचने की व्यवस्था नहीं थी । फलस्वरूप दुर्भिक्षों का

1· आधुनिक हिन्दी साहित्य - डॉ· रामगोपाल सिंह चौहान - पृ·17·

2· द डिसकवरी आफ इंडिया - पं·जवाहरलाल नेहरू - पृ· 275·

ताँता बंध गया । इसकाल में 1837, 1860, 1866, 1869, 1877, 1878 और 1896 के अकाल अत्यन्त भीषण थे ।[1] लोगों को तड़प-तड़प कर प्राण त्याग ने पड़ते थे । भारतीय समाज अनेक दैवी एवं भौतिक आपत्तियों का शिकार हो गया था । चेचक, प्लेग आदि भयंकर रोगों का प्रसार अत्यन्त विराट रूप में हुआ । अतः मनुष्य अंधविश्वासों के शरण में जाने लगा । सारे घर के कमाने के पश्चात भी लोग अन्न, वस्त्र के लिए तरसते थे । शीत - काल की दाँत किट किटा देनेवाली रातें चार-चार व्यक्तियों को एक ही रजाई में काट देनी पड़ती थी । इस तरह दिनों दिन भारतीय सम्पत्ति क्षीण होती जा रही थी । भूमि व्यवस्था जमींदारी प्रथा पर आधारित थी । अतः देश की ग्रामीण जनता आर्थिक संकटों में पिसकर कराहने लगी । कृषक वर्ग मालगुजारी के बोझ से लद गया । अतः आर्थिक संकट से कृषकों के गृह उद्योग-धन्धों का नाश हुआ ।

भारतीय किसान की दरिद्रता का सबसे बड़ा प्रमाण उसका बढ़ता हुआ ऋण का बोझ था । निकल्सन के मद्रास के ऋण अनुमान के आधार पर एडवर्ड मैक्लैगन ने 1911 में ब्रिटिश भारत के ग्राम्य ऋण को तीन लाख अरब रुपयें अनुमानित किया था । 1923-24 में एम.एल. डार्लिंग महाशय के अनुमान से वह 6 अरब रुपये था ।[2]

आर्थिकस्थिति से कांग्रेस आंदोलन को अधिक प्रेरणा मिली । प्रथम महायुद्ध तक भारतीयों को यह विश्वास हो गया है कि अंग्रेज भारत का औद्योगिक विकास नहीं करना चाहते । अतः कांग्रेस आंदोलनकर्त्ताओं ने विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार

---

1. 20 वी शताब्दी : हिन्दी साहित्य : नए सन्दर्भ - डा.लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - पृ. 66.
2. हिन्दी कविता में लोक संस्कृति - श्रीमति सतीश कुल श्रेष्ठ - पृ. 50.

कर दिया । इस आंदोलन में पूँजीपतियों ने भी सहायता दी । किन्तु द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् अंग्रेजों को ज्ञात हुआ कि भारत के प्राकृतिक साधनों का विकास करके उनके साम्राज्यवादी हितों को बढ़ावा मिल सकेगा । अतः उन्होंने केवल उन्हीं उद्योग-धंधों को बढ़ावा दिया जिसमें उनके देश की पूँजी लगी थी । इस तरह धीरे-धीरे पूँजीवाद के पैर जमते गये और पूँजीवाद ने स्वतंत्रता आंदोलन में सहयोग देना प्रारम्भ कर दिया । इस काल में यंत्रों का विकास हुआ तथा बेरोजगारी की समस्या बढ़ गयी । जनता तिहरे शोषण ‖ सामंती, पूँजीवादी और विदेशी ‖ की शिकार हो गई । इस तरह गरीबी दिन पर दिन बढ़ने लगी । अतः किसान, मजदूर और मध्यवर्ग ने आर्थिक वैषम्य को दूर करने के लिए संघर्ष आरम्भ किया और इन संघर्षों ने संगठित संघर्षों का रूप ग्रहण कर लिया जो एक ओर तो विदेशी शोषक अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध था । इस तरह विदेशी दासता राष्ट्रीय-मुक्ति संघर्ष का अंग था । और दूसरी ओर अपने देशी शोषकों ‖ बड़े जमींदारों और पूँजीपतियों ‖ के विरुद्ध था । राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष के तीन पहलू थे -

1· विदेशी दासता 2· आर्थिक शोषण से मुक्ति 3· प्रगति विरोधी संस्कारों से मुक्ति ।

उपर्युक्त पहलुओं के आधार पर ही भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के तीन प्रमुख उद्देश्य थे :

1· आजादी 2· समता 3· प्रगति

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय औद्योगिक दृष्टि से भारत एक पिछड़ा हुआ देश था । पूँजी की कमी, कुशल प्राविधिज्ञों का अभाव, एकांगी उत्पादन, पिछड़ी हुई कृषि व्यवस्था, उद्योग और श्रम मात्रा में व्यापक असंतुलन भारत के विकास के मार्ग में कुछ प्रमुख अवरोध थे । देश की आर्थिक स्थिति को कुछ कवियों ने अपनी

कृतियों में चित्रण कर जनता को स्वदेश प्रेम और राष्ट्र प्रेम की ओर उनकी दृष्टि को आकर्षित कर स्वतंत्रता की महत्ता का प्रतिपादन किया। इस प्रकार की भारत की आर्थिक स्थिति के कारण जनता में भीतर ही भीतर असन्तोष की अग्नि सुलग रही थी जो स्वतंत्रता न मिलने तक जलती ही रही।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश की आर्थिक व्यवस्था को सुधारने के लिए सरकार ने नवीन आर्थिक कार्यक्रम बनाया। देश का कार्य पंचवर्षीय योजना के माध्यम से होने लगा। सन् 1948 ई॰ में सरकार ने देश की अर्थव्यवस्था के महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों को सार्वजनिक नियंत्रण और स्वामित्वों को लेकर आर्थिक विकृतियों को दूर करने का प्रयत्न किया। बैंकों का राष्ट्रीयकरण भी इस दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है, जिसमें सामाजिक और आर्थिक दोनों प्रकार की प्रगति निहित है।

पंचवर्षीय योजनाओं तथा सरकार के अन्य आर्थिक वृद्धि के कार्यक्रमों पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि आर्थिक क्षेत्र में स्थिति संतोषजनक थी। पश्चिमी जर्मनी, रूस आदि से भारत के औद्योगिक विकास में बड़ी सहायता मिली। भाखड़ा नंगल योजना, दामोदरघाटी योजना, रिहन्द बाँध योजना आदि के द्वारा विद्युत एवं सिंचाई शक्तियों का विकास हुआ। रसायनिक खाद, सीमेंट, कागज, औजार आदि बनाने के कारखाने खुले। कृषकों को वैज्ञानिक ढंग से खेती करने के लिए अच्छे बीज, औजार आदि दिए गए। इससे कृषकों तथा मजदूर परिवार की औसत आय में बढ़ोत्तरी हुई। किन्तु स्थिर आय वाले मध्यवर्ग की चढ़े हुए मूल्यों ने कमर तोड़ दी।

आर्थिक सम्पन्नता, सामाजिक, साहित्यिक, राजनीतिक और शैक्षणिक उन्नति के लिए रीढ़ का कार्य करती है। अतः दीर्घकालीन लक्ष्य को सामने रखकर आत्म निर्भर बनना उन्नति और यथार्थ प्रगति का प्रतीक बना।

3.3. सामाजिक :-

अंग्रेजी शोषण नीति के फलस्वरूप राजनीतिक एवं आर्थिक दयनीय स्थितियों के समान ही सामाजिक स्थिति भी चिन्तनीय थी । आर्थिक दशा के अंतर्गत भारतीयों की दयनीय दशा का चित्र प्रस्तुत किया जा चुका है । अर्थाभाव और अन्नाभाव के कारण समाज का जीवन स्तर अत्यधिक विकट हो चुका था । साथ ही अंग्रेजी सभ्यता, संस्कृति और साहित्य ने जहाँ अनेक समाज सुधारों को जन्म दिया और सांस्कृतिक जागरण की भूमिका प्रस्तुत की, वही जान - बूझकर भारतीय धर्मों में साम्प्रदायिक वैमनस्य उत्पन्न किया है । आर्थिक संकट और बाह्य ढंगों की प्रबलता के कारण समाज में अनेक कुरीतियाँ फैल गई । ऐसे विकट समय में अनेक राजनीतिक, धार्मिक नेताओं ने समाज को इन कुरीतियों से बचाने का प्रयत्न किया और इसी कारण अनेक संस्थाएं एवं समाज बनाए गये । सामाजिक कुरीतियों तथा संकीर्णताओं को समाप्त करने के लिए राजा राम मोहनराय ने 1802 में ब्रह्मसमाज की स्थापना की । किन्तु कुछ समय के पश्चात् वे ईसाई धर्म से इतने प्रभावित हुए कि वे भारतीय संस्कृति को हीन दृष्टि से देखने लगें । इसी समय स्वामी दयानंद का आगमन हुआ जिन्होंने आर्य समाज की स्थापना की । यह आर्य समाज ईसाई धर्म आंदोलन के विरूद्ध प्रतिक्रिया के रूप में आया । स्वामी दयानंद ने प्रचलित वैदिक प्रेरणा को लेकर सामाजिक क्षेत्र में क्रान्ति उत्पन्न की तथा समाज में प्रचलित तत्कालीन दोषों जैसे - धार्मिक अन्धविश्वास, बालविवाह, विधवा विवाह, जातिभेद, स्त्री शिक्षा, जाति बहिष्कार आदि समस्याओं को सुलझाने के लिए सुझाव प्रस्तुत किए । इसी तरह श्रीमती एनीबीसेन्ट ने थियोसोफिकल सोसायटी की स्थापना करके देश की राष्ट्रीयता को जागृत किया और अति बौद्धिकता का विरोध कर भारतीय आध्यात्मिकता का उत्थान किया । इस समय सारे देश में विशेषकर हिन्दुओं में प्रचलित जाति -पाँति का भेदभाव चल रहा था । सती प्रथा, शिशु हत्या, बाल विवाह, समुद्र यात्रा तथा सार्वजनिक शिक्षा के विरूद्ध

लोगों में अन्ध विश्वासों की भावनाएँ तीव्रता से कार्य कर रही थी। केशवचन्द्र सेन तथा उनके सदस्यों के अनुरोध पर 1870 ई॰ में बाल्य विवाह और बालिकाओं की हत्या के निषेध सम्बन्धी कानून पास किए। पादरियों की स्त्रीयों ने भारतीय घरों में जाकर लोगों के दृष्टिकोण को व्यापक बनाया। नारियों में चेतना का उदय हुआ। परिणाम स्वरूप परंपरा से चली आनेवाली संयुक्त परिवार की प्रथा का ह्रास होने लगा। अब नारी को जीने के लिए आर्थिक संघर्ष करने के लिए तैयार होना पड़ा।

"इस अवधि में नारी की स्थितियों में सुधार केलिए सारे प्रयत्न हुए। महाराष्ट्र में श्री कर्वे के यत्नों से 1906 ई॰ से 1912 ई॰ के मध्य सारे देश में अनेक विधवाश्रम स्थापित हो चुके थे। 1908 में बम्बई में श्रीमती रमाबाई रानडे के निर्देशन में विधवाओं के एक सेवासदन की स्थापना हुई। सन् 1906 में बम्बई की सरकार ने देवदासी प्रथा का उन्मूलन कर दिया। उसका अनुसरण मैसूर सरकार ने किया तथा वहाँ मंदिरों में नृत्य आदि की प्रथाएँ समाप्त कर दी गयी। सन् 1906 में श्री कर्वे के यत्नों से स्त्री विश्वविद्यालय की स्थापना हुई।"[1] सरोजिनी नायडू, एनीबिसेन्ट तथा श्रीमती रमाबाई ने 1919 में ब्रिटीश सरकार के सामने नारी को राजनीतिक अधिकार देने की माँग की। परिणामतः 1923 में नारी को मत देने का अधिकार भी मिला।

"गाँधीजी ने उन्हें प्रेरणा दी। अपनी गिरफ्तारी से पहले दाण्डी में संदेश देते हुए उन्होंने स्त्रीयों को शराब, अफीम और विदेशी कपड़ों की दुकानों पर धरना देने के लिए कहा था।[2]

---

1. हिन्दी साहित्य - तृतीय खण्ड - प्रधान सम्पादक डॉ॰धीरेन्द्र वर्मा - पृ॰ 33॰
2. कांग्रेस का इतिहास - भाग - 1, सं॰ हरिभाऊ उपाध्याय - पृ॰ 2॰

महात्मा गाँधी, ईश्वरचंद्र विद्यासागर 1930 का शारदा एक्ट आदि के द्वारा इन सुधारों को कार्यान्वित करने में विशेष सहायता दी। अस्पतालों, शिक्षा संस्थाओं, राजनीति, रंगमंच आदि विविध स्थानों में स्त्रियाँ कार्य करने लगी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तथा अनेक राजनैतिक नेताओं ने भी समाज सुधार का काम किया। महात्मागाँधी ने समाज सुधार पर विशेष बल दिया। उनके सामाजिक कार्यक्रम में हरिजनोद्धार का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने इस बात को भली-भाँति समझ लिया था कि समाज के इस दलित किन्तु विशाल वर्ग की उन्नति के बिना सामाजिक उन्नति असम्भव है। अतः उन्होंने दलित और अस्पृश्य जातियों के सामाजिक स्तर को ऊँचा उठाने के लिए अधिक परिश्रम किया और उन्हें स्वयं गले लगा लिया।"[1] गाँधीजी की मानववादी भावना ने निम्नस्तर के लोगों की सामाजिक दशा में बहुत परिवर्तन किया। इस मानववादी भावना के कई रूप मिलते हैं। जैसे अहिंसा, अछूतोद्धार, हिन्दू मुस्लिम एकता, सत्याग्रह, ग्रामोद्धार, जमींदारी का विरोध आदि। गाँधीजी के इस प्रयत्न से द्विविध प्रभाव हुआ। प्रथम तो निम्न जातियों की हीनता की भावना दूर हुई और वे सार्वजनिक कार्यों की ओर सक्रिय हुए, दूसरे उच्च जातियों की मनोवृत्ति में भी परिवर्तन हुआ और उनमें सहिष्णुता की भावना जागृत हुई। जिन अग्रिम व्यक्तियों ने राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लिया, उन्होंने जातिवाद और भेदभाव को पहले तिलांजलि दी। उनके प्रभाव से देश के कोने-कोने में नवीन सामाजिक चेतना का उदय हुआ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में अनेक सुनियोजित कदम उठाए गए। जैसे जमींदारी प्रथा का अन्त करके किसानों को अपने खेत का मालिक बनाना, छुआछूत को गैर कानूनी कर वर्ण वैषम्य को दूर करना विवाह कानून (1954) हिन्दू

---

1. कांग्रेस का इतिहास - डा.बी पट्टाभिसीतारामय्या - पृ. 489-90.

विवाह विच्छेद कानून [1955] हिन्दू उत्तराधिकार कानून [1956] तथा दहेज-निषेध कानून [1961] के द्वारा नारी की स्थिति को सुधार करने का प्रयत्न करना, अनेक उद्योगों और आर्थिक संस्थानों का राष्ट्रीयकरण कर पूँजीपतियों के प्रभुत्व को कम करना । ऐसे ही समाज की सर्वांगीण विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाएँ कार्यान्वित की गयी । किन्तु इतना सब होते हुए भी समाज में आर्थिक संतोष न बढ़ा क्योंकि अनिवार्य वस्तुओं की कीमतें लगभग डेढ़ गुनी से भी अधिक बढ़ गयी । अतः बढ़ी हुई कीमतों और टैक्सों के बीच आम जनता की हालत शोचनीय हो गई । बेकारी की संख्या में दिन-पर दिन वृद्धि होती गई ।

यांत्रिक सुख-सुविधाओं के लिए कुटीर उद्योग-धन्धों के साथ बड़े-बड़े कार - खानों का निर्माण किया गया - भले ही परिणाम इतना सुखद नहीं निकला, जितनी संभावना थी । "जन साधारण की दशा में कोई विशेष अंतर नहीं आया । समाजवाद का नारा लगानेवाली सरकार भूखे - नंगे लोगों को कुछ उपलब्ध न करा सकी । इसका एक कारण - जहाँ तीव्र गति से बढ़ती जाती जन संख्या है , वहाँ पूँजीपति वर्ग का भ्रष्टाचार और कालाबाजार भी है । आंन्तरिक फूट, साम्प्रदायिक झगड़े, प्रान्त तथा भाषा को लेकर द्वन्द, आन्तरिक वर्गहितों और स्वार्थी तथा विरोधी विचारों का टकराव परस्पर संघर्ष का जीवन आज हो गया है ।[1] जिसके प्रत्यक्ष उदाहरण - साम्प्रदायिक दंगों के लिए उत्तर प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, भाषा के लिए दक्षिणी भारत के राज्य, बिहार, उत्तर प्रदेश आदि है । अतः समाज में संशय, उच्छृंखलता, स्वार्थपरता, संत्रास, व्यक्तिवादिता एवं विघटन सर्वत्र व्याप्त है ।

1· प्रसादोत्तर कालीन नाटक - डॉ· भूपेन्द्र कलसी - पृ· 159·

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पूर्व तथा पश्चात व्यक्ति के जो रंगीन स्वप्निल महल थे, वे सब धराशायी हो गए। निराशा के वातावरण में व्यक्ति स्थिति-जाल में इस तरह उलझ गया कि उसे अपने आन्तरिक और बाह्य दोनों ही रूपों से बड़ी वेदना होती है। उससे मुक्ति का हर प्रयास उसे उलझाता रहा, इसीलिए उसकी निष्क्रियता बढ़ती गई। अत: यह कहा जा सकता है कि एक ओर परिवेश ने व्यक्ति को दुर्बल-असहाय बनाया है, तो दूसरी ओर अधिकाधिक भौतिक सुख एवं सुविधा प्राप्त करने की मनोवृत्ति ने ऐसा जाल बिछाया है कि व्यक्ति को सिवाय अपने तक सीमित रहकर जीवन जीने के अलावा कोई मार्ग दृष्टिगोचर नहीं होता।[1] फलत: मानव अनास्था, कुण्ठा, दम्भ अनैतिकता एवं उदासी का शिकार बन गया एवं दिग्भ्रान्त पथिक के रूप में चौराहे पर खड़ा अनुभव करने लगा।

समय की परिवर्तन के साथ-साथ प्राचीन मान्यता समाप्त होती जाती है और नवीन मान्यताएँ जन्म लेती रहती है। जाति के आधार पर उच्चता का मापदण्ड समाप्त हो गया, इससे वह स्वभावत:अस्तित्वहीन हो गई। लोगों में संकुचित जाति भेद से उपर सम्पूर्ण राष्ट्र के सम्बन्ध में सोचने की भावना आई और उनमें मानवतावादी दृष्टिकोण का विकास हुआ। शता-ब्दियों से चली आनेवाली अस्पृश्यता का अन्त हुआ तथा सबको समान सामाजिक एवं राजनैतिक अधिकार प्राप्त हुए। पिछड़ी हुई जातियों की उन्नति के लिए सरकार की ओर से अनेक सुविधाएँ प्रदान की गई है। विभिन्न नौकरियों में उनके स्थान सुरक्षित रखकर विद्यालय, मंदिर आदि में प्रवेश का प्रतिबंध समाप्त कर दिया। फिर भी आज के युग में व्यक्ति का पूर्ण विकास नहीं हो पा रहा है, उसको जीवन में आवश्यकतानुसार सुविधाएँ प्राप्त नहीं हो रही है और न उचित शिक्षा ही प्राप्त होती है।

1· आधुनिक हिन्दी नाटकों में नायक - डॉ·श्याम शर्मा - पृ· 63·

सर्वहारा वर्ग की स्थिति भी इस काल तक आते हुए विशेष अच्छी न हो सकी । हाँ, इतना अवश्य हुआ कि वह सजग होकर पूँजीपतियों के कार - खानों का पर्दाफाश करने में समर्थ हो गया ।

परिवार समाज का एक प्रमुख अंग है, जिसकी जड़े कुत्सित संस्कारों, पथभ्रष्ट आचारों, धनलोलुपता एवं भोगवादी मनोवृत्ति के द्वारा खोखली हो चुकी है । औद्योगिक क्रान्ति एवं नौकरी की तलाश के कारण संयुक्त परिवारों का विघटन होने लगा । फलत: परिवारों में बिखराव अधिक दिखाई देने लगा और स्वयं व्यक्ति भी आन्तरिक बिखराव की स्थिति में पहुँच गया । पति-पत्नी के सम्बन्ध घुटन के साथ छित राने लगे । इनका जीवन विक्षोभ के साथ-साथ विद्रोह की आग में जलने लगा । जीवन पद्धति में आमूल परिवर्तन होने के कारण विवाह पद्धति में भी अन्तर आया है । युवक-युवती स्वेच्छा से जीवन साथी तलाश की इच्छा रखते थे । अत: वर्तमान परिवेश में आपा - धापी एवं असन्तोष सर्वत्र लक्षित किया जा सकता है । शिक्षित एवं अशिक्षित युवक युवतियाँ समाज में विद्रोह की मशाल प्रज्वलित कर रहे हैं । किसान भी इतना जागरूक हो चुके हैं कि वह अपने माँगों के समर्थन में विशाल रैली का आयोजन कर सकता है । पूँजीपति समाज को खोखला कर पूँजी को अपनी तिजोरी में भरना अपना जन्म सिद्ध अधिकार समझने लगे हैं । परिणाम स्वरूप सामाजिक परिवेश में प्रवंचना के साथ-साथ व्यक्ति पीड़ा को सहन करता हुआ टूट सा रहा हैं । जीवन उस के लिए भार स्वरूप है । व्यक्ति के जीवन-मूल्य उस के लिए अस्तित्वहीन तथा मूल्य हीनता का ही बोध कराते हैं । ऐसे परिवेश में व्यक्ति स्वयं को अजनबी एवं एकाकी अनुभव करता है ।

सर्वहारावर्ग की स्थिति भी इसकाल तक आते हुए विशेष अच्छी न हो सकी । हाँ, इतना अवश्य हुआ कि वह सजग होकर पूँजीपतियों के कारखानों का पर्दाफाश करने में समर्थ हो गये । इस वैज्ञानिक युग में स्वर्ग - नर्क, अन्धविश्वास, जाति-प्रथा, साम्प्रदायिक भावना एवं पुरातन जीवन मूल्यों का कोई स्थान नही है । प्रत्येक तथ्य को क्यों और कैसे की तुला पर तौल कर देखा जाता है । व्यक्ति समाज में दोहरी भूमिका निभाने का प्रयत्न करते हैं - घर में कुछ और बाहर कुछ, जिससे उनका वास्तविक रूप पहचानना सरल नहीं है । वह दिन-रात उद्विग्न हो प्रपंच के झूले में झूलता प्रतीत होता है , उसे किसी पर लेशमात्र भी विश्वास नही है । " आज का औसत आदमी अकारों में हाँफती हुई जिन्दगी जी रहा है : असन्तोष, अनास्था, अत: अनाचार, अवमूल्यन व विघटन का चतुर्दिक आधिपत्य ! आधुनिक मनुष्य और समाज की अब ये सहज प्रवृत्तियाँ बन गयी । " [1] परिणामत: वह सभी प्रकार के अन्य जीवन-मूल्योंको नकारने लगा । आस्था के स्थान पर अनास्था आ गई ।

गाँधीवादी विचारधारा के धरातल पर स्थित समाज की नींव डगमगाने लगी । हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई तथा सत्य, अहिंसा और प्रेमका गाँधीवादी नारा खण्डित हुआ । भीड़-की-भीड़ नगरों में घँस गई । अपच होना स्वा - भाविक था । राजनीतिक स्तर पर इसका हल ढूँढने की अपेक्षा भाई-भतीजावाद और रिश्वत का बाजार गर्म हो गया । और सम्बन्ध औपचारिक होने लगे । कहना-समझना मुश्किल हो गया कि कौन किसका है ।

समाज के विभिन्न परिस्थितियों के विहंगावलोकन से यह निष्कर्ष निकलता है कि स्वतंत्रता के बाद समाज का सर्वांगीण विकास हुआ है । समाज में अनेक कुरीतियाँ भी समाप्त हो गये है लेकिन इस स्थिति में और भी सुधार होना

1• हिन्दी नाटक बदलते आयाम - डा• नरेन्द्रनाथ त्रिपाठी - पृ• 109•

बाकी है । सामाजिक विकास एवं उसका खोखलापन उपर्युक्त रूप से स्पष्ट हो रही है । निष्कर्षत: यह कह सकते हैं कि स्वातन्त्र्योत्तर सामाजिक परिवेश में बेकारी, महँगाई, भ्रष्टाचार, अन्याय एवं शोषण काही बोलबाला नही है , वरन् कुण्ठा, संशय, अनास्था, घुटन, संत्रास, विघटन एवं उदास भी सर्वत्र विद्यमान है । भ्रष्टाचार, चरित्र हीनता, धन लोलुपता एवं भोगवादी प्रवृत्ति के कारण शाश्वत जीवन मूल्य नष्ट भ्रष्ट हो रहे हैं ।

3.4. धार्मिक :-

भारत में अंग्रेजों का राजनैतिक प्रभुत्व जम गया तो भारतवासियों पर धार्मिक प्रभुत्व जमाने का भी उन्होंने प्रयत्न शुरू किया । ईसाई धर्म-प्रचारकों ने यहाँ अपने केन्द्र स्थापित कर अपने साहित्य का विभिन्न भारतीय भाषाओं में रूपान्तर करके प्रचार का कार्य प्रारम्भ किया । लेकिन इस समय ऐसी परि - स्थितियाँ पैदा हुईं, जिनके फलस्वरूप एक धार्मिक नव चेतना की लहरें पैदा हुईं । इस नव चेतना के विकास के अग्रदूत राजा राम मोहन राय थे । उन्होंने हिन्दू जनता को आलस को नींद से जगाकर नया उत्साह प्रदान किया । वे प्राचीन रूढ़ियों के विरोधी थे । सती-प्रथा, बहु-विवाह, जातिवाद, दहेज आदि की उन्होंने तीव्र आलोचना कीं । उन्हीं के प्रयत्नों से सती-प्रथा वैधानिक रूप से बन्द की गई । उनका विश्वास था कि भारत में पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार से ही जागृति सम्भव है । उन्होंने ब्रह्मसमाज के नाम से नवीन विश्व - धर्म की स्थापना की, जिसमें इस्लाम के एकेश्वरवाद, ईसाई धर्म की नैतिकता और हिन्दुत्व के जीवन दर्शन का सुन्दर समन्वय था । यद्यपि इसका अधिक प्रचार नही हो सका, तथापि इस के द्वारा धार्मिक सुधार एवं नई धर्म-चेतना के विकास का पथ प्रशस्त हुआ । ऐसे समय में जब कि भारतीय समाज धर्म की अन्ध रूढ़ियों से चिपका हुआ था, उसकी स्पष्ट आलोचना और रूढ़ियों पर प्रहार अत्यन्त

साहस का कार्य था । राजा राममोहनराय ने इस दिशा में एक नये युग का प्रवर्तन किया । मिस कालेट ने लिखा है - "इतिहास में राममोहन राय का स्थान उस महा सेतु के समान है , जिसपर चढ़कर भारतवर्ष अपने अथाह अतीत से अज्ञात भविष्य में प्रवेश करता है । "[1]

इसी तरह उत्तर-पश्चिमी भारत में स्वामी दयानंद सरस्वती ने आर्य - समाज की स्थापना करके धार्मिक आंदोलन चलाया । स्वामीजी ने उद्घोषित किया है कि प्राचीन वैदिक धर्म ही सब धर्मों से श्रेष्ठ है । रामकृष्ण परमहंस एवं विवेकानंद ने भी प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं गरिमा की महत्ता बताई । श्रीमती एनीबीसेन्ट और थियोसोफिकल सोसायटी ने हिन्दू धर्म के पूर्ण स्वरूप की विवेचना की । हिन्दू धर्म की महानता का व्याख्या करते हुए श्रीमती एनीबीसेन्ट ने सन् 1914 ई• के एक भाषण में कहा - "चालीस वर्षों के सुगम्भीर चिन्तन के बाद मैं यह कह रही हूँ - विश्व के सभी धर्मों में हिन्दू धर्म से बढ़कर पूर्ण, वैज्ञानिक, दर्शन युक्त एवं आध्यात्मिकता से परिपूर्ण धर्म दूसरा और कोई नही है । "[2] थियोसोफिकल सोसायटी किसी धार्मिक आन्दोलन को लेकर नहीं चलती थी । उसका कार्य तो धार्मिक मूल्यों की व्याख्या करने तक ही सीमित था । अतः सामान्य जनता पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा । इसी प्रकार रामकृष्ण परमहंस एवं विवेकानन्द ने भी प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं गरिमामयी संस्कृति की महत्ता बताई । इन धार्मिक आन्दोलनों के फलस्वरूप देश में एक धार्मिक नव जागृति पैदा हुई ।

1• संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर - पृ• 545•

2• संस्कृति के चार अध्याय - इंडियन अरनेस्ट - दिनकर - पृ• 572 से उद्धृत

अंग्रेजों ने जहाँ भारतीयों में राष्ट्रीयता, एकता व स्वदेश प्रेम की भावना जगाई, वहाँ विदेशी शासन के प्रति असन्तोष की भावना भी उसने जगाई। सन् 1859 की क्रान्ति की दब जाने पर भारत के कुछ नव युवकों ने क्रान्तिकारी बनकर हिंसात्मक कार्यद्वारा सरकार को बदलने का निश्चय किया। इस मनो-वृत्ति के लोगों ने भारतीय क्रान्तिकारी दल की स्थापना की। बाल गंगाधर तिलक ने महाराष्ट्र में क्रान्ति के प्रचार का कार्य शुरू किया। अपने वीरता के रूप में आपने शिवाजी को चुना और शिवाजी उत्सव चलाया। इन सब के पीछे नवोत्थान का हाथ रहा है। "हिन्दू नवोत्थान के प्रभाव में जो आन्दोलन शुरू हुआ, उसने एक कट्टर हिन्दू राष्ट्रीयता का रूप अपना लिया। बालगंगाधर तिलक द्वारा यह विशेषतया पुष्ट की गयी। मराठों के जोश को आपने पुनरुज्जीवित किया और एक कट्टर हिन्दू के जैसे धार्मिक मामलों पर हस्तक्षेप न करने के सरकार के विचार को जानकर, धार्मिक पुनरुत्थान के पीछे राजनीतिक आँदोलन का स्वाँग आपने भर लिया। ... महाराष्ट्र के नेता वीर शिवाजी को आपने एक साम्प्रदायिक नेता मान लिया। ... इस प्रकार शिवाजी को चुनने का कारण तिलक ने सन् 1907 में कलकत्ता की एक सभा के भाषण में व्यक्त किया।" [1]

भारत में कई धर्मों के लोग हिलते-मिलते रहते हैं। सन् 1946 के लगभग कई साम्प्रदायिक आन्दोलन हुए, जो बहुत हानिकारक सिद्ध हुए। अनेक स्थानों पर भीषण दंगे हुए एवं सहस्रों करोड़ों की संख्या में लोगों की मृत्यु हुई तथा करोड़ों की सम्पत्ति नष्ट हुई। अन्त में भारत का भी विभाजन हुआ - हिन्दुस्तान और पाकिस्तान। भारत के महान् नेता गाँधीजी ने हिन्दू-मुस्लिम मैत्री की स्थापना करने के लिए घोर प्रयत्न किया।

---

1. आधुनिक हिन्दी खण्डन काव्य - डॉ. एस. तंकमणिअम्मा - पृ. 55.

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत गाँधीजी भारत में रामराज्य की स्थापना चाहते थे । इसमें वर्ण, वर्ग, जाति, लिंग भाषा या सम्प्रदाय के आधार पर कोई भेदभाव न करके सबको अपनी-अपनी रुचि एवं सामर्थ्य के अनुसार आत्मविकास की पूर्ण सुविधा मिलनी चाहिए - यही रामराज्य से आपका तात्पर्य था । स्वतंत्र भारत की धार्मिक दृष्टि धर्म निरपेक्षता की ओर ही दृढ रहती है - यह बात तो श्लाघनीय ही है । इस ओर महर्षि अरविन्द जैसे धार्मिक नेताओं का भी बड़ा योगदान है । आप का डिवाइन लाइफ आप के धार्मिक विचारों का कोष है, जो इस दिशा का एक अमर ग्रन्थ है । भारत भर में तथा विदेशों में उनके डिवाइन लाइफ थीयरी की बड़ी मान्यता है । भूदान यज्ञ के उपदाता एवं सर्वोदय के नेता, गाँधीजी के अनुचर विनोबा भावे का प्रयत्न भी सराहनीय है । इन आत्मीय नेताओं की प्रबुद्ध चेतना के आलोक में भारतवासी निरन्तर धार्मिक एकता की उन्नति के पथपर अग्रसर हो रहे हैं ।

3·5· सांस्कृतिक

अंग्रेजों और भारतीयों के सम्पर्क का प्रभाव भारतीय संस्कृति और सामाजिक व्यवस्था पर भी पड़ा । शिक्षित जनता रूप-रंग में भारतीय होते हुए भी अपने विचारों व आचारों में अंग्रेजों जैसी हो गयी और उनको भारतीय संस्कृति से चिढ़ होने लगी । जवहारलाल नेहरू जी के शब्दों में - " आधुनिक औद्योगिक सभ्यता बिना किसी शोरगुल के धीरे-धीरे इस देश में प्रविष्ट हो गई । नये भावों और विचारों ने हमला किया और हमारे बुद्धिजीवी अंग्रेज बुद्धि जीवियों की तरह सोचने की आदत डालने लगे । यह मानसिक आन्दोलन बाहर की ओर वातायन खोलने का यह भाव अपने ढंग का अच्छा रहा, क्योंकि इससे हम आधुनिक

जनता को थोड़ा-बहुत समझने लगे। मगर इससे एक दोष भी निकला कि हमारे बुद्धिजीवी जनता से विच्छिन्न हो गये, क्योंकि जनता विचारों की इस नई लहर से अप्रभावित थी।"[1] क्रमश: देश में नव जागरण का उदय होने लगा है।

इस काल में जो नवीन विचारधाराएँ विकसित हुई उनका प्रभाव राजनैतिक, सामाजिक विकास के अतिरिक्त सांस्कृतिक विकास पर भी पड़ा। पाश्चात्य संस्कृति विशेष रूप से भौतिकता से सम्बन्धित थी, अत: आध्यात्मिक जीवन के चरम सत्यों को स्वीकृति का उसमें अभाव था। भारतीय लोक संस्कृति का पुनर्जन्म और कर्म-फल भोग का सिद्धान्त, पाश्चात्य संस्कृति के भौतिकवादी होने के कारण अत्यधिक स्थाईत्व न पा सका। ईसाई धर्म को शासकीय समर्थन मिला। अत: उसका प्रचार तथा प्रसार दिनों दिन तीव्र गति से होने लगा। इस प्रसार का प्रहार हिन्दुओं की पौराणिक मान्यताओं पर होने लगा। अत: हिन्दुओं की धार्मिक बुद्धि को दो प्रकार से प्रेरणा मिली। प्रथम तो भारतीय धर्मबुद्धि पाश्चात्य संस्कृति के अनुकरण में प्रवृत्त हुई तथा पाश्चात्य साहित्य के अध्ययन के माध्यम से शेक्स पियर, मिल्टन, हार्डी आदि की विचारधाराओं का विकास हुआ जिसके फलस्वरूप हिन्दी काव्य में पाश्चात्य नियतिवादी भावनाओं का उदय हुआ। दूसरी ओर उसने अपनी बौद्धिक एवं पौराणिक निधि का पुनर्शोधन प्रारम्भ किया तथा समाज-सुधारकों द्वारा स्थापित विभिन्न सांस्कृतिक संस्थाएँ उसका पोषक पाथेय सिद्ध हुई।

"... देश में सांस्कृतिक राष्ट्रीयता का उदय हुआ और लोग इस स्वाभिमान से भरने लगे कि हम अत्यन्त प्राचीन सभ्यता के उत्तराधिकारी हैं ... धार्मिक व्यक्ति ही इस उन्नति के आदि उन्नायक हुए।"[2]

---

1. संस्कृति के चार अध्याय - भूमिका : जवाहरलाल नेहरू - पृ. 1.
2. संस्कृति के चार अध्याय - डा. रामधारी सिंह "दिनकर" - पृ. 43.

इस परिस्थिति को सुधारने का सर्वप्रथम श्रेय राजा राममोहन राय को है । उनके विचारों ने " ब्रह्मसमाज जैसी उदार सांस्कृतिक संस्था को जन्म दिया, जिसके द्वारा भारतीय धर्म एवं संस्कृति की रक्षा एवं विकास के लिए अनेक सफल प्रयत्न किए गए । उन्होंने भगवान की सर्वव्यापकता पर जोर दिया और एकमात्र ईश्वर की भक्ति की शिक्षा दी । मूर्तिपूजा व अनगिनत देवी-देवताओं की पूजा का खण्डन हुआ । इस धर्म का मूलाधार उपनिषद् एवं बौद्ध धर्म था लेकिन ईसाइयों व यहूदियों का भी इस पर कुछ प्रभाव पड़ा था । राजा राममोहनराय जी ने इस धर्म से उन दोषों को दूर करने का प्रयत्न किया था, जिनपर ईसाई इशारा करके शिक्षित हिन्दुओं को धर्म परिवर्तन कर देते थे । हिन्दू समाज को उन्नत बनाने के लिए उन्होंने प्रचलित कुप्रथाओं को दूर करने का प्रयत्न किया और सती प्रथा एवं जाति - व्यवस्था का विरोध तथा विधवा विवाह एवं शिक्षा-प्रचार का समर्थन किया । बाद में ब्रह्मसमाज के दो भाग हो गये । एक दल तो उसे हिन्दू धर्म के निकट रखना चाहता था और दूसरा अधिक प्रगतिशील हो गया, जिसके कारण लोग इसे ईसाई धर्म की एक शाखा बताकर इसका विरोध करने लगे । केशव चन्द्र सेन ने तो ब्रह्मसमाज को ईसाई धर्म की ओर झुका दिया था, परन्तु महर्षि [देवेन्द्रनाथ ठाकुर] ने उसे भारतीय संस्कृति के ही अनुरूप ढाला था । "[1] ब्रह्मसमाज का प्रचार तब इतना था कि नवयुग की चिन्तन धारा पर इसके धर्म सिद्धान्तों का गहरा प्रभाव पड़ गया । राजा राममोहन राय के पश्चात् स्वामी दयानंद सरस्वती दूसरे समाज सुधारक के रूप में प्रकट हुए । उन्होंने सन् 1873 में आर्य समाज की स्थापना की जो कि भारतीय जीवन में सांस्कृतिक उत्थान लानेवाला सबसे अधिक प्रभावशाली आन्दोलन सिद्ध हुए । वेदों की शिक्षा के आधार पर भारतीय धर्म एवं समाज के दोषों को हटाकर समाज के

---

1. हिन्दी कविता में युगान्तर - सुधीन्द्र - पृ॰ 7.

पुनरुद्धरण करने का आप ने सफल प्रयत्न किया । आर्य समाज के द्वारा समाज में फैली हुई कुरीतियों जैसे छुआछूत, जाति-पाँति, मूर्तिपूजा, बालविवाह, विधवा विवाह, सतीप्रथा, पर्दाप्रथा आदि सामाजिक रूढ़ियों व अन्ध-विश्वासों का विरोध करके वैदिक संस्कृति की पुनः स्थापना का प्रयत्न किया । यही नहीं आपने शिक्षा के प्रचार का प्रयत्न किया और अन्तर्जातीय भोज व विवाह, अहिन्दुओं की शुद्धि एवं विधवा विवाह का भी आपने समर्थन किया । आर्य समाज ने सामाजिक नव निर्माण का उत्साह जगा दिया और जातीयता की चेतना भी प्रस्फुटित की । इस सामाजिक चेतना का स्वर तत्कालीन काव्य धारा में गूँज उठता है । आर्य समाज के पश्चात् स्वामी विवेकानन्द ने " रामकृष्ण मिशन " [1867] की स्थापना करके सांस्कृतिक उत्थान की दिशा में कदम बढ़ाया । उनके " मिशन " में प्राचीन धार्मिक विश्वासों की आस्था एवं लोक सेवा की प्रगतिशील तत्वों का समावेश था । श्रीमती एनीबीसेन्ट ने थियोसोफिकल सोसाइटी [1876] की स्थापना की जिसके प्रयत्न से सांस्कृतिक चेतना एवं राष्ट्रीयता की भावनाओं का प्रसार हुआ ।

उन्नीसवीं शती के उपरांत बीसवीं शती के सांस्कृतिक निर्माता के रूप मे महात्मागाँधी उपस्थित हैं । राजनैतिक क्षेत्र के द्वारा आपका आगमन तो हुआ था, किन्तु भारतीय संस्कृति के हिमायती के रूप में आपका पथ-प्रदर्शन देश के अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुआ । भारतीय संस्कृति के अमरतत्व अहिंसा को कार्यक्षेत्र में लाकर उसे कार्यान्वित करने का सफल प्रयास आपने किया । आपके सत्याग्रह एवं अहिंसा सिद्धान्त की चिन्तनधारा भारतीय जन-जीवन में जल्दी व्याप्त हो गयी । राजाराममोहन राय से लेकर महात्मा गाँधी तक की महान् विभूतियाँ विभिन्न सांस्कृतिक चिन्तनधाराओं के प्रवर्तक एवं प्रचारक थीं, जिनके प्रभाव में समूचे भारतवासी पड़ गये । सचमुच राजाराम मोहनराय, स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गाँधी -

सबके सब भारतीय सांस्कृतिक नवचेतना के अमर प्रतीक हैं। भारतीय पुनरुत्थान उसके महान वटवृक्ष की ही भाँति है, जिसके अनगिनत अंकुर फूट निकलते हैं, जो पृथक से दीख पड़ते हैं, परन्तु अन्तत: वे सब एक ही जड़ के हैं। "[1]

ऐतिहासिक सांस्कृतिक संघर्षों के फलस्वरूप पूँजीवादी व्यवस्था का प्रादुर्भाव हुआ तथा भारतीय सामंती संस्कृति शनै: शनै: समाप्त हो गई। औद्योगिक व्यवस्था ने श्रमिक वर्ग को संगठित कर दिया अत: आगे चलकर अन्तर्राष्ट्रीयता स्तर पर वैचारिक चिन्तन आरम्भ हुआ। सन् 1942 की क्रान्ति तथा सन् 1947 की भारतीय स्वतंत्रता की प्राप्ति ने राष्ट्रीय चेतना को बढ़ावा दिया। यातायात के साधनों के विकास तथा बढ़ती हुई औद्योगिक प्रगति ने जीवन को व्यस्त और वैज्ञानिक बना दिया। जनतांत्रिक भावना का विकास भी इस युग में हुआ। "सांस्कृतिक जागरण" इस युग की परिस्थिति से प्रसूत हो राष्ट्रीय मनोभाव के उद्दीपक तथा सहायक के रूप में उभरा था और बहुत कुछ इन नवीन बौद्धिक उन्मेष से प्रेरित था। राजनीतिक दासता की चेतना ने हमें स्वतंत्रता और जनतंत्र की ओर उन्मुख किया और अपनी संस्कृति के प्रति आवश्यकता से अधिक विशेष लगाव को अनुभव कराया। "[2]

स्वतंत्र्योत्तर काल में शिक्षा को अधिक प्रसार मिला। उन्नत शिक्षा के लिए अनेक विश्वविद्यालयों का आविर्भाव हुआ। सन् 1950 में हिन्दी को राजभाषा घोषित किया गया। अंग्रेजी को 15 वर्षों तक सरकारी कामकाज में सहायक भाषा के रूप में स्वीकार किया। सन् 1965 से हिन्दी के ही माध्यम से सरकारी कामकाज होने लगा किन्तु 1965 में एक नवीन विधेयक पारित कर अंग्रेजी का प्रयोग अनिश्चित काल तक के लिए बढ़ा दिया गया।

---

1. आधुनिक हिन्दी खण्डकाव्य - डा० एस० तंकमणि अम्मा - पृ० 54.
2. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास - चतुर्थ भाग - सं० डा० हरवंशलाल शर्मा - पृ० 36.

सरकार ने साहित्य कला के विकास हेतु साहित्य अकादमी, संगीत, नाटक तथा ललितकला अकादमी आदि की स्थापना की हैं, जिनकी ओर से कलाकारों के सम्मान का प्रोत्साहन आदि के लिए पुरस्कार दिये जाते थे।

शिक्षा में राष्ट्रीय संस्कृति, सभ्यता, दर्शन एवं विचार धारा का समावेश होने के कारण नवयुवक भारतीय परम्पराओं से पूरी तरह से हट चुके हैं। उनमें विदेशी संस्कृति के अनुकरण की प्रवृत्ति जोर पकड़ रही है। आकाशवाणी ने साहित्य कला और खेल कूद को कुछ प्रोत्साहन दिया है। परन्तु सरकारी अधिकार में होने के कारण उनमें विचार स्वतंत्रता नहीं रही।

इस सांस्कृतिक उथल-पुथल का हिन्दी काव्य पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा जिसमें भारतीय संस्कृति के पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा में व्याप्त थे।

देश में व्याप्त निराशा एवं असंतोष की भावना विभिन्न सांस्कृतिक संस्थाओं के प्रयत्नों से शनैः शनैः कम होती गई।

कवियों ने भारतीय गौरव-गाथाओं को दुःखात्मक अनुभूतियों को नियतिवादी दृष्टिकोण से चित्रित किया।

विभिन्न सांस्कृतिक संस्थाओं ने समाज के दलित पीड़ित-वर्ग की ओर कवियों का ध्यान आकर्षित किया। विधवा, भिखारी, किसान, मजदूर वेश्या, अछूत आदि वर्गों की दयनीय परिस्थितियों एवं जीवनगत दुःख दर्दों के हृदय द्रावक चित्र हिन्दी काव्य में चित्रित हुए जिन के साथ विभिन्न नियति तथा लोक विश्वासों की अभिव्यक्ति हुई।

सांस्कृतिक संस्थाओं ने अतीत के गौरव का चित्र प्रस्तुत किया । फलस्वरूप हिन्दी कविता में स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा प्रवाहित होने लगी । इसकी अभिव्यक्ति का एकमात्र कारण पाश्चात्य साहित्य एवं संस्कृति का सम्पर्क ही रहा है ।

4. साहित्यिक परिवेश :-

आधुनिक काल की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक व साहित्यिक गतिविधियों के आलोक में तत्कालीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों का परीक्षण वांछनीय है । यहाँ नरेशमेहता के साहित्य का समग्र अध्ययन के लिए उनके साहित्य के पूर्वापर प्रवृत्तियों की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है । क्यों कि ये प्रवृत्तियाँ उनके साहित्य के निर्माण में सहायक होने के साथ-साथ उनके साहित्य के विषय और शैली पक्षों को भी विशेष रूप से प्रभावित करती हैं । सुविधा की दृष्टि से उनके युगीन साहित्यिक परिवेश को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं । नरेशमेहता का पूर्व परिवेश और समकालीन परिवेश । उनके पूर्व के साहित्यिक परिवेश के अंतर्गत छायावाद तथा प्रगतिवाद आते हैं । इसके बाद सप्तक परम्परा का प्रकाशन हुआ । सन् 1943 में अज्ञेय के सम्पादन में प्रकाशित प्रथम तार सप्तक में ही दूसरा सप्तक (1951) का भी प्रकाशन हुआ । दूसरा सप्तक के साथ ही काव्यक्षेत्र में इनका आगमन हुआ । इसलिए इन के समकालीन साहित्य के अंतर्गत प्रयोगवाद, नयीकविता, नवगीत, नया गीतकाव्य, नया राष्ट्रीय काव्य तथा जनवादी साहित्य आदि को प्रमुख रूप में ले सकते है । इस प्रकार उनके युगीन साहित्य को दो भागों में विभक्त करके आधुनिक हिन्दी की काव्यगत प्रवृत्तियों का एक विहंगावलोकन इस प्रसंग में उचित है ।

4·1· छायावाद पूर्व युग :-

इस युग में भारतेन्दु तथा द्विवेदी युग की कविता आ जाती है। आधुनिक हिन्दी काव्य का शुभारम्भ भारतेन्दु की रचनाकाल से हुआ। यह काल सचमुच हिन्दी का प्रवेश द्वार रहा है। भावक्षेत्र तथा रूप क्षेत्र दोनों में प्राचीन व नवीनता को इस युग ने अपना लिया। तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ इसकाल की कविता में बहुधा मुखरित हैं। नवीन कविता में यथार्थवाद प्रधान है। वह समकालीन इतिहास को दोनों भुजाओं से आवृत्त किए हुए हैं। नव शिक्षित कवियों को देश का अधःपतन, देश की रूढ़ि प्रियता, पाश्चात्य सभ्यता का अन्धानुकरण, पुलिस और अदालती लोगों की लूट-खसोट, भारत की निर्धनता, पारस्परिक कलह आदि बातें देखकर मर्मान्तिक पीड़ा होती थी। नवीन कविता में देश भक्ति, लोकहित, सामाजिक एवं धार्मिक पुनर्निर्माण, मातृभाषोद्धार, स्वतन्त्रता आदि का स्वर उच्च हुआ।"[1]

इस कविता में तत्कालीन राजनीतिक चेतना मुखरित है तथा अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति, आर्थिक शोषण आदि के प्रति कटु विरोध का स्वर भी बुलन्द है। नव शिक्षित मध्यवर्ग की चेतना ही इसके मूल में है। देश-प्रेम का अमर सन्देश वहन करनेवाली तत्कालीन कविता राजनीति के प्रति सर्वदा जागरूक है। इसकाल की प्रकृति-वर्णन-शैली भी परम्परा युक्त रही है। "ये लोग नर प्रकृति के वर्णन में अधिक रमे हैं, बाह्य प्रकृति के वर्णन में नहीं। ··· इनके प्रकृति वर्णन में संवेदनशीलता का अभाव है और नागरिकता की बहुलता।"[2] विभिन्न साहित्यिक विषयों पर इसकाल में उपदेशात्मक व सुधारात्मक कविताएँ

1· हिन्दी साहित्य कोश – भाग – 1 – सं·डा· धीरेन्द्र वर्मा – पृ· 590·

2· हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ – शिवकुमार वर्मा – पृ· 439·

विकसित हुई । काव्यक्षेत्र में ब्रजभाषा का ही प्राधान्य रहा, यद्यपि खड़ी बोली में भी फुट-फुट कविताएँ निकलने लगी थीं । इसकाल की कविता में नवीन छन्द का सर्वथा अभाव है । परम्परा से चले आते हुए सवैया, रोला, लावनी, कजली आदि लोकप्रचलित छन्दों का ही प्रामुख्य रहा । संस्कृत वर्णवृत्तों में भी कविता रची जाती थी । सचमुच हिन्दी कविता के विकास में भारतेन्दु युग का ऐतिहासिक व साहित्यिक महत्व अक्षुण्ण है ।

भारतेन्दु युग में जिन नवीन प्रवृत्तियों का उदय हुआ, द्विवेदी युग में उनका क्रमिक विकास हुआ । पहले तो प्रबन्ध काव्यों एवं गीतिकाव्यों का एक प्रकार से अभाव रहा, किन्तु इस युग में महाकाव्य, खण्डकाव्य, आख्यानक काव्य, गीतिकाव्य आदि विभिन्न काव्यरूपों का सर्वांगीण विकास हुआ । काव्य रूपों की विविधता इसकाल की अनूठी विशेषता है । इसयुग में इति - वृत्तात्मक काव्यों की प्रधानता रही । इस युग के अन्त में आकर इतिवृत्तात्मक कविताओं को भावनात्मकता की ओर नया मोड़ भी दृष्टिगत होता है । विभिन्न उद्वेग-पूर्ण राजनीतिक गतिविधियों के कारण इसकाल की कविता की राजनीतिक चेतना और प्रौढ रही । राष्ट्रीयता की प्रवृत्ति ने और प्रमुख रूप को प्राप्त किया । स्वच्छन्दतावाद की प्रवृत्ति के उदय के साथ-साथ प्रकृति वर्णन में नवीनता आ गई । इसकाल के कवियों में एक नवीन मानवता - वादी दृष्टिकोण विद्यमान रहा तथा रूढ़ियों व परम्पराओं को तोड़कर तत्कालीन कवियों ने एक नितान्त नवीन युग का प्रारम्भ किया । ब्रजभाषा की प्राचीन परम्परा के पालन करनेवाले अब विरले रहे । काव्यक्षेत्र में खड़ीबोली हिन्दी की प्रतिष्ठा हो गई । इस काल के कवियों ने विभिन्न प्रकार के छन्दों के प्रयोग में वे सर्वदा सफल रहे । अनुवाद की प्रवृत्ति को इस काल में अधिक प्रोत्साहन मिला । हिन्दी भाषा व साहित्य को प्रौढ़ व समृद्ध बनाने के उद्देश्य से इसकाल में द्विवेदी जी के नेतृत्व में देशी व विदेशी भाषाओं की कविताओं का खड़ी बोली हिन्दी में अनुवाद प्रारम्भ हुआ । इन अनुवाद कार्यों के कारण हिन्दी काव्य का दायरा और विस्तृत हो गया ।

4.1.1. छायावाद :-

1918 ई. से 1936 ई. तक का कालखण्ड हिन्दी साहित्य के इतिहास में छायावाद युग के नाम से अभिहित किया जाता है। [1] यह द्विवेदी युगीन नीरस, उपदेशात्मक इतिवृत्तात्मक और स्थूल आदर्शवादी काव्यधारा के बीच से प्रमुखत: रीतिकालीन काव्य प्रवृत्तियों के विरुद्ध विद्रोह के रूप में प्रवाहित हुई। यह नई काव्यधारा अंग्रेजी के रोमाण्टिक कवियों तथा बंगाल के रवीन्द्रनाथ ठाकुर की काव्यधारा के ढंग की या उससे प्रभावित थी। डा. नगेन्द्र के शब्दों में – " स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह " ही छायावाद का मूल आधार है। पंत, प्रसाद, निराला और महादेवी प्रसिद्ध छायावादी कवि हैं। वस्तुत: छायावाद मध्यवर्गीय चेतना के विद्रोह का दूसरा नाम है। उस विशिष्ट काल की परि-स्थितियों और विचार धाराओं ने विविध रूपों में जीवन और काव्य को प्रभावित किया था। " पूँजीवाद का विकास और व्यक्तिवाद का जन्म स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों का उदय, प्रथम महायुद्ध का प्रभाव, राजनीति के क्षेत्र में महात्मागाँधी का आँदोलन और सम्पूर्ण समाज में स्वातन्त्र्य प्रेम का जागरण, नयी पीढ़ी पर पश्चिमी सभ्यता का रंग चढ़ना तथा अंग्रेज रोमाण्टिक कवियों से प्रभावित होना, कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रति श्रद्धा, बंगाल में ब्रह्मसमाज का आन्दोलन और राजा - राम मोहन राय के क्रान्तिकारी विचार, स्वामी दयानन्द सरस्वती का कर्मकाण्डी वैष्णव धर्म के विरुद्ध आँदोलन – इन विभिन्न सांस्कृतिक परिस्थितियों ने मिल जुलकर छायावाद को जन्म दिया। " [2] आधुनिक औद्योगिकता से प्रेरित व्यक्ति - वाद ही छायावादी काव्य की मूल प्रवृत्ति है। " आधुनिक युग की प्रतिद्वन्द्वात्मक व्यवस्था, अधिकार स्वायत्तता और पूँजीवादी मितव्ययता के परिणाम स्वरूप व्यक्तिवाद का जन्म हुआ। इस व्यक्तिवाद के फल स्वरूप छायावादी कवि ने

---

1. भारतीय साहित्य कोश – सम्पादक – डा. नगेन्द्र – पृ. 418.
2. हिन्दी साहित्य कोश – भाग – 1 सं. – डा. धीरेन्द्र वर्मा – पृ. 328.

स्वच्छन्दतावाद तथा कलावाद की दुहाई दी, जो नैसर्गिक भी थी।"[1] अब तो बुद्धि के विरुद्ध हृदय, स्थूल के विरुद्ध सूक्ष्म की विद्रोह कर उठे।

छायावादी काव्य के प्रमुख आलम्बन प्रकृति नारी परोक्ष सत्ता और राष्ट्र हैं। प्रकृति चित्रण की एक नितांत नवीन शैली ने अब जन्म ले लिया हैं। छायावादी काव्य में प्रकृति कवि के वैयक्तिक जीवन के प्रतीक के रूप में प्रकट हुई है। प्रकृति पर सर्वत्र मानवीय भावों का आरोप होने लगा। दार्शनिक अनुभूतियों की अभिव्यंजना तथा प्रेम की सूक्ष्मातिसूक्ष्म दशाओं के चित्रण में भी प्रतीकात्मकता का प्रयोग होने लगा। इस काव्य की प्रकृति जड़ न होकर चेतन हैं और मात्र न उद्दीपन होकर रागात्मक वृत्ति की आलम्बन है। इस काव्य में नारी सौन्दर्य के ऐसे निर्मल चित्र मिलते हैं, जिनमें रीतिकालीन मांसलिकता की गंध भी नही है। अज्ञात प्रियतम को लक्ष्य कर किया गया प्रणय-निवेदन भारतीय दर्शन की अद्वैतवादी अनुभूतियों से प्रभावित है। राष्ट्रीय कविताओं में प्राय: देश के प्राकृतिक सौन्दर्य और अतीत के सांस्कृतिक गौरव के कोमल एवं उदात्त चित्र अंकित किए गए हैं।

छायावाद ने एक चतुर्मुख क्रान्ति के रूप में हिन्दी काव्य में प्रवेश किया और काव्य के प्राचीन पद्धति पर आक्रमण किया इसके परिणाम स्वरूप काव्य वस्तु, छन्द विधान, रूप संयोजना, शब्द योजना आदि के क्षेत्रों में नवीन प्रयोग हुआ। छायावाद की कलात्मक या शिल्पगत समृद्धि के विकास में भाषा ने अत्यन्त सहयोग दिया। भाषा वैभव के आधार पर छायावाद को खडीबोली के विकास की चरम - परिणति माना गया है। चित्रात्मक एवं लाक्षणिक पदावली भी छायावादकाल को निजी व्यक्तित्व प्रदान कर देती है। छायावादी कविता छन्द एवं संगीत

---

1. हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ - शिवकुमार वर्मा - पृ. 466-67.

दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है । प्राचीन छन्दों के साथ साथ छायावादी कविता में नवीन छन्दों का भी निर्माण हुआ । मुक्त एवं अतुकांत छन्द की कविता इस युग की अनूठी उपलब्धि है । विशिष्ट रूप में भावाभिव्यंजना प्रस्तुत करने के लिए अलंकारों का समुचित प्रयोग किया गया । अनेक प्राचीन अलंकारों के साथ अंग्रेजी के दो नवीन अलंकारों - मानवीकरण (Personification) तथा विशेषणविपर्यय (Transferred epithet) का प्रयोग किया गया है । इसके साथ शिल्प विकास में सहायक प्रवृत्तियों को समुचित स्थान दिया गया है । छायावाद युग में प्रबन्ध एवं मुक्तक दोनों प्रकार के काव्य विरचित हुए । पौराणिक एवं ऐतिहासिक कथावस्तु में भी आधुनिक जीवन के मार्मिकचित्र अंकित करने की प्रवृत्ति अधिक रही । इस युग के काव्य में अन्तर्द्वन्द्व की प्रधानता है और इसमें रहस्योन्मुख आध्यात्मिकता का प्राधान्य रहा है । युग धर्म या समय की छाया छायावादी काव्य पर अधिक है । इस युग में पद्य के साथ गद्य का भी बहुमुखी विकास हुआ । गद्य की सभी विधाओं में भारतीय एवं पाश्चात्य कला का सम्मिश्रण करके नूतन प्रणाली का अनुकरण किया गया है । इस तरह काव्य की नई विधाओं के साथ अभिव्यंजना की नई-नई पद्धतियाँ विकसित हुई । संक्षेप में छायावाद की सारी प्रवृत्तियों को डा॰हुकुमचन्द राजपाल ने भावगत एवं शैलीगत रूपों में विभक्त करके इस प्रकार स्पष्ट करते हैं कि - "भावगत प्रवृत्तियों में - आत्मनिष्ठ एवं वैयक्तिकता, अहंभावना की अतिशयता, प्रकृति का मानवीकरण, राष्ट्रीयता, सर्वात्मवादी भावना, शृंगारिकता तथा प्रेम प्रधानता, विरह वेदना, रहस्यानुभूति, पलायनवादी भावना, नारी के प्रति नवीन दृष्टि - कोण आदि का विशेष महत्त्व हैं तथा शैलीगत प्रवृत्तियों में विषयानुकूल शब्द चयन, पद-लालित्य, चित्रात्मक भाषा, लाक्षणिकता, संगीतात्मकता, प्रतीकात्मकता, मानवीकरण,मुक्त छन्द रचना आदि समाविष्ट की जा सकती हैं ।"[1]

---

1. आधुनिक काव्य में नवीन जीवन मूल्य - डा॰ हुकुमचन्द राजपाल - पृ॰ 21।

इस तरह उत्तर द्विवेदी काल से आरम्भ होकर यह काव्य प्रवृत्ति प्रगतिवाद के आरम्भिक समय तक साहित्य के क्षेत्र में विद्यमान रही । छायावाद ने अपने पूर्व युगों से बढ़कर भावगत एवं शैलीगत प्रवृत्तियों में एक सर्वथा पृथक और नवीन रूप स्पष्ट किया है । युगीन चेतना के अनुरूप छायावाद विभिन्न युगों में परिवर्तित होने लगा । फिर भी उसकी प्रवृत्तियाँ जीवन्त हैं, शाश्वत हैं । अपनी इस प्रकार की विभिन्न विशेषताओं के कारण आधुनिक हिन्दी साहित्य में छायावादी प्रवृत्तियों को ऐतिहासिक महत्त्व मिला है।

4·2· छायावादोत्तर युग

प्रगतिवाद तथा प्रयोगवादी (नयी कविता) कविताओं से छाया - वादोत्तर युग सम्पन्न हो जाता है । जीवन के प्रति व्यक्ति के दृष्टिकोण के बदलते-बदलते साहित्य क्षेत्र में भी नयी क्रान्ति मच जाती है । छायावादकाल के उपरांत जीवन के प्रति व्यक्ति का दृष्टिकोण बदल गया, तो काव्य क्षेत्र में प्रगतिवाद का प्रादुर्भाव हुआ ।

4·2·1· प्रगतिवाद

हिन्दी काव्य क्षेत्र में छायावाद युग के पश्चात् प्रगतिवाद युग का प्रारम्भ होता है । सन् 1936 से 1947 अर्थात् स्वतंत्रता प्राप्ति तक इस युग की सीमावधि स्वीकार किया जाता है ।[1] "जो विचारधारा राजनीति के क्षेत्र में साम्यवाद, सामाजिक क्षेत्र में समाजवाद और दर्शन में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है, वही साहित्य के

1· आधुनिक काव्य में नवीन जीवन मूल्य - डा·हुकुमचन्द राजपाल - पृ· 237·

क्षेत्र में प्रगतिवाद नाम से अभिहित की जाती है । "[1] मार्क्सवादी अथवा साम्यवादी दृष्टिकोण के मुताबिक प्रणीत काव्यधारा ही प्रगतिवादी काव्य है । शिवदानसिंह चौहान, यशपाल, डा॰रामविलास शर्मा, शिवमंगल सिंह सुमन, नागार्जुन, रांगेयराघव, केदारनाथ अग्रवाल, अमृतराय, मुक्तिबोध, त्रिलोचन, पन्त, निराला और भैरवप्रसाद गुप्त प्रगतिवाद के प्रमुख कवि हैं।

प्रगतिवाद सामाजिक यथार्थ के नाम से साहित्य के क्षेत्र में प्रतिष्ठित हुआ । तत्कालीन परिस्थितियों से प्रभावित प्रगतिवादी कवियों ने सामाजिक विषमता का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया । प्रगतिवादी कवि जनता का पक्ष लेकर उनकी ओर से सोचने लगा है । प्रगतिवादी साहित्य में मजदूर, किसान आदि साधारण मानव के कार्यों एवं विचारों को अभिव्यक्ति दी जाने लगी, जिसमें साम्राज्यवाद एवं पूँजीवाद का खुलकर विरोध किया जाने लगा और जो स्वतंत्रता, समानता, विश्वबंधुत्व, विश्वशांति, मानवता प्रेम आदि से ओतप्रोत होकर शोषित वर्ग को आर्थिक एवं राजनीतिक क्रान्ति के लिए प्रोत्साहन देने के लिए लिखा गया । इस साहित्य में सर्वहारा-वर्ग की असीम शक्ति को संगठित करने का प्रयत्न किया गया और यह घोषणा की गई है कि - " विश्व में शांति एवं समानता स्थापित करने के लिये एकमात्र उपाय यही है कि सर्वहारा - वर्ग का नेतृत्व किया जाय तथा उसकी सुख-समृद्धि एवं सफलता के प्रयत्न किये जाएँ । इस साहित्य में मुख्य रूप से बुर्जुआ-वर्ग की सड़ी-गली विचार-श्रृंखला को नष्ट भ्रष्ट करके नवीन जनवादी विचारों को प्रश्रय दिया गया, श्रमिक एवं मजदूरों के प्रति सहानुभूति प्रकट की गई और पराधीनता एवं रूढ़िवादिता के विरुद्ध क्रान्ति की भावना जागृत की गई । "[2]

1· हिन्दी साहित्यकोश - भाग - । सं॰डा॰धीरेन्द्र वर्मा - पृ॰ 509

2· साकेत में काव्य संस्कृति और दर्शन - लेखक - द्वारिका प्रसाद सक्सेना - पृ॰42·

प्रगतिवाद की बहिर्मुखी चेतना व्यक्ति के अनुत्तरित प्रश्नों तथा अन्तर्मन की जटिलताओं का समाधान प्रस्तुत नहीं कर सकी । आजका मनुष्य अनिर्णय, अनास्था और संशय की भूमि पर शाश्वत मूल्यों का तिरस्कार करता हुआ अनिर्णय की जिस मानसिकता को सह रहा है उसकी अभिव्यक्ति संशयकी एकरात (नरेशमेहता - कृत, प्रकाशित सन् 1962 ई.) में हुई है - " जिसे छायावादोत्तर युग के भावबोध का स्वाभाविक विकास कहा जा सकता है । "[1] नरेशमेहता के अन्य काव्य पर भी इस प्रगतिवाद का प्रभाव दिखाई पड़ती है ।

प्रगतिवादियो की कला सम्बन्धी मान्यता भी भिन्न रही । प्रगतिवादी कवियों को क्रान्तिभावना के प्रचार के लिए कलात्मकता को त्याग करना पड़ा । समाज की आम जनता तक पहुँचनेवाली कविता की ही आपने रचना की । सरलता एवं सुबोधता प्रगतिवादी कविता की प्रमुख विशेषता है । " छायावाद की संस्कृतमयी पदावली, क्लिष्ट प्रतीकात्मकता और लाक्षणिक योजना के विरुद्ध यहाँ विद्रोह है । प्रगतिवादी काव्य में भाव, भाषा, छन्द, अलंकार सभी दिशाओ में स्वाभाविक प्रगति हुई है । "[2] सरल, सरस एवं सूक्ष्म भाषा ही उस समय प्रयुक्त हुई । प्रगतिवादी कवियों ने काव्य भाषा को छायावादी दुरूहता और मांसलता से निकालकर जनभाषा के समीप लाने का प्रयत्न किया । इन कवियों का विषय क्षेत्र बहुत ही सीमित रहा है, जीवन की भौतिक पक्ष पर ही प्रगति - काव्य में विचार व्यक्त हुआ है । उपर्युक्त प्रगतिवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ को रूढ़ि विरोध, शोषितों का कल्याणगान, शोषकों के प्रति घृणा और रोष अथवा वर्ग-चेतना और क्रान्ति, मानवतावाद, राष्ट्रीय तथा अन्तराष्ट्रीय भावधारा,

---

1. हिन्दी रामकाव्य का स्वरूप और विकास - बदलते युग बोध के परिप्रेक्ष्य में - प्रेमचन्द महेश्वरी - पृ. 62.
2. हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ - प्रो. शिवकुमार वर्मा - पृ. 502.

नारी के प्रति उदारवादी नवीन दृष्टिकोण, सामाजिक जीवन की यथार्थता एवं उसकी प्रगति, समसामयिकता की चेतना, उपयोगितावादी दृष्टि एवं प्रकृति - प्रेम आदि शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है। इन समस्त प्रवृत्तियों के मूल में प्रगति का आह्वान सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। साथ ही इस युग में व्यक्ति की अपेक्षा समाज और राष्ट्र के विकास के प्रति कवियों का ध्यान अधिक रहा है। छायावाद-युग में जहाँ व्यक्तिनिष्ठता की प्रवृत्ति रही है वहाँ प्रगतिवादी-युग में समाजनिष्ठता की प्रधानता स्पष्ट है। इसलिए इस युग के कवियों ने व्यापक जीवन दृष्टिका परिचय दिया है। समग्ररूप से देखा जाय तो यह विचारधारा साहित्यिक की अपेक्षा राजनीतिक अधिक थी। इसी कारण आगे चलकर इसमें दो वर्ग हो गये। पहला वर्ग तो राजनीति में ही अधिक रुचि रखनेवाले साहित्यकारों का बना रहा और दूसरा वर्ग राजनीति को छोड़कर उक्त सभी समस्याओं का समाधान शुद्ध साहित्यिक धरातल पर करने लगा। यह दूसरा वर्ग प्रयोगवादी साहित्यकारों का बना।

4.2.2. प्रयोगवाद :-

सप्तक परम्परा प्रयोगवाद और सप्तकेतर इतिहास के मध्य की कड़ी है। इस कारण इसका महत्त्व और भी विचारणीय है। हिन्दी कविता में सन् 1943 में अज्ञेय के सम्पादन में प्रकाशित प्रथम तारसप्तक के साथ जिस काव्य प्रवृत्ति का प्रचार हुआ, उसे प्रयोगवाद कहते हैं। .[1] इस प्रयोगवादी काव्यधारा का जन्म कुछ अंशों मे छायावाद की वायवी एवं अतीन्द्रियता-पूर्ण कविताओं के विरुद्ध प्रति - क्रिया के रूप में हुआ था। यद्यपि इस कविता में नवीन उपमेय तथा नवीन उपमानों को संचित करने का प्रयत्न हुआ और तुच्छ से तुच्छ एवं निकम्मी से निकम्मी

---

1. आधुनिक हिन्दी कविता - सुधाकर गोकाकर - पृ. 60.

वस्तुओं को कला का सौन्दर्य प्रदान न कर सके, उसमें पर्याप्त अनगढ़ एवं " भेदस " का ही समावेश रहा । सर्वश्री अज्ञेय, गिरिजा कुमार माथुर, राम विलास शर्मा, गजानन माधव मुक्तिबोध, प्रभाकर माचवे, भवानी प्रसाद मिश्र, शकुन्तला माथुर शमशेर बहादुर सिंह, नरेशमेहता, धर्मवीर भारती, हरिनारायण व्यास, रघुवीर सहाय आदि उल्लेखनीय प्रयोगवादी कवि हैं ।

प्रयोगवादी कविता का मूल-स्रोत आज के युग-सत्य तथा युग-यथार्थ में ही निहित है । इन नये कवियों के सम्मुख वर्तमान युग की जटिल सम्वेदनाएँ थी । समस्त जीवन बड़ी तेजी से बदल रहा था । समाज की सभ्यता मशीनी हो चुकी थी । वैज्ञानिक युग में सामाजिक जीवन का ताना बाना उलट-पलट गया था । इसी अभिनव शैली में तत्कालीन कवि भी आ गए । बौद्धिक जागरूकता आयी । यह जागरूकता व्यक्तिसत्य और व्यापक सत्य के स्तरों पर व्यक्ति की अनुभूति की सार्थकता को भी महत्वपूर्ण मानती हैं । प्रयोगवाद व्यक्ति अनुभूति की शक्ति को मानते हुए समष्टि की सम्पूर्णता तक पहुँचने का प्रयास हैं ।[1] कवि के व्यक्तित्व की स्वतंत्रता पर विचार रखनेवाले ये कवि काव्य के अंतरंग व बहिरंग में नितान्त नूतन प्रयोगों के आविष्कार में सफल हुए । घोर अहंनिष्ठ व्यक्तिवाद तथा अति नग्न यथार्थवाद प्रयोगवादी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ रहीं । नयाकाव्य, नया भावबोध और नयाशिल्प आदि में नवीनता लाना प्रयोगवादियों का उद्देश्य है । इसमें युगबोध का सजीव चित्रण मिलता हैं । वास्तव में प्रयोगवादी कविता में आज के मध्यवर्गीय व्यक्ति के जीवन में व्याप्त असंगतियाँ, कुण्ठाएँ, निराशा, वर्जनाएँ तथा सामाजिक दायित्व से पीड़ित व्यक्ति का आक्रोश और क्षोभ का सम्यक परिचय मिलता है । इन कवियों ने प्रगतिवादियों की तरह वर्ग संघर्ष को महत्व नहीं दिया ।

---

1. हिन्दी साहित्य कोश - भाग - 1 डॉ. धीरेन्द्र वर्मा - पृ. 530.

सम्पूर्ण मानव समाज की समस्याओं का अन्वेषण कर वैयक्तिक सम्बन्धों की स्थापना करना इनका लक्ष्य है । प्रयोगवाद महत्त की जगह लघु की प्रतिष्ठा करता है । वह महामानव की नहीं अतिमानव की कल्पना करता है । कवि अपने परिवेश के प्रति अत्यन्त जागरूक है । इन कवियों ने अपने अहं को विभिन्न रूपों में स्थापित करना चाहता है । इसलिए कविता भी अहंवादी प्रवृत्ति से युक्त हो गया है । फलत: क्षणानुभूति की अभिव्यक्ति बहुत होने लगी है । प्रयोगवादी सौन्दर्य की खोज यथार्थ जगत से सम्बन्धित है । ये कवि आशावादी हैं । अपनी वर्तमान की कुण्ठा, निराशा, अनास्था, पलायन आदि प्रवृत्तियों से भरे हुए वातावरण के प्रति आस्थावान् दृष्टि व्यक्त करते हैं । ये कवि वास्तविक जीवन की गंदगी और संघर्ष के बीच में भी आदर्श स्थापित करना चाहते हैं । प्रयोगवादियों ने प्रकृति चित्रण को यथार्थ ठोस भूमि पर प्रतिष्ठित किया है । अपने प्रकृति के माध्यम से नग्न वासनात्मक और भोगवाद के चित्रण किए, दूसरी ओर अपनी वैयक्तिक झुंझलाहट, ऊब और कटुता का अथवा सामाजिक संघर्ष और विद्रोह का प्रतिबिम्ब प्रकृति में देखा । प्रयोगवाद के अहंवाद में फ्रायड द्वारा विश्लेषित बिम्ब और प्रतीकों का विशेष महत्त्व है ।

प्रयोगवादी कविता में शिल्प की अति विशिष्ट प्रतिष्ठा है । आधुनिक - काल के काव्य के शिल्प-विकास के मूल में इन्हीं काव्य शिल्पियों का हाथ रहा है । प्रयोगवादी कवियों ने शिल्प को शिल्पी के व्यक्तित्व का अटूट अंग स्वीकारा है तथा उसका विकास किया है । इन्होंने काव्यशैली में कई प्रयोग किए । इनकी काव्यभाषा भी विलक्षण रही । भाषा में नवीन प्रयोग की हठवादिता से इन्होंने अपनी कविता को भाषा में भूगोल, विज्ञान, दर्शन, मनोविश्लेषण, शास्त्र एवं बाजारू बोली के शब्दों का प्रयोग करने में संकोच नही किया है । "... भाषा, भाव, शैली और छन्द आदि के क्षेत्र में सुरुचि सम्पन्नता के स्थान पर अपेक्षित विलक्षणता को प्रश्रय देने के कारण इनकी कविता का अपना ढाँचा भी आधुनिक सांस्कृतिक ढाँचे के समान परमरा उठा है ।"[1]

---

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ : शिवकुमार शर्मा - पृ.515-16.

प्रयोग युगीन साहित्य के प्रयोग क्रम में नूतन साहित्य दिशाओं का प्रयास था । उपर्युक्त शीर्षक प्रवृत्तियों या दिशाओं को संक्षेप में इस प्रकार कह सकते हैं - " यथार्थवादी अहंवाद, व्यक्ति अभिव्यक्ति की स्वच्छन्द प्रवृत्ति, आधुनिकता और समसामयिकता का प्रतिनिधित्व, चित्रमय और अनु - शासित शिल्प, नवीन मूल्यों का अनुसंधान, नए भावालोक और स्तरों की खोज, परम्परा के साथ सामंजस्य की चिन्ता, शिल्प सम्बन्धी नयी समस्याओं के सुलझाव का प्रयत्न आदि ऐसी बाते हैं जो पूर्ववर्ती साहित्य से अतिरिक्त विशिष्टता प्रदान करती है । प्रयोगवाद की अन्य प्रवृत्तियों में युग के प्रति आस्था, आंतरिक यथार्थ की खोज, अहं और प्रतिबद्धता का संघर्ष, सौन्दर्यबोध और यौन वर्जनाओं के प्रति असंतोष, सौन्दर्यानुभूति का निर्लिप्त चित्रण, प्रेम की अभिव्यक्ति, रंग और रोमांस का चित्रण आदि प्रमुख है । वस्तुत: प्रयोगवाद की सारी प्रवृत्तियाँ तत्कालीन मानव व्यक्तित्व की झाँकियाँ ही हैं । इसकाल में भी कई उत्तम काव्य उद्भूत हुए, यह तो हिन्दी काव्य क्षेत्र के लिए सुयोग की बात हुई है । इस काल में मुक्तक काव्यों के साथ प्रबन्ध काव्यों को भी जन्म देकर हिन्दी काव्यकोश को भरने का प्रयास किया गया है ।

4·2·3· नयीकविता :-

दूसरा सप्तक (1951) के बाद की कविता को नई कविता की संज्ञा दी जा सकती है ।[1] प्रयोगवाद नई कविता का पूर्व पक्ष है । नई कविता का बीज प्रयोगवाद में ही निहित था । अत: सन् 1950 ई· से नई कविता का प्रारम्भ न मानकर पल्लवन मानना चाहिये । इसकी पृष्ठभूमि में प्रयोगशील प्रवृत्तियों का

1· छायावादोत्तर काव्य में शब्दार्थ का स्वरूप - डा·कृष्णगुप्ता - पृ· 285

विशेष योग है । इसीलिए नई कविता को प्रयोगवाद का स्वस्थ और संतुलित विकास कह सकते हैं । परन्तु प्रयोगवाद नयी कविता का प्रधान उत्स होते हुए भी उसका पर्याय नहीं है । आम आदमी की लगी, मानवीय संवेदनाओं से पगी और शिल्प के नवीन ऊहापोह से लगी गई काव्य धारा ही नयी कविता के नाम से प्रवाहित है ।"[1] नयी कविता युगीन संदर्भों में आधुनिक भावबोध और सौन्दर्यबोध के स्तर पर खड़े मानवीय परिवेश को पूर्ण वैविध्य के साथ नये शिल्प में प्रस्तुत करनेवाली काव्य धारा है । मानव मूल्यों की सनातन अवस्थाओं - परिस्थितियों का उद्घाटन करने की जो शक्ति परम्परावादी काव्य में देखने को जब कभी सुलभ हुई है उसका व्यापक विस्तार आज की नयी कविता में सहज ही देखने को सुलभ है । नयी कविता जीवन्त हैं जो सही शब्दों में लिपटी ईमानी शैली के माध्यम से व्यक्त होती है , जो प्रभाव डालती है , डुबाती है । नई कविता के अंतर्गत उन सभी कवियों को स्थान दिया जा सकता है जिन्होंने कविता की निरंतर प्रयोग धर्मिता, सृजनात्मकता से सहज जुड़ते हुए मूल्यान्वेषण की रचनात्मक प्रक्रिया का आश्रय लिया । इन कवियों में सर्वश्री अज्ञेय, मुक्तिबोध, कुँवरनारायण, दुष्यन्त कुमार, धर्मवीर भारती, नरेशमेहता, हरिनारायण व्यास, रघुवीर सहाय, भवानीप्रसाद मिश्र आदि अग्रगण्य हैं ।

"नई कविता वैविध्यमय जीवन के प्रति आत्म चेतस व्यक्ति की प्रतिक्रिया है । इसका स्वर एक न होकर विविध है । इसमें व्यक्ति और समाज दोनों को परखने का प्रयास किया है "[2] आज की मानव विशिष्टता से उद्भूत लघुमानव के परिवेश को अभिव्यक्ति मिली है साथ ही इस कविता में शिल्प और

1• नया काव्य एक परिदृश्य - डा• हरिचरण शर्मा - पृ• 4•

2• मानव मूल्य और साहित्य - डा• धर्मवीर भारती - पृ• 176•

समाजोन्मुखता का संतुलन और समन्वय स्थापित किया गया है । नयी कविता का लक्ष्य छायावाद एवं प्रयोगवाद से भिन्न नहीं है भिन्नता केवल युगीन मूल्योंकी है । नई कविता में मनुष्य की निराशा, आशा, विश्वास आदि मनोवैज्ञानिक तथ्यों का अत्यंत मार्मिक एवं सूक्ष्म विवेचन किया गया है ।
" नई कविता में परिवेश के प्रति दायित्व की भावना खूब मिलती हैं । उसमें एक ओर समसामयिकता की दृष्टि मिलती है और दूसरी ओर अस्तित्व पूर्ण क्षणों के प्रति जागरूकता का परिचय मिलती है । नया कवि क्षण को अत्यधिक महत्व देता है । वह सत्य के साक्षात् का, साक्षात् के क्षण के अखण्ड पारावार का आचमन करता है । काल की धारा बहती रहे उसे इसकी चिन्ता नहीं है । वह उसके अनंत प्रवाह को क्षणों में बाँधने के लिए प्रयत्नशील है । "[1] नयी कविता का क्षणवाद कहीं-कहीं भोगवाद में भी परिणत हो गया है । वह क्षण के जीवन में पूर्णानन्द लेना चाहता है । नये कवि का क्षण के लिए इतना महत्व होना प्रयोगवाद की देन है । नयी कविता के कवि ने खण्डित व्यक्तित्व की घोषणा करके सहानुभूति व्यक्त की हैं । नयी कविता में मानव व्यक्तित्व को उभारने के लिए उसमें आत्म विश्वास और आस्था के साथ सामाजिक दायित्व को भरने के अंकुर भी विद्यमान हैं । टुकड़े-टुकड़े होकर भी उसका विश्वास दृढ़ है । हारना ही कवि की नियति समझकर भी अनिश्चयात्मक एवं सुविधाजनक स्थिति में भी जीवन संग्राम में मुँह न मोड़ने का दृढ निश्चय सुना देते हैं । जीवन का वह बड़ा ही दयनीय कारुणिक दृश्य प्रस्तुत करते हुए भी अपने लघुत्व को हेय नहीं समझते । नयी कविता में प्रेम भावना की आकर्षक विशेषता उसकी मानवीयता, सरलता और मार्मिकता है ।

---

1. नयी कविता (2) अज्ञेय - पृ. 67 - 68.

" नयी कविता का सौन्दर्यबोध छायावादी सौन्दर्यबोध से अलग है। नयीकविता की सौन्दर्यानुभूति व्यापक जीवन पर आधारित थी। नयी कविता ने यद्यपि अस्तित्ववादी साहित्यचिन्तन से क्षणानुभूति, ईश्वर में आस्था, मृत्यु बोध आदि अनेक बातें ग्रहण की है। किन्तु इससे हटकर किसी मूल्य का निर्माण वह नहीं कर सकी जबकि अस्तित्ववाद मुक्ति चिंतन का बहुत बड़ा समर्थक है। "[1] नई कविता में यथार्थवादी अहंवाद की रूप रेखा मिलती हैं। इसके अंतर्गत स्थान ग्रहण करनेवाले अपने अस्तित्व को उस यथार्थ का अंश मानलेते है, ऐसा मानकर ही उसके प्रति जागरूक अभिव्यक्ति देने की चेष्टा करते हैं। यहाँ व्यक्ति की अभिव्यक्ति की प्रधानता है। यहाँ बिना किसी आग्रह के ही संवेदनाओं को प्रस्तुत करने की चेष्टा की जाती है। यहाँ व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण को अपनाया जाता है जिस के मूल में यथार्थ का स्वर है। नई कविता में वर्तमान की कटुता और विषमता के प्रति कवि की व्यंग्यपूर्ण भावना पर्याप्त मात्रा में मिलती है। यहाँ कुछ ऐसे अंश भी मिलते हैं, जहाँ एक ओर रस और रोमांस प्रस्तुत है तो दूसरी ओर आधुनिकता के प्रति दिव्य आकर्षण दिखाता है। फिर यहाँ हम उस चित्रमयता को भी देख सकते हैं, जो आधुनिकता के संदर्भ में होने पर भी समस्त यथार्थ का बिम्ब-विधान प्रस्तुत करने में समर्थ हैं। नयी कविता के भावबोध की इस व्यापकता का प्रभाव उसके शिल्प पक्ष पर भी अनिवार्यतः पड़ा है। " चेतन की परिधि के विस्तार तथा कवि-व्यक्तित्व के विकास एवं स्वातंत्र्य का प्रभाव काव्य के रूप पर पड़ना अनिवार्य है और उचित भी है क्योंकि रूपविधान सदा युग विशेष की मनःस्थिति के प्रतिबिम्ब करता है। "[2]

---

1. नई कविता – डा. देवराज – पृ. 70.
2. नयी कविता : स्वरूप और समस्याएँ – डॉ. जगदीश गुप्त – पृ. 182

नयी कविता में शिल्प की दृष्टि से निश्चय ही विकास हुआ है। इस धारा के कवियों ने शिल्प के सभी क्षेत्रों में नवीनता दिखाई है। भाषा, ध्वनि, छन्द आदि में नवीन प्रयोग किया गया है। अलंकार योजना, बिम्बविधान और उपमानों के प्रयोग को अधिक महत्व दिया है। छन्दों के अनावश्यक मोह को तोड़कर नूतन प्रयोग किए। एक ओर तो जहाँ परम्परा गत छंद योजना के साथ उर्दू की गजल, रुबाई,सानेट तथा लोक धुनों के आधार पर गीत, नवगीत आदि की नवीन छन्द योजना की गयी वहीं अतुकांत छन्दयोजना की प्रवृत्ति बढ़ी, जो कि गद्यात्मक अधिक होती जा रही है। इन कवियों के प्रयत्नों के फलस्वरूप नयी कविता की भाषा जन जीवन के निकट आयी है। बोल चाल के शब्दों का प्रयोग उसमें अपने बहुलता से किया गया है। ग्राम्य जीवन से अनेक सांस्कृतिक और पारम्परिक शब्द लिये गये हैं। ध्वन्यात्मक तथा आन्तरिक अर्थों के समन्वयकारी छन्दों का प्रयोग नयी कविता की अपनी विशेषता है। "नयी कविता शिल्प की दृष्टि से गद्य के समीप आ गयी है। नयी कविता की बौद्धिकता की अभिव्यक्ति गद्य के माध्यम से संभव हो सकती है। नयी कविता तुक और लय की आग्रह के बाद अब ध्वन्यात्मक लय को भी अनिवार्य नही मानती। यह सब के अनुभव का विषय है कि मानसिक प्रतिक्रिया हमारे अध्ययन में गद्य भाषा को लेकर उतरती है, कृत्रिम लालित्य काव्य भाषा में नहीं। फलतः नयी कविता का पूरा विन्यास गद्य के अधिक निकट है।"[1] आधुनिक भावबोध, यथार्थ के प्रति आग्रह, नये मानवीय सम्बन्धों की तलाश, आत्म परक रचना दृष्टि, खण्डित व्यक्तित्व लघु मानव की प्रतिष्ठा, क्षणवाद, मृत्युबोध, अस्तित्ववाद, नवीन सौन्दर्य बोध नारी के प्रति नवीन दृष्टि, संघर्षों से जूझने का साहस, वैयक्तिकता और सामाजिकता, व्यंग्य का तीव्र स्वर तथा नवीन शिल्प विधान आदि। इन समस्त

1. नयी कविता का आत्म संघर्ष तथा अन्य निबन्ध - गजानन माधव मुक्ति - बोध - पृ. 11.

प्रवृत्तियों के मूल में कवियों ने नवीनता लाने का प्रयत्न किया है । इसकाल में भी हिन्दी साहित्य क्षेत्र में अनेक उत्तम ग्रन्थ उद्भूत हुए । गद्य के साथ प्रबन्ध काव्य का विकास भी हुआ है । नरेशमेहता के अनेक काव्य इस नयीकविता की कोटि के अंतर्गत आते हैं । इस प्रकार दूसरा सप्तक (1951) के आसपास शुरू होकर 1965 तक चलता रहा है । 1965 के बाद नयी कविता का विकास अनेक रूप में होने लगा ।

नयी कविता की काल सीमा में आनेवाले कवियों में दूसरे और तीसरे सप्तक के कवि विशेष रूप से गिने जाते हैं । सप्तकेतर कवियों में डा.जगनाथ मीलन, डा.जगदीश गुप्त, डा.देवराज, बालकृष्ण राव, दुष्यंत कुमार और ठाकुर प्रसाद सिंह आदि कवियों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

4.2.4. नवगीत

" नयी कविता के समरूप गीत की बदली परिस्थिति और प्रवृत्तियों को दिया गया नाम है नवगीत । "[1] यह परिवर्तन 1950 के आस-पास दृष्टिगत होता है । गीत की बंधी हुई विषयवस्तु और शिल्प को तोड़कर वैयक्तिकता को सामाजिक विस्तार देकर विकसित हुई आधुनिक संवेदना से लैस गीतात्मक रचनाओं को हम नवगीत कह सकते हैं । शम्भुनाथ सिंह " नवगीत " का उद्भव नयी कविता के समान ही मानते हैं — " मुक्त छन्द में काव्य रचना करने वाले नये कवियों में से अधिकांश तो ऐसे थे जिन्होंने छायावादी ढंग के गीतों से ही लिखना शुरू किया था । जैसे - नरेशमेहता, धर्मवीर भारती, हरिनारायण व्यास, विजय देव साही और जगदीश गुप्त आदि । इस कारण उन्होंने गीत

---

1. आजकल - सं. सुरेश चन्द्र शर्मा - जनवरी - 1988 - पृ. 9.

विधा का बाद में भी सर्वथा त्याग नहीं किया । दूसरे और तीसरे सप्तक के अधिकतर कवि मूलत: गीतकार ही है । ... अज्ञेय ने अपने सप्तकों में इन कवियों के पुराने गीतों में से कुछ ऐसे गीतों का प्रकाशित किया है जिनमें नवगीत के बीज वर्तमान है । "।

कथ्य की दृष्टि से नवगीत परम्परागत गीत से भिन्न है । परम्परा - गत गीत जहाँ वैयक्तिक सुख-दु:ख, प्रणय, विरह विलगिली भावुकता और सूक्ष्म कल्पनाओं तक ही सीमित रहा, वहाँ नवगीत परिस्थितियों की भयावहता द्वारा झकझोरा हुआ है । फलत: वह वैयक्तिक अनुभूतियों तक सीमित न रहकर परिवेश के यथार्थ को अभिव्यक्त करने लगा है ।

नवगीत जीवन के यथार्थ से उभरा हैं इसलिए नवगीतकार भोगे हुए यथार्थ का सर्जक हैं । जीवन और जगत से सम्बन्धित सच्चाइयों को उसने भोगा है और ईमानदारी से व्यक्त किया है । उनके गीतों में सरल, कोमल शब्दों में युगीन आस्था, बौद्धिकता, भावुकता और वैज्ञानिक द्वन्द्व तथा महानगरों की विसंगतियाँ, आम आदमी की व्यथा, ऊब, घुटन, संत्रास, पीड़ा, अकेलापन अजनबीपन और अस्तित्व संकट इत्यादि को सफलता पूर्वक अंकित करने की प्रवृत्ति मिलती है । बिखराव और टूटन को ही युग का संदर्भ समझलेता है । ग्रामीण परिवेश की कठिनाइयों, रूढ़ियों, मानवीय आस्थाओं, कमजोरियों, कुरूपताओं, विषमता इत्यादि को अभिव्यक्त किया है । मानव-मानव के बीच खत्म होनेवाले रिश्तों, त्योहारों और अपनी संस्कृति के निकट छीजते तत्वों, यहाँ तक कि मानव के मानवीय गुणों को खोते जाने के अवसाद को नवगीतकार ने अपना स्वर दिया हैं । नवगीत में व्यक्ति वेदना के अतिरिक्त जीवन के अन्य पक्षों का भी स्पर्श हैं । जैसे -

---

1. कविता - [सं. ओम प्रभाकर] - शंभुनाथ सिंह - पृ. 91।

युगबोध को जीवन की कुरूपता और किसी " एक " के कुछ न कर पाने की विवशता को गीतकार प्रभावात्मक ढंग से व्यक्त करते हैं । निरर्थकता और विवशताओं की स्थितियों से उत्पन्न संघर्ष की प्रस्थान भूमि इन गीतों में देखी जा सकती है । नवगीत में सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति का सजीव चित्रण मिलती है । आज का नया गीत कवि सामाजिक विसंगतियों, विकृतियों और विरूपताओं को उसी प्रकार अपने " नवगीत " में प्रस्तुत कर रहा है जिस प्रकार नयी कविता का कवि युग - चेतना की व्यापक सत्ता को वाणी दे रहा हैं । नवगीतकार अपनी गीत सृष्टि में समूचे भारतीय परिवेश की असंगत व्याप्तियों को पोकर नयी रचना धर्मिता के प्रति निष्ठा भावना के साथ समर्पित हैं । डा॰रवीन्द्र भ्रमर ने इस तथ्य को पकड़ा हैं - " आज का नयागीत कवि नयीकविता के कवि की भाँति अपने युग धर्म का निर्वाह कर रहा है । वह अपनी गीत सृष्टि के द्वारा युग की संघर्ष भावना तथा उसके भीतर से उभरते हुए नये मनुष्य की प्रतिष्ठा का प्रयास कर रहा है ।" [1]

आज का नवगीत कार सामाजिक विषमताओं में जूझनेवाले व्यक्ति के प्रति अपनी सहानुभूति व्यक्त करते हैं । वह हर एक विरूपता से संघर्षरत आम आदमी के दु:ख को पोना चाहते हैं । उसका सौन्दर्यबोध सर्वथा नया होता है। उसमें संश्लेषण का गुण अधिक होता है जिससे वह अनेकता में एकता की स्थापना कर पाता हैं और उसका आकार भी लघु होता हैं । आज के " नवगीत " में स्वीकृत बुद्धि हार्दिकता के अतिरेक को अनुशासित करने के साथ साथ चिन्तन के लिए बाध्य करती हैं, उसमें स्वयं दिशाबोध भी है । उसमें गेयता की प्रधानता होती है । इस गेयता का सम्बन्ध आन्तरिक लय से आबद्ध होता है ।

---

1. समकालीन हिन्दी कविता - डा॰ रवीन्द्र भ्रमर - पृ॰ 77.

इस प्रकार यह युग और युगेतर सम्भावनाओं का अवलम्ब होकर मानस संस्कार का एक सफल माध्यम बन गयी है । डा॰ कमला प्रसाद पाण्डेय नवगीत के बारे में इस प्रकार कहते हैं कि - " नवगीत यंत्र नहीं यांत्रिकता है, सैनिक नहीं सैनिकत्व है, मनुष्य नहीं, मानवता है । वह सहज और गम्भीर दोनों है । "[1]

गीत रचना के द्वारा मन की अनुभूति अपने पूरे आवेग के साथ मुखर होती है । इसमें गीतकार अपनी तीव्रतम अनुभूतियों को वाणी देता है । मन की कुण्ठा और जीवन संघर्ष की सच्चाई की अभिव्यक्ति नवगीत के द्वारा अधिकाधिक दार रूप में प्रकट हुई । नवगीत सृजनकी साहित्य चेतना अपने पथ निर्धारण में प्रतिपल सचेष्ट दिखाई दे रही है । वस्तुतः " नवगीत " नयी कविता के समान लाक्षणिक, प्रतीकात्मक नव छन्द विधान और काव्या - त्मकता के साथ व्यक्त हुई है । इन गीतों में नयी कविता की अपेक्षा राष्ट्रीयता अधिक है । " अरोमानी भावबोध, सूक्ष्मतर अनुभूतियाँ, आंचलिकता का स्पर्श, लोक गीत की धुनों और अभिव्यक्ति विधियों का प्रभाव, प्रकृति के सुख-दुःख के साथी के रूप में स्वीकृति, नवीन व्यंजनावाली सहज सरल भाषा, गद्य के निकट का पद्य विधान, गीतात्मकता (गेयता) का ह्रास आदि नवगीत की प्रवृत्तियाँ और परिसीमाएँ हैं । "[2] नित्य प्रति के साधारण जीवन की सामान्य घटनाओं, स्थितियों और बातों का वर्णन नयी कविता की भाँति नवगीत में भी हुआ है । इसके अन्य तत्व एवं विशेषताओं में - अनुभूति की तीव्रता, अभिव्यक्ति का सहज स्वरूप, भाषा की स्वाभाविकता, पूर्वाग्रहों से

---

1. छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि - डा॰ कमला प्रसाद पाण्डेय - पृ॰ 382.
2. छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि - डा॰ कमला प्रसाद पाण्डेय - पृ॰ 377.

मुक्ति, छन्द की सपाट गति, कलेवर की संक्षिप्तता, जीवन से उद्भुत प्रतीकों का नयापन तथा रहस्यात्मकता की पहेली का बचाव आदि प्रमुख है। जो नवगीत को आत्मनिर्भर बना देने की गीतात्मक शक्ति से समृद्ध बनाते है।

शिल्प के क्षेत्र में नवगीत ने नयी कविता के समान अनेक नवीन प्रयोग किए। नवीन भाषा, भाव, अर्थगत संगीत, छन्द, लय, अप्रस्तुत योजना, बिम्बविधान, चित्रात्मकता, ध्वन्यात्मकता आदि की दृष्टि से छायावादी पारम्परिक गीत-शैली की रहस्यात्मकता व्यंजना के लाक्षणिक विधान तथा अबूझी पहेलियों की सतत योजना की अलौकिक एवं अमानवीय अकुंठित स्थितियों से अपने आप में नितांत भिन्नता और नवीनता लिए हुए है। उसकी भाषा लोक जीवन जनित है। वे लय और प्रेषणीयताओं को अधिक महत्त्व देते हैं। इसीलिए सामाजिक तत्त्व भी उसमें अधिक है। यह अबूझ बिम्बों को नये संदर्भ में व्यक्त करते हुए सर्वत्र नवीन पद्धति पर चल रही है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि नवगीत एक प्रयोग है। गीत पुस्तक-पत्रिका के प्रकाशन के बाद इसमें संदेह नहीं रहा है कि गीतकार भी अपने खोये हुए मार्ग को पाना चाहते है। वे युग की सम्पृक्ति में गीतों की सार्थकता सिद्ध करने के लिए इच्छुक है। विभिन्न प्रकार की विचार-चर्चायें और "नवगीत" इस पुस्तक-पत्रिका में संगृहीत हैं। "लहर", "वातायन" तथा अन्य पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित लेखों और नवगीतों से नवगीत-कारों की प्रयोग रुचि का प्रमाण मिलता है। प्रयोग का कारण - "गीत कनरसियों की परमाइश का जब्बा बन गया हैं, अत: उसे कथ्य और शिल्प के नूतन प्रयोगों से काव्य के धरातल पर प्रतिष्ठित करना आज के गीतकार का दायित्व है। इस दायित्व - निर्वाह की परिधि में ही गीत प्रकाशन की प्रेरणा छिपी हुई हैं।"[1]

---

1. तीसरा सप्तक - कीर्ति चौधरी - पृ. 37.

आलोच्य काल में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से नवगीत धारा का प्रचार तथा विकास हो रहा है । नवगीतकार नयी पौध से फूटे हुये अभी तक रास्तों की खोज में लीन है । उनसे आशा की जा सकती है कि वे दूसरी विधाओं के अभाव के साथ ही अपने अभावों को समझेंगे और शीघ्र ही ऐसे परिष्कृत गीतों की श्रृंखला में जुड़ जायेंगे जो युगवाणी को साकार करें ।

4.2.5. नया गीत काव्य :

कवि की वैयक्तिक भावधारा और अनुभूति को उनके अनुरूप लयात्मक अभिव्यक्ति देने के विधान को गीत काव्य कहते हैं । भारतीय साहित्य कोश में गीत काव्य की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है - " कथ्य की दृष्टि से स्वानुभूति परक और बंध की दृष्टि से मुक्तक (है) काव्य को गीतिकाव्य कहा जाता है । "[1] डा. धीरेन्द्र वर्मा ने गीत काव्य के शब्द तथा उसके विकास के सम्बन्ध में इस प्रकार कहा है कि - " लिरिक के तत्वबोध के लिए निर्मित आधुनिक शब्द है जिसका मूलाधार गीत अथवा गीतिकाव्य है, गीत और गीतिकाव्य का विकास लोक गीतों से हुआ है । "[2]

गीत काव्य का सबसे प्राचीन रूप है किन्तु आधुनिक युग में आकर उसे अपने स्वरूप और नाम में परिवर्तन करना पड़ा है । नाम और स्वरूप के साथ उसकी प्रक्रिया में भी परिवर्तन आया है । छायावाद से लेकर नयी कविता तक के युगों में विभिन्न प्रकार के गीतकाव्य लिखा गया । छायावाद युग में

---

1. भारतीय साहित्य कोश - सं. डा. नगेन्द्र - पृ. 339.
2. हिन्दी साहित्य कोश - सं. डा. धीरेन्द्र वर्मा - पृ. 223.

गीतकाव्य प्रगीत नामसे सामने आई । छायावादोत्तर युग में क्रमश: गीत, कविता, नवगीत, नयागीत, आधुनिक गीत, आज का गीत और अगीत जैसे नाम प्राप्त हुये हैं । छायावाद के बाद किन्तु स्वतंत्रता के पूर्व आजादी के गीत लिखे जाते थे और उनका सामूहिक गायन होता था । उस समय के गीत-कवि स्वातंत्र्य युग में भी गीत लिखते रहे । इधर कुछ नयी पौधें सामने आई हैं जिनके स्वरों में पूर्वराग-विराग न होकर नितांत नवीनता है । " छायावादोत्तर गीति काव्य के अन्तर्गत अनेक प्रकार के गीतकार आ सकते हैं । उनमें से कुछ का स्वर तो छायावादी मेल पर परखा जा सकता है ।

छायावाद आधुनिक गीत काव्य का स्वर्णयुग है इस युग के गीतकाव्य में भावावेश की आकुल व्यंजना, लाक्षणिक वैचित्र्य, अमूर्त प्रत्यक्षीकरण, भाषा की वक्रता विरोध, चमत्कार तथा कोमल पद विन्यास इत्यादि कोलेकर जिस भव्यता का निर्माण हुआ वह ऐतिहासिक तथा अनुपम है । छायावाद के विघटन पर शिल्प और शैली की वह भव्यता अक्षुण्ण नहीं रहीं । प्रगति और प्रयोगकाल में गीतिधारा सूखी तो नहीं, मंद अवश्य पड़ गयी । इस मंद गीतिधारा में एकबार पुन: वेग हमें स्वातंत्र्य-प्राप्ति के पश्चात दिखाई पड़ता हैं । वह वेग प्राय: कथ्य और शिल्प दोनों ही क्षेत्रों में उल्लेखनीय हैं । छायावादी गीति-सम्पत्ति की तुलना में शिल्प कुछ कम जोर है तो कथ्य में विविधता, समसामयिकता, युगानुकूलता और जीवन-सापेक्ष्यता प्रचुर हैं ।

समसामयिक नये गीतकारों में प्रमुखत: अज्ञेय, गिरिजा कुमार माथुर, धर्मवीर भारती, नरेशमेहता, शंभुनाथ सिंह, केदारनाथ सिंह, रवीन्द्र भ्रमर, महेन्द्र शंकर, ओम प्रभाकर और नरेश सक्सेना आदि के नाम लिये जा सकते हैं । वैसे इन गीतकारों के अपने-अपने व्यक्तित्व हैं, किन्तु इनकी एक सामान्य भूमि भी है जो इन्हें समग्र भाव से अलग करती है । उन गीतों से

जो गीत के नाम पर गीत ही नहीं हैं और सब कुछ है । अनुभूति की सच्चाई अतएवं अनुभूति की अपनी-अपनी विशिष्टता, नवीन सौंदर्यबोध, आकार-लघुता, नवीन बिम्ब-प्रतीक उपमान योजना इनकी सामान्य विशिष्टता है ।

अतः नया गीत काव्य परम्परागत गीतकाव्य से कई दृष्टियों से भिन्न है । आज का गीतकार अपने परिवेश के प्रति अत्यन्त जागरूक है । वह अपने स्वानुभूति के आधार पर परिवेश का स्वयं निर्माण करने लगा है । वह जो देखता है, समझता है, अनुभव करता है, उसी के आधार पर "गीत" सृजन करने लगता है । वह सामाजिक वैषम्यों को निडर होकर प्रस्तुत करता है । प्रेम, प्रणय, नारी सौन्दर्य इत्यादि को मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित करता है । लोकोत्तर कल्पना के लिए उसमें स्थान नहीं दिया । इसमें प्रेम नित्य जीवन का प्रेम है । वह न तो तलवारों की छाया में पलनेवाली वीरता से उद्भूत है न हि स्वर्ण युग के प्रति आत्म निवेदन है । न ही अभिसारिकाओं की प्रणय याचना है और न ही रहस्यलोक को अवलोकित करनेवाला कोमल भाव है । इसका स्वरूप लौकिक विश्वसनीय तथा मानवीय है । इसकी विकल स्थिति में निराशा का गम्भीर स्वर है और इसकी सफल आस्था में उल्लास का सहज स्वर है । " डा• मदान ने समीक्षित गीतकारों से अधिकांश में मानवता की भावना उचित ही पाई है - " प्रगतिशील विचारधारा के प्रायः सभी तत्व इन गीतकारों ने अपनायें हैं । कुछ परम्परावादी स्वर ऐसे अवश्य हैं, जो प्रेम और विरह अथवा रहस्य निरूपण तक ही सीमित है । लेकिन अधिकांश की गीत चेतना समाजोन्मुख हुई है । मानव मात्र उसका स्नेह पात्र है तथा समस्त विश्व की हित चिन्तना वह अपना धर्म मानती है । यह चेतना रूढ़ियों को तोड़ती, नव-निर्माणों का समर्थन करती, विषमताओं, शोषणों तथा अत्याचारों का विरोध करती हुई आगे बढ़ी है और यही वह बिन्दु है जहाँ हिन्दी गीति काव्य को नूतन गति और मति समुपलब्ध होती है । "[1]

1• आधुनिक कविता का मूल्यांकन : गीत काव्य - इन्द्रनाथ मदान - पृ• 95•

काम अथवा प्रेम भावना काल और नियति दुःखवाद, क्षणिकवाद और करुणा के निदर्शन, पाश्चात्य दर्शन के प्रत्यावर्तन, विज्ञान के आधुनिक संस्पर्श तथा और भी अनेक वृत्त समीक्ष्य गीतिकाव्य में मिलते हैं, जो विविधता और व्यापकता की धारणा पुष्ट करते हैं । "घुटन, टूटन बिखराव, कुण्ठा, निराशा और उच्छृंखलता, नग्नता के अवांछित चित्र "[1] आदि प्रमुख हैं। इसमें उदात्त प्रवृत्तियों की विद्यमानता अधिक है । यह विद्यमानता संतोष - जनक है, मन और प्राण को तुष्टि पुष्टि देती है । प्रवृत्तियों के संदर्भ में सारांश यह है कि समीक्ष्य गीतिकाव्य को ह्रासोन्मुख नहीं माना जा सकता है । युग और जन सामान्य के साथ तदाकार होने का प्रयास करके वह विस्तृत और विकसित ही हुआ है । इस दृष्टि से नरेशमेहता कृत "संशय की एकरात" नव्यतम गीत काव्यों की कोटी में आजाती है ।

शिल्प की दृष्टि से भी नया गीतकाव्य प्राचीन गीतिकाव्यों से बढ़ कर नवीन प्रयोगों से प्रयत्नशील रहा । शास्त्रीय रूप की अपेक्षा भाषा का व्यावहारिक रूप ही इस काव्य में अधिक गृहीत हुआ है । भावानुकूल भाषा तथा विषयानुकूल शब्दयोजना सर्वत्र मिलती है । तत्सम, तद्भव, देशी, विदेशी शब्दों से इसका शब्द भण्डार भर गया है । शब्द शक्ति - अभिधा, लक्षणा एवं व्यंजना का समुचित प्रयोग हुआ है । कुछ गीतकारों ने भाषा वैभव की परम्परा सायास सुरक्षित रखी है । अलंकारों के प्रयोग में, वास्तव में समीक्ष्य गीतकार ही पन्त जी की कसौटी पर खरे उतर हैं अर्थात् वे अलंकारों की बलात् ठूँसा - ठाँसी के पक्षपाती नहीं है । प्रतीक और बिम्ब योजनायें पुष्ट हैं । प्रतीकों के सभी भेद-प्रभेद उपलब्ध होते हैं । जो प्रतीक परम्परागत और रूढ़ हैं, वे भी नूतन संदर्भों में विरल नहीं हैं । बिम्ब बहुरंगी और आकर्षक हैं । इनका निर्माण प्रायः प्रवृत्ति के क्षेत्र में हुआ है । अतः इनमें टटकापन और साम्य है ।

---

1. हिन्दी गीति काव्य - डा. रामेश्वर प्रसाद द्विवेदी - पृ. 545.

इस प्रकार भाषा, भाव, शब्द, छन्द, रस, प्रतीक बिम्ब और अलंकारों के क्षेत्र में नवीन प्रयोग किये गये हैं ।

संक्षेप में नया गीत काव्य की अपनी विशेषता है और उसमें नित्य नवीन प्रयोग होते रहे हैं और आज के गीतों में नई कविता के समान ही समसामयिक जीवन-सत्यों की अभिव्यक्ति भी हो रही है । किन्तु नयी कविता जहाँ प्रदीर्घ और जटिल हो सकती है, उसमें पर्याप्त दूरतक खण्डित बिम्बों के माध्यम से जीवन के खण्डित सत्य जहाँ समेटे जा सकते हैं वहाँ नयागीत आकार-लघुता और प्रभावान्वित की अपनी विशिष्टताओं के कारण नई कविता के इन क्षेत्रों को वर्जित ही रख सकता है । अतः नया गीत नई कविता का समवर्ती है, विरोधी नहीं ।

इस तरह कथ्य और शिल्प में नवीनता लेकर हिन्दी की मधुर गीत काव्य धारा विकासशील हो रही है । प्रत्येक दृष्टि से हिन्दी गीत काव्य आज अत्यन्त समृद्ध है । नये-नये गीत संग्रहों और विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होनेवाले गीतों के आधार पर हम निस्संदेह यह कह सकते हैं कि आज हिन्दी का नया गीत काव्य अत्यन्त समृद्ध है ।

4.2.6. राष्ट्रीय काव्य

"राष्ट्र को एक केन्द्र मानकर जो कविता लिखी जाती है, वह राष्ट्रीय कविता है । आधुनिक युग में हिन्दी काव्य क्षेत्र में जो प्रवृत्तियाँ विकासशील रही हैं उनमें राष्ट्रीयता की प्रवृत्ति भी एक है । अनेक शताब्दियों तक भारतवर्ष को विभिन्न विदेशी जातियों की पराधीनता स्वीकार करनी पड़ी । इसलिए समय समय पर राष्ट्रीयता की भावना

देशवासियों में जागृत और विकसित होती रहीं । जब इसका अतिरेक हो गया तब उनके राष्ट्रीय आन्दोलनों का सूत्रपात्र हुआ । ये आंदोलन कभी तो अहिंसात्मक रहें और कभी इन्होंने हिंसात्मक रूप भी धारण कर लिया । राष्ट्रीयता के मूलभूत तत्वों के रूप में - "भौगोलिक एकता, जातीय एकता, सांस्कृतिक एकता भाषागत एकता, धर्म - क्षेत्रीय एकता तथा राष्ट्रीय एकता "[1] आदि को मान्य किया जाता हैं । भारतीय संस्कृति आरम्भ से ही राष्ट्रीय चेतना के जागरण का आवाहन करती रही है । सहस्रों वर्षों से राष्ट्र की जो धारणा हमारे देश में विकसित हुई है उसकी चरम परिणति विश्व एकता अथवा विश्व बंधुत्व की भावना में है जो भारतीय संस्कृति की ही विशेषता है ।

काव्य में राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति दो प्रकार से होती है । प्रथम राजनीतिक राष्ट्रीयता - इसका जन्म परिस्थिति जन्य पराधीनता तथा विदेशी आक्रमण के समय में होता है । द्वितीय - सांस्कृतिक और भौगोलिक राष्ट्रीयता । यह राष्ट्रीयता जनमानस में संस्कार गत होती है । राजनीतिक राष्ट्रीयता में सचेष्ट होकर सामयिकता के साथ राष्ट्रीय एकता की आवाज उठती है । इस समय का काव्य स्थायी न होकर सामयिक होता है । यह राष्ट्रीयता का स्वस्थ रूप नहीं है । जहाँ तक दूसरे प्रकार की राष्ट्रीयता का प्रश्न है वह प्रत्येक व्यक्ति के साथ जन्म लेती है । वह जन मानस के अचेतन मन में रहकर कवि व्यापार से आलोक पाती है । इसकी सम्पूर्ण प्रक्रिया में संवेदनशीलता की अपेक्षा हैं, इसलिए अपेक्षाकृत काव्यात्मक अधिक है ।

---

1. आधुनिक हिन्दी कविता - डा. सुधाकर गोकाकर - पृ. 92.

राष्ट्रीय काव्य का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है । बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार के समन्वित योग से राष्ट्रीय भावना अपने प्रशस्त रूप में जन्म लेती है जिसमें युग चेतना के साथ ही राष्ट्र की सांस्कृतिक और सौन्दर्य चेतना भी समाप्त होती है ।

हिन्दी की राष्ट्रीय कविता भारतेन्दु युग से ही एक निश्चित और सुव्यवस्थित परम्परा को लेकर विकसित प्रतीत होती है । "अंग्रेजी शासक के विरुद्ध हिन्दुस्तान की संगठित राष्ट्रीय भावना का वह प्रथम आह्वान था और तभी से हमारी राष्ट्रीयता का जयनाद प्रारम्भ हो गया था । अब पहली बार प्रदेश अथवा धर्म-सम्प्रदाय के संकुचित से निकलकर राष्ट्रीयता ने समग्र देश को अन्तर्भूत कर लिया । हिन्दी काव्य में यह युग भारतेन्दु युग के नाम से प्रसिद्ध है । "[1]

द्विवेदी युग में हिन्दी की राष्ट्रीय कविता ने नये आयामों और नवीन दिशाओं की ओर प्रस्थान करते हुए उसके स्वरूप को प्रौढ़ता और व्यापकता प्रदान की । द्विवेदी युगीन राष्ट्रीयता देश प्रेम सम्बन्धी उदात्त भावनाएँ और सांस्कृतिक रक्षा के लिए कल्याण कामना इस युग के काव्य में स्पष्टतः परिलक्षित होती है । देश की वर्तमान करुण दशा पर क्षोभ समाज के दलित वर्गों तथा नारी के वेदना भरी अभिव्यक्ति के साथ ही समस्याओं के समाहार की प्रबल आकांक्षा भी इस युग में दिखाई देती है । राष्ट्रीयता के उत्तरोत्तर विकसित पक्ष को उसके भावात्मक स्वरूप में छायावाद में देखा जा सकता है ।

1· आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ - डा·नगेन्द्र - पृ· 32·

छायावादी राष्ट्रीय काव्यों में अतीत गौरव गान, वीर आन्दोलन - कारियों का स्तुतिगान और ओजपूर्ण स्वर में परतंत्रता से मुक्ति का आह्वान आदि विषय समाहित हैं । पीड़ित और दलित की मुक्ति हेतु बादल का विद्रोही स्वर भी गर्जन कर उठता है । समकालीन राष्ट्रीय आँदोलन भी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से छायावाद में प्रतिबिम्बित हुए । निराला और प्रसाद ने विशेषतः प्रगतिशील सामाजिक शक्तियों को पहचाना है । गाँधी जी के प्रभाव से अहिंसात्मक क्रान्ति का स्वरूप इस काव्य में निखरा है । आत्म बल और कर्मठता ही उसके सम्बल हैं । वास्तव में छायावाद में जिस व्यक्तिवादी चेतना का समाहरा हुआ है, उसने नये जीवन मूल्यों के साथ स्वाधीनता एवं राष्ट्रीय भावधारा को सदैव प्रश्रय दिया । छायावाद के कुछ गीतों में राष्ट्रीय सांस्कृतिक भित्ति पर ओजपूर्ण स्वर में राष्ट्रीयता का संधान किया गया है ।[1] प्रगतिवाद अपने स्वरूप में समाजवादी एवं राष्ट्रीय चेतना प्रधान काव्य है । इसके युगीन काव्य में राष्ट्रीय तथा अन्तराष्ट्रीय भाव - धारा की प्रमुखता रही । इस प्रकार भारतेन्दु, द्विवेदी, छायावाद एवं प्रगतिवाद युगों में राष्ट्रीयता की प्रधानता रही परन्तु उसका स्वरूप प्रत्येक युग में परिस्थितियों की दृष्टि से परिवर्तित अथवा विकसित होता रहा है। राष्ट्रीय कविता के विकास के सन्दर्भ में विश्वेश्वर प्रसाद के विचार द्रष्टव्य हैं - "राष्ट्रीय कविता की जो धारा सामाजिक आर्थिक आधार लेकर भारतेन्दु युग में अवतरित होती है । वह मैथिली शरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी और बालकृष्ण शर्मा नवीन में अपना विकास ढूँढती हुई रामधारी सिंह दिनकर में चरमोत्कर्ष को प्राप्त करती है । प्रगतिवादी आँदोलन ने इस काव्यधारा को नया मोड़ देना चाहा । यह आँदोलन राजनीति के साथ

---

1. छायावादी काव्य की प्रगति शील चेतना - डा॰ संतोष कुमार तिवारी पृ॰ 32॰

ही स्वतंत्रता को भी परिलत देखना चाहता था जिसका अर्थ था स्वतंत्र भारत ही नहीं बल्कि स्वतंत्र साम्यवादी भारत । "[1]

प्रगतिशील रचनाओं की प्रेरणा में राष्ट्रीय सुधार आंदोलनों का महत्वपूर्ण योगदान है - अंग्रेजी शासन की दमननीति और सांस्कृतिक विघटन के षड़यन्त्रों से परिचित हिन्दू समाज ने अपने सुधारों की स्वयं चिंता की । अंग्रेजी भाषा से इतना लाभ तो हुआ कि उससे हमारी राष्ट्रीय एकता हुई । सुधार आंदोलनों के रूप में उस समय हिन्दुस्तान में ब्रह्मसमाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन और थियोसोफिकल सोसायटी जैसी संस्थाएं बनी । इन सुधार आन्दोलनों का उद्देश्य राष्ट्रीय चेतना जगाना था, धर्म चेतना की ओर उन्मुख करना नहीं । उनसे मानवता के प्रति सद्भाव तो पैदा ही हुआ । " इस नवोत्थान से भारत का काया कल्प हुआ है , धर्म की रूढ़ियाँ धुलकर बह गई है , मनुष्य की उदारता में वृद्धि हुई और हिन्दू धर्म संशोधित होकर इस रूप में उत्पन्न हुआ कि जिसे हम विश्वधर्म की भूमिका कह सकते हैं । "[2]

राष्ट्रीयता के दोनों स्तर समानार्थी हैं । प्रथमत: व्यक्ति अपने हितों का कामी हो, द्वितीयत: बहुजन हिताय का भी उद्देश्य उसमें संलग्न रहें । स्वतंत्रता का आशय मनुष्य की आत्म निष्ठा से है जिसके द्वारा वह अपना और राष्ट्र दोनों का विकास, अपनी उपलब्धियों और अन्तराष्ट्रीय संगति के माध्यम से करता है । प्रगति और प्रयोग दोनों आंदोलनों ने यही किया ।

---

1. छायावादोत्तर काव्य - सिद्धेश्वर प्रसाद - पृ॰ 50.
2. संस्कृति के चार अध्याय - रामधारी सिंह दिनकर - पृ॰ 457.

सप्तक परम्परा के अनेक कवियों में राष्ट्रीय चेतना का स्वर सुनाई पड़ती है । दूसरे सप्तक के नरेशमेहता, धर्मवीर भारती, रघुवीर सहाय की अधिकांश काव्य अभिव्यक्तियाँ, सामाजिक, सांस्कृतिक चेतना, विद्रोह और आक्रोश, सामाजिक विसंगतियों और विद्रूपताओं के संदर्भ में तीखे तेवर की कविताएँ हैं ।

नयी कविता के राष्ट्रीय चेतना के महत्वपूर्ण उपलब्धियों के अन्तर्गत ‍‍[अन्धायुग 1954] धर्मवीर भारती, पृथ्वी कल्प [1960] गिरिजा कुमार माथुर, संशय की एक रात [1962] प्रार्थना पुरुष [1988] नरेशमेहता, उत्तर प्रियदर्शिनी - अज्ञेय आदि की गणना की जा सकती है । इस संदर्भ में डा॰ जगदीश गुप्त ने ठीक ही लिखा है - " अन्धा युग " से लेकर " संशय की एक रात " तक कविता प्रबन्धात्मकता के बीच जिस सांस्कृतिक अन्तर्मन्थन को व्यक्त करती रही है, वह राष्ट्र की गम्भीर समस्याओं के प्रति उदासीनता की दिशा नहीं है ।"[1] नयी कविता की लम्बी कवितावाली कृतियों में युग चेतना और ऐतिहासिक यथार्थ को प्रमुखता मिली है । भौतिक और आध्यात्मिक संघर्ष को सनातन सत्य के रूप में व्याख्यायित करके नयी कविता की राष्ट्रीय चेतना विस्तृत केनवास पर स्थापित हुई है, इसमें सन्देह नहीं ।

नयी कविता के समान ही नवगीत में भी राष्ट्रीय चेतना का पर्याप्त उत्कर्ष परिलक्षित होता है । हिन्दी कविता की नवगीत विधा की सृजन दृष्टि भी समूचे जीवन परिवेश के प्रति पूर्ण सजग है । हाँ नवगीत को वह साहित्यिक ख्याति उपलब्ध नहीं हो पायी है जो नयी कविता को आन्दोलनात्मक स्वरूप करने में सहायक हुई है, परन्तु राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से नवगीत का प्रादेय महत्वपूर्ण है ।

1॰ नई कविता में राष्ट्रीय चेतना - डा॰ देवराज पथिक - पृ॰ 359॰

विश्व के अति उन्नत राष्ट्रों के समक्ष अपने देश की समृद्धि की लालसा, देश की स्वतंत्रता एवं अखण्डता के प्रति निष्ठापूर्वक लगता तथा अवसरानुसार आत्मत्याग, आत्म समर्पण तथा आत्म बलिदान के लिए आत्मतत्परताओं की भावनाओं से समृद्धावस्था, धर्म, जाति, भाषा एवं प्रान्त की संकीर्णता से उन्मुक्तता, समग्र रूप से देश के इतिहास, भूगोल, संस्कृति, राजनीति, आध्यात्मिकता तथा आर्थिक तंत्र की जड़ परम्पराओं के प्रति नकार भावना, महान् एवं गौरवशाली अतीत के प्रति आन्तरिक श्रद्धा - भक्ति, समूचे देश की भूमि, भूमि पर बसनेवाले जन तथा उस समस्त जन-समुदाय की अलौकिक संस्कृति के प्रति विनम्रतापूर्वक आस्था, अन्धविश्वासों, असमानता, शोषण, साम्प्रदायिकता एवं संकीर्णता तथा अज्ञानता के लिए जुझारू साहस, एकता, त्याग, कर्तव्य परायणता, संवेदना शीलता भावात्मक एकरूपता, संतुलित आधुनिकता, अनास्था, कुण्ठा, अभाव और उत्पीड़न से संघर्षशीलता की अमान - वीय प्रवृत्ति आदि राष्ट्रीय चेतना के व्यापक और आधार भूत आकृति को निरूपित करती है । राष्ट्रीय काव्य प्रवृत्तियों का सम्बन्ध इन सभी से होता है । फलत: वह इनके बीच में उगनेवाली समस्याओं का सजीव चित्र प्रस्तुत करती है । वास्तव में राष्ट्रीय काव्य युगीन मानववादी धर्म के आधार पर पनपता रहता है । नये राष्ट्रीय काव्यों के अन्तर्गत नरेशमेहता कृत 'संशय की एक रात' और 'प्रार्थना पुरुष' की गणना की जा सकती है ।

4.2.7. जनवादी कविता :

"जनवाद का वास्तविक अर्थ है - साम्राज्यवाद, पूँजीवाद और सामंती व्यवस्था और उसके जीवन मूल्यों का सक्रिय विरोध, श्रमिक वर्ग और पीड़ित जन के साथ वास्तविक हमदर्दी । देशभक्त क्रान्तिकारी शक्तियों की एकता और उसके संकल्प का नाम है जनवाद । जनवाद का उद्देश्य है -

साम्राज्यवादी, पूँजीवादी और सामंती व्यवस्था के स्थान पर जनता के प्रजातंत्र की स्थापना । साहित्य और कला के क्षेत्र में शोषित, उत्पीड़ित वर्ग की भावनाओं, संकल्पों, सुख-दु:ख जय-पराजय और संघर्षों की यथार्थ अभिव्यक्ति का नाम ही जनवाद है । पतनशील सामंती मूल्यों, साम्राज्य - वादी और बुर्जुआ संस्कृति के स्थान पर जनवादी संस्कृति की स्थापना । जनवादी साहित्य का प्रमुखलक्ष्य होता है - जनता को शिक्षित करना उसके संघर्षों और जीवन को स्वर प्रदान कर उन्हें आगे बढ़ाने में जनवादी साहित्य प्रेरणा देता है । जो जनता मूल परिवर्तन में प्रमुख भूमिका अदा करती है, उसतक जनवादी साहित्य को पहुँचाना प्रतिबद्ध, जागरूक और जनवादी रचनाकार के लिए आवश्यक है । ऐसी भाषा और कला का विकास जनवादी साहित्यकार का लक्ष्य और दायित्व है ।"[1] इस प्रकार डॉ॰ कुंवरपाल सिंह ने जनवादी साहित्य के व्यापक स्वरूप और उद्देश्य को स्पष्ट किया है । आज की दुनिया में जनवादी साहित्य शोषण व्यवस्था विरोधी साहित्य के रूप में प्रसिद्ध होने लगी है । जनवादी कविता जनता की जिन्दगी का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करती है ।

कविता की जनवादी परम्परा ने सामाजिक जीवन की सामंती और एकाधिकार वादी प्रवृत्तियों का विरोध करते हुए अपनी आधुनिकता का पहला परिचय दिया है । छायावाद के मूल में जनतांत्रिक भावनाएँ हैं । इसकाल के काव्य में सामंतवाद और साम्राज्यवाद का विरोध जनवादी चेतना के माध्यम से किया गया है । इस काव्य में नवीन जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा और स्वतंत्र प्रयोग की प्रवृत्ति का परिचय दिया गया । तभी से कविता में

1· दस्तावेज - 42 - साहित्यिक त्रैमासिक पत्रिका - सं· विश्वनाथ प्रसाद तिवारी - पृ· 15 से उद्धृत ।

जनवादी भावनाओं को व्यापक जगह मिल गयी है। भारतेन्दु एवं द्विवेदी युगीन साहित्य जनवादी प्रवृत्तियों से सम्बन्धित था। उसमें व्यक्ति स्वातंत्र्य की मुक्ति का संयुक्त स्वर है। छायावादी वेदना व्यक्ति स्तर से बढ़कर जातीय-सामाजिक रूप में व्यापक होने लगी है। उसका रूप अत्यन्त व्यापक है।[1] प्रगतिवादी साहित्य पूरी तरह जनवादी साहित्य के रूप में प्रसिद्ध रहा। इसपर मार्क्सवाद का गहरा प्रभाव है। इसमें समाज के विभिन्न प्रकार के शोषण से पीड़ित जनता को अपनी स्थिति के विरुद्ध लड़ने का प्रोत्साहन दिया गया। प्रगतिवादी साहित्य में जन साधारण को काव्य के उच्च सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया गया। जनता के लिए साहित्य रचना करना प्रगतिवा - दियों का उद्देश्य था। जन साहित्य की सार्थकता और उन्नति के लिए उन्होंने संघर्षरत जनता को विजयी होने के लिए आवश्यक पथ प्रदर्शन किया। केवल जनता के लिए ही नहीं बल्कि लेखक के लिए भी इस दिशा में आवश्यक शक्ति प्रदान किया। जनवादी कविता जनता और लेखक के बीच में आवश्यक सम्बन्धों की चर्चा करती है। यहाँ जनता से तात्पर्य हैं शोषित और पीड़ित मात्र हैं।[2] प्रयोगवाद और नयीकविता ने काव्य में नवीनता पर ज्यादा बल दिया। उन दोनों का सम्बन्ध सामाजिक यथार्थ से सम्बन्धित था। राष्ट्र के प्रति विशेष ध्यान दिया गया। वे ज्यादा अपनी आन्तरिक समस्याओं में उलझे रहें। इनके साहित्य में सामाजिक समस्याओं में संघर्षरत लघुमानव को साहित्यिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। उनके माध्यम से विभिन्न प्रकार के साधारण जनों की समस्याओं का सुलझाने का प्रयास किया। उनकी आन्तरिक वेदना को समूचा स्वर दिया। उनमें क्षय शील मूल्यों को पनपने

---

1. समकालीन कविता संवाद - डा. विनय - पृ. 18.
2. समीक्षा के नए परिमान - डा. सुखबीर सिंह - पृ. 22.

नहीं किया । व्यक्ति विकास के विरोध में खड़े हुए पूँजीवाद एवं साम्राज्यवाद जैसी शक्तियों का विरोध किया । अंधकार से जीवन की प्रगति शील दृष्टि दी । ह्रासशील आत्म सत्ता को बढ़ाया । आधुनिकतावाद का विकास किया ।

जनवादी साहित्य अपनी विकास शील दिशा में अपने समय के अधि - नायकवादी चुनौतियों को स्वीकार किया । राज्य जब अत्याचार का दूसरा नाम बनता है । श्रमजीवी अत्याचार का शिकार होता है तब जनता के द्वारा नवीन चेतना पैदा की जाती हैं । पूरी मौजूदी व्यवस्था और शोषण मूलक शक्तियों का खुलकर विरोध किया जाता है । नयी कविता के प्रगति- शील कवियों ने मृत्यु और हताश के स्थान पर जीवन और स्वतंत्रता की आशा की ओर बढ़ना शुरू किया । जन जीवन के सौन्दर्य और संघर्ष को व्यक्त करना जनवादी कवियों का लक्ष्य रहा ।

जनवादी कविता आम आदमी के चित्रण को प्रधानता देती हैं । जनवादी कविता के केन्द्र में वह आदमी है , जो हरतरह के शोषण - दमन और अत्याचार का शिकार है , जो हर तरह से उपेक्षित और तिरस्कृत है जो दिनभर कठिन परिश्रम करने के बाद भी शाम को अपने परिवार के लिए भर पेट भोजन की व्यवस्था नहीं कर पाता, जिसकी जिन्दगी अभावों का पर्याय बन चुकी है । जनवादी कविता में निम्नवर्ग और निम्न मध्यवर्ग की स्थितियों का चित्रण है जिस पर व्यवस्था की मार सर्वाधिक है । पूँजीवादी व्यवस्था के परिणाम स्वरूप उत्पन्न, पतनशील मूल्यों एवं सामाजिक विकृतियों तथा विद्रूपताओं को जनवादी कवियों ने अपनी रचनाओं में उद्घाटित करने के लिए प्रयत्न किया । सामाजिक सम्बन्धों में अर्थ की निर्णायक भूमिका, टूटते - बिखरते परिवार, अलगाव, अजनबीपन, आत्मीयता, व्यवस्था की साजिशें,

चौतरफा समस्याओं की मार और इन सारी तबाहियों के बीच में घुट-घुटकर जीते हुए आदमी के जीवन की त्रासदी का सशक्त चित्रण जनवादी कविताओं में हुआ है । जनवादी कवि इस वर्ग विभाजित समाज में करोड़ों मेहनतकश जनता के संघर्षों में सहभागी बनना चाहता है इसलिए अपने को श्रमजीवियों का पक्षधर घोषित करता है । जनवादी कवि अपने मुनाफा को बढ़ाने के लिए जनता को हर तरह से पीड़ित करनेवाली व्यवस्था का दमन और तानाशाही का निडर होकर यथार्थ चित्रण किया है । जनवादी कवि ने सत्ता के शोषण के अंदर पीड़ित प्रजा के दुःखों के प्रति अपनी सहानुभूति व्यक्त किया है । जनवादी कवि सामंती-मूल्यों-ईश्वरीय सत्ता और अंधविश्वासों को नकार कर दिया । इन कवियों ने अपनी वैज्ञानिक दृष्टि के आधार पर ईश्वर, देवी-देवता, कर्म-काण्ड, धर्म- मजहब, पुनर्जन्म और भाग्य इत्यादि के सारे विधान को अंधविश्वास मानकर अस्वीकार किया है । और इन्हें सत्ताधारी वर्ग द्वारा आम जनता को दिग्भ्रमित करने तथा गुमराह करके अपने वश में किये रहने के लिए और अपनी लूट की व्यवस्था को कायम रखने के लिए एक सुनियोजित कुत्सित और खतरनाक साजिश सिद्ध करते हैं । वे हर विषय को तर्क की कसौटी पर कसकर देखने का समर्थन करते हैं । जनवादी कवि कानून, लोकतंत्र, संविधान और कानून के खोखलापन को अत्यन्त यथार्थ सहित प्रस्तुत करते है । जनवादी काव्य के केन्द्र में जो जन है और उस में जिस जनता का चित्रण हुआ है, वह गरीबी, भुखमरी, फटेहाली बेरोजगारी एवं शोषण - दमन, अन्याय, अत्याचार और जुर्म का शिकार होती हुई तथा व्यवस्था के चौतरफा हमलों को झेलती हुई भी निरीह और कमजोर नहीं है । इस शोषण पर टिकी हुई समूची व्यवस्था की वही नींव है, वही आधार है । साथ ही वह निराश नही हैं और वह जानती है कि जिस दिन वह संगठित होकर अपने हक के लिए आवाज उठायेगा, उस दिन दुनिया का कोई भी तानाशाह उसकी आवाज को नहीं दबा सकेगा । उसका यह विश्वास उसकी कविताओं में

स्पष्ट लक्षित होता है । इसी आशा विश्वास और आकांक्षा के साथ वह क्रान्ति का उद्घोष करता है । जनवादी कवि यह अच्छी तरह जानते हैं कि आजतक किसी को अपना अधिकार न तो हाथ पसारने पर मिला है, न मिलेगा । वह यह भी जानता है कि - "अधिकार भीख में नहीं मिलता बल्कि उसे छीन लेना पड़ता है । वह "भय बिनु होंहि न प्रीति" का समर्थक है । इसलिए वह क्रान्ति का आह्वान करता है और इस के लिए सर्वहारा वर्ग तथा अन्य सभी शोषित, पीड़ित, मेहनतकश अवाम को जागृत, गोलबन्द और संगठित करके शोषक-शासक वर्ग के समूचे भेड़िया तंत्र के खिलाफ जेहाद छेड़ने और उनके लूट के सिंहासन पर धावा बोलने का आह्वान करता है । "[1]

जनवादी कवियों ने प्रेम की अति शयता से आह्लादित होकर उसके तमाम रूपों का वर्णन किया है । ये कवि कल्पना जीवी नहीं है । उनके सौन्दर्य और प्रकृति का आधार जनता ही है । श्रम से थके हुए व्यक्ति में सौन्दर्य की खोज करती है । वह श्रम देवता के उपासकों का पक्षधर है । जनवादी कविता मनुष्य और प्रकृति के बीच वस्तु परक सम्बन्ध स्थापित करती है ।

जनवादी कवि अपनी कविता में कथ्य की भाँति शिल्प को भी जनवादी बनाना चाहते हैं । उनकी भाषा लोक सम्पृक्त सहज सरल जनभाषा है । इसलिए भाषा में प्रवाहमानता दिखाई पड़ती है । उसमें अलंकरण और कला बाजी के स्थान पर अनुभूति को अधिक महत्व दिया गया । इस प्रकार जनवादी कविता कथ्य और शिल्प को जनवादी बनाते हुए विभिन्न माध्यमों के द्वारा निरंतर विकासशील हो रही है । इस का जनवादी नामकरण सातवें दशक के बाद अधिक प्रखर हुआ ।

1· दस्तावेज - 42 साहित्यिक त्रैमासिक पत्रिका - सं· विश्वनाथ प्रसाद तिवारी - पृ· 21·

इस तरह नरेशमेहता के समय में हिन्दी काव्य धारा ने विभिन्न मोड़ लिये है, उसमें अनेक बदलती हुई भावनाओं का समावेश हुआ है, अनेक काव्य - प्रणालियों ने उसे गति प्रदान की है और अनेक विचारों ने उसके परम्परागत स्वरूप को भी परिवर्तित किया है। परन्तु सबसे बड़ी विशेषता यह है कि विभिन्न परिवर्तनकारी भावनाओं एवं प्रणालियों के रहते हुए भी हिन्दी काव्य-धारा का मूल स्वरूप विनिष्ट नहीं हुआ है, उसकी सांस्कृतिक परम्परा विच्छिन्न नहीं हुई है, उसकी प्रगति में व्याघात उत्पन्न नहीं हुआ है और न उसका प्रवाह ही अवरुद्ध हुआ है, अपितु वह उत्तरोत्तर विकसित होती चली जा रही है और आज विश्व - साहित्य में भी उसने अपना उचित स्थान बना लिया है।

निष्कर्ष यह है कि आधुनिक युग की राजनीतिक आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक आदि सभी परिस्थितियों ने नरेशमेहता के काव्य को प्रेरणा एवं प्रगति प्रदान की है। इन विभिन्न संघर्ष-भरी परि - स्थितियों से ही नरेशमेहता जी को उत्तरोत्तर काव्य-सृजन का प्रोत्साहन मिला है और प्राचीन एवं नवीन सभी का समावेश करके वे प्रयोगवादी युग से लेकर अब तक अनेक काव्यों में युग का स्वरूप अंकित करते चले आ रहे हैं। निस्संदेह नरेशमेहता में जो "कालानुसरण की क्षमता" दृष्टिगोचर होती है, वह प्रशंसनीय है। उनके समकालीन अनेक कवियों ने भी इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इसी के बलबूते पर वे जनता के प्रतिनिधि कवि कहलाने के अधिकारी हैं क्योंकि आज अपने इस युग-संघर्ष का स्वरूप जितनी विविधता, स्पष्टता एवं गहनता के साथ नरेशमेहता के काव्य में अंकित है, उतना अन्यत्र बहुत कम दिखाई देता है। इन परिस्थितियों से प्रेरित होकर कवि ने अनेक छोटे-छोटे खण्ड काव्य लिखे और पर्याप्त ख्याति प्राप्त की। आगे के अध्यायों में इन परिस्थितियों तथा प्रवृत्तियों के आलोक में नरेशमेहता के खण्ड काव्यों में वर्णित कथ्य और शिल्प के अध्ययन का विधान किया जाएगा।

द्वितीय अध्याय

नरेश मेहता का काव्य : मिथकीय युगबोध : कथ्य

द्वितीय अध्याय

नरेश मेहता का काव्य : मिथकीय युगबोध

काव्य और धर्म के बीच एक ही तत्व उभयनिष्ठ है और वह है मिथक ।[1] मिथक स्वयं काव्य नहीं है किन्तु काव्य का बहुत बड़ा उपादान है, और कविता में समाज का अन्तः करण अभिव्यक्त होता है । वह समष्टि की वाणी है । कविता में समष्टि की अभिव्यक्ति युगानुरूप होती है । अपनी नवीन व्याख्याओं के कारण पुरातन मान्यताएँ कभी-कभी मूल्यों के रूप में प्रतिष्ठित हो जाती है और कभी पुरातन मूल्य वर्तमान की व्याख्या और आधुनिकबोध से सम्पृक्त होकर मान्यता के रूप में परिणत हो जाते हैं ।

१· मिथक से तात्पर्य :-

साहित्य सृजन में सत्य और कल्पना के अतिरिक्त जो तत्व सक्रिय रहते है उनमें पुराकथा, आदबिम्ब एवं फैंटसी का प्रमुख स्थान है । पुराकथा, पुराण कथा या देवकथा कोरी कल्पना पर आधारित न होकर लोकानुभूति से संश्लिष्ट ऐसी कथा होती है जो अलौकिकता का भी संकेत देती है । पुराकथा जिसे अंग्रेजी में माइथालोजी कहा जाता है, अलौकिकता से आपूर्ण होने के कारण तर्काश्रित नहीं होती । ऐसी कथाओं की सृष्टि के पीछे कुछ आदिम विश्वास होते है जो कालांतर में अन्धविश्वास का रूप धारण कर लेते हैं । उन विश्वासों की

१· मिथक उद्भव और विकास तथा हिन्दी साहित्य - डा· उमापुरी विमा - वाचस्पति - पृ· 9·

व्याख्या दुरूह हो जाते हैं। ऐसी कथाओं तथा विश्वासों को मिथ शब्द से व्यवहृत किया जाने लगा है । मिथक शब्द अंग्रेजी के " मिथ " से गढ़ लिया गया है और उसका हिन्दी का प्रतिरूप बन गया है । हिन्दी में मिथक के लिए पुरावृत्त, पुराकथा, कल्पकथा, देवकथा, धर्मगाथा, पुराण कथा, पुरा - कथान आदि अनेक शब्द प्रयुक्त हो रहे हैं । साहित्य सृजन के क्षेत्र में मिथक ऐसा तत्व है जो भाषा को व्यापक आयाम देकर रहस्यात्मकता, लाक्षणिकता और विलक्षणता प्रदान करने में समर्थ है । यह कोई नवीन तत्व नहो है । किन्तु संज्ञा अभिधान के कारण इसे नये ढंग से प्रस्तुत किया जा रहा है ।

मिथक के विस्तृत परिधि में केवल पुराण कथा ही नहीं वरन् लोक कथा, निजंधरी कथा तथा आख्यानात्मक कथाओं का भी समावेश होता है । इसके साथ धर्म, मानव विज्ञान, समाज-विज्ञान, मनोविश्लेषण तथा ललित कलाएँ सब आ जाते हैं । इसलिए मिथक आज की आलोचना का सशक्त, महत्त्वपूर्ण और सर्वप्रिय पहलू बनता जा रहा है । प्राचीन साहित्य में उपलब्ध देवता, राक्षस, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर आदि के संदर्भ मिथक के अंग बन गये हैं । इस प्रकार मिथक का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया है और उसके अंग-उपादान असीम हो गये हैं । मिथकीय चेतना आज भी हमारे क्रिया कलाप, चिन्तन और संस्कारों के मूल में जीवित है ।

मिथक किसी जाति के गहरे स्रोत है । वे अतीत से वर्तमान तक और वर्तमान से भविष्य तक अपनी प्रवाहमानता बनाये रहते है । जातीय संस्कारों के निर्माण में इन मिथकों के प्रयोग का गहरा योगदान होता है । जो जाति जितनी प्राचीन होती है और जिसमें जितनी ही जीवन शक्ति होती है वह उसी जीवन्तता और शाश्वतता के साथ अपने मिथकों को पुनरुज्जीवित करती रहती है

और उन मिथकों द्वारा स्वयं का भी पुनरुज्जीवन प्राप्त करती है । भारतीय संदर्भ में इन मिथकों का आत्यन्तिक महत्व है । किसी भी भारतीय के लिए राम, कृष्ण, शिव आदि ऐसे प्रेरक शब्द है कि उनके उच्चारण मात्र से उनके हृदय में स्फुरण होने लगता है । प्राचीन प्रतीकों और मिथकों का बार-बार भिन्न-भिन्न युगों में क्यों प्रयोग किया जाता है? क्यों कवि और चिन्तक इन मिथकों का सहारा लेकर अपने युग के सन्दर्भों को पहचानना चाहता है? क्यों बार-बार ये मिथक नयी और नयी अर्थवत्ता के साथ हमारे सामने आते हैं और हमारी चेतना को अंकुरित करते हैं । इन प्रश्नों का समाधान का कोई सरणी नहीं है ।

कभी तो प्राचीन चरित्र इतिहास से मिथक बनते हैं । उनकी ऐतिहासिकता धीरे-धीरे बहुआयामी होती चली जाती है । हमारी प्राचीनता में संसक्ति अनेक कारणों से होती है । कभी-कभी यह संसक्ति हमें पलायनवादी बनाती है । जब हम वर्तमान से कुछ नहीं पाते है, तात्कालिक समस्यायें हमें अपनी विकरालता में आक्रान्त करती दिखाती है, तो हम प्राचीनता में, अतीत में अपना मुँह छिपा लेते हैं । ऐसी अतीतोन्मुखता सांस्कृतिक पराभव को ही जन्म देती है या यों कहे कि सांस्कृतिक पराभव की मानसिकता में ही हम इस प्रकार की अतीतोन्मुखता के शिकार होते हैं। परन्तु अतीत की गाथाओं से, अतीत के चरित्रों से हम बार-बार नया प्रकाश भी पाते हैं । कभी-कभी किसी युग में ठीक वैसे ही सन्दर्भ आ खड़े होते है जैसे किसी पूर्व युग में प्रस्तुत हुए थे और हम अतीत में प्रवेश करके अपने सन्दर्भ से नये संकल्प के साथ साक्षात्कार करते हैं । कभी-कभी प्राचीन गाथाओं में नये मोड और नयी धार देने का काम भी कवि को करना पड़ता है । कभी-कभी तो मिथकों को एक दम नया रूप देकर कवि अपनी युगीन संगति को उसमें पिरो लेता है । हर स्थिति में अतीत का प्रयोग वर्तमान या भविष्य की चिन्ता के सन्दर्भ में ही होता है । अतीत तो घटित हो चुका है । उसे न हम बदल सकते है न उसमें जी सकते हैं ।

जीना हमें अपने वर्तमान को है - और बदलने का संकल्प भी हम उसे ही कर सकते हैं या भविष्य को अपने अनुरूप अपनी आकांक्षाओं के अनुरूप गढ़ने का संकल्प कर सकते हैं। अतीत का उपयोग या अतीत से साक्षात्कार सदा वर्तमान या भविष्य से जुड़ा होता है।

मिथकों का रचनात्मक इस्तेमाल स्वयं उनके स्वभाव से भी निर्धारित होता है। उदाहरण के लिए रामायण और महाभारत दोनों मिथक के बहुत बड़े स्रोत है। लेकिन रामायण की तुलना में महाभारत के चरित्र और प्रतीक आज की दुनिया को अभिव्यक्त करने में ज्यादा मदद देते है दे सकते हैं। रामायण की समूची कथा द्वन्द्व को अद्वन्द्व की ओर ले जाती है। उसके आदर्श अन्तर्विरोधों के ताप से झुलसनेवाले आदर्श नहीं है। इसके विपरीत महाभारत अन्तर्विरोधों का सतत साक्षात्कार है। उसमें जीवन और मृत्यु से जुड़ी सैकड़ों चिन्ताएँ आमने-सामने खड़ी दिखाई देती हैं। अपने युग की बुनियादी चिन्ताओं को उजागर करने के लिए मिथकों का इस्तेमाल एक कवि के लिए सुविधा की स्थिति भी हो सकती है और भीतरी जरूरत भी। जिनके लिए मिथक अभिव्यक्ति की सुविधाएँ जुटाने के साधन भर है। वे कभी यथार्थ पर मिथक और मिथक पर यथार्थ का आरोपण करते हैं; किन्तु जिनके लिए मिथक अतीत और वर्तमान के जिन्दा रहने के तनावों से जूझने के माध्यम है, उनकी रचनाओं में वे नये आशाओं के साथ फिर से नया जन्म पाते हैं। इस दृष्टि से नरेश मेहता के काव्य का अधिक महत्त्व हो जाता है।

1·1कथ्य :-

खण्ड काव्य की रचना में कथ्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। दूसरे शब्दों में कहें तो कथानक खण्ड काव्य का मेरुदण्ड है, कथानक के आधार पर काव्य का ढाँचा खड़ा होता है। कथात्मक आधार पर ही काव्य उच्च भूमियों का संस्पर्श करता है। इति-वृत्त ही पात्रों के विकास एवं पाठकीय जिज्ञासा-जागृति का कारक बनता है।

खण्डकाव्य का सम्बन्ध जिन घटनाओं और व्यापारों से होता है, वे सब कथानक के अन्तर्गत समाविष्ट होते हैं । "खण्डकाव्य का कथानक प्रख्यात या काल्पनिक दोनों हो सकता है । जीवन के एक प्रसंग को लेकर चलनेवाले तथा सम्पूर्ण अनुभूति प्रदान करनेवाले काव्य खण्डकाव्य है ।"[1] कथानक केलिए कथावस्तु, विषयवस्तु, इतिवृत्त, कथा, कथ्य आदि शब्द प्रचलित हैं । कथानक के विकास, गुणों, प्रकारादि के संबंध में साहित्यशास्त्रियों में मतैक्य नहीं है । कथानक का चयन इतिहास, पुराण, समसामयिक जीवन के घटनाचक्र एवं कल्पना प्रसूत होता है । कथानक की सफलता रचनाकार की मौलिक प्रसंगोद्‌भावनापूर्ण चयन-कला पर निर्भर करती है । कथानक के संगठन और विन्यास में कार्य कारण संबंध, मनोवैज्ञानिक क्रम, उत्कण्ठा, चरमोत्कर्ष आदि गुणों का समावेश होना चाहिए ।

1.2. नरेश मेहता के खण्डकाव्यों में कथ्य का परिवेश :-

नरेश मेहता ने अपने खण्डकाव्यों की रचना में कथ्य को महत्वपूर्ण स्थान दिया है । अपनी खण्ड काव्य रचना के कथ्य वृत्त की परिधि में चिरन्तन प्रभावकारी घटना या क्षणिक महत्व का प्रसंग, विषय नवीन संवेदना, व्यक्ति की मानसिकता, उब से भरी स्थितियाँ, आपतकाल की प्रतिक्रिया या जर्जरित परम्पराओं की विसंगतियों से लेकर युगीन आस्थाओं से लम्बी नव्य भावबोध तक कोई भी संदर्भ खण्ड काव्य का कथ्य संदर्भ बन सकता है । वस्तुत: प्रयोगवादी कविता एवं नयी कविता की कथ्य भंगिमाओं का रूपांतरण उनके काव्य में दिखाई देता है । यहाँ साठोत्तरी कविता के संबंध में कहा गया कथन उल्लेखनीय है — "साठोत्तरी कविता का कथ्य आत्म संवेदन अथवा सेक्स न होकर आत्म विस्फोट है जो कि उपेक्षा, दमन और नाण्य सहने से उपजा है ।

---

1. उन्मेष - पत्रिका - सविता गुप्ता - पृ. 10.

समीक्ष्य खण्ड काव्यों में कथ्य की व्यापकता का समग्र चित्रण प्रस्तुत किया गया है। उन्होंने प्रसिद्ध पौराणिक कथावृत्तों से सूत्र रूप में संकेतों को लेकर व्यापक भावबोध के साथ अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया है। इन्हीं सार्थकताओं के अनुरूप कथ्य की पहचान एवं पकड़ भी समीक्ष्य काव्यों में है। प्रस्तुत रचनाओं का कथ्य कवि की मानसिकता के अनुरूप स्वस्थ रूप धारण किया है। ये कथ्य संदर्भ निश्चय ही वर्तमान के यथार्थ से साक्षात्कार कराते हैं। यद्यपि समीक्ष्य काव्यों में कथ्य-चयन पौराणिक एवं ऐतिहासिक स्रोतों से हुआ है। मिथकीय कल्पना के सहारे उन पौराणिक प्रसंगों को आधुनिक संदर्भों में प्रस्तुत किया है। इसमें प्रसंगानुसार अनेक मौलिक कल्पनाएँ की गयी है।

यहाँ मिथकीय कथास्रोतों का चयन एवं आधुनिक जीवन सम्बन्धी विषयों के माध्यम से कथ्यगत विशेषताओं को स्पष्ट किया गया है।

2· आख्यानक काव्य : मिथकीय स्रोत :-

आधुनिक दृष्टि और संवेदना के विकास के साथ मूल्यगत संक्रमण और विघटन की प्रक्रिया ज्यों-ज्यों तीव्र बनती आई त्यों-त्यों नये कवि के लिए पुराने मूल्यों और आदर्शों के साथ तादात्म्य स्थापित कर सकना कठिन होता गया। अतः नये कवियों ने इतिहास और पुराण में पुनरुत्थानवादी कवियों की भाँति

सांस्कृतिक गौरव की खोज नहीं की, बल्कि पुरानी कथा में " वस्तु " में | दृष्टि और सम्वेदना की | नवीनता लाने, उसके माध्यम से युग की जटिल स्थितियों को परिभाषित करने का उपक्रम किया है । डा॰ महावीर सिंह चौहान ने काव्य में पुराकथाओं की उपयोगिता की सार्थकता को स्वीकार करते हुए कहा है कि —
" इनके माध्यम से कवि अ ने जीवनानुभवों को एक सुविधा जनक दूरी पर स्थापित कर अपनी संवेदना और बोध अपेक्षाकृत अधिक निर्वैयक्तिक तटस्थता के साथ परिभाषित कर सकता है । यही कारण है कि व्यक्ति और समाज जीवन में व्याप्त घुटन, कुण्ठा, संदेह और दिशाहीनता की मन: स्थितियों की व्यंजना के लिए नये कवियों ने इतिहास और पुराण के उन कथा प्रसंगों का सहारा लिया जो एक भिन्न संदर्भ में इसी प्रकार की मन:स्थितियों की व्यंजना करते हैं । "[1] इस दृष्टि से नरेश मेहता ने अपने खण्ड काव्यों की रचना मिथकीय आधार पर की है । " संशय की एक रात ", " महाप्रस्थान ", " शबरी " और प्रवादपर्व सभी खण्डकाव्यों में मिथक का आधार लिया है । अपने पंचम काव्य " प्रार्थनापुरुष " को भी मिथक का रूप देते हुए उसके औचित्य के बारे में काव्य की पृष्ठभूमि में स्पष्ट किया है । स्थूल रूप से इन आख्यानक काव्यों को तीन भागों में विभक्त करके उसका विवरण प्रस्तुत किया जा सकता है —
1· रामाख्यानक काव्य 2· महाभारताख्यानक काव्य 3· ऐतिहासिकाख्यानक काव्य ।

2·1· रामायणाख्यानक काव्य :-

रामायण, महाभारत तथा अन्य पौराणिक वाङ्‌मय ऐसे आकार ग्रन्थ हैं जो निरन्तर भारतीय साहित्य को प्रभावित करते रहे हैं । उनमें भी रामाख्यान का परवर्ती काव्यों पर प्रभाव की दृष्टि से और भी महत्व रहा है ।

1· नयी कविता की प्रबन्ध चेतना - डा॰ महावीर सिंह चौहान - पृ॰ 68·

प्राचीनकाल तथा मध्यकाल में रामायणाख्यान से प्रभावित काव्यों का प्रचुर प्रमाणरहा है उसमें भी आधुनिककाल में अत्यधिक काव्य लिखे गये। इसका मुख्य कारण प्राचीन संस्कृति के माध्यम से राष्ट्रीय पुनरुत्थान करना तथा प्राचीन संस्कृति को पुन: स्थापित करना है।

नरेश मेहता कृत " संशय की एक रात ", शबरी और प्रवादपर्व रामायणाख्यानक काव्य के अंतर्गत आते हैं। इसमें कवि ने प्राचीन संस्कृति की युगानुरूप व्याख्या करने के लिए परंपरागत कथानक में पर्याप्त परिवर्तन किया है। काव्य में अनेक नवीन मौलिक उद्भावनाओं के द्वारा युग को विभिन्न समस्याओं का चित्रण किया है। जो युग बोध करनेमें सक्षम है। इन काव्यों के कथा स्रोतों के चयन की दृष्टि से कवि ने अपने-आप को वाल्मीकीय रामायण और तुलसीदासकृत रामचरित मानस का ऋणी मानते हैं। फिर भी उन्हें आधुनिक संदर्भ में प्रस्तुत किया है।

" संशय की एक रात " राम काव्य परम्परा में नवीन कोटि का काव्य है। नरेश मेहता ने वाल्मीकि रामायण के सेतुबन्ध[1] और युद्ध के बीच की एकरात को अपनी कथा का स्रोत बनाया है। इस काव्य का मुख्य विषय युद्ध और शान्ति से सम्बन्धित है। प्राचीन कथा में कवि ने अपनी उर्वर कल्पना शक्ति से अनेक मौलिक प्रसंगोद्भावनाएँ की है। यथा —

रावण से राम के युद्ध के पूर्व संशय की स्थिति। जटायु और दशरथ जैसे मृतकों के अवतरण की उद्भावना को कवि कल्पना मान सकते हैं। इस सम्बन्ध में स्वयं नरेश मेहता का कथन है - " एक विशेष भाव एवं निवारण

1· श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण - युद्धकाण्ड - चतुर्थ: सर्ग - पृ· 1057

के लिए द्वितीय सर्ग में हेमलेट की शैली प्रयुक्त की गई है । "[1] युद्ध से पूर्व राम का संशय इससे पूर्व किसी भी रामाख्यानक काव्य में उपलब्ध नहीं है । इसी प्रकार लक्ष्मण, नील, जामवंत, हनुमान, विभीषण तथा सुग्रीव आदि के द्वारा राम को युद्ध का दर्शन सुनाना भी राम के मिथक में नवीन विकास की आधुनिक कड़ी है । राम-रावण युद्ध समष्टि की कल्याण कामना बना डालना भी मिथक का आधुनिक विकास है ।

" शबरी " काव्य का कथास्रोत वाल्मीकीय रामायण के अरण्यकाण्ड के राम द्वारा " शबरी उद्धार प्रसंग " से लिया गया है[2] । इस परंपरागत प्रसंग को नवीन रूप में प्रस्तुत किया गया है ।

" शबरी " के आख्यानक काव्य को आज के प्रगतिशील आदिवासी संस्कृति, अछूतोद्धार, अस्पृश्यता, हरिजन कल्याण, समाज सेवा और मानव विकास की दृष्टि से युगानुकूल प्रस्तुत किया गया है । कवि शबरी के माध्यम से सामाजिक रूढ़ियों और परम्पराओं का विवेचन उनकी उपयुक्त स्थिति के अंतर्गत व्यक्त करना चाहता है । वर्ग मुक्ति का संघर्ष काव्य का मुख्य विषय रहा । काव्य में वैचारिक उर्वरता और आत्मिक विकास के माध्यम से जन्मगत निम्नवर्गीयता को उर्वरता प्रदान की गयी है । पुराख्यान कथा के माध्यम से कवि द्वारा प्रयुक्त नवीन मौलिक उद्भावनाओं को यों स्पष्ट कर सकते हैं:—

नरेश मेहता कृत शबरी में शबरी का घर
परिवार का त्याग
मतंग ऋषि के आश्रम में जाना

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - शीर्षग्रन्थ से उद्धृत

2. श्रीमद्‌वाल्मीकीय रामायण — अरण्यकाण्ड — श्लोक - 1-35
पृ- 664-66

अन्य तपोवासियों द्वारा उसका तिरस्कार आदि अनेक नवीन कल्पनाएँ मिलती हैं।

शबरी काव्य में राम का स्वागत स्वयं मतंग करते हैं।[1]

वाल्मीकीय रामायण में राम के आगमन के पहले ही मतंग मंत्रोच्चारण पूर्वक अपनी देह रूपी पंजर को अग्नि में होम करते हैं।[2]

कवि के द्वारा लोक प्रचलित प्रसंगों एवं विश्वासों को काव्य में स्थान दिया गया है।

उनके काव्य में शबरी द्वारा राम को जूठे बेर खिलाने का प्रसंग है।[3]

वाल्मीकीय रामायण और रामचरितमानस में कहीं भी ऐसा प्रसंग नाम मात्र के लिए भी नहीं है।

वाल्मीकीय रामायण में उल्लेख है कि शबरी ने राम के लिए पंपातट के फलमूल जिसका उसने संचय किया था तथा पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय आदि सब से उनका स्वागत एवं सत्कार किया —

पाद्यमाचमनीयं च सर्वं प्रादात् यथाविधि
तामुवाच ततो रामः श्रमणीं धर्मसंस्थिताम् ।।[4]

ऐसे ही रामचरितमानस में शबरी रसीले कन्द-मूल फलादि को लाकर राम को समर्पित करती हैं। भगवान बारम्बार उनके स्वाद की बड़ाई करते हुए उन्हें प्रीतिपूर्वक खाते हैं।[5]

---

1. शबरी – नरेश मेहता – पृ॰ 68॰
2. वाल्मीकीय रामायण – अरण्यकाण्ड – श्लोक – 22 – पृ॰ 665
3. शबरी – नरेश मेहता – पृ॰ 78
4. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण – अरण्यकाण्ड – श्लोक – 7 – पृ॰ 665
5. रामचरितमानस – अरण्यकाण्ड – श्लोक – पृ॰ 38॰

"प्रजादर्पण" की कथा का मूलाधार वाल्मीकीय रामायण है। "पुरवासी द्वारा सीता के चरित्र पर आरोप लगाना तथा राज्य से सीता का निष्कासन"[1] सम्बन्धी घटनाओं को कथा स्रोत के रूप में प्रजादर्पण में लिया गया है। वाल्मीकीय रामायण में भद्र द्वारा राम के सम्बन्ध में पुरवासियों के बीच की चर्चा इस प्रकार है —

"कीदृशं हृदये तस्य सीतासम्भोगजं सुखम् ।
अङ्कमारोप्य तु पुरा रावणेन बलाद्धृताम् ।।
लङ्कामपि पुरा नीतामशोकवनिकां गताम् ।
रक्षसां वशमापन्नां कथं रामो न कुत्स्यति ।।
अस्माकमपि दारेषु सहनीयं भविष्यति ।
यथा हि कुरुते राजा प्रजास्तमनुवर्तते ।।"[2]

अर्थात् उनके हृदय में सीता-सम्भोगजनित सुख कैसा लगता होगा? पहले रावण ने बलपूर्वक गोद में उठाकर उनका अपहरण किया था, फिर वह उन्हें लंका में भी ले गया और उसने वहाँ अन्तः पुर के क्रीड़ा-कानन अशोकवाटिका में रक्खा। इसप्रकार राक्षसों के वश में होकर वे बहुत दिनों तक रहीं तो भी श्रीराम उनसे घृणा क्यों नहीं करते हैं। अब हम लोगों को भी अपनी स्त्रियों की ऐसी बातें सहनी पड़ेंगी, क्योंकि राजा जैसा करता है, प्रजा भी उसी का अनुकरण करने लगती है।

---

1. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण - उत्तरकाण्ड - श्लोक - 1 - 25
पृ. 1568 - 71.

2. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण - अरण्यकाण्ड - श्लोक - 17-19
पृ. 1568.

यहाँ पर पुरवासियों का आरोप अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का प्रतीक बन गया है। नरेशमेहता कृत प्रवादपर्व में पुरवासियों की जगह एक धोबी की कल्पना की गयी है। यह धोबी अनाम साधारणजन की अभिव्यक्ति का रूप है। सम्पूर्ण काव्य पौराणिक कथा के एक संक्षिप्त संकेत को लेकर आधुनिक जनवादी चेतना का काव्य बन गया है।

2·2· महाभारताख्यानक काव्य :-

महाभारत भारतीय मनीषा का एक ऐसा अनुपम कोष है जिसमें सनातन जीवन मूल्यों के साथ-साथ व्यावहारिक वृत्तियों का भी अद्भुत सम्मिश्रण दिखाई देता है। यह धर्म, नैतिकता तथा कर्मयोग के साथ-साथ मानव नियति के अवरोहण का महापुराण भी है। महाभारत के प्रभाव का क्षेत्र स्थूल अनुकरण से लेकर सूक्ष्म आनन्दमयी प्रेरणा तक है।

नरेश मेहता कृत "महाप्रस्थान" महाभारताख्यान से सम्बन्धित है। कथात्मक विनियोजन की दृष्टि से कवि व्यास का ऋणी है। महाभारत के महाप्रस्थानिक पर्व के दूसरे अध्याय के 29 वें श्लोक तक की कथा "महाप्रस्थान" के कथा स्रोत के रूप में रही है।[1] महाप्रस्थान के समस्त कथ्य के मूल में युद्ध के साथ राज्य, राज्य-व्यवस्था तथा उस व्यवस्था के दर्शन की अमानवीय प्रकृति भी विद्यमान है। काव्य में महाभारतीय कथा के स्वर्गारोहण की घटना को समकालीन यथार्थ-बोध से सम्बद्ध कर नयी अर्थवत्ता देने का प्रयास किया गया है। कवि ने कथ्य चयन में मौलिक कल्पना-शक्ति का समाहार करते हुए मिथक का नवीन विकास किया है तथा कथ्य को प्रासंगिक बनाया है। इस दृष्टि से निम्नलिखित कथा बिन्दु उल्लेखनीय हैं —

1· महाभारत - महाप्रस्थानिक पर्व - द्वितीय अध्याय - श्लोक - 1-29·

महाप्रस्थान में अर्जुन-द्रौपदी के स्मृति चित्रों के माध्यम से पूर्व घटित घटनाओं का संकेत है ।

युद्धोपरांत अश्वत्थामा-द्रौपदी का वार्तालाप तथा भीम-अर्जुन-युधिष्ठिर के बीच राज्यव्यवस्था पर प्रश्नोत्तर है ।

महाभारतीय कथ्य के विपरीत द्रौपदी आर्तनाद सुनकर अर्जुन का गाण्डीव त्याग-प्रसंग कवि-कल्पना प्रसूत है । महाभारत में अर्जुन ऊर्ध्वगमन से पूर्व गाण्डीव त्याग करते हैं ।

अन्तिम सर्ग स्वान के प्रति देवताओं की अपेक्षा तथा युधिष्ठिर द्वारा स्वर्ग - आरोहण से पूर्व स्पष्टीकरण भी मौलिक प्रसंगोद्भावना है ।

2·3· ऐतिहासिकाख्यानक काव्य :-

ऐतिहासिकाख्यानक काव्यों में वर्तमान के साथ इतिहास की महानता को स्पष्ट किया जाता है । इस दृष्टि से नरेश मेहता कृत " प्रार्थनापुरुष " प्रमुख ऐतिहासिक तथा राष्ट्रीय काव्यों के कोटि के अंतर्गत आते हैं । इसमें गांधीजी के जीवन से लेकर मृत्यु तक तथा भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन से सम्बन्धित इतिहास प्रसिद्ध अनेक घटनाओं का वर्णन किया गया है । इस दृष्टि से इतिहास की उन प्रसिद्ध घटनाओं को इस काव्य का मिथक मान सकते हैं । कवि ने गांधीजी को मिथक मानते हुए स्वयं इस प्रकार कहा है — " कल तक गांधी हमारे साथ इतिहास में चल रहे थे, और आज वह हमारी स्मृति है । कुछ काल बाद यह स्मृति ही श्रुति बन जायगी और तब श्रुति को मिथक बनते क्या देर लगेगी । यह मिथकत्व ही समग्रता है । गांधी मिथक निश्चय ही

बनेंगे और तब उनका दैनन्दिन कार्य-व्यापार, नगण्य को विराट बना देने की प्रतिभा - घटना, इतिहास और प्रतीक के छोटे-छोटे क्षितिजों को लाँघकर मात्र " लीला " बन जायेंगे । .. जिस प्रकार राम, कृष्ण, बुद्ध और ईसा प्रत्येक क्षण संवत्सर बनकर मनुष्य मात्र में घटित होते हैं । उसी प्रकार गाँधी भी घटित होंगे । " [1]

इस तरह कवि ने अपने आख्यानक काव्यों का कथा स्रोत पुराख्यानक काव्यों एवं मिथकीय कथा प्रसंगों से लिया है । किन्तु उनकी प्रस्तुति आख्यानात्मक न होकर युगीन संवेद्य है । कथ्य की दृष्टि से समीक्ष्य खण्डकाव्यों की सफलता का यही उल्लेखनीय बिन्दु है ।

3. मिथक एवं युगबोध :-

युग निदर्शन समकालीन साहित्यिक संरचना की सर्वोत्तम उपलब्धि है । यद्यपि प्रत्येक युग का साहित्य युगीन चेतना का प्रतिफलन होता है तथापि समकालीन साहित्य युगीन सम्प्रेषणाओं से सम्बद्ध है । " बोध के स्तर पर युग की अभिव्यक्ति एवं समुन्नत भावबोध का प्रतिफलन ही युगबोध है । " [2] यह बहुत व्यापक शब्द है जिसकी परिधि में राजनीतिक, सामाजिक धार्मिक नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों तथा प्रतिमानों से जुड़ा समस्त चिन्तन प्रतिफलित हो जाता है । धर्म, दर्शन, संस्कृति एवं कला, मनोविज्ञान, विज्ञान, समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, इतिहास, भूगोल आदि समस्त ज्ञानानुशासनों के समन्वित वैचारिक आदान से युगबोध प्रतिफलित होता है । कला कला के लिए अथवा कला जीवन के लिए किसी भी सार्थकता

---

1. प्रार्थनापुरुष - नरेश मेहता - शीर्षबन्ध
2. नयी कविता के प्रबन्ध काव्य शिल्प और जीवनदर्शन - डा.उमाकान्त गुप्त पृ. - 335.

से अनुप्रेरित रचनाकार युगचित्रण की उपेक्षा नहीं कर सकता । आदर्शवाद, यथार्थवाद, मानववाद, समाजवाद, व्यक्तिवाद और साम्यवाद आदि से सम्बद्ध प्रवृत्तियाँ युगबोध में ही अन्तर्ग्रथित है जो साहित्यकार की युगबोधीय प्रतिबद्धता का ही प्रमाण है । [illegible] है । किसी भी रचना की सोद्देश्यता, प्रासंगिकता एवं संदर्भिकता की सही कसौटी युगबोधक प्रवृत्तियाँ ही है । कोई भी काव्य कृति युग-निदर्शन के कारण ही कालजयी हो सकती है ।

नरेश मेहता के खण्डकाव्यों में युगबोध का स्पष्ट निरूपण हुआ है । विभिन्न युगीन समस्याओं का निरूपण युगबोध का सशक्त आयाम है । कवि अपने काव्यों के द्वारा युगीन जीवन के अनेक ज्वलन्त प्रश्नों एवं समस्याओं से संवेदना के स्तर पर जूझते हुए दिखाई पड़ता है । आज युद्ध का आतंक युग की सर्वप्रमुख समस्या बन गई है । अभी तक हमारा देश तीन युद्धों तथा दो विश्व युद्धों के परिणामों को भोग चुका है । आज सारा युग पुन: तृतीय विश्व युद्ध की आशंका से भयभीत हो रहा है । कवि भी एक सामाजिक प्राणी है । वह भी अपने युग के ऐसी यौद्धिक विभीषिकाओं के परिणामों को स्वयं भोग चुका है । ऐसी दशा में परिस्थितियाँ उन्हें अवश्य खिन्न बनाती है । फलत: वह चेतना के एक स्तर से आगे बढ़कर प्रशमन से समस्याओं का समाधान ढूँढने का प्रयत्न करता है । कवि ने "संशय की एक रात" में राम के माध्यम से युद्ध एवं शान्ति के प्रश्न को उठाया है । राम के अनुसार युद्ध ही शान्ति स्थापना के लिए एक मात्र उपाय नहीं हो सकता, सोचने से अन्य उपाय भी हो सकते हैं । राम का मन युद्ध के परिणामों की चिन्ता से पीड़ित हो रहा है । राम युद्ध की अनिवार्यता को भली-भाँति जानते हैं । फिर भी वह अपने युग को इसके दूसरे उपाय सोचने के लिए बाध्य करते हुए हनुमान से इस प्रकार कहते है कि —

" हनुमतवीर ।
युद्ध की अनिवार्यता को जानता हूँ
अपने से अधिक
इन पुष्ट्जन को मानता भी हूँ
किन्तु
इस युद्ध के उपरान्त
होगी शान्ति
इसका तो नहीं विश्वास ।
बन्धु !
यह युद्ध
सम्भव है अनागत युद्ध का कारण बनें । [1]

राम के अनुसार वैयक्तिक स्वार्थों के लिए अथवा सत्ता के व्यामोह में पड़कर जनमत के विरुद्ध युद्ध करना उचित नहीं है । यह मानवता के विरुद्ध कार्य है । इसी विश्वास ने राम को युद्ध से विमुख बना दिया है । " संशय की एक रात " में राम का सारा संशय इसी बात को लेकर है । वह अपने परिजन एवं पुरजनों के दुःखों के लिए स्वयं को जिम्मेदार मानते हैं अब युद्ध के द्वारा युगीन दुःखों के कारण नहीं बनना चाहते हैं । युद्ध को अस्वीकार करने की अपनी विवशता के बारे में राम लक्ष्मण से इस प्रकार कहते हैं —

लक्ष्मण !
राम की इस विवशता को
सोच सकते हो ?

x x x x

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 66.

व्यक्ति का वनवास
परिजन और पुरजन के लिए
अभिशाप क्यों बन जाय ?
व्यक्तिगत मेरी समस्याएँ
क्यों ऐतिहासिक कारणों को जन्म दें ? [1]

कभी-कभी अनुभूत तथ्य काव्य के माध्यम से व्यक्त होता है । आपत्-काल में भाषा की स्वतन्त्रता की समस्या युगबोध का सर्वाधिक महत्वपूर्ण विषय रहा है । "प्रवादपर्व" में इस समस्या को राम के माध्यम से उठाया गया है । सम्पूर्ण सृष्टि में बोलने की या अपने को अभिव्यक्त करने की शक्ति केवल मनुष्य के पास है । मनुष्य भाषा के माध्यम से अपने को अभिव्यक्त करता है । सारी सृष्टि मनुष्य के माध्यम से अभिव्यक्त होती है । व्यक्ति के अभिव्यक्ति को बन्द किया जाय तो सृष्टि और भी जड़ हो जाती है । इसलिए ही मनुष्य का भाषाहीन होना सृष्टि का ईश्वरहीन होने का पर्याय बन जाता है । फलत: सारी सृष्टि भी अभिव्यक्तिहीन हो जाती है । जड़ता सम्बोधनहीनता का प्रतिरूप हो जाती है । इस प्रकार कवि राम के द्वारा युगबोध कराया है । राम के माध्यम से किसी भी दशा में व्यक्ति को भाषाहीन नहीं होने का समर्थन किया है । साथ ही यह भी घोषित किया गया कि विपरीत परिस्थितियों में जब व्यक्ति की भाषा तथा बोलने के अधिकार को भंग करने का प्रयत्न किया जाय तो उसका विरोध सारी सृष्टि के माध्यम से अवश्य होगा । इसलिए वे व्यक्ति स्वातंत्र्य को हरानेवाली व्यवस्थाओं का विरोध करते हैं । राम व्यक्ति को भाषाभिव्यक्त करने का अधिकार देने का समर्थन करते हैं । उसकी स्वतन्त्रता की रक्षा करना हरेक का कर्तव्य मानते हैं । वे लक्ष्मण से भाषाभिव्यक्ति के स्वातंत्र्य के बारे में इस प्रकार कहते हैं कि —

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 19 - 20.

" मनुष्य का भाषाहीन हो जाना
सृष्टि का
ईश्वरहीन हो जाना होगा लक्ष्मण !
ये सारे मन्त्र
ये सारे काव्य
ये पुराण, ये उपनिषद
ये इतिहास, ये उपाख्यान
सब सम्बोधनहीन हो जायेंगे
जिह्वाहीन हो जायेंगे लक्ष्मण !
जड़ता
सम्बोधनहीनता ही तो है । [1]

कवि का युगबोध इन बातों से और भी स्पष्ट होता है । वे राम के माध्यम से मनुष्य के बोलने की स्वतन्त्रता पर बल देते हैं । राम के अनुसार - लोकतंत्र हो या किसी प्रकार के राज्य में व्यक्ति के इस अधिकार की रक्षा अवश्य होनी चाहिए । व्यक्ति से इस अधिकार को कुचलकर कोई भी राज्य अधिकार में अधिक दिन नहीं रह सकता । इसलिए व्यक्ति को गूँगे बनकर मौन रहने के बदले उनको जो चाहे वह बोलने का अधिकार होना देश के भविष्य के लिए आवश्यक है । जिसदिन मनुष्य अभिव्यक्तिहीन हो जाता है वह दिन राज्य के लिए अवश्य दुर्भाग्यपूर्ण दिन होगा । इस बात की पुष्टि करते हुए राम लक्ष्मण से इस प्रकार कहते हैं —

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 52.

लक्ष्मण !
मौन से कहीं श्रेयस है
वाचालता ।
जिस दिन
मनुष्य अभिव्यक्ति हीन हो जाएगा
वह सबसे अधिक
दुर्भाग्यपूर्ण दिन होगा ।[1]

युगाभिव्यक्ति (युगबोध) में जहाँ संशय बोध को महत्व दिया गया है वहाँ अपमान बोध को भी । इन दोनों का प्रतिफलन प्रतिशोध के रूप में युद्ध (संघर्ष) है । कवि की विशिष्टता यहाँ स्पष्ट होती है कि वे जहाँ प्रचलित (स्थूल-बाह्य) युद्ध की स्थिति के बारे में जितना उद्घाटन करते हैं वही प्रत्येक व्यक्ति के भीतर नित्य नैमित्तिक जीवन में प्रतिक्षण होनेवाले संघर्ष (आत्म-संघर्ष) को भी संश्लिष्ट धरातल पर प्रस्तुत करते हैं । ऐसी अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने मिथक का सहारा लिया है । कवि ने युगाभिव्यक्ति (युगबोध) के लिए युधिष्ठिर और भीम के संवाद का सहारा लिया है । इन दोनों के वार्तालाप से यह स्पष्ट होता है कि महाभारत युद्ध होना केवल आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी था क्यों कि प्रज्ञापुरुष युधिष्ठिर हरस्थिति से भली-भाँति परिचित थे । वह जितने प्रज्ञावान थे उतने ही समय के आगे विवश भी थे क्यों कि इस समय में वीरता का प्रदर्शन करने के लिए शस्त्रों की आवश्यकता नहीं होती । दूसरों के द्वारा हम पर होने वाले अत्याचारों को देखते हुए भी मौन रहना पड़ता है व्यक्ति की यह सहनशक्ति उनकी विवशता का उदाहरण नहीं है । युधिष्टर शकुनि तथा अन्य कौरवों के धूर्तता से परिचित थे ।

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 43.

वह चाहते हुए कृष्ण के अपमान को सहन नही किया है । एक प्रज्ञावान के रुप में वह मनुष्य में मानवता जागने के प्रतीक्षा में बैठे हुए है । युधिष्ठिर भीम से युगीन सत्य के बारे में इस प्रकार कहते हैं कि ---

" प्रत्येक समय
वीरता के लिए शस्त्र आवश्यक नहीं होता,

x x x x

सामने वाला यदि आवेग में
पशु हो गया हो
तो विवेक के रहते
प्रतीक्षा करो
उसके पुन: मनुष्य होने की । [1]

दूसरों से किया जानेवाला अन्याय एवं अत्याचारों को एक हदतक सह सकते हैं। प्रतीक्षा करने पर भी उनमें मानवता जागने की संभावना नहीं हो तो अवश्य उसका विरोध करना चाहिए ।

" महाप्रस्थान " की पृष्ठ भूमि में द्रोणाचार्य के माध्यम से कवि ने बहुत बड़े युग-सत्य का परिचय दिया है । द्रोणाचार्य को एक विवश पिता के रुप में वर्णित करके उस स्थिति के लिए राज्य को जिम्मेदार ठहराया है । द्रोणाचार्य समस्त शास्त्रज्ञता, पाण्डित्य और तेजस्विता के अधिकारी है फिर भी वह अपनी एक मात्र संतान को दूध तक देने की स्थिति में नही है ।

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 87.

अपनी दरिद्रता के आगे वह विवश हैं । आटे को ही दूध समझकर पीनेवाले बच्चे को देखकर दुःखित होनेवाले उनके पितृहृदय की कल्पना नहीं कर सकते हैं । एक साधारण को ही नहीं ऐसे प्रतिभावान व्यक्ति का घोर दारिद्रता से पीड़ित होना असहनीय हैं । इसलिए कवि राज्य-व्यवस्था की दुरवस्था का निन्दा करते हैं । यहाँ युधिष्ठिर अर्जुन से युगीन सत्य के बारे में इस प्रकार कहते हैं —

" कल्पना करो
उस हाहाकार की पार्थ !
जब पुत्र
आटे को ही
दूध समझकर पीता रहा होगा
तब उस विवश पिता के मन पर
क्या बीतती रही होगी अर्जुन !
असीम प्रतिभा
लेकिन घोर दारिद्र्य !!
इसके लिए कौन उत्तरदायी है पार्थ ? "[1]

कवि राज्य-व्यवस्था में निरंकुशता का खण्डन करते हैं क्यों कि ये व्यक्ति स्वातंत्र्य का अपहरण करती है । द्रोण और विदुर जैसे महात्माओं को भी विचारहीन बनाकर अपने अधीन रखती है । इसलिए ही राज्य - व्यवस्थाओं के निरंकुशता को कवि असहनीय सिद्ध करते हैं । वे युधिष्ठिर के माध्यम से राज्य व्यवस्था को मानवतावादी एवं समाजसेवी बनाना चाहते हैं ।

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 106 - 107.

उसके सामंती व्हाव, कुचक्र एवं षड्यन्त्र अमानवीय होते हैं। ऐसी राज्य व्यवस्था के स्वरूप के बारे में युधिष्ठिर अर्जुन से इस प्रकार कहते हैं —

अर्जुन ! जिस दिन राज्य-व्यवस्था ही
सम्पूर्ण समाज
और मानवता का
प्रतिनिधित्व करने लगेगी —
विश्वास करो
यह पृथ्वी
एक विशाल कारागार में परिणत हो जाएगी। [1]

"प्रार्थनापुरुष" में शासक और प्रजा की मानसिकता को व्यक्त किया गया है। सत्ता के सम्मुख जनता की सदाशयता की परीक्षा हर युग में होती रही है। निस्वार्थभाव से जनता उसके सम्मुख झुक भी जाती है। हरबार सत्ता अपने षड्यन्त्रों से व्यक्ति को तपाकर देखती है। व्यक्ति के लक्ष्य सिद्धि के सम्मुख अंत में उसे झुकना ही पड़ता है। इतिहास इसका साक्षी भी है। यहाँ गाँधी व्यक्ति नहीं, भारत के प्रतिनिधि है। देश को स्वतन्त्र करना उनका लक्ष्य था। वे सत्य और अहिंसा से सत्ता को समझाकर स्वतंत्रता पाना चाहते थे लेकिन सत्ता कोई भी हो व्यक्ति के आग्रह को कभी भी स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होती। ऐसी सत्ता और पीड़ित प्रजा का सम्बन्ध इस प्रकार था —

---

1. महा प्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 104.

" आकण्ठ सदाशय गाँधी की
सरकार परीक्षा लेती थी
झुकता था, पर निस्स्वार्थ हेतु
हर बार परीक्षा होती थी । [1]

शबरी काव्य में निम्न जाति को युगीन संदर्भ में देखा गया है । कवि के अनुसार किसी व्यक्ति का जातिगत भेद उसकी लक्ष्य सिद्धि में बाधक नहीं बन सकता । उसके मार्ग में अवरोध उत्पन्न करने वाली युगीन मानसिकता को कवि यहाँ स्पष्ट करते हैं - शबरी एक शबर जाति की स्त्री है । आध्यात्मिक पिपासा के कारण सारे बन्धनों को तोड़कर ऋषि मतंग के शरण में चली जाती है । निम्न जाति के स्त्री के द्वारा भक्ति के प्रति उच्च विचारों को सुनकर मतंग चौंक जाते हैं । ऐसी स्त्री को शिष्या बनाकर मतंग स्वयं को धन्य मानते हैं । आश्रम में मतंग के सिवा उसे कोई महत्व नहीं देना चाहते हैं । दिन-पर-दिन बढ़नेवाले उसके तेज से वे जल जाते हैं । अन्य लोग उसे आश्रम से निकाल देना चाहते हैं । जाति भेद को उठाकर उसके मार्ग में बाधा डालना चाहते हैं । यह हर युग की समस्या है । दूसरों के औन्नत्य को परीक्षा लिए बिना कोई समाज किसे स्वीकार करता है । युगीन सत्य को व्यक्त करते हुए कवि कहते हैं —

" पर किसको औ किस युग में
स्वीकार किया लोगों ने ?
हर तरह तपा कर देखा
है, युग ने औं लोगों ने । " [2]

1· प्रार्थना पुरुष - नरेश मेहता - पृ· 43·

2· शबरी - नरेश मेहता - पृ· 54·

इतना ही नहीं दूसरों का अपमान और बदनाम करना युग की साधारण सी बाते हैं। पीड़ा और दुःख देना लोगों के प्रिय साधन है —

" अपमान और बदनामी
तो मामूली बातें है
पीड़ा, दुःख देना, ये तो
लोगों की प्रिय बातें हैं। "।

इससे यह स्पष्ट होता है कि नरेश मेहता ने मिथकीय कथांशों के आधार पर युगबोध की सार्थक अभिव्यक्ति की है। रामायण, महाभारत तथा इतिहास के प्रसिद्ध पात्रों के द्वारा आधुनिक युग की सार्थक पहचान की है। पौराणिक पात्रों से सम्बन्ध रखकर भी मिथकों को प्रस्तुत करने की अपेक्षा युगीन संवेदना को व्यक्त करना कवि का लक्ष्य रहा है। वैयक्तिक, ... और सामाजिक जैसे विभिन्न धरातलों पर मानव की विसंगतियों एवं उसमें व्याप्त विरोधाभासों का मिथकीय धरातल पर विश्लेषित करना कवि का नवीन एवं सफल प्रयास रहा है। आगे के पृष्ठों में मिथकीय संदर्भ में युगीन सामाजिक और राजनीतिक मूल्यों को रेखांकित करने का प्रयत्न किया गया है।

3·1· मिथक की सामाजिक भूमिका :-

मिथक और समाज के बीच का सम्बन्ध बहुत पुरातन है। कोई समाज व्यक्तियों को सांस्कृतिक आधार पर जुटाकर अस्तित्व में आता है, अतः जीवनानुभूति और विश्वास का एक स्तर ऐसा होता ही है, जो सार्वभौमिक हो।

1· शबरी - नरेश मेहता - पृ· 54·

मिथक की सामाजिक भूमिका की परिधि और उसका प्रगतिशील स्वरूप अत्यन्त व्यापक है। मिथक हर समाज के विकास में सहायक होता है उसको निरंतर प्रगति की ओर ले जाती है। उसकी सामाजिक भूमिका केवल धार्मिक काण्डों तक सीमित न होकर समाज के विस्तृत परिधि में दिखाई पड़ती है। मिथक जीवन के हर क्षेत्र में है - धर्म, व्यापार, खेल-कूद, राजनीति, विज्ञापन, शिक्षा और प्रशासन तथा इत्यादि में। ये अन्त: कथन या भाषारूप है क्यों कि सभी भाषा रूप कुछ सम्प्रेषित करना चाहते हैं। अत: उन्हें मिथकों की जरूरत पड़ती है। भाषा व्यक्तिगत ही नहीं होती, इसलिए वे मिथक भी सामाजिक होती है। समाजशास्त्रीय आलोचना मिथकों का मूल्यांकन समाज विकास की पृष्ठभूमि में करती है और समाज की हर चीज से इनके बनते-बदलते रिश्तों को पहचानना चाहती है।

ब्रोनिस्ला मालिनोवस्की ने मिथक को सामाजिक चार्टर कहते हुए लिखा है - " मिथक पवित्र सामाजिक परंपराएँ हैं, जो वर्णनात्मक स्तर पर संस्कृति के भीतर मानवीय विश्वासों, क्रियानुष्ठानों तथा नैतिक आचरण की पद्धतियों का उद्घाटन करती है। प्रत्येक मिथक स्वाभाविक रूप में साहित्यिक अंतर्वस्तु है। वर्णनात्मक कथा का अर्थ भी साधारण मनोरंजन तथा अथवा व्याख्यात्मक वक्तव्य नहीं है।[1]

मिथकों के स्वरूप में पूर्वापेक्ष अधिक विविधता है, क्यों कि इनका इस्तेमाल कई तरह से तथा अलग-अलग सामाजिक वर्गों द्वारा जीवन के सभी क्षेत्रों में हो रहा है। आर्थिक विकास की पूँजीवादी योजनाएँ आज के सब से बड़े मिथक हैं। इनमें बढ़ते हुए विकास का यथार्थ दृष्टिगोचर होता है। योजनाओं

---

1. मिथक और आधुनिक कविता - शंभुनाथ - पृ. 56. से उद्धृत

को सामाजिक जीवन में इस प्रकार उपस्थित किया जाता है कि लगे कि खुशहाली आ रही है और उस के लिए मौजूद राजनैतिक व्यवस्था को मजबूत करने की जरूरत है । जनगणना और किसान रैली मिथक है, चुनाव एक मिथक है, प्रशासन, शिक्षा और कानून मिथक बनते जा रहे हैं । व्यावसायिक संस्थानों के विज्ञापन मिथकीय संकेतों में भरे पड़े हैं । जीवन में खोखली अमीरी के मिथक बढ़ते जा रहे हैं । शासक शोषक वर्ग इन अमीरों को अपने अंदाज में प्रस्तुत करता है, किन्तु जनता के बीच अमीरों का मिथक टूट रहा है । इसके संकेत चरमरा रहे हैं । शीघ्र ही चमत्कार होगा - धर्म की तरह ऐसा विश्वास प्रदर्शित करनेवाली राजनैतिक व्यवस्था को मिथकों का पतन जनसमाज में घटित होने लगा है । विज्ञान की वजह से जनता के विश्वासों का एकनया राजनैतिक रूप खड़ा हो रहा है, जो अपनी राष्ट्रीय परंपरा से जुड़कर यथार्थवादी संस्कृति के निर्माण की ओर बढ़ रहा है । जन जीवन में पैदा हुई इस खलबली मिथक कला में अभिव्यक्ति पा रहे हैं । चित्रकार मकबूल फिदा हुसेन अपने एक चित्र में अगर दुर्गा को अर्ध तानाशाह के वेश में उपस्थित कर इसका दृष्टांत उपस्थित करते है कि शासक वर्ग मिथकों का अपने स्वार्थ में कैसे इस्तेमाल करता है तो चित्रकला, साहित्य, संगीत, फिल्म और कृषक मजदूर संघों की आधुनिक संरचनाओं में नये-नये मिथक भी जनवादी स्तर पर अभिव्यक्त हो रहे हैं । ये मिथक जनता के हैं, इनके गहरे विश्वासों के सामाजिक कलारूप है, संरचनात्मक स्तर पर ये समाज की ऐतिहासिक पहचान में सहायक होते हैं । सब से बड़ी बात है कि ये हम लोगों से कुछ कहना चाहते हैं, अपने भीतर से कोई संदेश देना चाहते हैं । वस्तुतः प्रत्येक समाज में कल्पनात्मक लोककथा से " विज्ञान " की ओर एवं जादू से विज्ञान की ओर अपनी विकासशील ऐतिहासिक यात्रा में मिथकों के कलात्मक स्वरूप का अनुभव करता है । हमारा समाज इस अनुभव से गुजर रहा है ।

3·1·1· व्यष्टि एवं समष्टि का प्रश्न :-

नरेश मेहता मूलत: मानववादी जीवन मूल्यों के पोषक कवि हैं । उन्होंने अपने काव्यों में व्यष्टि प्रधान भावों को महत्व दिया है लेकिन बहुत कम मात्रा में । उन्होंने व्यक्तिगत जीवन मूल्यों का निराकरण करते हुए समष्टि मूलक जीवन दर्शन की प्रतिष्ठा की है । व्यष्टि एवं समष्टि की समस्या पर विचार करते हुए व्यष्टि को सदा समष्टि हित में निरत होने की प्रेरणा दी है । "संशय की एक रात" की पृष्ठ भूमि में भी यही समस्या उठायी गयी है । राम के सामने बारम्बार जो प्रश्न उठता है वह यही है कि - क्या सीता की मुक्ति सार्वजनिक हो सकती है ? वैयक्तिकता कब और किन परिस्थितियों में सार्वजनिक हो सकती है और यदि ऐसा नहीं होता तो क्या उस वैयक्तिकता को व्यक्तिगत तक ही रहने दिया जाए ? "[1] दूसरे शब्दों में व्यक्ति-मर्यादा और सार्वजनिक-आचरण की समस्या भी राम को संशय में डालती है । यह नितान्त आधुनिक समस्या है ।

"संशय की एक रात" में राम सीता की मुक्ति को वैयक्तिक समस्या मानते हैं । हनुमान, लक्ष्मण और जाम्बवंत आदि इसे सार्वजनिक समस्या मानते हैं । वे सीता की मुक्ति में ही सभी का कल्याण निहित मानते हैं । इस प्रकार अपनी वैयक्तिक समस्या अपने तक सीमित नहीं होने के कारण राम चिन्तित होते हैं । युद्ध के परिणामों की चिन्ता ही उनकी व्याकुलता का प्रधान कारण है । इसलिए वे भील और वानर आदि जातियों को युद्ध में दाखिल करना नहीं चाहते हैं । वह अपने परिजन और पुरजनों के दु:खों के लिए स्वयं को कारण मानते हैं।

1· संशय की एक रात - नरेश मेहता - भूमिका - पृ· 6·

अब युद्ध द्वारा राष्ट्र के विनाश का कारण बनना नहीं चाहते हैं। युद्ध के बिना ही सब कुछ साधना चाहते हैं। अपनी वैयक्तिक समस्या को समष्टि रूप देना नहीं चाहते हैं। इसके सम्बन्ध में राम लक्ष्मण से इस प्रकार प्रश्न करते हैं कि ---

" व्यक्तिगत मेरी समस्याएँ
क्यों ऐतिहासिक कारणों को जन्म दें ? "[1]

लेकिन रावण पीड़ित समस्त दक्षिणवासी युद्ध को अनिवार्य मानते हैं। वे अशोकवन की सीता को अपनी अपहृत स्वतंत्रता का प्रतीक मानते हैं। सीता की मुक्ति की समस्या समष्टि के स्वतन्त्रता से जुड़ी रहने के कारण उसे समष्टि समस्या माना गया है। इसलिए सीता की मुक्ति की आवश्यकता को स्पष्ट करते हुए हनुमान राम से इस प्रकार कहते हैं ---

" रावण अशोक वन की सीता
हम साधारण जन की अपहृत स्वतन्त्रता। "[2]

अंत में राम अपने वैयक्तिक संशय को दबाकर समष्टि के निर्णय के अनुसार चलने के लिए तैयार होते हैं। अतः सामूहिक दायित्व के निर्वाह के लिए राम द्वारा वैयक्तिकता का परिहार किया गया है।

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 20.
2. - वही - पृ. 64.

"प्रवादपर्व" में धोबी की अभिव्यक्ति को लेकर व्यष्टि एवं समष्टि समस्या पर विचार किया गया है। धोबी के द्वारा सीता की चरित्र मर्यादा पर शंका व्यक्त की गयी है। इससे केवल सीता के चरित्र मर्यादा पर कलंक लगनेवाले है न कि अन्य के। राम इसे व्यष्टि विरोधी प्रश्न मानते है न कि समष्टि के। सभासद और राम के बन्धुवर्ग इसे राष्ट्र विरोधी समस्या मानते हैं। राजपत्नी पर कलंक लगाना उन लोगों की दृष्टि में केवल अपराध ही नही राजद्रोह भी है। राम उनके अभिमत से असहमत नहीं होते। उनके अनुसार राजद्रोह राष्ट्र के विरोध में होता है न कि व्यक्ति के। वह अपनी वैयक्तिकता को त्याग कर राष्ट्र की अखण्डता को सुरक्षित रखना चाहते हैं। लेकिन अपनी वैयक्तिकता के विरोधी प्रश्न को सामूहिक रूप नहीं देना चाहते। वह अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए समष्टि का गला घोंटना नही चाहते। वह स्वयं या सीता को राष्ट्र नही मानते। वह राजा को केवल अधिपति मानते है न कि राष्ट्र। इसलिए धोबी की शंका को अपनी वैयक्तिकता से जुड़ी हुई मानते हैं न कि राष्ट्र से। वह धोबी के विश्वास को राजद्रोह मानना नहीं चाहते हैं। अतः वे राज्य के सभी सदस्यों को सम्बोधन करते हुए इस प्रकार कहते हैं —

"महानुभावों

x x x

यह राजद्रोह कैसे है ?
राजद्रोह
व्यक्ति के विरुद्ध होता है या
राष्ट्र के ?
क्या मन्त्री-परिषद का अभिमत है कि

मैं या सीता राष्ट्र हैं ?
नहीं —
अधिपति होने का अर्थ
राजा तो है
पर राष्ट्र नहीं । "[1]

इस प्रकार राम अपनी वैयक्तिकता के प्रति उठायी गयी इस समस्या को वैयक्तिक तक सीमित रखने में ही समष्टि की भलाई मानते हैं। राम अपनी वैयक्तिकता को त्याग करना चाहते हैं। इसलिए धोबी के माध्यम से अभिव्यक्त हुए सामूहिक विश्वास की रक्षा करना चाहते हैं। इसलिए एक अधिपति के विरुद्ध प्रजा के द्वारा अभिव्यक्त विश्वास को राजद्रोह मानकर दण्ड देना नहीं चाहते हैं। राजा होने के नाते अनाम प्रजा की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझते हैं।

सीता भी राम के समान व्यष्टि से ज्यादा समष्टि को महत्त्व देती है। धोबी की शंका को अपनी वैयक्तिक समस्या मानती है। वह धोबी की तर्जनी को सामूहिक अभिव्यक्ति का प्रतीक मानती है। अपने पर आरोपित कलंक की परवाह करके भी समष्टि मूल्यों की रक्षा के लिए अपनी वैयक्तिकता को होम करना चाहती है। अगर सभासद, मंत्री और बन्धुओं द्वारा उस धोबी के साथ अन्याय हो रहे हैं तो अपना तथा राज्य तक त्याग कर राम को उस अकेले व्यक्ति के पक्ष का समर्थन करने के लिए कहती है। वह राज्य, न्याय और सत्य की सर्वोच्चता को स्वीकार करती है। इसलिए उन सभी के निर्णय को स्वीकारना चाहती है। वह सदा अपनी ओर से आश्वस्त होकर प्रजा पक्ष का समर्थन करने के लिए राम को प्रोत्साहन देती है। वह अपनी आसन्न मातृत्व के संकट स्थिति में भी राम की राज्य-गरिमा और अपनी चरित्र-मर्यादा के लिए

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 97 - 98.

किसी प्रकार की भी परीक्षा देने के लिए तैयार होती है ।[1] वह समष्टि मूल्यों की रक्षा के लिए वैयक्तिकता को त्यागने के लिए तैयार होती है । अंत में सीता राम से यहाँ तक कहती हैं कि

" साधारणता के इस नारायण को
आर्यपुत्र !
न्याय के प्रतिनारायण की अपेक्षा है
और
मुझे भी ! ! "[2]

" महाप्रस्थान " में अर्हता जैसे महान लक्ष्य से जुड़कर सारी सामूहिकता-वैयक्तिकता में परिणत होने की स्थिति का परिचय दिया गया है । पांडव भौतिक रूप से उस संसार को त्याग कर " महाप्रस्थान " की यात्रा में निकले हैं। मानसिक रूप में अभी भी पूर्ववासनाएँ उनमें शेष हैं । द्रौपदी भी उस सांसारिकता से ऊपर नहीं उठ सकी है । इसलिए वह बार-बार हिम में गिर पड़ रही है तथा अपनी रक्षा के लिए पार्थ तथा अन्यों को पुकारती है । उन सब में युधिष्ठिर ही ऐसे व्यक्ति है जो उस सांसारिकता से ऊपर उठ चुके हैं । वह द्रौपदी से अर्हता के वास्तविक उद्देश्य के बारे में विवरण देते हुए कहते है कि - अर्हता की स्थिति तक पहुँचने के बाद सारी सामूहिकता वैयक्तिकता में परिणत हो जाते हैं । सांसारिक भाव से ऊपर उठकर अर्हता की ओर बढ़नेवालों में सामूहिक भावों को स्थान नही होता । क्योंकि अर्हता में सारी सामूहिकता

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 81.
2. - वही - पृ - 81

वैयक्तिकता में परिणत हो जाती हैं । इसलिए आगे बढ़ने वाले पार्थ या अन्य को पीछे बुलाना व्यर्थ है । ऊर्ध्वता से ऊर्ध्वतम तक चलनेवालों में सामूहिकता के लिए स्थान नही होते । युधिष्ठिर द्रौपदी से ऐसी स्थिति का परिचय देते हुए कहते हैं कि ---

" पार्थ
या किसी को पुकार कर क्या होगा ?
ऊर्ध्वता पर पहुँचकर
सारी सामूहिकता
वैयक्तिकता में परिणत हो जाती है । " 1

" शबरी " में धार्मिक आचरण की समस्या को लेकर व्यष्टि एवं समष्टि धरातल पर विचार किया गया है । मतंग के आश्रम में यज्ञ, याग, तपस्या, आत्मोन्नति और आध्यात्मिक साधना जैसे धार्मिक कृत्यों को समाज के उच्च वर्गों तक ही सीमित माना गया है । शबरी निम्न जाति की स्त्री होने के कारण उसको भगवान के आराधना योग्य नही मानते हैं । इसलिए शबरी जैसे निम्न धरातल पर फैला हुआ साधारण स्त्री के माध्यम से इस समस्या को समष्टि रूप दिया गया है । शबरी की व्यष्टि मानस में उठी यह समस्या सामूहिक आचरण पर प्रश्न चिह्न बन गयी है । वह धर्म पर सामूहिक अधिकार होना चाहती है । उसे किसी वर्ग या व्यक्ति तक सीमित नहीं होना चाहती है । वह भगवान को सभी के लिए समान मानती है । उनकी आराधना को सीमित नहीं मानती है । शबरी उच्चवर्णवालों के मिथ्यावादिता का खण्डन करती है । वह आत्मोन्नति की समस्या के बारे में मतंग ऋषि से इस प्रकार प्रश्न करती है ---

---

1· महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ· 65·

" क्या आत्मा की उन्नति केवल
है उच्च वर्ग तक ही सीमित ?
प्रभु तो हैं सबके पिता, भला
उनका आराधना क्यों सीमित ? " [1]

" प्रार्थनापुरुष " में सत्य और अहिंसा के वैयक्तिक आचरण द्वारा सामूहिक कल्याण संभव माना गया है । गाँधीजी ने देश की स्वाधीनता के लिए चलायेवाले आन्दोलनों में पूर्ण अहिंसा और सत्याग्रह को प्रमुख स्थान दिया है। उन्होंने अंग्रेजों के दानवता का पूर्ण रूप से पराभव करने के लिए इन्हें उत्तम साधन मानते हैं । जैसे -

" पूर्ण अहिंसा औ " सत्याग्रह
से विरोध है सम्भव,
यही मार्ग है जिससे
दानवता का पूर्ण पराभव । " [2]

गाँधीजी के इस अहिंसा सिद्धान्त ने देश के बहुत लोगों को प्रभावित किया है । रामधारी सिंह " दिनकर " के मतानुसार - " गाँधीजी से पूर्व किसी ने भी समष्टि के धरातल पर अथवा कोटि-कोटि जनव्यापी महा आन्दोलनों के भीतर से अहिंसा का प्रयोग नही किया था । गाँधीजी ने यह प्रयोग किया और उनके प्रयोग से संसार के असंख्य लोगों में यह आस्था उत्पन्न हुई कि अहिंसा की साधना सामूहिक कार्यों में भी चल सकती है । " [3] इस तरह कवि सोता की

---

1. शबरी - नरेश मेहता - पृ. 31.
2. प्रार्थना पुरुष - नरेश मेहता - पृ. 25.
3. संस्कृति के चार अध्याय - रामधारीसिंह दिनकर - पृ. 634.

मुक्ति, अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, धार्मिक अनुष्ठान और सत्य और अहिंसा जैसे वक्तव्यांशों के द्वारा अपने काव्य में व्यष्टि को समष्टिहित में निरत होने के लिए बाध्य किया। वैयक्तिकता को " स्वाहा " करते हुए सामूहिकता के रूप में परिणत करनेवाले " ऊर्ध्वता " की उच्चतम उद्देश्य का परिचय दिया है। विभिन्न पात्रों द्वारा व्यष्टिगत जीवन दर्शन का बहुत कम और समष्टिगत जीवन दर्शन का अधिक महत्व दिया है।

3·1·2· यथार्थ बोध :-

आधुनिक चेतना की कसौटी यथार्थ बोध है। यथार्थ एक ऐसी वास्तविकता है जो व्यक्ति की सत्तात्मक स्थिति के लिए जरूरी होती है। "यथार्थ जीवन की वह आस्थामय अनुभूति है जो मानती है कि जीवन निस्सार नहीं है, जीने के लिए है, उसे जिया जा सकता है, भोगा जा सकता है और उसके साथ मनुष्य होकर मनुष्य के स्तर पर अनुभूतियों को ग्रहण किया जा सकता है और उनसे ओतप्रोत होकर जीवन की व्यापकता में सौन्दर्य, रस, आनंद बोध और अनुबोध के स्तरों को ग्रहण किया जा सकता है। यहीं नहीं, उन्हें स्वीकार किया जा सकता है।"[1]

प्रत्येक युग का अपना यथार्थ होता है, यथार्थपरक भिन्नताएँ एक युग को दूसरे युग से अलग कर देती है। लेकिन हर युग में एक ही यथार्थ एक ही सत्य युद्ध के रूप में सदा दुहराता हुआ आ रहा है। लक्ष्य अलग होने पर भी आदमी इस विभीषिका को विवश होकर स्वीकार कर रहे हैं। एक तरफ से युग को ऐसी विभीषिका से बचाने के लिए प्रयत्न तो किये जा रहे हैं और दूसरी तरफ अनिवार्य रूप में उस युद्ध को स्वीकार भी किया जा रहा है।

1· नई कविता के प्रतिमान - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ· 103·

"संशय की एक रात" में राम युद्ध की विभीषिका में सारे मानवता का बलिदान करना नहीं चाहते है। देश की प्रजा की ओर से युद्ध होने का निर्णय लिया गया है। युद्ध केवल यहाँ फेन नही जन-जन का निर्णय माना गया है। दूसरों के आक्रमण का सामना करने के लिए यह युद्ध हो रहा है। इस युद्ध के द्वारा वे नवीन इतिहास का निर्माण करना चाहते है। अर्थात इस युद्ध को युग की समस्त मूल्यों की रक्षा के लिए करना चाहते हैं। सुग्रीव राम की दृष्टि को यथार्थोन्मुख बनाते हुए कहते हैं कि —

"महाराज !
युद्ध केवल फेन ही नहीं
निर्णय है
जिससे इतिहास बना करता है।"[1]

आधुनिक युग की संक्रान्ति जन्य परिस्थितियों को बदलने में व्यक्ति असमर्थ हो रहा है। उसके अधीन होकर जीने के लिए वह विवश हो रहा है। इसी युगीन यथार्थ बोध को "महाप्रस्थान" में अर्जुन की उत्तेजित मानसिकता के द्वारा स्पष्ट किया गया है। व्यक्ति प्रकृति के अधीन है। समस्त, शक्ति, संकल्प और पुरुषार्थ के होते हुए भी मानव प्रकृति के विरुद्ध कुछ भी नही कर सकते। समस्त शक्ति सम्पन्न होकर भी प्रकृति के आगे नगण्य होना ही यथार्थ है। अर्जुन अत्यन्त शक्तिशाली पुरुष है। उनके गांडीव के होते हुए समस्त पृथ्वी में यक्षाश्रय के आयाल तक को छूने का कोई साहस नही कर सका। वह समस्त कौरव शक्ति को अपने बाण की नोक पर झेलता रहा। ऐसे शक्तिशाली होकर भी आज वह अपनी प्रिया की रक्षा करने में असमर्थ हो गया है। ऐसी अपनी विवशता के बारे में अर्जुन युधिष्ठिर से इस प्रकार प्रश्न करते है —

---

1. संशय की एकरात - नरेश मेहता - पृ. 70.

"यह कैसी विवशता है
व्यक्ति की —

*   *   *

जिस गाण्डीव के होते
समस्त मेदिनी में
यहाश्व के आयाम तक छू सकने का
कोई साहस न कर सका,
जो समस्त कौरव-शक्ति को
अपने बाण की नोक पर
झेलता रहा
वही —
अपनी प्रिया की रक्षा न कर सका।"[1]

सामाजिक यथार्थ दृष्टि होने के कारण ही नरेश मेहता जैसे कुछ कवियों ने प्रणय को सहज स्वाभाविक रूप में ग्रहण किया। उन्होंने प्रेम को दाम्पत्य जीवन की स्वस्थ भूमिका के साथ चित्रित किया। वास्तव में यथार्थवादी कवियों के काव्य में प्रेम के वर्णन की आवश्यकता नहीं होती और आती है तो अभावग्रस्त जीवन के सन्दर्भ में। "प्रवादपर्व" में मानवीय पुरुषार्थ की विडम्बना को युगीन यथार्थ के रूप में स्पष्ट किया गया है। प्रत्येक बार राम और सीता के बीच आकाश की ऊँचाई जैसे एक अभेद्य प्राचीन किले के समान अन्धी, मृत, बुभीक्षित प्राचीर और प्रति प्राचीर के समान कोई-न-कोई घटना आकर खड़ी हो रही है। जिससे वे लौट-लौट कर टकराते है और टूटते है, टूटते ही चले जाते हैं। व्याकुल लहरों का यह टूटन ही लौटते हुए समुद्र बनता जा रहा है।

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 90 - 91.

राम इसे पुरुषार्थ की विडम्बना समझते हैं। इसे जीवन के यथार्थ सत्य के रुप में स्पष्ट करते हुए सीता से इस प्रकार कहते हैं कि —

"यह कितनी दूर और
अभागी होती है प्रिये !
जो प्रत्येक बार
हमारे तुम्हारे बीच
आकाश की ऊँचाइयाँ छूती
एक अभेद्य
प्राचीन किले की
अन्धी
मृत, दुर्भिक्ष प्राचीर
परिप्राचीर सी आ खड़ी होती है।
जिससे हम केवल टकराते हैं
लौट-लौट कर टकराते हैं
और टूटते हैं
टूटते ही चले जाते हैं

x x x

यह मानवीय पुरुषार्थ की विडम्बना नहीं तो
और क्या है सीता !"[1]

यह पुरुषार्थ की विडम्बना नहीं है। यही युगीन सत्य है। ऐसे यथार्थ के आगे व्यक्ति को सदा जूझते हुए आगे बढ़ जाना होता है।

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 59 - 60.

"प्रार्थनापुरूष" में देश विभाजन के माध्यम से युगीन यथार्थबोध प्रस्तुत किया गया है। व्यक्ति अपनी प्रतिकूल स्थितियों का सामना करने में विवश हो जाता है। यह उसकी असमर्थता का निदर्शन नहीं होता। उसे एक यथार्थ सत्य के रूप में स्वीकार करने में ही सभी की भलाई निहित होती है। इतिहास में ऐसा भी समय था - जो सारा युग महात्मागांधी का साथ दे रहा था। कुछ समय तक देश का स्वतन्त्र आन्दोलन गांधीजी के नेतृत्व में चलता रहा। देश की प्रजा के प्रयत्नों से लाखों करोड़ों के त्याग एवं बलिदान से स्वतंत्रता भी प्राप्त हुई। देश विभाजन के विषय में जिन्ना के निर्णय को कोई नहीं बदल सके। देश में गांधी, नेहरू और पटेल जैसे महान नेता होते हुए भी देश के रूप में कट जानेवाले मानवता के विभाजन को कोई नहीं रोक सका। जो व्यक्ति युगपुरूष बनकर सारे युग को चैतन्यशील बनाया है आज वही व्यक्ति अपनी आँखों के सम्मुख होनेवाले विभाजन को विवश होकर देखता रहा। कवि कहते हैं कि जिसको उस दिन हम सबने काटा, वह देश नहीं, भूगोल नहीं, वह गांधी था, मानवता थी। जैसे --

"वह देश नही, भूगोल नहीं
जिसको उस दिन सबने काटा
वह गांधी था, थी मानवता
हमने, तुमने, सबने काटा।"[1]

यथार्थोन्मुख दृष्टि व्यक्ति में विवेक को जगाने में सहायक होती है। यहाँ युगीन यथार्थ के वर्णन द्वारा मनुष्य में विवेक को जगाते हुए कर्तव्य बोध किया गया है।

---

1. प्रार्थना पुरूष - नरेश मेहता - पृ. 61.

जीवन, जगत और सारे सामाजिक परिवेश की क्रिया प्रक्रिया ही यथार्थ है जो अनिवार्य रूप से समकालीन सम्वेदना से सम्बद्ध होती है। त्रेतायुग में निम्न वर्णवालों को तपस्या का अधिकारी नहीं माना जाता है। यह उस युग का यथार्थ था लेकिन आज की युगीन दृष्टि से उस यथार्थ को हेय माना गया है। कुछ वर्णों को श्रेष्ठ मानना तथा अन्य को निम्न दृष्टि से देखने की भावना को सहने के लिए कोई तैयार नहीं है। अपने को श्रेष्ठ मानने की भावना को उच्चवर्णवालों का दम्भ माना गया है। क्यों कि इससे उनका अहं व्यक्त हो रहा है। किसी के अहंकार को सिर नवाकर स्वीकारने के लिए इस युग में कोई तैयार नहीं है। जिसका जीवन सात्त्विक है उसको आर्य माना गया है। यही आज का यथार्थ है। कवि युगीन यथार्थ का बोध करते हुए कहते हैं —

> " अपने को श्रेष्ठ समझना
> यह दम्भ नहीं तो क्या है ?
> जिसका जीवन है सात्त्विक
> वह आर्य नहीं तो क्या है ? "[1]

समग्रत: कहा जा सकता है कि कवि की यथार्थोन्मुखी दृष्टि जीवन के विविध पक्षों में व्याप्त जीवन सत्यों का उद्घाटन करती चलती है। काव्यों में वर्णित रूढ़िवादिता, धर्मान्धता, निरंकुश शोषण के विरुद्ध युद्ध, परिस्थितियों के आगे व्यक्ति की विवशता आदि के पाश में आबद्ध मानवता के उत्थान में उनका यथार्थबोध अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य करती है। उनकी यथार्थोन्मुखी दृष्टि

---

1. शबरी - नरेश मेहता - पृ. 59.

पतनोन्मुख जनसमाज को उसकी यथार्थ स्थिति से ही परिचित नहीं करता वरन् उसके मानस में उन वर्गों और भावनाओं के विरुद्ध विद्रोह की सृष्टि भी करता है, जो उसके पतन, हीनता और दुरावस्था के लिए उत्तरदायी है । इसमें ही यथार्थबोध की सफलता और महत्व निहित है । इस प्रकार कवि मानव जीवन के सम्पूर्ण रूप और समस्त जीवन परिस्थितियों के प्रति अपने यथार्थवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया है ।

3·1·3· सामाजिक आग्रह :-

समाज व्यक्तियों के समूह से बनता है । व्यक्ति केवल उस समाज की केवल एक इकाई मात्र है । इसलिए इस इकाई को अपनी समष्टि निर्णय के अनुसार चलना पड़ता है । व्यक्ति चाहे कितना महान होने पर भी समाज के आग्रह को सविनय स्वीकारना पड़ता है । "संशय की एक रात" में राम शान्ति की सुरक्षा को बार सोचकर युद्ध करना नहीं चाहते हैं । लक्ष्मण, हनुमान जांबवंत और विभीषण आदि समाज के प्रतिरूप हैं । वे सभी युद्ध के पक्ष में हैं । तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार उस समय युद्ध होना अनिवार्य मानते हैं । उस समाज की दृष्टि अत्यन्त यथार्थोन्मुखी है । उन्हें परिणामों की चिन्ता नहीं । कभी कुछ हो जाने के डर से न्याय और अधिकार छोड़ना नहीं चाहते । अपने सामाजिक आग्रह को हनुमान राम के समक्ष यों व्यक्त करते हैं —

"क्षमा करें महराज !

x x x

हमारे कारण ही

अनागत युद्धों की नींव पड़े

पर

इस डर से
क्या हम न्याय और अधिकार छोड़ दें ! "[1]

अर्थात् वे युद्ध का होना अनिवार्य मानते हैं । अंत में राम अपने वैयक्तिक संशय को दबाकर सामाजिक आग्रह के अनुसार चलने के लिए तैयार होते हैं । अपने संशयी व्यक्तित्व को समझाते हुए इस प्रकार कहते हैं —

" ओ अर्धव्यक्ति के अर्ध सत्य !
युद्ध, नियति है
प्रश्न नहीं । "[2]

" प्रार्थनापुरुष " में स्वतन्त्रता प्राप्ति के लक्ष्य के माध्यम से सामाजिक आग्रह व्यक्त किया गया है । भारतवासी अंग्रेजों से अपने देश से चले जाने के लिए विभिन्न प्रकार के शान्ति के प्रस्ताव रखकर विफल हो गये । अंत में वे अपने आग्रह को इस प्रकार व्यक्त करने लगे हैं —

" अंग्रेजो ! अब भारत छोड़ो
हिन्दुस्तान हमारा !! "[3]

" महाप्रस्थान " में राज्य-प्राप्त करना युधिष्ठिर का लक्ष्य नहीं था । युद्ध में उनकी कोई रुचि नहीं थी । फिर भी उन्हें सामाजिक आग्रह के अनुसार युद्ध करना पड़ा । वे भीम से अपने बारे में इस प्रकार कहते हैं कि —

1· संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ· 69·
2· - वही - पृ· 84·
3· प्रार्थनापुरुष - नरेश मेहता - पृ· 55·

" भीम !
युद्ध या राज्य
किसी में भी
मेरी कोई रुचि नहीं रही । " [1]

वे युद्ध को तत्कालीन धर्म के रूप में स्वीकार करते हैं । उस सामाजिक आग्रह के आगे विवश होकर अनासक्ति के साथ युद्ध भी किया क्यों कि उस समाज की रक्षा करना उनका कर्तव्य हो गया था । इसलिए वह ऐसे सामाजिक आग्रह को जो परोक्ष रूप से व्यक्त होते हैं उसके बारे में भीम से यों कहते हैं —

" एक तात्कालिक धर्म भी होता है —
कर्तव्य !!
जब युद्ध कर्तव्य हो गया
तो अनासक्त होकर
वह भी किया । " [2]

" प्रवादपर्व " में सीता के चरित्र पर धोबी द्वारा दोषारोपण किया गया । राज्य के अन्य सदस्य इसे अविश्वसनीय विषय मानते हैं । राम और सीता इसे सामाजिक निर्णय मानकर उसका पालन करना अपना कर्तव्य मानते हैं । उस समाज के लिए अपने-अपने वैयक्तिक स्वार्थों का त्याग करने तक तैयार होते हैं । राजपत्नी होकर सीता सामाजिक विश्वासों का भंग करना नहीं चाहती है । सामाजिक मर्यादाओं की रक्षा के लिए राज्य से चली जाना उचित समझती है । राम सीता की ओर से आश्वस्त होकर सभा के समक्ष अपना निर्णय को इस प्रकार सुनाते हैं कि —

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 85.
2. - वही - पृ. 88.

" उस अनाम साधारण जन के आग्रह का उत्तर
सीता —
परित्याग के उदात्त चरित्र के तथा
निस्पृह सौम्यता के
प्रति आग्रह द्वारा ही दे सकती हैं । "[1]

शबरी काव्य में सामाजिक नियमों का पालन करना सभी का कर्तव्य घोषित किया गया है । समाज में शूद्रा को धार्मिक अनुष्ठान का अधिकारी नहीं माना गया है । मतंग द्वारा शूद्रा शबरी को आश्रम में स्थान दिया गया है । इसे सामाजिक नियमों के विरुद्ध कार्य माना गया है । सामाजिक मर्यादाओं का भंग होने से समाज बिखर जाने का संदेह व्यक्त किया गया है । अंत में सभी आश्रमवासी मिलकर शबरी को आश्रम से निकाल देना चाहते हैं । यदि मतंग ऋषि सामाजिक निर्णय का पालन नहीं करना चाहते है तो उनको भी समाज से बहिष्कृत करने के लिए तैयार होते हैं । सामाजिक आग्रह को इस प्रकार व्यक्त करते हैं कि —

" स्वीकार न हो यदि उनको
सारे समाज का निर्णय
तो बहिष्कार करने का
करना ही होगा निश्चय । "[2]

ऐसे सामाजिक निर्णय को सुनकर मतंग ऋषि खिन्न हो जाते हैं । वे शबरी के भक्ति स्वरूप को लेकर उनसे विभिन्न तर्क करते हैं । पर प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है । वे शबरी को आश्रम से भेजना नहीं चाहते हैं । इसलिए सामाजिक आग्रह

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 103.
2. शबरी - नरेश मेहता - पृ. 59.

के अनुसार मतंग ऋषि शबरी सहित आश्रम छोड़कर चले जाते हैं। संक्षेप में कवि उपर्युक्त संदर्भों द्वारा सामाजिक शक्ति को स्पष्ट किया है।

3·1·4· समष्टि से मिलने की चाह :-

समाज के हर व्यक्ति का अपना एक मन होता है। ऐसे ही उनका समष्टि चित्त भी होता है। व्यक्तियों का मन उस समष्टिचित्त का एक अंग ही है। अपने इस समष्टिचित्त के कारण ही वह सदा समूह में मिलना चाहता है। इसी प्रवृत्ति के कारण ही वह दूसरों के सुःख-दुःखों को अपना सुख-दुःख समझता है। मानव को सामाजिक प्राणी माना गया है इसलिए वैयक्तिक रूप में उनका कोई अस्तित्व नहीं रहता। समूह के माध्यम से ही उसकी पहचान होती है। " विराट मानस की यह अवधारणा, आदिमविश्वास, दर्शन और मनोविज्ञान से जुड़ी हुई है और यही काव्यानुभूति के क्षेत्र में साधारणीकृत मनोभूमि और हृदय की मुक्तावस्था की धारणा के रूप में प्रकट होती रही है। कवियों ने भी इस सामूहिक मन का उल्लेख किया है। "[1] नरेश मेहता ने अपने काव्यों में इस समष्टि मानस का चित्रण किया है - जो सदा समष्टि से मिलने के लिए व्याकुल रहता है।

" संशय की एक रात " में राम को समष्टिचित्त का प्रतीक माना गया है। इसलिए ही छोटे-छोटे व्यक्ति अपने गुल्म, परिवार, सामान्तराज्य, दुर्गमवनपथ एवं कठोर पर्वतों को चीरकर - उत्साहित नदियों और नालों के समान दुलते हुए इस अन्तरीप पर इतिहास-पुरुष राम से मिलने के लिए व्याकुल हो रहे हैं।

1· मिथकीय कल्पना और आधुनिक हिन्दी काव्य - डॉ· जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव - पृ· 30·

वे सभी अनेक कठिनाइयों को सहते हुए, अपने समष्टिचित्त का प्रतीक राम से मिलना चाहते है । समष्टि से मिलने के लिए व्याकुल होनेवाले उन व्यक्तियों के उद्देश्य को परोक्ष रूप से स्पष्ट करते हुए हनुमान राम से इस प्रकार प्रश्न करते है —

" ये छोटे-छोटे व्यक्ति
गुल्म-परिवार,
सामान्त, राज्य —
दुर्गम वनपथ, पर्वत कठोर को चीर
उत्साहित नदियों - नालों वत
दुहते
इस अन्तरीप पर
किस इतिहास-पुरुष में
मिल जाने को आकुल ? " [1]

" महाप्रस्थान " में युधिष्ठिर को समष्टि चित्त का प्रतीक माना गया है । " यात्रापर्व " मे हिम अपने विभु रूप में चारों ओर फैला हुआ है । अब सर्वत्र हिम ही हिम है । अपनी रंग-गंध सब को परित्याग कर भोजपत्र के समान, हिम से आच्छादित एवं वनस्पति से हीन होकर धरती स्वयं तपस्या बन गयी । अब वह इतिहास पुरुष युधिष्ठिर से मिलने के लिए शताब्दियों से उनकी प्रतीक्षा कर रही है । यहाँ युधिष्ठिर सम्पूर्ण सृष्टि के प्रतिनिधि बन गये हैं । वह समस्त स्थितियों को अपने साथ लेकर इस " यात्रा " में आगे बढ़नेवाले है । उनसे मिलने के लिए व्याकुल होनेवाले हिमालय की स्थिति का वर्णन कवि इस प्रकार करते हैं —

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 63.

" हिम, केवल हिम --
अपने शिवः रूप में
हिम ही हिम अब !
रंग-गन्ध सब परित्याग कर
भोजपत्रावृत हिमाच्छादित
वनस्पति से हीन
धरित्री --
स्वयं तपस्या ।
पता नहीं
किस इतिहास - प्रतीक्षा में
यहाँ शताब्दियाँ भी लेटी हैं
हिम गुल्मों में । "[1]

ऐसे ही " प्रार्थनापुरुष " में गाँधीजी को समष्टिचरित्र का प्रतीक माना गया है । गाँधीजी को देश तथा उसका इतिहास एवं उसके जय का प्रतीक माना गया है । उनके सम्मुख सारे देश को विनयशील माना गया है । नमक की विजय को इसका प्रमाण माना गया है । जिस प्रकार गंगा पर्वत छोड़कर पृथ्वी पर आने के लिए व्याकुल होती है उसी प्रकार जनता अपने-अपने प्रदेशों को छोड़ कर एक मैदान में एकत्र हुई है । वे सभी अपने समष्टिचरित्र में लीन होने के लिए तत्पर हो रहे हैं । कृशकाय देहवाले गाँधीजी का वैष्णवता युग के लिए भगवान बन चुकी थी --

" पर्वत छोड़ चुकी थी गंगा
जनता मैदान बनी थी
कृशकाय देह की वैष्णवता
युग का भगवान बनी थी । "[2]

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 27.
2. प्रार्थनापुरुष - नरेश मेहता - पृ. 46.

इसी तरह " शबरी " खण्ड काव्य में भगवान राम को समष्टिचित्त का प्रतीक माना गया है । जिस प्रकार व्यक्ति की सार्थकता समष्टि से मिलने में होती है । उसी प्रकार नदी की सार्थकता सागर में मिलने से होती है । सागर समस्त जलराशियों का समष्टि रूप है ऐसे ही भगवान विभिन्न आत्माओं का । यहाँ नदी रूपी शबरी सागर रूपी भगवान से मिलने के लिए चिरकाल से प्रतीक्षा कर रही है । ऐसा सागर रूपी भगवान स्वयं उसको ढूँढते हुए उसके घर आया । इसलिए शबरी उस परमात्मा में लीन होने के लिए अत्यन्त व्याकुल होती है । समष्टिचित्त भगवान की कृपा से व्यष्टिचित्त शबरी की आकांक्षा पूरी होती है ——

> " पर अब तो सागर खुद ही
> आया था चलकर द्वारे,
> थी कब की यह आकांक्षा
> नदिया को सिन्धु पुकारे । " [1]

अर्थात् यह माना गया है कि व्यष्टि चित्त की सार्थकता समष्टि चित्तवाले भगवान से मिलने में ही है । " प्रवादपर्व " में मनुष्य को समष्टिचित्त का प्रतीक माना गया है । काव्य में भाषा को समूह मन की कुंजी कहा गया है । यहाँ मनुष्य को सम्पूर्ण सृष्टि की वंशी भाषा माना गया है । उसे सृष्टि के सामूहिक मन का प्रतीक माना गया है । इसलिए ही यह धूप का महोत्सव दक्षिणात्य चन्दनगन्धी हवाएँ, गन्ध मादन की पुष्पीय विपुलता, वानस्पतिकता का उदार विपुल परिवार, आकाश गंगा से लेकर ग्राम्य गंगा तक की यह सम्पूर्ण विराट-चिन्मय सृष्टि मनुष्य के माध्यम से बोलती है । इसलिए उसे सृष्टि की वंशी भाषा बताया गया है । उसे सृष्टि का जिह्वा माना गया है क्यों कि

---

1. शबरी - नरेश मेहता - पृ. 86.

सम्पूर्ण सृष्टि उसके माध्यम से ही अभिव्यक्ति पा रही है । ऐसे समष्टि मानस के बोलने के अर्थ के बारे में जानने के लिए बाध्य करते हुए राम लक्ष्मण से इस प्रकार कहते हैं —

" यह धूम का महोत्सव
दाक्षिणात्य चन्दन गन्धी हवाएँ

x x x

आकाश - गंगा से लेकर
ग्राम्या - गंगा तक की यह
सम्पूर्ण विराट - विनम्र
सृष्टि —
किसके माध्यम से बोलती है लक्ष्मण ?
कौन है सृष्टि की वाणी - भाषा ?
बन्धु !
एक मात्र मनुष्य ही
सृष्टि की जिह्वा है । ".[1]

इस प्रकार कवि " समष्टि से मिलने की चाह " जैसे महान प्रवृत्ति के माध्यम से उस समष्टि चित्त की महानता को काव्य में प्रतिष्ठित किया है ।

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 51.

3·1·5· समष्टि कल्याण का स्वर :-

"संशय की एक रात" में राम केवल सीता के लिए ही नहीं समस्त मानव कल्याण के लिए युद्ध को स्वीकार करते हैं। समष्टि कल्याण के लिए अपने वैयक्तिक संशय को दबाना उचित समझते हैं। फलतः राम कर्म भूमि पर कर्तव्य पालन करने के लिए, लोक की सुरक्षा के लिए, भयंकर साम्राज्यवादी शक्तियों का विनाश करने के लिए, समष्टि कल्याण के लिए सामूहिक निर्णय के अनुसार युद्ध करने के लिए तैयार होते हैं। इसलिए वह अपने को निमित्त मात्र, निश्चित कर्म का पालक, युद्ध का प्रतिश्रुत तथा सब का निर्णय मानते हैं। राम के समष्टि कल्याण का स्वर इन शब्दों में ध्वनित होता है —

"अब मैं केवल
प्रतीक्षा हूँ
अर्पित कर्म हूँ
प्रतिश्रुत युद्ध हूँ।
निर्णय हूँ सबका
सब के लिए,
केवल अपने ही लिए
सम्भवतः नहीं।
नहीं !!" ·[1]

राम द्वारा युद्ध की स्वीकृति के पीछे मानववादी विचारधारा कार्य कर रही है जो नायक की लोक मंगल की भावना को व्यक्त करती है।

1· संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ· 92 - 93·

" प्रार्थनापुरुष " में महात्मागांधी " राष्ट्र की एकता " स्थापित करने की आकांक्षा के द्वारा समष्टि कल्याण की भावना को व्यक्त करते हैं। वे देश का विभाजन नही होने देना चाहते हैं। देश के विभाजन के द्वारा प्रजा की एकता को भंग होने देना नही चाहते। गाँधी जी और जिन्ना के संभाषण के द्वारा गाँधीजी के समष्टि कल्याण का स्वर यों स्पष्ट होती है —

" जिन्ना बोले – यही दवा है
देश बँटेगा हिन्दुस्तान,
गाँधी बोले – " मुझे काट दो
पर मत बाँटो हिन्दुस्तान। " [1]

ऐसे ही गाँधीजी अपने समष्टिकल्याण तथा विश्व बंधुत्व की भावना को इस प्रकार व्यक्त करते हैं कि – कर्म को हमारा नीराजन होना चाहिए। सम्पूर्ण विश्व एक परिवार बनकर रहें। मनुष्य को अपने सभी राग-द्वेष को त्यागना चाहिए तथा संसार समष्टि के लिए कल्याणकारी बनकर रहें —

" कर्म हमारे नीराजन हों
विश्व एक परिवार बने
राग – द्वेष सब त्याग, मनुज
का कल्याणी संसार बने। " [2]

1· प्रार्थना पुरुष – नरेश मेहता – पृ· 58·
2· – वही – पृ· 21·

" प्रवादपर्व " में सीता पर आरोपित दोष के विचारण के माध्यम से राम के समष्टि कल्याण का स्वर व्यक्त किया गया है। भरत न्याय की दृष्टि में इस दोषारोपण को धोबी की अनधिकार चेष्टा मानते हैं। लक्ष्मण सीता को देवी समझकर उसकी तुलना किसी से करना नहीं चाहते हैं। केवल लक्ष्मण ही नहीं कोई भी सीता की तुलना किसी से करना नहीं चाहते हैं। राम इस अन्तर को दूर करना चाहते हैं। वह सीता को लेकर नहीं, समस्त अपमानित स्त्रियों को दृष्टि में रखकर न्याय करना उचित समझते हैं। वे राज्य के लकड़ियाँ बीननेवाले असहाय, अनाम नारियों के अपमानों की ओर सोचने के लिए राज्य शक्ति को तत्पर करना चाहते हैं। अपनी समष्टि कल्याण की भावना को व्यक्त करते हुए राम लक्ष्मण के माध्यम से समस्त राज शक्ति से इस प्रकार प्रश्न करते हैं --

" लक्ष्मण !

x x x

राज्य की यह आतुरता
कर्मठता
केवल सीता
या हमारे ही लिए क्यों ?
क्यों नहीं
जंगल में लकड़ियाँ बीननेवाली
असहाय
अनाम नारी के लिए
यह तुम्हारी सर्वसत्तात्मक
राज्यशक्ति तत्पर होती। "1

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 40.

" महाप्रस्थान " में अर्जुन के वैयक्तिक दु:ख को लेकर उसके माध्यम से युधिष्ठिर के समष्टि कल्याण का स्वर व्यक्त किया गया है । अर्जुन हिम में गलनेवाली द्रौपदी की पुकार सुनकर भी उसको नही बचा सके । अपनी यह विवशता बारम्बार याद आकर उन्हें दु:ख देती है । इतना ही नहीं उन्हें अपने विगत जीवन में बहुत अपमान मिला है । उनका स्वत्व का हनन किया गया है । न्याय प्राप्ति के लिए उन्हें संघर्ष भी करना पड़ा है । युधिष्ठिर अर्जुन से अपने इस प्रकार के वैयक्तिक चिन्तन को छोड़कर समष्टि के दु:खों के बारे में सोचने के लिए बाध्य करते हैं । वे अर्जुन से इस प्रकार कहते हैं कि — कभी भी उन विचार द्वारा साधारण जनों के बारे में सोचो जो सदा अपमानित होते रहे हैं । उनके स्वत्व के अपहरण से ही हमारे ये दीप्तिमय साम्राज्य बने हुए हैं । अन्याय के अभ्यस्त वे नही जानते है कि न्याय जैसा पदार्थ भी कुछ होते हैं । इस तरह युधिष्ठिर अपने समष्टि कल्याण के स्वर को व्यक्त करते हैं । वे अर्जुन को समष्टि कल्याण के बारे में सोचने के लिए बाध्य करते हुए कहते हैं कि —

" तुम्हें बारम्बार कचोटती है
अपनी विवशता कि —

x x x

कभी उन
विचार द्वारा साधारण जनों के बारे में सोचो —
जो सदा अपमानित होते रहे हैं ।
जिनके स्वत्व का अपहरण ही
हमारे ये दीप्त साम्राज्य हैं ।

अन्याय के अभ्यस्त वे
नहीं जानते कि
न्याय भी कुछ होता है । "[1]

शबरी में कवि राम के द्वारा मतंग की पवित्रता की प्रशंसा करते हुए उन्हें समष्टि कल्याण का साधक सिद्ध करते हैं । राम मतंग के धर्म एवं तपस्याग्नियों के सम्मिलित रूप को स्पष्ट करते हुए आश्रमवासियों से कहते हैं —

" वह धर्मरूप है जिससे
सब धर्म जन्म लेते हैं,
वह तपस्याग्नि है जिसको
छू सभी स्वर्ण होते हैं । "[2]

ऐसे ही शबरी को फूल का सुगन्ध एवं पवित्रता का स्रोत माना गया है । उसे स्वयं इनके समष्टि कल्याण का रूप सिद्ध किया गया है । जिस प्रकार उपवन अपने फूलों की सुगन्ध से सारे आश्रम को सुगन्धित करता है ऐसे ही शबरी अपनी पवित्रता से पवित्रता को भी पवित्रता पहुँचा रही है —

" उपवन — आश्रम के सारे
ये फूल सुगन्धित उससे
थी वह पवित्रता ऐसी
होती पवित्रता जिससे । "[3]

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ० 94
2. शबरी - नरेश मेहता - पृ० 81

इस तरह काव्यों में विभिन्न पात्रों के माध्यम से समष्टि कल्याण का स्वर व्यक्त किया गया है। उनके माध्यम से लोकमंगल की आकांक्षा को स्पष्ट किया गया है।

3·1·6· अस्पृश्यता :-

अस्पृश्यता हिन्दू समाज का कलंक है जिसका आधार वर्ण व्यवस्था है। मनुष्य के सामाजिक जीवन का नियमन करने के लिए भारतीय द्रष्टाओं ने जिस नवीन पद्धति का विधान किया है उसे भारत की प्राचीन व्यवस्था में वर्ण व्यवस्था की संज्ञा दी गयी है। वर्ण व्यवस्था अपनी प्रारम्भिक दशा में समाज को निर्दिष्ट रूप में व्यवस्थित करने की दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास के द्वारा श्लाघनीय व्यवस्था हुई होगी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वणिक और शूद्र वर्णों में समाज को व्यवस्थित करना समाज का विभाजन नहीं था बल्कि श्रम का विभाजन था, और जिस वृत्ति में जिसका मन लगे उसी दिशा में उन्हें सक्रिय करने का ध्येय था। नरेश मेहता कृत शबरी में वर्णव्यवस्था के प्रारम्भिक रूप का संकेत मिलता है —

" थे ब्राह्मण सिरमौर, तपस्या
के कारण सब जन में।

x x x

रक्षक और पालक क्षत्रिय
थे वैश्य बने व्यापारी
श्रमिक शूद्र थे, थी समाज
की यही व्यवस्था सारी।

x x x

जिन्हें न थे स्वीकार
धर्म-नैतिकता के ये बन्धन
आर्य जाति के होने पर भी
कहलाये राक्षस गण । "[1]

इस प्रकार श्रम विभाजन के आधार पर निर्दिष्ट किया गया यह वर्ण व्यवस्था का स्वरूप आगे चलकर विकृत होने लगा है । समय के साथ-साथ ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण, क्षत्रिय का पुत्र क्षत्रिय, वणिक का पुत्र वणिक और शूद्र का पुत्र शूद्र कहलायें । कर्म की यह व्यवस्था धीरे-धीरे अपने वर्ण के आधार पर रूढ़ और जड़ होने लगी । क्रमश: यह वर्णव्यवस्था बलवती होते हुए समाज को विभाजित करने लगी है । व्यक्तियों के संकुचित स्वार्थों के शिकारी के रूप में शूद्र सेवक ही नहीं, अस्पृश्य भी कहलाने लगे हैं । "प्रार्थनापुरुष" में इस अस्पृश्यता एवं वर्णव्यवस्था का संकेत मिलता है —

"थी महायुगों की जड़ता
अब भी जीवन में फैली,
थे जाति-पाँति के झगड़े
और छुआछूत थी फैली । "[2]

ऐसे अस्पृश्य लोगों को समाज में उच्च वर्णों के द्वारा निरादर मिलने के साथ उन्हें अनेक प्रकार के मुसीबतों का सामना करना पड़ा । दुर्भर जीवन अनुभव करना पड़ा । यहाँ तक उनको छूना एवं साया तक वर्जित माना गया है । छोटे बच्चे भी इस अपवाद से नहीं बच सके —

---

1. शबरी - नरेश मेहता - पृ. 4.
2. प्रार्थना पुरुष - नरेश मेहता - पृ. 2.

" वह बोला - छोटे मालिक !
कैसे ले हूँ, मैं हरिजन,
जिनको छूना भी वर्जित
जिनकी छाया भी दूषण । "[1]

इसके साथ समाज में निम्न मानने वाले अस्पृश्य जातिवालों को धार्मिक कार्यों के अधिकारी नहीं माना गया है। समाज में उच्चवर्णवालों के निर्णय को ही सर्वोपर मानने लगे हैं। बूढ़ा शबरी को अस्पृश्य समझकर उसे आश्रम से निकालने के लिए तैयार होकर आश्रम के उच्चवर्ण वाले ऐसा निष्कर्ष निकालते हैं —

" सामाजिकता के अंकुश
से ऊपर धर्म नहीं है
ये यज्ञ-याग औ' पूजन
शूद्रों का धर्म नहीं है । "[2]

इसीलिए शबरी उच्चवर्णवालों के उस जात्यहंकार के प्रति विद्रोह प्रकट करती है। धर्म के प्रति उनके संकुचित दृष्टिकोण तथा मिथ्यावाद का खण्डन करती है। वह भगवान की सर्व व्यापक सत्ता को स्वीकार करती है। उनकी आराधना करनेवालों के प्रति अपना विद्रोह प्रकट करती है। वह मतंग ऋषि को सम्बोधित करके उच्चवर्ण वालों से यही पूछना चाहती है कि —

" क्या आत्मा की उन्नति केवल
है उच्च वर्ग तक ही सीमित ?
प्रभु तो है सबके पिता, भला
उनका आराधना क्यों सीमित ? "[3]

---

1. प्रार्थनापुरुष - नरेश मेहता - पृ. 5.
2. शबरी - नरेश मेहता - पृ. 55.
3. - वही - पृ. 31.

कवि अस्पृश्यता एवं वर्णव्यवस्था जैसे सामाजिक दुराचारों के दोषों को दृष्टि में रखकर मतंग के माध्यम से उन्हें समाप्त करना चाहते हैं। मतंग ऋषि मानववादी है। वह सामाजिक धरातल पर सभी को समान आदर देना चाहते हैं। वह अस्पृश्यता एवं वर्णव्यवस्थागत भेद-भावों को दूर करना चाहते हैं। वे वर्णाश्रम मर्यादाओं से धर्म को सर्वोपरि समझते हैं। अगर यह सब नहीं है तो वे इन तपस्या और पूजा तक को व्यर्थ समझते हैं। वह अस्पृश्य शबरी को गंगा के समान पवित्र मानते हैं। उनके अनुसार - शबरी शूद्रा है तो यह गंगा भी शूद्रा हैं। वह वर्णाश्रम मर्यादाओं के नाम से समाज में फैलनेवाले मूढ़ विचारों का खण्डन करते हैं। वे धर्म पर सभी वर्णवालों का समान अधिकार सिद्ध करते हैं। वर्णव्यवस्था से बढ़कर धर्म की सर्वोच्चता को स्थापित करते हुए आश्रमवासियों से इसप्रकार प्रश्न करते हैं --

" क्या धर्म तत्व से ऊँची
है वर्णाश्रम मर्यादा ?
तब व्यर्थ तपस्या-पूजन
यह गंगा भी है शूद्रा। "[1]

कवि ने स्वयं इस अस्पृश्यता को धर्म विधान के द्वारा सुलझाने का मार्ग दिखाया है। शबरी का जीवन इसका प्रमाण है। उसने शूद्रा को शिव शक्ति स्या कहकर सभी के लिए वंदनीय बनाया है। अस्पृश्यता की समस्या का समाधान देते हुए वह राम के द्वारा समाज से यों प्रश्न करते हैं --

---

1. शबरी - नरेश मेहता - पृ॰ 59.

" शबरी अन्त्यज है तो क्या
वह शक्ति रूप है शूद्रा,
है तेज रूप वह केवल
शिव-शक्ति रूप है शूद्रा । " [1]

ऐसे ही " महाप्रस्थान " में कवि ने कर्ण के माध्यम से तत्कालीन समाज में सूतवंश का अनादर एवं ऐसे लोगों पर होनेवाले अत्याचारों का वर्णन किया है । कर्ण जन्म से राजवंशी होकर भी कुंती से परित्यक्त हो गया है । सूतवंश में पलने के कारण वह आजीवन सूतपुत्र कहलाया है । इसी कारण वह वीर होकर भी सभी राजवंशियों तथा उच्चवर्णों के द्वारा बहिष्कृत हैं । इसी वजह से वह द्रौपदी से भी अपमानित हुआ है । फलत: वह ऐसे समाज के प्रति अपना विद्रोह प्रकट करते हैं । इसलिए कवि वंश के कारण आजीवन अपमानित कर्ण के वैर का समर्थन करते हैं —

" सूतपुत्र था ।
कुन्ती से परित्यक्त
द्रौपदी से अपमानित
और सभी के द्वारा पंक्ति बहिष्कृत ।
कर्ण न करता बैर
धनंजय ! तब क्या करता । " [2]

" संशय की एक रात " में दक्षिण प्रदेश में वानर एवं गुलाम जातियों के नामों का संकेत मिलता है । यह रावण द्वारा आपादित जाति का नाम है । रावण ने अपने साम्राज्यवृत्ति के अन्तर्गत उनको सताकर वानर नाम दिया है ।

1· शबरी - नरेश मेहता - पृ· 82·
2· महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ· 47·

वे लोग अपनी संस्कृति एवं सभ्यता से वंचित होकर अनेक कष्ट सहते हुए उनके यहाँ रहे हैं। आखिर उन्होंने राक्षसों के रथ तक खींचे हैं। ऐसे अपने समस्त उपकारों के बदले रावण के राज्य में अपने नरत्व को खोकर वानरत्व को प्राप्त किया। अपने पर आपादित जाति के साथ अन्य दुःखों का उल्लेख करते हुए हनुमान राम से इस प्रकार कहते हैं —

"महाराज !
साम्राज्यवृत्ति के द्वारा
हम साधारण जन
अर्धसभ्य कर दिये गये।
हमने राक्षस-रथ खैंचे
दासभाव से।
बदले में
नर नहीं
वानर पद प्राप्त किये।
लंका में हम
भोज्य पदार्थों से बिकते हैं
गरम सलाखों से
प्रत्येक पृथुजन देह लिखी है —
ये गुलाम हैं
इनका केवल यही नाम है।"[1]

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 65.

फलत: ऐसे सभी लोग मिलकर अपने सारे भेदभावों को भूलकर रावण के अहंकार के विरुद्ध अपनी वर्ग मुक्ति के लिए युद्ध करने के लिए तैयार होते हैं।

"प्रवादपर्व" में राज्य में अनाम वर्ग का समझा जानेवाला एक साधारण आदमी ने राजवंशी सीता के चरित्र पर शंका व्यक्त की है। इसे राज्य गरिमा को भंग करनेवाला विषय माना गया है तथा राजवंश का अपमान थी। उचित कार्यवाही करने के बाद मालूम हुआ है कि —

"यह एक साधारण धोबी है।"[1]

सामाजिक दृष्टि से सदा से इस धोबी वर्ग का कोई महत्व नहीं रहा है। समाज को उनकी सेवाओं के प्रति जितनी श्रद्धा होती हैं उतनी उनकी प्रतिष्ठा के प्रति नहीं। ऐसे लोगों को उच्चवर्ग वालों के बारे में कुछ कहने का अधिकार नहीं है। ऐसे एक धोबी के द्वारा राजवंशी सीता के प्रति अपने अभिमत को व्यक्त करना कोई साधारण बात नहीं है। राजवंशी उसे धोबी का साहस मानते हैं। न्याय के अनुसार उचित दण्ड देने का समर्थन करते हैं। लेकिन राम इस व्यवस्थागत अन्यायों को दूरकर सभी को समान आदर देना चाहते हैं। राम उस अनाम पक्ष की ओर से उच्चवर्णवालों से यही पूछना चाहते हैं कि —

"राजशक्ति पर प्रश्नचिह्न लगाना
विरोधी संकल्प कैसे है ??
क्या गरिमा
क्या चरित्र

---

1. प्रवादपर्व – नरेश मेहता – पृ. 39.

क्या अधिकार
केवल राज्य
राजपुरुषों या
इतिहास – पुरुषों के ही होते हैं ?
अनाम साधारणजन के कुछ नहीं होते ? " [1]

इसलिए राम व्यवस्थागत असमानताओं को दूर करते हुए सामाजिक न्याय को समान रूप से देना चाहते हैं। निम्नवर्गवालों की अभिव्यक्ति को भी परात्पर सत्य के रूप में स्वीकारने का संकेत करते हुए इस प्रकार कहते हैं कि —

" यदि किसी
एकान्त
भयावह बावड़ी की
कोई छायी
बर्बर विद्रूप चट्टानों को फोड़कर
प्रतिइतिहास का तेजस्वी
पीपल-पुरुष
हरहराने लगे तो
उसे चुनौती के स्थान पर
सहज सत्य की अभिव्यक्ति
क्यों नहीं माना जाना चाहिए ? " [2]

हिन्दू समाज से अस्पृश्यता एवं वर्णव्यवस्था जैसी कुरीतियों को दूर करने का प्रयत्न तो बहुत पहले आरम्भ हो चुके हैं। आधुनिक युग में महात्मा-गाँधी ने दीर्घकालीन परिणामों को दृष्टि में रखते हुए अस्पृश्यता उन्मूलन

---

1. प्रवादपर्व – नरेश मेहता – पृ. 29 – 30.
2. – वही – पृ. 34.

आन्दोलन को गति दी । "प्रार्थनापुरुष" में महात्मागाँधी के द्वारा इस अस्पृश्यता एवं वर्णव्यवस्था सम्बन्धी दुराचारों को दूर करने का प्रयत्न किया गया । गाँधीजी ने वर्णभेद के नाम से मनुष्य पर होनेवाले अत्याचारों का खण्डन किया । दक्षिणाफ्रिका में श्वेत जातियों के आत्मअहंकार के अन्तर्गत पीड़ित होनेवाले काले लोगों की स्थिति इस प्रकार है —

" कई तरह के टैक्स, वोट
का कालों को अधिकार नहीं,
सड़कें वर्जित, घर से रात
निकलना भी, अधिकार नहीं । "[1]

गाँधीजी ने काले लोगों के अधिकारों की रक्षा के लिए [illegible] शासन से लड़कर उनको स्वतन्त्रता दिलायी । उन्होंने दक्षिणाफ्रिका से भारत लौटने के बाद साबरमती आश्रम की स्थापना की । अपने अस्पृश्यता उन्मूलन कार्यक्रम के अन्तर्गत हरिजनों को आश्रम में स्थान दिया —

" कहा एक दिन गाँधी जी ने
मुझे मिला है प्रतिवेदन
आश्रमवासी बनकर रहने को
इच्छुक है एक हरिजन । "[2]

लेकिन इस अस्पृश्यता निवारण कार्यक्रम में उनको भी अनेक मुसीबतों का सामना करना पड़ा । गाँधीजी ने सभी आश्रमवासियों के विरोध में ही हरिजन को आश्रम में प्रवेश होने दिया । इसलिए अहमदाबाद की सहायक मंडली ने भी

1• प्रार्थनापुरुष - नरेश मेहता - पृ• 14•

2• - वही - पृ• 33•

आश्रम का बहिष्कार करते हुए खर्चा देना बन्द कर दिया । गांधीजी विचलित तो नहीं हुए पर मनुष्य के प्रति मनुष्य के इस अमानुषिक व्यवहार से व्यथित होते हुए उन्होंने एक बार कहा कि - " यदि मेरे सामने यह सिद्ध हो जाए कि अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का आवश्यक अंग है तो अपने को ऐसे धर्म के प्रति विद्रोही घोषित कर दूंगा । " 1

इस अस्पृश्यता के साथ समाज में भंगी का काम निकृष्ट समझा जाता था । इस प्रकार के भेदभाव को दूर करने के लिए गांधीजी ने आश्रम में शौचालय स्वयं साफ करना शुरू किया । यह देखकर क्रमश: उनके मित्र तथा अनुयायी भी उनका साथ देने लगे । इस तरह गांधीजी ने अस्पृश्यता के विरुद्ध विद्रोह प्रकट करते हुए क्रमश: उसको समाप्त करने के लिए प्रयत्न किया । समग्रत: उपर्युक्त विवरण के माध्यम से कवि के द्वारा अस्पृश्यता एवं वर्ण व्यवस्था के सम्बन्ध में युगानुकूल विवरण प्रस्तुत किया गया है ।

3.2. मिथक की राजनैतिक भूमिका :-

जनता में साहस और आत्मबलिदान की भावना मिथक से पैदा होती है, अन्यथा भारी विपत्ति के समय असंख्य लोग अपनी आहुति देने के लिए क्यों तैयार होते हैं, युद्ध के नारे किस तरह सबको जोड़ देते हैं । मिथक किसी जाति की भविष्यवादी दृष्टि को मजबूत बनाते हैं और वर्तमान का व्यावहारिक बोध कराने में सहायक होते हैं । मिथक की एक बड़ी भूमिका किसी महत्कार्य के लिए दृढ़ प्रतिज्ञा करने की है । मिथक अतीत की घटनाओं पर जुड़े रहने पर भी वर्तमान के सामूहिक राष्ट्रीय जीवन के सन्दर्भ में नई अर्थवत्ता की तलाश करते हैं । राष्ट्रीयता आज की राजनीति का एक बड़ा

---

1. गांधीजी का दिल्ली डायरी - तथा दिल्ली का स्वतंत्रता संग्राम-भाग -1 ब्रजकृष्ण चांदीवाला - पृ. 50.

मिथक है । आदिम व्यवस्था में एक कबीले को दूसरा कबीला आक्रमण करके उसके स्थान से खदेड़ देता था । थोड़े काल के बाद भागे हुए कबीले के लोग जगह की प्रचुरता के बावजूद उसी पुरानी जगह लौटकर, वहाँ के भग्न स्वरूप को पुनर्जीवित करते थे । जीवन का नया स्पन्दन होने लगता था । राष्ट्रीयता की भावना इसी प्रवृत्ति से विकसित हुई, जो आज के राजनैतिक जीवन का एक प्रधान मुद्दा है । राष्ट्रीयता की भावना का इस्तेमाल अलग-अलग वर्ग के लोग अलग-अलग ढंग से करते हैं । व्यापक राजनैतिक क्रान्ति के फल स्वरूप परंपरागत मिथकीय संसार का विघटन हो जाता है, तो जीवन में नये मिथक अपना स्थान बना लेते हैं । नये समाज के राजनैतिक मिथक जनजीवन के नये आधारों से बदल जाते हैं । नये जनवादी समाज में भी मिथकों की जरूरत पड़ती है क्यों कि सामान्य जनजीवन अपनी क्रान्तिकारी आकांक्षाओं और विश्वासों की अभिव्यक्ति राष्ट्रीय संस्कृति के मिथक के नये रूपों के माध्यम से करना चाहता है और नये भविष्य की ओर बढ़ता जाता है ।

मिथक की राजनैतिक आलोचना करते हुए जार्ज सोरेल ने इसे "मानवीय विभीषिका के क्षणों की भावात्मक उपज "[1] बतलाया है । उसने मार्क्स की सर्वहाराक्रान्ति एवं दुनिया में मजदूरों की आम हड़ताल को मिथक घोषित किया, क्यों कि ये अन्तत: मनुष्य के वैचारिक विश्वासों के ही नये राजनीतिक स्वरूप हैं ।

1· मिथक और आधुनिक कविता - शंभुनाथ - पृ· 15 से उद्धृत

3·2·1· स्वाधीनता की चेतना का जागरण :-

नरेश मेहता के युग में सामाजिक चेतना के साथ-साथ राष्ट्रीय चेतना भी विकसित हो रही थी । वस्तुत: हमारी राष्ट्रीय चेतना का अजस्र प्रवाह स्वाधीनता प्राप्ति की आकांक्षा के साथ ही प्रवाहमान बन गया था । कवि ने इस स्वाधीनता की चेतना को अपने काव्यों में अभिव्यक्त किया है । स्वाधीनता के लिए विभिन्न युगों में सत्ता के विरुद्ध आन्दोलन होता रहा है । नरेश मेहता ने " प्रार्थनापुरुष " में स्वतन्त्रता आन्दोलन सम्बन्धी प्रमुख घटनाओं को क्रमबद्ध रूप में बड़ी सफलता से चित्रित किया है । घटनाओं के घेरे में महात्मागांधी को खड़ा किया है और सम्पूर्ण कठिनाइयों और संघर्षों के बाद स्वतन्त्रता प्राप्ति का संदेश दिया है । प्रार्थना पुरुष में प्रमुखत: 1914 के बाद की कुछ प्रमुख घटनाओं का संकेत दिया गया है । उनमें 1915 में दक्षिणाफ्रिका से भारतीय राजनीतिक मंच पर गाँधीजी का आगमन, [1] 1919 में प्रथम विश्व युद्ध में अंग्रेजों को सहायता पहुँचाना,[2] इसी साल 1919 में अंग्रेज सरकार द्वारा रौलट रिपोर्ट पास करना, [3] गाँधी जी सहित सभी देशवासियों द्वारा रौलट रिपोर्ट का विरोध करना, [4] रौलट रिपोर्ट के विरोध में जनता और सत्ता के बीच में चली हुई हिंसात्मक घटनायें, [5] 1920 के जलियनवाला बाग का हत्याकाण्ड [6] तथा इसके विरोध में गाँधीजी द्वारा चलाया गया स्वदेशी आन्दोलन आदि प्रमुख है । इस स्वदेशी आन्दोलन के अन्तर्गत गाँधीजी

1· प्रार्थनापुरुष - नरेश मेहता - पृ· 31·

2· - वही - पृ· 36

3· - वही - पृ· 37

4· - वही - पृ· 38

5· - वही - पृ· 39

6· - वही - पृ· 41·

ने खादी, चर्खा और राष्ट्रभाषा को महत्त्व दिया । अंग्रेजों के निर्मम शासन के विरुद्ध असहयोग आन्दोलन चलाया है । इस असहयोग आन्दोलन के अन्तर्गत उपाधियाँ लौटाना, सरकारी पदवी और सम्मान पत्र त्याग करना, सरकारी नौकरियाँ छोड़ना, विदेशी चीजों और कपड़ों का बहिष्कार, सरकारी शिक्षा का बहिष्कार तथा उनकी सभाओं का बहिष्कार आदि बातें थीं । गांधीजी द्वारा इस प्रकार के कार्यक्रम को लागू करने का नारा दिया गया —

" त्यागो पदवी, सम्मान-पत्र
छोड़ों सरकारी नौकरियाँ,
यूरप की चीजें औं कपड़े —
शिक्षा की दूषित पद्धतियाँ । "[1]

इसके साथ ही स्वाधीनता के जागरण की दिशा में अनेक घटनायें हुई है । चम्पारन का विजय,[1] चौरी चौरा का हत्याकाण्ड [2] साइमन कमीशन का बहिष्कार, [3] नमक आन्दोलन, [4] हिन्दू-हरिजन एकता के लिए गांधीजी द्वारा यारवादा जेल में स्वीकृत उपवास [5] 1942 में क्रिप्स मिशन से चर्चा[6] 1942 का प्रसिद्ध भारत छोड़ो आन्दोलन आदि उल्लेखनीय है । भारत छोड़ो आन्दोलन के अन्तर्गत नौ अगस्त सन् 1942 में बम्बई अधिवेशन में यही निर्णय लिया गया है —

1· प्रार्थना पुरुष - नरेश मेहता - पृ· 41·
2· - वही - पृ· 42·
3· - वही - पृ· 43·
4· - वही - पृ· 47·
5· - वही - पृ· 49 - 50·
6· - वही - पृ· 55·

" और अधिक अब नहीं चलेगा
यह गोरों का शासन
" भारत-छोड़ो " के नारों से
गूँज उठा अधिवेशन । "[1]

स्वाधीनता आन्दोलन के सन्दर्भों में जिन्ना द्वारा प्रतिपादित भारत विभाजन[2] अन्तरिम गवर्नमेंट बनना[3] साम्प्रदायिक झगड़े[4] अन्त में भारत विभाजन के लिए कांग्रेस द्वारा स्वीकृति देना आदि घटनायें हैं । अन्ततोगत्वा इसी राष्ट्रीय चेतना की व्यापक तीव्रता ने त्याग, बलिदान और सहिष्णुता की ऐसी धारा बहा दी जिसके सम्मुख विदेशी सत्ता के पाताल तक जमें पैर जड़मूल से उखाड़ फेंक दिये गये । 15 अगस्त 1947 को देश विदेशी दासता की जंजीरों से मुक्त हो गया । इस तरह स्वाधीनता सम्बन्धी राष्ट्रीय चेतना को जगाने में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस एवं महात्मागांधी जैसे महात्माओं का विशेष योगदान रहा ।

समय और सन्दर्भ अलग होने पर भी इस स्वाधीनता की चेतना के जागरण की अभिव्यक्ति नरेश मेहता के अन्य काव्यों में भी दिखाई पड़ती हैं । विभिन्न महात्माओं द्वारा यह आन्दोलन निरन्तर चलता रहा । " संशय की एक रात " में राम जनता की स्वतन्त्र-भाव-बोध की प्रेरक शक्ति हैं । उन्होंने रावण पीड़ित समस्त दक्षिण प्रदेशों के असंख्य साधारणजनों में

1• प्रार्थनापुरुष - नरेश मेहता - पृ• 55•
2• - वही - पृ• 57•
3• - वही - पृ• 58•
4• - वही - पृ• 59 - 60•

स्वतन्त्र भावबोध का जागरण किया । चैतन्यवान जनता राष्ट्र मुक्ति के लिए, अपने स्वत्व, स्वाधीनता और अधिकारों की रक्षा के लिए तथा शोषण का अन्त करने के लिए युद्ध को अनिवार्य मानती है । राम सीता की मुक्ति को अपनी वैयक्तिक समस्या मानकर युद्ध करना नहीं चाहते हैं। लेकिन सीता की मुक्ति में ही दक्षिणापथ की मुक्ति निहित मानी गयी है । हनुमान अपनी देश भक्ति का निरूपण करते हुए सीता को अपनी अपहृत स्वतन्त्रता का प्रतीक सिद्ध करते हुए उसकी रक्षा की आवश्यकता को स्पष्ट करते हैं । [1]

" प्रवादपर्व " में राम स्वाधीनता की चेतना की जागरण शक्ति को महत्व देते हुए उपर्युक्त कथन की पुष्टि करते हुए लक्ष्मण से इस प्रकार कहते हैं कि - अपनी प्रिय जन्म भूमि को विदेशी पंजे से स्वतन्त्र कराने के लिए देश भक्तों ने अल्पकालीन कष्ट झेले, जीवन का उत्सर्ग किया और अन्ततः वे अपने उद्देश्य में सफल हुए —

" दक्षिण के कोटि-कोटि
नर-किन्नर-वानरों ने
क्या
हमारी पारिवारिक विषमता के लिए
ऐतिहासिक सहयोग दिया था
क्या
इतिहास को हमने
वैयक्तिकता के लिए माध्यम बनाया था ?

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 64.

नहीं
नहीं लक्ष्मण !
अनाम लोगों और
भयातुर, प्रताड़ित प्रजा ने
अपने स्वत्व
स्वाधीनता, अभिव्यक्ति और
जीवन मूल्यों तथा आदर्शों के लिए
प्राणार्पण किया था,
एक चक्रवर्ती के विरुद्ध
साधारणता ने
युद्ध का आवाहन किया था । "[1]

" महाप्रस्थान " में भी स्वाधीनता और अधिकारों की रक्षा की बात युद्ध का कारण बन गयी है । पाण्डव और कौरवों के बीच अधिकारों के लिए आजीवन संघर्ष होता ही रहा । दुर्योधन की राज्याकांक्षा के अन्तर्गत पाण्डवों को विभिन्न प्रकार के दु:ख झेलना पड़ा । उन्हें पूर्ण रूप से विदित हो गया है कि सौ वर्ष तक वनवास करने पर भी कौरवों द्वारा अपना अधिकार मिलने की संभावना नहीं है । फलत: अपनी स्वाधीनता और अधिकारों की रक्षा के लिए युधिष्ठिर जैसे प्रज्ञावान को भी युद्ध का समर्थन करना पड़ा । युद्ध के लिए प्रेरित परिस्थितियों के बारे में युधिष्ठिर भीम से इस प्रकार कहते हैं -

" यदि मुझे विश्वास हो जाता कि
सौ वर्ष के वनवास के बाद भी
कौरव हमें अपना अधिकार दे देंगे
तो सच मानो भीम !
मैं कभी युद्ध के लिए सहमत न होता । "[2]

1· प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ· 49
2· महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ· 87

सम्प्रति: कवि कर्म के द्वारा अपने वर्चस्व और स्वाधीनता की रक्षा करना मानव जीवन का कर्तव्य मानते हैं। "संशय की एक रात" में लक्ष्मण ने कवि के उपर्युक्त कथन को राम के समक्ष इस प्रकार सिद्ध करते हुए कहते हैं कि —

"बन्धु! यह असम्भव है
कर्म और वर्चस को
छीन सके कोई भी
जब तक हम जीवित हैं।"[1]

उपर्युक्त विवेचन के द्वारा कवि ने विभिन्न युगों में अपनी स्वाधीनता के लिए सत्ता के विरोध में चलायें गये संघर्षों का परिचय दिया हैं। साम्राज्यवादी शक्तियों के पराजय की अनिवार्यता को पुन: स्पष्ट किया है। राष्ट्रीयता को जनता की जीवनशक्ति तथा उदात्त भावना मानकर उसकी रक्षा की आवश्यकता को घोषित किया है। राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान, स्वतन्त्रता आन्दोलन की सफलता के लक्ष्य के रूप में ग्रहण किया हैं। राष्ट्र की सुरक्षा में स्वाधीनता की चेतना के जागरण शक्ति के औचित्य को स्पष्ट किया है। ऐसी चेतना के जागरण के अन्तर्गत तत्कालीन परिस्थितियों का वर्णन किया है। विभिन्न कठिनाइयों का सामना करने के लिए तैयार होनेवाले भारतीयों की आत्मशक्ति को लक्ष्य करते हुए कवि ने स्वाधीनता के माध्यम से विश्व को उदात्त और आदर्श राष्ट्रीयता का संदेश देने की अभिलाषा व्यक्त की है।

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 18.

3.2.2. शोषण के विरुद्ध युद्ध और हिंसा की स्वीकृति :-

मार्क्सवादी चिन्तन के अन्तर्गत संघर्ष के औचित्य-अनौचित्य का निर्णय करने से पूर्व द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी दृष्टि से उसका विश्लेषण करना आवश्यक होता है। लेनिन के शब्दों में -- "मार्क्सवाद, इसबात का निश्चय करने के लिए कि कोई विशेष युद्ध प्रगतिशील समझा जा सकता है या नहीं, प्रत्येक युद्ध के ऐतिहासिक विश्लेषण की अपेक्षा करता है।"[1] वह युद्ध के महत्त्व को उसके उद्देश्य को दृष्टि में रखकर आँकता है। इसलिए वह साम्राज्यवादी युद्धों की घोर निन्दा करता है, जब कि शोषण और उत्पीड़न के विरुद्ध युद्ध को अनिवार्य मानता है। लेनिन ने लिखा है कि -- हम समझते हैं कि जब तक वर्गों का अन्त नहीं हो जाता, तब तक हम गृह युद्धों को, यानि उत्पीड़ित वर्ग के द्वारा, उत्पीडक वर्ग के विरुद्ध, गुलामों द्वारा गुलाम-मालिकों के विरुद्ध, भूदासों द्वारा भूस्वामियों के विरुद्ध और मजदूरों द्वारा पूँजीपति वर्ग के विरुद्ध चलाये जानेवाले युद्धों को पूर्णतः वैध, प्रगतिशील और आवश्यक मानते हैं।[2]

युद्ध विषयक मार्क्सवादी चिन्तन का अनेक आधुनिक कवियों ने भी समर्थन किया। "संशय की एक रात" में रावण की साम्राज्यवृत्ति से पीड़ित विभिन्न पक्षवाले अपने-अपने शोषण के विरुद्ध युद्ध और हिंसा पक्षों का समर्थन करते हैं। अयोध्या से निष्कासित राम, भाई बालि द्वारा अपमानित सुग्रीव तथा सामंत आदि दक्षिण प्रदेश की सुरक्षा के लिए कटिबद्ध हो गये हैं। अन्याय का विरोध करके विभीषण भी अपमानित हुए हैं। वह अपने भाई से नहीं एक सम्राट से न्याय चाहते हैं - जो दशानन होकर दसों दिशाओं पर

---

1. मार्क्सवाद का विकृत रूप तथा समाजवादी अर्थवाद -लेनिन - पृ. 199.
2. समाजवाद और युद्ध - लेनिन - पृ. 7.

आधिपत्य जमाए हैं। न्याय की रक्षा के लिए वह सम्राट रावण के विरुद्ध युद्ध का समर्थन करते हैं। ऐसे ही हनुमान साधारण जनों के दुःख और अधिकारों के प्रतीक बनकर आये हैं। वह अपने पक्षों के शोषण के विरुद्ध युद्ध और हिंसा का समर्थन करते हैं। यहाँ राम अपने मिथ्यावादी संशय के कारण युद्ध की अनिवार्यता को जानकर भी उसके परिणामों के बारे में सोचते हुए युद्ध की स्वीकृति देने में संकोच करते हैं। अंत में सामूहिक निर्णय के अनुसार युद्ध को स्वीकार करते हैं। इस तरह सामूहिक रूप में शोषण के विरुद्ध अपने अधिकारों की रक्षा के लिए युद्ध का समर्थन करते हुए एकत्रित होने के बारे में राम अपनी व्यथा को लक्ष्मण से यों कहते हैं —

" अयोध्या से निष्कासित मैं,
ये सुग्रीव
ये सामन्त
दीक्षा के लिए कटिबद्ध हैं।
अपमानित विभीषण चाहते हैं न्याय
उस सम्राट से
जो दस दिशा की नियति है
ये हनुमान
साधारण जनों के दुःख और अधिकार के प्रतिरूप। "[1]

सुग्रीव अन्याय के विरुद्ध आयोजित युद्ध का समर्थन करते हुए राम से कहते हैं कि —

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 68.

" महराज !
निश्चिन्त रहें
यह युद्ध न्याय का है । "[1]

सुग्रीव राम से यही स्पष्ट करना चाहते हैं कि — चाहते हुए कोई किसी से लड़ना नहीं चाहते, किन्तु अन्याय की कराल एवं कठोर शृंखलाएँ जब असहनीय हो जाती हैं तो मानव युद्ध करने को बाध्य हो जाता है । अतः युद्ध का उत्तर दायित्व युद्ध छेड़नेवाले पक्षपर न होकर उसपर है जो उसे उसके न्यायिक अधिकारों से वंचित कर देता है —

" रावण ने
दक्षिण प्रदेश
उसके सामन्तों का
अधिकृत कर
बो दिये युद्ध के बीज
बहुत पहले ही । "[2]

विभीषण भी सुग्रीव के मत का समर्थन करते हैं। उनकी दृष्टि में जो न्याय को चुराकर प्रजा को पीड़ित करते हैं युद्ध के जिम्मेदार भी वही होते हैं । इसलिए विभीषण व्यक्ति को अपने स्वत्व, स्वाधीनता और अधिकारों का अर्जन करने के लिए युद्ध को अन्तिम मार्ग मानते हैं । ऐसे न्याय प्राप्ति के लिए होनेवाले युद्ध के सम्बन्ध में राम से इस प्रकार कहते हैं —

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 69.
2. - वही - पृ. 70.

" युद्ध
मन्त्रणा नहीं
एक दर्शन है राम !
अन्तिम मार्ग है
स्वत्व और अधिकार अर्जन का । "[1]

इसीलिए ही साम्राज्यवादी शोषकों से उत्पन्न होनेवाले विषमताओं के विरुद्ध शोषित एवं श्रमजीवी शक्तियों के द्वारा आयोजित युद्धों तथा हिंसा का कवि समर्थन करते हैं। इसी प्रकार " प्रवादपर्व " में राम शोषण के विरुद्ध किया गया युद्ध का समर्थन करते हैं। शोषण की पराकाष्ठा व्यक्ति में विद्रोही भावों को जन्म देती है। उनकी यह चेतना ही उनकी स्वतन्त्रता की रक्षा की शक्ति बन जाती है। हरेक युग में ऐसी साम्राज्यवादी शोषक शक्तियों का विरोध अवश्य किया गया है। रावण के राज्य में अनाम लोग और भयातुर पीड़ित प्रजा ने अपने स्वत्व, स्वाधीनता, अभिव्यक्ति, जीवनमूल्यों तथा आदर्शों की रक्षा के लिए एक चक्रवर्ती के विरुद्ध युद्ध का आह्वान किया। इस युद्ध में प्राणों तक को न्योछावर करके अपने अधिकारों को सुरक्षित किया। राम शोषण के विरुद्ध प्रजा द्वारा स्वीकृत युद्ध को न्याय सम्मत मानते हैं। इसके समर्थन में वे लक्ष्मण से इस प्रकार कहते हैं — [2] भारतीय स्वतन्त्रता के संदर्भ में जहाँ गाँधीजी जैसे लोग अहिंसा का समर्थन करते हैं वहाँ सुभाषचन्द्रबोस शोषण एवं अत्याचारों के विरुद्ध हिंसा को अनिवार्य मानते हैं। जैसे —

" एक ओर केवल गाँधी जी
और दूसरी ओर सुभाष,
यह अवसर है, एक चोट में
बदल जायेगा सब इतिहास । "[3]

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 71.
2. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 49.
3. प्रार्थनापुरुष - नरेश मेहता - पृ. 53.

सभी युगों में न्याय एवं अधिकारों की रक्षा के लिए संघर्ष होता रहा । परि - स्थितिजन्य युद्ध को न्याय माना गया है । "महाप्रस्थान" में पाण्डव अपने अधिकारों से वंचित हो गये । दुर्योधन की कुटिलता के अन्तर्गत उन्हें विभिन्न दुःख भोगना पड़ा । राज्य स्वयं अन्याय एवं अत्याचारों का प्रतीक बन गया है । युधिष्ठिर शोषित जनता के पक्षधर है । इस लिए उन्हें केवल अपना ही नहीं प्रजा के लिए युद्ध को स्वीकारना पड़ा । राज्य प्राप्ति के प्रति उनके मन में कोई आकांक्षा नही है । फिर भी प्रजा के प्रति अपने कर्तव्य के रूप में युद्ध को स्वीकार किया । तत्कालीन परिस्थितियों में युद्ध ही कर्तव्य बन गया है तो अनासक्त होकर वह काम पूरा करते हैं । अपने को मूल्यान्वेषी कहनेवाले युधिष्ठिर द्वारा शोषण का अंत करने के रूप में युद्ध को स्वीकार किया गया है ।[1]

कवि "शबरी" काव्य के द्वारा हिंसा के औचित्य एवं अनौचित्य के बारे में अपना विवेचन प्रस्तुत करते हैं । दूसरों को पीड़ित करके, उनको सभी प्रकार से लूट-पाट करके, अवसर पड़ने पर हत्यायें करने के लिए स्वीकृत हिंसा को हेय मानते हैं । ऐसी हिंसा के आधार पर जीनेवाले आदिम मानव के जीवन दर्शन का परिचय इस प्रकार दिया गया है —

"हिंसा, लूटपाट, हत्याएँ
इनका जीवन-दर्शन "[2]

इसलिए गाँधीजी किसी रूप में होने पर भी हिंसा का समर्थन नहीं करते —

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 88.
2. शबरी - नरेश मेहता - पृ. 5.

" हिंसा का ही नहीं समर्थन
गाँधी कर सकते थे । " [1]

समीक्ष्य काव्यों द्वारा यदि मूलत: अहिंसा का समर्थन करते हैं । आवश्यक पड़ने पर अपनी रक्षा के लिए स्वीकृत युद्ध और हिंसा तक का समर्थन किया गया है ।

3·2·3· उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद का विरोध :-

पूँजीवादी व्यवस्था को समूल नष्ट करके वर्गहीन समाज की स्थापना करना मार्क्सवाद का अभीष्ट है । उपनिवेशवाद पूँजीवाद के विकास की ही एक अवस्था विशेष है । पूँजीवादी अपनी साम्राज्यवृत्ति के द्वारा पिछड़े देशों को उपनिवेश बनाते हैं वहाँ की जनता का शोषण करके अधिक लाभ अर्जन करते हैं । इसलिए मार्क्सवाद के अनुयायी उपनिवेशवाद का घोर विरोध करते हैं । लेनिन ने कहा था - " उत्पीड़ित उदाहरणार्थ उपनिवेशी राष्ट्रों द्वारा साम्राज्यवादी अर्थात् उत्पीड़क शक्तियों के विरुद्ध लड़ा जानेवाला युद्ध सच्चा राष्ट्रीय युद्ध है । " [2] सोवियत रूस का निर्माण मार्क्सवादी चिन्तन की दृढ़ नींव पर हुआ है । वही सर्वप्रथम देश था जिसने साम्राज्यवाद को अस्वीकार कर अपने पराधीन राज्यों को मुक्त किया । स्वयं साम्राज्यवादी शिकंजे से मुक्त होकर रूस ने पराधीन राष्ट्रों के स्वतन्त्रता संग्राम के प्रति सहानुभूति प्रकट की, अन्तराष्ट्रीय विधि के अन्तर्गत पराधीन एवं हाल में स्वतन्त्र हुए राष्ट्रों की हर सम्भव सहायता की और समाज विरोधी अन्तराष्ट्रीय सम्मेलनों का आयोजन किया । " [3] रूस की प्रेरणा प्रोत्साहन और सहायता लेकर विश्व के अन्य

1· प्रार्थना पुरुष - नरेश मेहता - पृ· 52·
2· मार्क्सवाद का विकृत रूप तथा समाजवादी अर्थवाद - लेनिन - पृ· 13·
3· आधुनिक यूरोप - दीनानाथ शर्मा - पृ· 260·

पराधीन राष्ट्र भी साम्राज्यवादी जुए को उतार फेंकने के लिए प्रयत्नशील रहें । सन् 1919 के बाद एशिया और अफ्रीका महाद्वीपों में साम्राज्यवाद की जो पराजय हुई वह सन् 1945 के बाद अन्तिम पराजय का रूप लेने लगी तथा साम्राज्यवाद का समूल उन्मूलन होने लगा । सन् 1947 के पूर्व भारत, ब्रिटेन का उपनिवेश था । यहाँ भी साम्राज्यवादी शोषण और दमन चक्र तीव्रगति से गतिशील था । हमारे देश के नेतागण इस तथ्य से परिचित थे कि भारतवासियों की दीन-हीन दशा का मूलकारण उनकी पराधीनता है । अत: सर्व प्रथम उन्होंने स्वाधीनता प्राप्ति को अपना परम लक्ष्य बनाया और अपने प्राणों तक का न्योछावर करके देश को स्वतन्त्र कराने का निर्णय लिया । अंग्रेजों के उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद के विरुद्ध चलाये गये आन्दोलनों में भारत छोड़ो आन्दोलन प्रमुख था । अंग्रेजों के साम्राज्य वृत्ति का खण्डन करते हुए भारतवासियों द्वारा यह निर्णय लिया गया कि - भारत में अंग्रेजों का शासन अधिक दिन नहीं रहेगा । इसलिए उनको देश से भगाने के लिए बम्बई अधिवेशन में सामूहिक सम्मति से यह निर्णय लिया गया कि —

" और अधिक अब नहीं चलेगा
यह गोरों का शासन
"भारत छोड़ो " के नारों से
गूँज उठा अधिवेशन । "[1]

सरदार भगतसिंह के अनेक क्रान्तिकारी साथियों ने अंग्रेजों के साम्राज्यवाद को समूल नष्ट करके मातृभूमि को परतन्त्रता की बेड़ियों से स्वतन्त्र कराना अपना प्रथम कर्तव्य समझा । इसलिए वे साम्राज्यवाद का विरोध करते हुए भारत छोड़कर जाने के लिए विद्रोह प्रकट किया । अब वे पूर्ण स्वतन्त्रता को प्राप्त करना चाहते

1. प्रार्थना पुरुष - नरेश मेहता - पृ. 55.

हैं इसलिए अपने सभी भारतवासियों से मिलकर अंग्रेजों के उपनिवेशवाद का यों खण्डन करने लगे —

" करो या मरो, देशवासियों !
यह समय का नारा
अंग्रेजो ! अब भारत छोड़ो
हिन्दुस्तान हमारा !! "[1]

" संशय की एक रात " में कवि ने उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद के विरुद्ध विद्रोह प्रकट किया है । यहाँ हनुमान रावण की साम्राज्यवृत्ति के बारे में राम से इस प्रकार कहते हैं कि —

" महराज !
साम्राज्यवृत्ति के द्वारा
हम साधारण जन
अर्थशून्य कर दिये गये । "[2]

हनुमान जन साधारण के सारे दुःखों को दूर करना चाहते हैं । वे रावण के उपनिवेशवाद का विरोध करते हुए अपने जनसाधारण के निर्णय को राम के समक्ष यों स्पष्ट करते हैं कि —

" हे रघुकुल तिलक !
हमारा यह सुन्दर दक्षिण प्रदेश
रावण
यह किसी अन्य का

---

1. प्रार्थना पुरुष - नरेश मेहता - पृ. 55.
2. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 65.

उपनिवेश हो
यह स्वीकार नहीं अब
किसी मूल्य पर । "[1]

" महाप्रस्थान " में युधिष्ठिर साम्राज्यवादी अंगीतियों पर विचार करते हुए इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं —

" राज्य के
अक्रूर शक्ति सम्पन्न होने का अर्थ ही है
व्यक्ति का स्वत्वहीन होना । "[2]

साम्राज्य के पूर्णरूप से शक्ति सम्पन्न होने के अर्थ में यह बात निहित है कि व्यक्ति का विकास समूल नष्ट हो जाना । इसलिए युधिष्ठिर साम्राज्यवादी अमानवीय कृत्यों का खण्डन करते हुए ऐसी प्रवृत्तियों को मानव समाज के लिए अहितकारी सिद्ध करते हैं । दुर्योधन की इसी साम्राज्यवादी प्रवृत्ति के विरुद्ध ही महाभारत युद्ध हुआ । अंत में युधिष्ठिर अपने सारे कृत्यों के बदले इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सारे मानवीय दुःखों का आधार केवल राज्याकांक्षा, राज्य और राज्य व्यवस्था है । इसलिए वे ऐसी राज्य व्यवस्था सम्बन्धी दर्शन का खण्डन करते हुए अर्जुन से कहते हैं —

" सारे मानवीय दुःखों का आधार —
यह राज्य है
राज्य - व्यवस्था है
और राज्य-व्यवस्था का दर्शन है । "[3]

1• संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ• 66•
2• महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ• 99•
3• - वही - पृ• 97•

युधिष्ठिर ऐसी राज्य-व्यवस्था के षड्यन्त्रों में भागीदार नहीं बनना चाहते । अतः राज्य का त्याग करते हैं । इसी प्रकार "प्रवादपर्व" में राम अपने साम्राज्य विरोधी विचार को इस प्रकार व्यक्त करते हैं --

" राज्य को सामूहिक आकांक्षा का
प्रतीक बनने दो भरत !
प्रजा के भी अधिकार होते हैं । "[1]

इस तरह कवि अपने विभिन्न विचारों के माध्यम से उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद का खण्डन किया । दरअसल उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद का विरोध उस समग्र राजनीतिक चिन्तन प्रक्रिया का प्रतिफलन है, जो स्वतन्त्र प्रेम और राष्ट्र-वादी अनुचिन्तन के गर्भ से उद्भुत हुआ है । चाहे यह साम्राज्य विरोधी स्वर गाँधीजी के विचार का फल हो, राम का हो, युधिष्ठिर का हो, मार्क्सवादी चिन्तन का, चाहे सोवियत क्रान्ति की देन हो या साम्राज्यवादी प्रेरणा, किन्तु इतना निश्चय है कि साम्राज्यवाद का विरोध हर स्तर पर किया गया है । संक्षेप में इसे कवि के स्वतन्त्र राजनीतिक विचारधारा का भी प्रतिफलन कह सकते हैं ।

3·2·4· युद्ध और शांति :-

युद्ध और शांति का प्रश्न अत्यन्त शाश्वत एवं सनातन रहा है और शायद भविष्य में भी रहेगा । समय-समय पर युग-युग के मनीषी इस सनातन समस्या का समाधान ढूँढने का प्रयत्न करते रहे, किन्तु परिणाम कभी पूर्ण उत्तर के रूप में नहीं निकला, हरबार उत्तर अधूरा रहा, मनीषा मजबूर होकर

1· प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ· 42·

मौन हो गयी । न तो यह प्रश्न ही मरा, न उत्तरों की गूँज समाप्त हुई । प्रश्न कभी किसी लेखक या कवि की रचना का पात्र होकर सामने खड़ा होता है, कभी किसी महात्मा की वाणी में अवतरित होता है और कभी किसी नेता का स्वत्व होकर नीति संचालन की धुरी बन जाता है । सर्वत्र प्रश्न एक ही है युद्ध या शान्ति ? इसी प्रश्न का समाधान नरेश मेहता ने भी देने का प्रयत्न किया ।

" संशय की एक रात " इसी समस्या पर आधारित है । दो विश्व युद्धों के फलस्वरूप सम्पूर्ण जगत में भय, निराशा, संशय तथा अनास्था के कैक्टस उग आए । नागफणियों के इस अंकुरण ने मनुष्य की जिजीविषा शक्ति पर प्रहार किया । आर्थिक दुरवस्था ने जीवन मूल्यों का विघटन किया और सामाजिक पर्यावरण को स्वार्थोन्मुख किया । इन सभी प्रभावों ने अन्तर्मुखी साहित्यकार को बौद्धिक चिन्तक, स्व तथा अन्त: प्रेक्षक बना दिया । सामाजिकता और उसकी समस्याओं का निराकरण भी वैयक्तिक अन्वेषण के आधार पर करने की प्रवृत्ति ने साहित्यकार को बुद्धि के एक स्तर से आगे प्रज्ञा के स्तर पर चिन्तन करने को बाध्य किया ।

" संशय की एक रात " में राम आधुनिक प्रज्ञा का प्रतिनिधित्व करते हैं । स्पष्ट है राम का व्यक्तित्व साहित्यकार के व्यक्तित्व में समाहित होकर युग की समस्या का समाधान प्रज्ञा स्तर पर कर रहा है । युद्ध की विभीषिका और मनुष्य की जिजीविषा निरंतर भय, अनास्था, संशय एवं संदेहों को जीवन में स्थापित करती रही है । युद्ध की विभीषिका को सामाजिक और वैयक्तिक धरातल पर भोगा जाता रहा है । राम के साथ जिस गरिमा बोध होता है उसी गरिमा बोध से प्रभावित होकर कवि ने राम के व्यक्तित्व में

उत्कृष्ट-प्रकृष्ट जानने की शक्ति को प्रज्ञा के रूप में प्रतिष्ठित किया है । अन्यथा यह समस्या अन्य माध्यमों से भी निराकृत हो सकती थी । कवि ने इस तथ्य को स्वीकार किया है - " जिस प्रकार कुछ प्रश्न सनातन होते है उसी प्रकार प्रज्ञापुरुष भी सनातन-प्रतीक होते है । राम ऐसे ही प्रज्ञा के प्रतीक है जिनके माध्यम से प्रत्येक युग अपनी समस्याओं को सुलझाता रहा । "1

" संशय की एक रात " नरेश मेहता का एक ऐसा खण्ड काव्य है कि जिसमें संशय से सत्य की खोज का प्रयास किया गया है । युद्ध और शान्ति जैसे प्रश्न को हल करने का सफल प्रयत्न किया गया है । युद्ध और शान्ति भावना से कर्तव्य तथा संशय से कर्म की यात्रा काव्य में नायक की भूमिका द्वारा व्यक्त हुई है ।

मूलत: युद्ध और शान्ति में विकल्प करने की समस्या उसके सामने हुआ करती हैं तो इन दोनों में से किसी एक के लिए स्वतन्त्र होता है, ऐतिहासिक नियतिवाला व्यक्ति कभी भी इसकी चिन्ता नही करेगा । ठीक उसी प्रकार इतिहास के निर्माण में विश्वास रखनेवाला व्यक्ति भी कभी संशय में नहीं पड़ेगा । ऐतिहासिक नियतिवाला इतिहास के प्रति आत्मसमर्पण करता है जबकि इतिहास का निर्माण करनेवाला व्यक्ति इतिहास का विरोध करता है इसलिए युद्ध और शान्ति की समस्या उसके सामने उठती ही नही । एक, उस इतिहास का निमित्त मात्र बनकर रक्तपात करता है, दूसरा वही रक्तपात नियंता बनकर निरंतर युद्ध करता रहता है । इसलिए दोनों युद्ध और शान्ति के आधारभूत सन्दर्भ में संहार की समस्या के अमानवीय पक्ष को देख ही नहीं पाते । इस खण्डकाव्य में राम न तो ऐतिहासिक नियतिवाला राम है और न ही इतिहास के निर्मातावाले राम है बल्कि वह " इतिहास-मुक्ति " की भावना से अनुप्राणित है । वे कहते भी है —

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - शीर्षग्रन्थ से उद्धृत

" इतिहास के हाथों
बाण बनने से अधिक अच्छा है
स्वयं हम
अँधेरों में यात्रा करते हुए
खो जायें । " [1]

युद्ध और शान्ति के साथ इस सन्दर्भ को समझना भी आज का नितांत आधुनिक संदर्भ है, क्यों कि द्रष्टा के रूप में देखते हुए वह लक्ष्मण से इस प्रकार कहते हैं —

" सब शिखर की नींद में
सोया अँधेरा है,
मत जगाना
अँधेरे को मत जगाना । " [2]

लंका पर आक्रमण करने के लिए सारी तैयारियाँ पूरी हो जाने के बाद अचानक राम के मन में यह प्रश्न उठता है कि क्या सारे शुभाशुभ कर्मों की परिणति युद्ध ही है ? राम के अनुसार यदि सारे मानवीय प्रश्नों का उत्तर केवल युद्ध या खड्ग है तो वह अपने धनुष, बाण और खड्गों को सागर के अज्ञात जलों को समर्पित करना चाहते हैं । बाणबिद्ध पक्षी के समान विवश साम्राज्य को वह स्वीकारना नहीं चाहते । मानव रक्त से मिलनेवाले एक पग धरती को तथा नरसंहार के बाद मिलनेवाले सीता को भी पाना नहीं चाहते हैं । यहाँ नायक राम युद्ध की विभीषिका से चिंतित होकर आधुनिक मानव के समान क्षुब्ध एवं अपने आप में अपरिचित सी मुद्रा बनाये संवेदनशील हो जाते हैं । संशय की अवस्था में राम को अपना व्यक्तित्व अधूरा भी लगता है । यदि युद्ध हुआ तो इसका सारा उत्तरदायित्व मेरा होगा, जो सिर्फ मेरी जय के लिए, यह सोच कर कि युद्ध से क्रूर संहार होगा, तो अन्तर्द्वंद्व से पीड़ित राम पहले युद्ध से इन

1• संशय की एक रात — नरेश मेहता - पृ• 10•
2• - वही - पृ• 11•

शब्दों में विमुख हो जाते हैं । वह अपनी मानसिक वेदना को युद्ध सम्बन्धी धारणा को सागर को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि —

ओ भाद्रपदी वृष्टि !
ओ विशाल रत्नाकर !

× × ×

समर्पित है यह
धनुष, बाण खड्ग और शिरस्त्राण ।
मुझे ऐसी जय नहीं चाहिए,
बाणविद्ध पाखी सा विवश
साम्राज्य नहीं चाहिए
मानव के रक्त पर पग धरती आती
सीता भी नहीं चाहिए
सीता भी नहीं । "[1]

वह रावण के साथ युद्ध करके जन विनाश का कारण नहीं बनना चाहते । राम के मन में लगी हुई संशय रूपी अग्नि नहीं बुझ रहीं है । अपने संशय के कारण युद्ध या शांति में किसे अपनायें इसका समाधान करने की स्थिति में वह नहीं है । क्यों कि एक अनुत्तरित संशय का सर्पवृक्ष उनको दिनरात सताने लगा ।[2] यही संशय राम के आत्म संघर्ष का कारण बना है । इसी संशय के कारण ही वह सीता की प्राप्ति को अपनी वैयक्तिक समस्या मानते हैं । अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए सत्य के नाम से जनता के हाथों में खड्ग देकर युद्ध में भेजना नहीं चाहते । राम की दृष्टि में यह काम लंघना का प्रतीक है । इसके सम्बन्ध में वे लक्ष्मण से कहते हैं कि —

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 32.
2. - वही - पृ. 24.

" सत्य की मिथ्या पताकाएँ लिये
अपने स्वार्थ के दे खड्ग
जन के हाथ में
जो भी लड़ूँगा युद्ध
होगी आस्था की वंचना ही । "[1]

राम का मन नरसंहार के व्यामोह के प्रति वितृष्णा से भर गया है । इसलिए वह ऐसे युद्ध, विजय एवं ऐसी प्राप्ति को मिथ्या मात्र समझते हैं । लेकिन सारा परिषद युद्ध के पक्ष में हैं । अकेले राम को ही विश्वास नहीं है कि युद्ध के बाद समाज में शान्ति स्थापित होगी । युद्ध द्वारा ही समस्याओं का समाधान मिलनेवाले भ्रम से वह मुक्त होना चाहते हैं । अपने व्यक्तिगत समस्या के लिए लोक नायक राम लोक की अवहेलना करना नहीं चाहते हैं। युद्ध या खड्ग से मिलनेवाले किसी प्रकार के सत्य को वह स्वीकारना नहीं चाहते हैं । वह मानव का मानव से सहज रूप में मिलनेवाले सत्य को स्वीकार करना चाहते हैं । यह संभव होगा या नहीं ? यही उनके मानसिक संघर्ष का कारण है । युद्ध की भयावहता के प्रति विमुखता के कारण राम युद्ध करने के लिए तैयार नहीं होते । परन्तु लक्ष्मण, हनुमान और जांबवंत आदि उन्हें कर्म की ओर प्रेरित करते हुए विभिन्न प्रकार के तर्क प्रस्तुत करते हैं । यहाँ तक दशरथी छाया राम के द्वारा समझनेवाले संशय का भी खण्डन करते हैं । उनके अनुसार यह केवल परिताप है, पश्चाताप है - जो अपने लोगों के बारे में विभिन्न प्रकार के सोचने पर उत्पन्न हुआ है लेकिन संशय नहीं है । दशरथी छाया राम के संशय का खण्डन करते हुए उनको युद्धोन्मुख बनाने के प्रयत्न में कहती है कि —

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 24.

" संशय स्वयं
क्त या सत्य तो नहीं
और
तुम्हें तो केवल
परिताप है, पश्चाताप है
संशय भी नहीं । "।

विभीषण युद्ध को केवल मंत्रणा ही नहीं सत्त्व और अधिकार अर्जन के लिए अन्तिम सत्य मानते हैं । इस तरह राम सभी लोगों के द्वारा युद्ध को कर्तव्य के रूप में स्वीकारने के लिए प्रेरणा पाते हैं । स्वयं उनके मन के निश्चय-अनिश्चय का द्वन्द्व भी नायक को पीड़ित करते हुए सोचने के लिए बाध्य करते हैं । फलतः लोकनायक राम युद्ध और शांति से सम्बन्धित अपने संशय को लोकमत के सम्मुख रखते हुए युद्ध के लिए स्वीकृति देते हैं ।

3·2·5· लघुमानव की प्रतिष्ठा :-

नीत्से के अतिमानव के विरोध में नयी कविता में लघुमानव को प्रतिष्ठा को महत्त्व दिया गया है । नीत्से जहाँ वर्तमान मानव के मानवीय गरिमा और मानव विशिष्टता की उपेक्षा करता है वहाँ नयी कविता इसे स्वीकार करती है । नयी कविता में जिन मानव मूल्यों को अभिव्यक्ति मिली है, उसमें सुपरमैन का स्थान नहीं है । नयी कविता जहाँ भी मानवीय गौरव या मानवविशिष्टता पर व्यंग्य करती है, तो उसके पीछे सुपरमैन की स्थापना का प्रयास नहीं है, बल्कि मानवीय गौरव पर होनेवाले आघातों से उत्पन्न अकुलाहट होती है, आक्रोश होता है ।

1· संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ· 50·

सुपरमैन का दर्शन अहंकार ग्रस्त है, जबकि नयी कविता में अहंकार नहीं " अहं " है और वह अहं भी मानव कल्याण के लिए विसर्जित होने की कामना रखता है । नयी कविता का मानव न वर्ग मानव, न अर्द्ध मानव, न सुपर बल्कि वह सिर्फ मानव है — अपनी विशिष्टताओं के कारण ।

सुपरमैन भीड़ का विरोध करता है, नयी कविता भी भीड़ को स्वीकार नही करती । लेकिन दोनों में अंतर है । नीत्शे भीड़ को इसलिए स्वीकार नही कर पाता कि सुपरमैन भीड़ नहीं हो सकता, वह भीड़ से ऊपर, भीड़ का नेता होगा, जबकि नया कवि भीड़ के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए भी भीड़ नहीं हो सकता वह भीड़ में शामिल प्रत्येक व्यक्ति का अपना अस्तित्व मानता है । वह उनके वैशिष्ट्य को खो देना नहीं चाहता । वह लोगों के बीच से एकयात्रा करता है । उसे लोगों के साथ-साथ अपने होने का बोध भी है । इस भाव की अभिव्यक्ति नरेश मेहता सहित नई कविता के सभी कवियों में मिल जाती है । सम्भवत: नीत्शे के अतिमानव के विरोध में या उससे प्रेरित होकर श्रीलक्ष्मीकांत वर्मा ने लघुमानव की कल्पना की है । उनके शब्दों में — " लघुमानव एक संज्ञा है, जिसे समस्त व्यापक मानव का लघुतम आत्मबोध कहा जा सकता है । "[1] उन्होंने लघुमानव की व्याख्या करते हुए कहा है कि - " लघुमानव प्रत्येक क्षण यथार्थ जागरूक चेतना प्रणाली के रूप में पूर्ण रूप से भोगता है । वह स्वप्न - विगलित आम्र-मंजरियों पर कल्पित कोयल की कूक के प्रति द्रवित नहीं होता, तो इसलिए वह दोषी नहीं ठहराया जा सकता । वह जो जीता है जो भोगता है, जो क्षण-क्षण उसके व्यक्तित्व में परिव्याप्त है, उसी को अभिव्यक्ति देता है । "[2]

---

1. नये प्रतिमान पुराने निकष - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 93.
2. - वही - पृ. 99.

नई कविता के अनुरूप नरेश मेहता के काव्यों में भी लघुमानव की प्रतिष्ठा की गयी है । " कभी-कभी असाधारण चरित्र की तेजस्विता में उसके निकट सम्पर्क में रहनेवाले चरित्र उपेक्षित रह जाते हैं । रामकथा में लक्ष्मण राम के अनुगामी एवं सेवक रहे । इसलिए रामकथा में उन्हें सदा गौणत्व प्राप्त हुआ है । हिन्दी साहित्य में स्वतन्त्र व्यक्तित्व के रूप में लक्ष्मण के चरित्र का अंकन प्रथमत: पंचवटी में हुआ है । परन्तु उस के विचारों में प्राथमिकता के दर्शन होते हैं । इसके पश्चात् लक्ष्मण संशय की एक रात में लघुमानव का आधुनिक चिन्तन लेकर उपस्थित हुआ है ।"[1] मनुष्य अपने अस्तित्व में लघु है । अपने लघुत्व पर उसका वश नहीं है । परन्तु अपने लघुत्व में भी कर्म मनुष्य का स्वत्व है । वह संशय ग्रस्त राम से कहते हैं कि —

" कितने ही लघु हों
इससे क्या ?
सार्थक हैं ।
स्वत्व है हमारा
कर्म । " [2]

लक्ष्मण मनुष्य के लघु अस्तित्व में भी उसके कर्म की सत्ता को स्वीकार करते हैं, जो उसके लघु अस्तित्व को सार्थकता पहुँचनेवाला है । इसलिए वे किसी भाग्यवाद एवं नियतिवाद का समर्थन नहीं करते —

---

1. पौराणिक काव्य आधुनिक सन्दर्भ - गो॰रा॰ कुलकर्णी - पृ॰ 230॰
2. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ॰ 14॰

" नहीं है हम
केवल परिचालित यन्त्र मात्र
किसी अदृश्य
अन्धे हाथों के । " [1]

वह अत्यन्त माननीय व्यक्तित्व सम्पन्न हैं । ... य के कर्म में दृढ आस्था रखनेवाले हैं । वह कर्म की औन्नत्य के बारे में राम से इस प्रकार कहते हैं कि —

" हमारी जलती हुई आँखों में
बँधी हुई मुट्ठी में
भिंचे हुए ओठों
इन थीत्रत पैरों में
संकल्पित प्रज्ञा है
वर्चस्वी निष्ठा है
उत्सर्गित इच्छा है । " [2]

अपनी इस संकल्पित प्रज्ञा, वर्चस्वीनिष्ठा और उत्सर्गित इच्छा के कारण उसे कर्मों के परिणामों की चिन्ता नहीं है । वह अपने भाई के समक्ष लघुव्यक्तित्व वाले हैं । फिर भी वह लघु व्यक्तित्व से विराट् व्यक्तित्ववाले राम की चिन्ता को निश्चयपूर्वक दूर कर सकने की आस्था व्यक्त करते हैं । वह अपनी लघु व्यक्तित्व की सत्ता का परिचय देते हुए अपने भाई से इस प्रकार कहते हैं —

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 14.
2. - वही - पृ. 15.

" लंका यदि धूम पर भी होती तो
भाग नहीं पाती बन्धु
लक्ष्मण के पौरुष से ।
वर्ष की चुनौती
मुझे स्वीकार है
अग्निकुण्ड की भी, पर
राम को माथे पर
चिन्ता की रेखा ?
देख नहीं सकता
ब्रह्मलोक को भी मैं
बाणों की चुनौती ही देता
यदि वह
राम के माथे पर बनता
चिन्ता की रेखा । "[1]

कवि की दृष्टि में लघुता वह अंश है जो हर विनाश और बंधावट के बाद भी बचा रहता है तथा पुनर्निर्माण और पुनः सृजन करता है । कवि समूह में रहनेवाले हर व्यक्ति के स्वतन्त्र अस्तित्व को स्वीकार करते हुए उनके वैशिष्ट्य को स्पष्ट करना चाहते हैं । " संशय की एक रात " में रावण पीड़ित समस्त दक्षिण देशवासी उनके अधीन होकर अपने स्वतन्त्र अस्तित्व को खोकर अनेक दुःख भोगते हैं । फिर उन्हें अपने स्वतन्त्र वर्चस्व की जागृति की प्रेरणा राम द्वारा मिलती है । इसलिए वे सभी मिलकर रावण के अत्याचारों का अंत करके अपने लघु अस्तित्व को शक्ति को दिखाना चाहते हैं । इस प्रकार ये लघु मानव संशय में नहीं सत्य में विश्वास करते हैं । इन्हीं के अस्तित्व के सार्थक प्रमाण के रूप में

1· संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ· 17·

सेतुबन्ध का कार्य सम्पन्न हुआ है । यहाँ हनुमान जन साधारण की शक्ति और दुःख का प्रतीक है । वह अपनी जागृत शक्ति के आधार पर रावण तथा अन्य किसी के अधिकार को स्वीकारना नहीं चाहते हैं।[1] लघुमानव के व्यक्तित्व में उनकी शक्ति में अनंत विश्वास रखना कवि के मानववादी दृष्टिकोण का परिचय करता है । इसलिए " महाप्रस्थान " का युधिष्ठिर इस लघु मानव के महत्व की सर्वोपरिकता को प्रतिष्ठित करते हुए भीम से इस तरह कहते हैं कि --

" किसी भी साम्राज्य से बड़ा है
एक बन्धु
एक अनाम मनुष्य । "[2]

" प्रवादपर्व " में कवि लघुमानव की शक्ति के महत्व के बारे में इस प्रकार कहते हैं ---

" जब-जब भी
लोगों को
इतिहासहीन कर देने की चेष्टा की गयी है
तब-तब
वे लोग
अपनी पिपीलिका साधारणता के साथ
इतिहास की आग पर चलकर
पुराण-पुरुष बन जाते रहे हैं । "[3]

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 64.
2. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 66.
3. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 31.

3·2·6· जनतांत्रिक भावादर्श :-

नरेश मेहता ने राजनैतिक चेतना के अन्तर्गत राज्य-व्यवस्था का जो आदर्श स्थापित किया है वह मूलतः जनतान्त्रिक भावना का है। उन्होंने राज्य व्यवस्था की नींव में जन साधारण की प्रतिष्ठा की आवश्यकता को स्पष्ट किया। उन्होंने अपने काव्यों में राजतंत्र का चित्रण अवश्य किया है, किन्तु वह ऐतिहासिकता की सुरक्षा के लिए केवल है। राजतन्त्र में राजा अथवा शासक की मनोवृत्ति का चित्रण किया है। राष्ट्र की सुरक्षा के लिए राजा और प्रजा के पारस्परिक कर्तव्यबोध को अंकित किया है। उनके आपसी सम्बन्धों का चित्रण आज के युग के प्रजातान्त्रिक आदर्शों के अनुरूप ही किया है। ऐसे प्रजा तन्त्र में स्वेच्छा चारिता या निरंकुश राजतन्त्र के लिए कोई स्थान नहीं दिया है। इसलिए यहाँ राजा और प्रजा के बीच संघर्ष या तनाव की स्थिति न होकर प्रीति और सद्भाव पैदा होने की आशा व्यक्त की है। नरेश मेहता ने प्राचीन कथाओं पर आधारित अपने काव्यों में राजतन्त्र का चित्रण किया है। यहाँ राजसत्ता पुत्र को पिता से उत्तराधिकार के रूप में मिला है। इसलिए उसे उदार एवं कल्याणकारी राजसत्ता कहना उपयुक्त नहीं होगा। लेकिन ऐसे उत्तराधिकारी को अपने शासक के रूप में स्वीकार करने पर, अयोग्य एवं निरंकुश होने पर उसको हटाकर अन्य शासक को चुनने का अधिकार होने के द्वारा प्रजा के अधिकारों को सुरक्षित रखा गया। राजतन्त्र में भी लोकमत का अनुसरण करना राजा के लिए अनिवार्य माना गया है। "संशय की एक रात" में राम सीता की मुक्ति को वैयक्तिक मानते हैं। वह अपनी व्यक्तिगत समस्या के लिए युद्ध करके प्रजा के दुःखों का कारण नहीं बनना चाहते। प्रस्तुत रचना में लक्ष्मण प्रजा का प्रतिनिधित्व करते है तथा राम के संशय को अनुचित मानते हैं। कारण - प्रजा की इच्छा है सीता को मुक्त कराया जाय। लोकमत का आदर करके कर्तव्य पालन करने के लिए प्रेरित करते हुए लक्ष्मण राम से इस प्रकार कहते हैं कि —

" बन्धु ! आज हैं
परिजन औ पुरजन प्रियभाजन हैं ।
साथ ही हम प्रजा के
मनोनीत राजन हैं ।
ऋषियों के प्रिय और
हम सब के
नैनों के उत्सव हैं ।
अवधि हैं अयोध्या की
सीता की प्रतीक्षा हैं
महराज रघु की ही प्रतिकृति हैं । "[1]

" प्रवादपर्व " के राम जनतान्त्रिक मूल्यों में अधिक आस्था रखनेवाले हैं । वे किसी साधारण जन द्वारा राज्य की गरिमा के विरुद्ध उंगली उठाने के कारण उसे सैनिक शक्ति के द्वारा बलात् दबाने के प्रति विरोध व्यक्त करते हैं । वह यह नहीं चाहते हैं कि उस साधारण जन को अस्तित्वहीन कर दिया जाए । उनका विश्वास है कि साधारण लोगों को दबाने की चेष्टा करना व्यर्थ है क्योंकि ऐसे लोगों को इतिहासहीन करने के प्रयत्न में सत्ता हरबार विफल होती आयी है और वे अपने साधारण अस्तित्व के साथ इतिहास को बदलते हुए पुराण पुरुष बनने लगे हैं । राम ऐसे साधारण लोगों की शक्ति पर अपने विश्वास को यों व्यक्त करते हैं कि —

जब-जब भी
लोगों को
इतिहासहीन कर देने की चेष्टा की गयी है
तब-तब

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - 11 - 12.

वे लोग
अपनी पिपीलिकावत साधारणता के साथ
इतिहास को आग पर चलकर
पुराण-पुरुष बन जाते रहे हैं । " [1]

राम जन साधारण की अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता की रक्षा के द्वारा लोकतन्त्र का सुरक्षित रखना चाहते हैं । किसी राजतन्त्र के प्रति साधारणजन अपनी असहमति व्यक्त करते है तो वह उनका अधिकार मानते हैं । ऐसी अभिव्यक्ति के ऐतिहासिक महत्व की रक्षा करना राजा का कर्तव्य मानते हैं । उनके अनुसार ——

" जब भी
ऐसी तर्जनी उठती है
तब
राजतन्त्र और इतिहास
कोलहल से भर उठते हैं
क्यों कि
वह मात्र अंगुली ही नहीं होती राम !
उसका एकप्रतिऐतिहासिक व्यक्तित्व होता है
महत्व भी । " [2]

" महाप्रस्थान " में युधिष्ठिर ने राज्य-व्यवस्था के मूल में जन साधारण की प्रतिष्ठा के माध्यम से जनतांत्रिक भावादर्श को व्यक्त किया । युधिष्ठिर राज्य-व्यवस्था की नींव में कराहनेवाले व्यक्ति के रहने की आवश्यकता पर बल

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 31.
2. - वही - पृ. 27.

देते हैं ताकि पीड़ित प्रजा अपनी वेदना को व्यक्त कर सकें। वे अर्जुन से कहते हैं कि —

" राज्य - व्यवस्था की नींव में
कराहते मनुष्य का होना
एक अनिवार्यता है अर्जुन ! "[1]

युधिष्ठिर जनतन्त्र में अधिक विश्वास रखते हैं। ऐसे राज्य में सभी को समान आदर देने की कल्पना करते हैं। वे राज्य में अनाम समझनेवाले व्यक्ति को अधिक महत्त्व देना चाहते हैं सामाजिक चक्रव्यूह में पिसनेवाले अनाम, विचार - हारा जन साधारण के बारे में सोचने के लिए बाध्य करते हुए अर्जुन से कहते हैं —

" अर्जुन ! इस वैचारिक चक्रव्यूह में

x x x

जिज्ञासा के केन्द्र में
जो अनाम
विचारहारा व्यक्ति है
जिसका कोई इतिहास नहीं लिखा जाता
बल्कि जिसकी देह को छीलकर ही
हम इतिहास लिखते आये हैं
उसके अर्थ को जानने की चेष्टा की है पार्थ ? "[2]

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 99.
2. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 90.

आज के युग में इस अनाम, सर्वहारा, विचारहारा की बात अधिक की गई हैं। आर्थिक दृष्टि से सर्वहारा शब्द का अधिक प्रयोग किया गया है। अर्थ से सम्पूर्ण रूप से वंचित जनता को सर्वहारा कहा गया। " अनाम " शब्द अस्तित्व हीनता को सूचित करता हैं। नरेश मेहता की दृष्टि में इस " सर्वहारा " जन से भी अधिक विपन्न वह है जो " विचारहारा " है। आज के युग का सबसे बड़ा शोषण उस " विचारहारा " साधारणजन का हुआ है। वह अपने स्वत्व से अपनी सम्पूर्ण वैचारिक क्षमता से रहित कर दिया गया है और व्यक्ति को उस विचाररहितता की स्थिति में पहुँचाकर ही तो राज्य अपना निरापद महसूस करते हैं। आर्थिक सुविधाओं को प्रदान करके भी मनुष्य को इस विचार-हारा होने का शिकार बनाया जा सकता है, यह बात इस युग की सबसे बड़ी विडम्बना है। इस बात से कवि अच्छी तरह परिचित है। इस सन्दर्भ में कवि ने युधिष्ठिर के जरिए विचारहारा व्यक्ति का परिचय दिया है। युधिष्ठिर द्रोणाचार्य की विवशता के लिए राज्य को दोषी मानते हैं। राज्य व्यवस्था ने उनको आवश्यक सुविधाओं को प्रदान करके अपने अधीन बनाया है। उस व्यवस्था ने उस सात्विक एवं परम मेधावी को ऐसी दशा तक पहुँचाया है कि वह केवल अपना जीवन निर्वाह के लिए अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व, ज्ञान और विवेक तक राज्य को सौंपना पड़ा। इसीलिए ही युधिष्ठिर राज्य व्यवस्थाओं को समाप्त करने पर बल देते हैं। व्यक्तियों को स्वत्वहीन और विचारहीन बनानेवाले राज्य व्यवस्थाओं के बारे में तर्क सहित वह अर्जुन से इस प्रकार कहते हैं कि ——

" क्या द्रोणाचार्य की इस विवशता के लिए
राज्य दोषी नहीं ?
क्या इस व्यवस्था ने ही
उस सात्विक, परम मेधावी को

इस स्थिति तक नहीं पहुँचाया कि
मात्र जीवन-निर्वाह के लिए
अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व
ज्ञान और विवेक तक
राज्य को सौंप देना पड़ा ? "।

इसलिए कवि ऐसे राजतन्त्र के बदले में प्रजातन्त्र का समर्थन करते हैं। स्वतन्त्रता के पूर्व हमारे देश में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद एकनवीन गणराज्य की स्थापना करने का कल्पना की गयी थी। जिसमें केवल प्रजातन्त्र की स्थापना करना ही सभी का लक्ष्य था। नरेश मेहता भी नए मूल्यों के प्रति आस्थावान कवि है। उनके द्वारा भी ऐसी प्रजापीड़क राज्यव्यवस्थाओं को नष्ट करके उनके स्थान पर लोकतन्त्र की स्थापना होने पर बल दिया गया है। युगों से चली आने-वाली राज्य-व्यवस्थाओं के घात-प्रतिघातों को जनता अभी तक भोग चुकी है। प्रजा भी अपने लिए ऐसी राज्य-व्यवस्था को पुन: स्थापित नहीं करना चाहती। जनवादी कवि होने के नाते नरेश मेहता अनाम, पीड़ित जनसाधारण के अधिकारों को सुरक्षित रखना चाहते हैं। वे जनतन्त्र को ही पीड़ित मानवता के लिए सुरक्षा का साधन मानते हैं। लोकतंत्र की स्थापना में अपना अखण्ड विश्वास व्यक्त करते हैं कि लोकतंत्र की स्थापना के परिणाम स्वरूप सहस्रों वर्षों से पद मर्दित एवं मानसिक कुण्ठाओं से ग्रस्त भारतीय जनता में एक नवीन जागृति एवं राजनैतिक चेतना का उन्मेष होगा।

स्वतन्त्रता के बाद देश में प्रजातन्त्र की स्थापना हुई। विदेशी राजतन्त्र को पूर्णरूप से समाप्त किया गया। संस्थानों के विलिनीकरण के द्वारा देश की अखण्डता को स्थापित किया गया। इन सभी राज्यों का भार वहन करने

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 107.

के लिए अधिकारियों को नियुक्त किया गया । जनता को मतदान देने के द्वारा अपने अधिकारियों को स्वयं चुनने का अधिकार मिल गया । नवीन राज्यांग का निर्माण किया गया । प्रजा के न्यायिक अधिकारों की रक्षा के लिए सर्वोच्च न्यायालय बनाया गया । इस प्रकार प्रजा से प्रजा के लिए प्रजा द्वारा एक नवीन शासन विधान बनाया गया । हर स्तर पर जनसाधारण की रक्षा को महत्व माना गया है । कवि ने ऐसे प्रजातन्त्र का समर्थन करते हुए उसके उज्ज्वल भविष्य में निष्ठा व्यक्त की है । ऐसे प्रजातन्त्र में शासन व्यवस्था को सुरक्षित रखना हरेक का कर्तव्य माना गया है । शासक और प्रजा के पारस्परिक कर्तव्य के द्वारा उनके आपसी सम्बन्धों को महत्वपूर्ण माना गया है ।

" प्रवादपर्व " में राम प्रजा के अधिकारों की रक्षा करना राजा का कर्तव्य मानते हैं । सत्ताधीश होकर उसके सारे शक्ति जालों को अपने स्वार्थ के लिए सुरक्षित रखना, उपयोग करना या अपने अनुकूल बनाना नहीं चाहते हैं । ऐसे विधान का वे डटकर खण्डन करते हैं । राजा के कर्तव्य को परोक्ष रूप में सूचित करते हुए इससे सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करते हैं । वे लक्ष्मण से प्रश्न करते हुए कहते हैं कि —

" सत्ता के गोमुख पर बैठकर
उसके सारे शक्ति-जलों को
अपने ही अभिषेक के लिए
सुरक्षित रखना —
यह कौन सा दर्शन है लक्ष्मण ? " [1]

1· प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ· 41·

राम स्वयं सभी प्रकार के कष्ट सहकर प्रजा को सुरक्षित रखना चाहते हैं । राम राज्य में यही प्रजातान्त्रिक आदर्श चरितार्थ हुआ है । वे राज्य को प्रजा के सामूहिक अधिकारों एवं आकांक्षाओं का प्रतीक मानते हैं । उसमें प्रजा के अधिकारों को सुरक्षित करना चाहते हैं । ऐसे राज्य के प्रति राज्य के नागरिक के लिए भी कुछ कर्तव्य निर्दिष्ट होते हैं । अपना कर्तव्य निभाये बिना ही अधिकारों के लिए लड़ना प्रजा को शोभा नहीं देता । अगर कोई राज्य और राजा अधिकार मद में डूबकर राज्य की ओर ध्यान नहीं देता तो ऐसे राज्य और राजपुरुषों से पहले उनका कर्तव्य बोध करना, समझाना, नहीं मानने पर आग्रह के साथ शुभाशुभ के बारे में कहना प्रजा का कर्तव्य है । राम अपने मन्त्रीवर को सम्बोधन करते हुए सभा के समक्ष प्रजा के कर्तव्य के बारे में इस प्रकार कहते हैं कि --

" मंत्रीवर !
प्रजा का ही
यह कर्तव्य भी है कि
अधिकार में डूबे राज्य और
राजपुरुषों से कहें,
न हो आग्रह करे कि
क्या शुभ है, और
क्या अशुभ । " 1

" संशय की एक रात " में कवि ने विभीषण, मन्दोदरी तथा अन्य उप - निवेशियों के द्वारा कर्तव्य परायण प्रजा का परिचय दिया । इन लोगों ने अपने राज्य और राजा के प्रति अपने कर्तव्य को अच्छी तरह निभाया था । यहाँ

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 42.

रावण ने सीतापहरण किया । न्याय के हरप्रस्ताव को अस्वीकार किया । राम द्वारा भेजे गये दूत को अपमानित किया । जब-जब उपनिवेशियों ने विद्रोह किया तब तब उनके संस्कृतियों और इतिहास तक को रौंद डाला गया है । जब भाई विभीषण ने उनको समझाने के लिए प्रयत्न किया है तब उनको देश से बहिष्कृत किया । अपने कर्तव्य निभाने के मार्ग में रावण द्वारा प्रजा को दुःख भी प्राप्त हुए । ऐसी दशा का परिचय देते हुए विभीषण राम से इस प्रकार कहते हैं —

" सम्राट ने ही
न्याय की हर बात अस्वीकार की ।
दूत अपमानित किये ।
स्वयं मन्दोदरी ने
आग्रह किया —
फेर दो सीता
अग्नि है
छूना मत इसे
पर
सम्राट केवल हँस दिये ।
जब - जब उपनिवेशों ने किया
विद्रोह
उनके लोग, संस्कृतियाँ औ - इतिहास तक को
भस्म कर डाला ।
जब मैंने कहा
मुझे निष्कासित किया । "[1]

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ० 74 - 75.

रावण के साम्राज्य के सभी नागरिकों ने रावण को कर्तव्य बोध कराने के लिए विभिन्न प्रकार का प्रयत्न करके भी विफल हो गये । अंत में सभी नागरिकों ने अपने स्वत्व, स्वाधीनता और देश की सुरक्षा के लिए युद्ध का आहवान किया । ऐसे युद्ध में हनुमान जन-साधारण के प्रतीक बनकर आते हैं । ये साधारण जन कभी युद्ध प्रिय नहीं होते और युद्ध भाव से किसी पर आक्रमण करना नहीं चाहते । हनुमान जन साधारण के स्वभाव के बारे में राम से इस प्रकार कहते हैं —

" हम साधारण जन
युद्ध प्रियो थे कभी नहीं
और न लंका युद्ध लड़ेंगे
युद्ध भाव से । " 1

परिस्थितियाँ विपरीत होने पर अपने अधिकारों, संस्कृति एवं सभ्यता की रक्षा के लिए युद्ध को अनिवार्य मानकर स्वीकार करने के लिए संकोच भी नहीं करते । ये जन-साधारण अपनी सामूहिक शक्ति पर अखण्ड विश्वास रखते हैं । अपने पर किसी के आधिपत्य को स्वीकार नहीं कर सकते । दूसरों के दास बनकर जीना भी नहीं चाहते । वे स्वतन्त्रता के पिपासी होते हैं । प्राणों तक का न्योछावर करके स्वाधीनता को पाना अपना कर्तव्य समझते हैं । स्वतन्त्रता के पूर्व भारतीय अंग्रेजों की दासता में रहकर अनेक दुःख झेले । भारतीयों ने अपनी स्वाधीनता के लिए अंग्रेजों के समक्ष विभिन्न शांति प्रस्ताव रखें किन्तु विफल हो गये । उनके नहीं मानने पर अपनी असहमति को व्यक्त करते हुए अहिंसायुक्त आँदोलन भी चलाया । अपने सारे प्रयत्न विफल होने पर कभी-कभी हिंसा मार्ग को भी स्वीकार किया । भारतीयों द्वारा अंग्रेजों के क्रान्तिवाला शासन से

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 65.

निकले आदेशों का विरोध किया गया और भारतीयों को रंग-भेद के नाम से अपमानित करनेवाले इस शासन का विरोध करने के लिए लोगों को बुलावा दिया गया —

" करना ही होगा विरोध
इस अपमानिक धारा का
वर्ना जीवन बन जायेगा
दासों का, कारा का । " [1]

ऐसे विदेशी शासन के विरोध में अहिंसा और सत्याग्रह के विपरीत चलकर दानवता के पराभव के लिए प्रयत्न किया गया । जनता ने विभिन्न सन्दर्भों में अपनी निर्भय आत्मशक्ति का परिचय दिया । विदेशी शासन से निकले विभिन्न शासनों का उल्लंघन किया गया । अनेक आन्दोलन चलाए गए । विभिन्न यातनाओं को सहकर अन्त में भारतीय स्वतन्त्र हो गए । स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् एक दशक भी नहीं बीता कि प्रजातन्त्र की शासन व्यवस्था ने अपना उग्र रूप धारण कर लिया । प्रजा के मोहभंग होने लगा । ऐसी स्थिति में कोने-कोने से जनतांत्रिक भावादर्शों की गूँज सुनाई पड़ने लगी । आधुनिक कवियों ने भी इन में योगदान दिया । नरेश मेहता इस भावभूमि पर अत्यधिक क्रिया-शील रहें ।

राजतन्त्र का समर्थन करनेवाले कुछ सनातन पक्षों की ओर से प्रजातन्त्र की कुछ दुर्बलताओं को लेकर निंदा की गयी है । " महाप्रस्थान " में युधिष्ठिर के द्वारा ऐसे लोगों की शंकाओं का समाधान दिया गया है । वह राजतन्त्र के

---

1. प्रार्थना पुरुष - नरेश मेहता - पृ. 26.

दोषों को लेकर प्रजातन्त्र का समर्थन करते हैं । वे राजतन्त्र और प्रजातन्त्र के गुणदोषों का उल्लेख करते हैं । वे राजतन्त्र की अपेक्षा प्रजातन्त्र को महत्वपूर्ण मानते हैं । उन दोनों के भेद को स्पष्ट करते हुए राजतन्त्र के सामने प्रजातन्त्र के औचित्य के बारे में अर्जुन से इस प्रकार कहते हैं —

" एक साधारण जन
पृथ्वी पर
हल की रेखा से
धन-धान्य का भाग्य-ग्रन्थ रचता है
जबकि सत्ताधारी
पृथ्वी पर
रथ की रेखा से
रक्त-स्नात इतिहास लिखता है । " [1]

युधिष्ठिर राजतन्त्र के बदले प्रजातांत्रिक मूल्यों पर अधिक विश्वास रखते हैं। वे राजा और राज्य व्यवस्थाओं को क्रूरताओं और षड्यन्त्रों का प्रतीक मानते हैं । एक सम्राट बनकर इन षड्यन्त्रों में भागीदार नहीं बनना चाहते । युद्ध करके असंख्य मृतकों के साथ जीवित व्यक्तियों के दुःखों का कारक बनना नहीं चाहते । इसलिए वह एक साधारण जन बनकर अपने सारे अमानवीय कृत्यों के लिए हिम में गलकर इतिहासहीन मृत्यु को स्वीकार करना उचित समझते हैं। अर्थात् युधिष्ठिर राजा और राज्य व्यवस्थाओं को पुनः स्थापित नहीं करना चाहते । एक राज्य व्यवस्था के बदले प्रजातंत्र की स्थापना करना चाहते हैं । वे अर्जुन से अपनी राज्य त्याग के बारे में इस प्रकार कहते हैं कि —

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 102.

" मैं इस षड्यन्त्र का
भागी नहीं बनना चाहता था
इसीलिए
एक नितान्त साधारण जन बनकर
अपने अमानवीय कृत्यों के लिए
हिम में गलकर
इतिहासहीन मृत्यु स्वीकार लेना
उचित समझा पार्थ ! "[1]

युधिष्ठिर अपने कथन के द्वारा यह भी स्पष्ट किया है कि किसी राजा या अधिपति में राज्य या शासन तंत्र के प्रति भोगासक्ति नहीं होने पर समय के अनुसार उसे तिनके के समान छोड़ना चाहिए । यदि वह कर्तव्यवश राज्य ग्रहण करता भी है तो अपने लिए नहीं प्रजा के लिए स्वीकारना चाहिए । प्रजाहित के लिए प्राणों तक न्योछावर करना राजा का कर्तव्य माना गया है । कवि राम के माध्यम से प्रजातंत्र के स्वरूप के प्रति अपना विचार यों व्यक्त करते हैं कि - प्रजातन्त्र में प्रजा के स्वाभाविक अधिकारों की रक्षा अवश्य करना चाहिए । राजा या राज्य के प्रति प्रश्न करने का अधिकार जन-साधारण को अवश्य होना चाहिए । जो राजा प्रजा को उचित शासन देने में उनको सुरक्षित रखने में विफल होते हैं उन्हें अवश्य अपना पद छोड़ना चाहिए । जन साधारण को दबाकर उनके स्वत्व का हरण करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए । अगर कोई अनाम साधारण किसी राजा या अधिपति की ओर प्रश्न करने का साहस करते है तो उसे उनका विद्रोह एवं असहिष्णुता नहीं समझना चाहिए । जन साधारण से बढ़कर सृष्टि में कोई अन्य महाशक्ति नहीं हैं । राम ऐसी विचार के समर्थन में इस प्रकार सोचते हैं कि —

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 100.

" राम !
अपने को इतिहासहीन बना लेना
नहीं अधिक श्रेयस है ;
क्यों कि
जब भी
कोई असार कुशील
अनाम साधारणजन
किसी इतिहास - पुरुष के विरुद्ध
तर्जनी उठाने का साहस करता है
तब
वह मात्र विद्रोह ही नहीं होता है राम !
न, वह असहिष्णुता ही है ;
साधारणता से इतर
दृष्टि में
कहीं कोई सहिष्णुता नहीं । "[1]

राम के अनुसार राज्य चाहे तो अपनी शक्ति के आधार पर कुछ भी कर सकता है लेकिन अनाम मनुष्य को इतिहासहीन नही कर सकता —

" सब कुछ किया जा सकता है
किया भी जाना चाहिए
परन्तु
मनुष्य
उसकी अनाम साधारणता को
इतिहासहीन नहीं । "[2]

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 31 - 32.
2. - वही - पृ. 31.

इसलिए ही राम जन-साधारण में निहित अदृश्य शक्ति के प्रति आभार प्रकट करते हैं। क्योंकि उसके कारण ही वह पृथ्वी के अनाम, असंख्य लोग और कष्टों भरे जीवन से परिचित हो सके हैं। राम अपने आप को एक साधारण जन बनकर उन असंख्य साधारणजनों के दुःखों का भागदीार बनना चाहते हैं। अर्थात् एक राजा या सम्राट बनकर जो काम साधारण लोगों के लिए नहीं कर सके उसे एक अनाम साधरण जन बनकर करना चाहते हैं। वे सीता से इसके बारे में यों कहते हैं कि —

" अत्यन्त आभारी हूँ
उस अदृश्य का
जिसके कारण
पृथ्वी के अनाम
असंख्य साधारण लोग और
कष्टों भरे जीवन से परिचित हो सका।
क्या मैं राजकुमार
या सम्राट बनकर
इस साधारणता का कभी साक्षात कर सकता था ? "[1]

कवि, राम के माध्यम से यही स्पष्ट करना चाहते हैं कि शासक को प्रजा के सुख दुःखों का सहभागी बनना चाहिए। अधिपति होकर प्रजा से दूर नहीं रहना चाहिए। प्रजा में एक होकर प्रजातन्त्र की सुरक्षा के लिए प्रजा की ओर से काम करना चाहिए। इस तरह कवि ने अपने विभिन्न काव्यों के माध्यम से जन साधारण की प्रतिष्ठा को बढ़ाया। विचारहारा जनों के प्रति सहानुभूति व्यक्त किया। राजतन्त्र को प्रजा के दुःखों के लिए जिम्मेदार मानते हुए प्रजातन्त्र की स्थापना पर बल दिया। ऐसे जनतन्त्र में जनता अपना शासन और

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 68.

स्वयं संभल सकता है । उसके लिए किसी राज्य व्यवस्था की आवश्यकता नहीं । प्रजातन्त्र में जनता आत्मानुशासित होकर अपने शासन का स्वयं संचालन कर सकती हैं । ऐसे राज्य की एवं उसके प्रजा की सुरक्षा के लिए आवश्यकता पड़ने पर युद्ध का भी समर्थन किया गया है । प्रजा की स्वेच्छा चारिता को अराजकता नहीं माना गया है । " महाप्रस्थान " में अर्जुन ऐसी ही शंका को व्यक्त करते हैं । उनकी शंका का निवारण करते हुए युधिष्ठिर कहते हैं कि एक जनतन्त्र में प्रजा की आवाज को अराजकता मानने में उसका अर्थ ही बदल जाएगा —

" जब तुम अराजक शब्द का प्रयोग करते हो
तो इसकी प्रकृति, अर्थ
सब कुछ बदल जाता है । " [1]

कवि जनसाधारण की शक्तियों पर अखण्ड विश्वास व्यक्त करते हैं । जन - साधारण द्वारा अपने शासकों के प्रति ऐसी चेतावनी भी दी गयी है कि यदि प्रजातन्त्र के नाम पर जनता के दमन का क्रम पूर्व युगों की भाँति अभी भी अनवरत रहा तो जनता ऐसी क्रान्ति के लिए भी विवश हो सकती है - जिससे वर्तमान शासन की नींव उखाड़ फेंकने में देर न लगेगी । कवि साधारण जन प्रतिष्ठा प्रधान प्रजातन्त्र का समर्थन करते हुए उसे विश्व का सर्वाधिक भव्य श्रेष्ठ तथा उदार प्रजातन्त्र कहकर उसका हार्दिक शुभाभिनंदन करता है । इस प्रकार कवि ने अपने काव्यों में जनतांत्रिक भावादर्शों को विभिन्न रूपों में व्यक्त किया है ।

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 98.

3.2.7. अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता :-

समकालीन इतिहास-बोध व्यक्ति की आस्था को स्वतन्त्र करने में सहायक होता है । व्यक्ति इस आधार पर अपने को और अपने आस-पास के जगत को समझता हैं । इस प्रकार का बोध उसे शान्त रहने नहीं देता । व्यक्ति फिर अपने को अभिव्यंजित करने के लिए व्याकुल हो जाता है । अभिव्यंजना के आधार पर ही वह जी सकता है । इस प्रकार की अभिव्यंजना में वह पूर्णस्वातन्त्र्य की माँग करता है, जो सहज है । आधुनिकता की सबसे बड़ी माँग विचार स्वातंत्र्य का हैं । आधुनिकता की सबसे बड़ी पीड़ा यह है कि व्यक्ति के विचार कुचल दिए जाते हैं । इसी से वह छटपटाता हैं । यह छटपटाहट मौन और करुणा से आप्लावित है । यदि इसे वाणी मिले तो मुक्ति मिलती है और जीवन मिलता है ।

विचारों की जीत सबसे बड़ी जीत होती है और विचारों की हार सबसे बड़ी हार । क्यों कि विचार ही व्यक्तित्व को पुष्ट करते हैं । जिसके अपने कोई विचार नहीं उसका अपना कोई व्यक्तित्व भी नहीं होता । जो बात एक व्यक्ति के लिए लागू है, वह समूह, समुदाय और राज्य के लिए भी लागू है । जिस राज्य की जनता का चिन्तन-स्तर ऊँचा होगा और जिसकी अपनी निजी सत्ता होगी वह राज्य निश्चय ही समुन्नत होगा । जॉन डयूई ने लिखा है - "जैसे ही विचार शक्ति विकसित होती है वैसे ही मनुष्य की आवश्यकताओं का अन्धापन खत्म हो जाता है । विचार आगे की ओर देखता है और परिणाम की पहले से ही कल्पना कर लेता है । वह अपने लिए कुछ प्रयोजन, योजनाएँ, लक्ष्य, आदर्श और उद्देश्य बना लेता है । मानवीय प्रकृति के इन सार्वत्रिक और अनिवार्य तथ्यों में से श्रेयस की ओर चरित्र के बौद्धिक पक्ष के मूल्यों की नैतिक अवधारणाएँ विकसित होती है । चरित्र का यह बौद्धिक

पक्ष इच्छाओं और उद्देश्यों के समस्त संघर्ष और द्वन्द्व में व्यापक और स्थायी परितुष्टि को अन्तर्दृष्टि से देखने का प्रयत्न करता है। वही ज्ञान या दूरदर्शिता है। "[1] इसी ज्ञान और दूरदर्शिता के आधार पर मानव उन्नति करता है और अपने हित के साथ साथ समाज का भी हित करता जाता है। किन्तु यह सभी उसी समय संभव है जबकि राज्य-व्यवस्था में विचार-स्वातंत्र्य की सुविधा दी गई हो। जो राज्य-व्यवस्था विचारों पर रोक लगायेगी वहाँ पर निरंकुश सत्ता स्थापित होगी और आतंक का साम्राज्य होगा। लोक राज्य जिसे कि नाम से ही स्पष्ट है जनता का राज्य है। अतः इसमें विचार-स्वातंत्र्य की व्यवस्था है। किन्तु केवल विधान में लिखे होने से ही काम नहीं होता आवश्यकता उसके व्यावहारिक प्रयोग की है।

भारतीय संविधान में भी विचार स्वातंत्र्य की व्यवस्था है। यह जनता के हित में है। अन्य अधिकारों की तरह यह अधिकार भी समाज और राज सापेक्ष है, उनसे स्वतंत्र नहीं। संविधानिकों ने एक नहीं अनेक रूपों में यह बात स्पष्ट कर दी कि इसका अर्थ एवं अभिप्राय सामाजिक सन्दर्भ में ही समझना चाहिए। सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और राष्ट्रीय अस्तित्व से जुड़े सवाल इनसे वरीयता ग्रहण करते नजर आते हैं और इसलिए इनका उपयोग निश्चित परिधि में ही किया जा सकता है। हमारे संविधान में वर्णित मूल अधिकारों पर यह वाक्यांश - "मनुष्य जन्म से स्वतंत्र है किन्तु हर कदम पर बन्धन युक्त है।"[2] पूर्णतया चरितार्थ होता है। विधि सम्मत स्वतंत्रता ही स्वतंत्रता है और समाज के व्यापक हितों के परिप्रेक्ष्य में युक्ति युक्त निर्बन्धन कई बार आवश्यक हो जाते हैं। संविधान के अनुच्छेद 19 से 22 में वर्णित

---

1. नैतिक जीवन का सिद्धान्त - जानड्यूई - अनुवादक - कृष्णचंद्र - पृ. 167.
2. भारतीय संविधान और राजनीति - वेददान सुधीर - पृ. 123.

उपबंधों को इसी परिप्रेक्ष्य में अध्ययन करना चाहिए । अनुच्छेद 19 में वर्णित विभिन्न स्वतंत्रताओं में भाषा एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता भी एक है । भारतीय संविधान ने इसी भाषा एवं अभिव्यक्ति को जनतंत्रीय पद्धति में आवश्यक समझते हुए अधिकार के रूप में स्वीकार किया है ।

" प्रजादर्प " में राम द्वारा राज्य के सभी वर्गों को इसी भाषा एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को महत्व दिया गया है । राज्य में अनाम वर्ग का समझनेवाले धोबी ने सीता की चरित्र मर्यादा पर कलंक लगाया है । सारे राजवंशी उस धोबी के विश्वास को अविश्वसनीय मानते हैं । उनकी अभिव्यक्ति को कोई महत्व नहीं देना चाहते हैं । राम द्वारा इसी विषय पर गंभीर विचार किया गया है — राम के अनुसार तर्जनी वाणी का प्रतीक होती है । उसमें अनंत शक्ति निहित होती है । उनकी अकेली तर्जनी के माध्यम से सामूहिक विश्वास व्यक्त हो सकता है । शक्ति केवल मंत्रों और श्लोकों में निहित होने की आवश्यकता नहीं । उस अनाम तर्जनी का भी अपना ऐतिहासिक महत्व है । इतिहास इसका साक्षी भी है । उस तर्जनी में इतिहास को प्रतिइतिहास में बदलने की शक्ति है । इसलिए प्रजा के प्रतिनिधि के रूप में उस धोबी की वाणी एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा करना अपना कर्तव्य मानते हैं —

" तर्जनी
वह किसी की भी हो
वाणी ही होती है ।
यह कोई आवश्यक नहीं कि
शक्ति
केवल मन्त्रों और श्लोकों में ही हो ।

अनेक बार
ऐसी ऐतिहासिक अनाम ध्वनी में भी
इतिहास को
प्रतिइतिहास में बदल देने की शक्ति होती है ।"¹

राम अपने राज्य में प्रजा की अभिव्यक्ति को महत्वपूर्ण मानते हैं । क्यों कि राज्य सामूहिक शक्तियों का एक समुदाय है । उसपर सभी वर्गों का समान अधिकार होता है । राजा केवल प्रतिनिधि है । चाहे वह राजतंत्र हो या प्रजातंत्र प्रजा को अपनी सत्ता से प्रश्न करने का अधिकार समान रुप से मिलना चाहिए । उनकी अभिव्यक्ति को राज्य के प्रति विरोधी संकल्प नहीं समझना चाहिए । आपत्काल में यह अधिकार कुछ वर्गों तक ही सीमित हो गया था । जन साधारण अपने इस अधिकार से पूर्ण रुप से वंचित हो गये । [illegible] । उनके इस जन्म सिद्ध अधिकार को उनसे कोई छीन नहीं सकता । राम द्वारा राजतंत्र में प्रजातन्त्र का समर्थन किया गया है । वे प्रजा के पक्ष से उनके अधिकारों के लिए लड़ते हुए सत्ता से इस प्रकार प्रश्न करते हैं कि —

" राजशक्ति पर प्रश्न चिह्न लगाना
विरोधी संकल्प कैसे है ??
क्या गरिमा
क्या चरित्र
क्या अधिकार
केवल राज्य
राजपुरुषों या

---

1. प्रवादपर्व – नरेश मेहता – पृ. 28.

इतिहास – पुरुषों के ही होते हैं ?
अनाम साधारणजन के कुछ नहीं होते राम ? "[1]

राम राज्य में भाषा एवं अभिव्यक्ति को सुरक्षित करना चाहते हैं । कोई भी समाज अपनी भाषा एवं अभिव्यक्ति को इतिहासहीन होने का समर्थन नहीं कर सकता । इसी विषय को स्पष्ट करते हुए राम लक्ष्मण से यों कहते हैं कि —

" लक्ष्मण !
सामाजिक भाषाहीनता
अभिव्यक्ति की इतिहासहीनता का सामना
नहीं कर सकता
लक्ष्मण ! नहीं कर सकता । "[2]

राम मनुष्य की अभिव्यक्ति में ही राज्य की सुरक्षा निहित मानते हैं । वह अपने राज्य में प्रजा के सभी प्रकार के अधिकारों को सुरक्षित रखना चाहते हैं । इसी सन्दर्भ में वे रावण जैसे राजा एवं उसके राज्य का उल्लेख करते हैं । रावण एक निरंकुश सम्राट है । उनके राज्य में प्रजा का कोई नामोल्लेख नहीं है । सारी प्रजा अपने सहज अधिकारों से वंचित होकर राज्यभय के कारण मूक हो गयी है । रावण जन साधारण की शक्ति से परिचित था । लेकिन वह कभी सब के अभिमत को स्वीकारना नहीं चाहता था । एक राजवंशी द्वारा जन – सामान्य के विचारों का समर्थन नहीं कर सका । रावण को क्रमशः ऐसी प्रतीत होने लगा कि उनके सामने अपनी शक्ति क्रमशः फीकी पड़ने लगी है । सत्ता कोई भी हो अपने अधिकार की सुरक्षा के आगे बन्धुत्व को भी महत्व नहीं देती । फलतः रावण ने भरी सभा में समस्त दिक्पालकों, देवताओं और प्रजा

---

1. प्रवादपर्व – नरेश मेहता – पृ. 29 – 30.
2. – वही – पृ. 43.

के सम्मुख विभीषण को अपमानित करके देश से बहिष्कृत किया । अपनी शक्ति से प्रजा को अभिव्यक्तिहीन, भाषाहीन और स्वत्वहीन बनानेवाले रावण के पराक्रम के बारे में व्यंग्य के रूप में राम लक्ष्मण से इस प्रकार कहते हैं —

" प्रतिइतिहास को
अभिव्यक्तिहीन
भाषा हीन और
स्वत्वहीन बना देने वाले
अप्रतिम प्रतापी । " 1

अपने राज्य की निरंकुशता के आगे प्रजा पीड़ित होते हुए मौन होकर सदा रहना नहीं चाहती । अपनी अभिव्यक्ति के लिए समय-समय पर वह छटपटाते रहती है । उनकी यह व्याकुलता राज्य के प्रति अपनी निर्भय अभिव्यक्ति का कारण बनती है । जब सत्ता उनको रौंदने या सर्वनाश करने का प्रयत्न करती है तो वे परिस्थिति के आगे झुककर विद्रोह को स्वीकार करते हैं । अपने इसी नूतन वर्चस्व से स्वयं ही नहीं सम्पूर्ण राष्ट्र को भी मुक्ति दिलाने में सफल होते हैं । " संशय की एकरात " में इसी विषय की पुष्टि की गयी है । समस्त दक्षिण देश रावण के अत्याचारों से सदा से पीड़ित होते रहे हैं । इसी समय में उनको राम का नेतृत्व प्राप्त हुआ है । पीड़ित मानवता की ओर से रावण की निरंकुशता के विरुद्ध अपनो अधिकारों की रक्षा के लिए अंतिम मार्ग के रूप में युद्ध को स्वीकार किया गया है । अपनी राष्ट्र की सुरक्षा के लिए विभीषण ने भी राम का साथ दिया । लंका पर आक्रमण करने के लिए सृष्टि के प्रथम आश्चर्य के रूप में, मानव विद्रोह भावों के प्रथम एवं अद्भुत प्रतीक के रूप में, [illegible] महान सेतु का निर्माण

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 48.

किया । इस सेतु के पीछे निहित उद्देश्य एवं उस सेतु के महत्त्व के बारे में हनुमान राम से इस प्रकार कहते हैं —

" वह महासेतु
जो कि प्रथम आश्चर्य सृष्टि का
मानव के विद्रोह भाव का
प्रथम
किन्तु अद्भुत प्रतीक है । " 1

" प्रवादपर्व " में राम अपने राज्य को रावण के राज्य का प्रतीक बनना नहीं चाहते । अपनी वैयक्तिक समस्या के कारण प्रजा को अपने अधिकारों से वंचित करके राज्य में विद्रोह को जन्म नहीं देना चाहते हैं । राम धोबी को जन साधारण का प्रतिनिधि मानते हैं । उनकी उक्ति द्वारा सामूहिक महत्त्व को स्वीकारना चाहते हैं । एक प्रजातंत्र के प्रतिनिधि के रूप में प्रजा की अभि-व्यक्ति एवं अधिकारों का रक्षा करना चाहते हैं । वह धोबी के माध्यम से अभिव्यक्त होनेवाले मानवीय स्वातंत्र्य मानवीय भाषा और मानवीय अभिव्यक्ति को आदर सहित स्वीकारना चाहते हैं । राम मनुष्य को सृष्टि की जिह्वा मानते हैं । सृष्टि की वाणी-भाषा मनुष्य के माध्यम से ही बोलती हैं । इसलिए राम मनुष्य के माध्यम से व्यक्त होनेवाली समस्त शक्तियों की अभि-व्यक्ति की रक्षा करना अपना कर्तव्य मानते हैं । वे भाषा की आवश्यकता एवं उसके महत्त्व को स्वीकार करते हैं । भाषा पर मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार सिद्ध करते हैं । उसकी अभिव्यक्ति की रक्षा करना चाहते हैं । उनके अनुसार - भाषा व्याकरण और अर्थान्वय से युक्त होती है । देश काल की समस्त स्थितियों को अपने द्वारा अभिव्यक्ति प्रदान करती है । वह गायत्री स्वरूप है । वह

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 62.

महाशक्ति शाली है । वह केवल मनुष्य के पास है । उस पर केवल मनुष्य का ही अधिकार है । चाहे वह देवभाषा हो या माटी भाषा मनुष्य द्वारा ही अभिव्यक्ति पाती है । मनुष्य के भाषाहीन हो जाने से सृष्टि ईश्वर - हीन हो जाती है । राम भाषा की अभिव्यक्ति की रक्षा की आवश्यकता एवं भाषाहीनता के परिणाम के बारे में लक्ष्मण से कहते हैं —

" मनुष्य का भाषाहीन हो जाना
सृष्टि का
ईश्वरहीन हो जाना होगा लक्ष्मण । "[1]

सीता स्वयं धोबी की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा की आवश्यकता को स्पष्ट करती है । वह राज्य, न्याय और राष्ट्र की सर्वोच्चता को स्वीकार करती है । उनको व्यक्तियों तथा सम्बन्धों से परे रखना चाहती है । वह धोबी के विश्वास का समर्थन करती हैं जिसे उसने निर्भय होकर अभिव्यक्त किया है । आज धोबी के माध्यम से अनाम वर्गों के अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता पर विचार हो रहा है । इसलिए यहाँ धोबी को अनाम साधारण वर्ग का प्रतिनिधि माना गया है । इसलिए सीता राज्य और न्याय के द्वारा उस अनाम प्रजा के विश्वास की अभिव्यक्ति की रक्षा करना चाहती है । वह राम से कहती है कि —

" यदि
वह उस
अनाम साधारणजन का विश्वास है
जिसे उसने निर्भय अभिव्यक्त किया है
तो राज्य, न्याय तथा आप को

1• प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ• 52•

उस अनाम प्रजा के विश्वास की
अभिव्यक्ति की
रक्षा करनी चाहिए । "[1]

राज्य का अधिकार व्यक्तियों को भाषाहीन एवं अभिव्यक्तिहीन बनाती हैं । फलतः सम्पूर्ण राज्य मूक हो जाता है । कौरव अपने दुर्निवार अन्यायों के द्वारा पांडवों को सदा दुःख देते रहे हैं । सत्य की मूर्ति विदुर ऐसे कृत्यों को रोकने के लिए अनेक बार राज्य के सम्मुख अपना प्रस्ताव रखते हैं । अपनी भाषा से सत्ता को समझाने का प्रयत्न करते हैं । लेकिन ऐसी शीलवान की सज्जन भाषा का महत्व देनेवाला वहाँ कोई नहीं है । फिर भी विदुर उनसे प्रतीकार लेना नहीं चाहता । पाण्डव की स्थिति भी ऐसी ही है । परि - स्थितियाँ विपरीत होने लगी है । विदुर ने समय के आगे असहाय एवं निस्पृह होकर तटस्थता को स्वीकार कर लिया है । इस तरह विदुर राज्य के सम्मुख मूक होकर भाषा एवं अभिव्यक्तिहीन व्यक्तियों के प्रतीक बन गये । ऐसे असहाय व्यक्तियों के प्रति कवि अपना विचार यों प्रकट करते हैं कि —

" सत्य की मूर्ति
विदुर ने
क्यों नहीं लिया प्रतिकार

x x x

कौन राज्य समझा करता है
शीलवान की सज्जन भाषा ? "[2]

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 80.
2. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 45.

दुर्योधन के सारे अत्याचारों के विरुद्ध सम्पूर्ण राष्ट्र ने महाभारत युद्ध को स्वीकार किया । इस प्रकार प्रजा ने अपनी शक्ति से निरंकुश राजसत्ता को समूल नष्ट करके राष्ट्र की स्वतंत्रता को सुरक्षित किया ।

सत्ता चाहे राजतंत्र हो प्रजातंत्र । वह कभी भी दूसरों की भाषा एवं अभिव्यक्ति के महत्व को स्वीकारने के लिए तैयार नही होती हैं । भारत में सन् 1947 के पहले अंग्रेजों का राज्य था । प्रजा पर अपने आधिपत्य को जमाये रखने के लिए सत्ता सदा कुछ-न-कुछ नया शासन बनाती थी । उनमें ट्रान्सवाला शासन भी एक हैं । इस शासन ने प्रजा को रंग भेद के आधार पर विभक्त करके उनके स्वत्व का हरण किया । इस शासन के परिणामों के बारे में गांधीजी ने अंग्रेजों को समझाना चाहा । इस के लिए उन्हें लंदन तक दौड़ना पड़ा । सत्ता कोई भी हो उसका स्वभाव एक ही होता है । वह दूसरों के प्रस्ताव को अनसुना करती है —

" लन्दन तक गांधी जी दौड़े
सत्ता को समझाने,
पर सत्ता कोई भी हो,
कब भाषा से है माने ? " ।

सत्ता की दमन नीति को प्रजा सहन नहीं कर सकती है । अपनी स्वाधीनता के लिए भारतीय निरंतर अंग्रेजों के साथ विभिन्न आंदोलन चलाते रहे । उनके अनवरत कार्यों के फल स्वरूप अंत में 1947 में भारत को स्वतंत्रता मिली है ।

---

1. प्रार्थना पुरुष - नरेश मेहता - पृ. 27.

3·2·8· खण्डित व्यक्तित्व :-

सामान्य व्यक्तित्व अपने समस्त घटकों का सामंजस्यपूर्ण समवेत रूप होता है और एक स्थाई इकाई की भाँति व्यवहार करता है। विकारग्रस्त होने पर उसके ये घटक असम्बद्ध या विकीर्ण हो जाते हैं। समवेन भंग हो जाता है। मनो वैज्ञानिक भाषा में इस दशा को खण्डित व्यक्तित्व कहते हैं।[1] यह स्थिति प्रबल मानसिक संघर्ष से उत्पन्न होती है, जिसके कारण व्यक्ति के कुछ अंगों पर चेतना का अधिकार नहीं रह जाता। असंबद्ध अंग कोई विचार, भाव या प्रवृत्तियाँ हो सकती है।

आधुनिक युग में व्यक्ति के व्यक्तित्व को टुकड़ो-टुकड़ों में बाँट कर रख देनेवाले कारकों में सब से बड़ा कारक है — अतिशय बौद्धिकता और अन्तर्विरोधी परिस्थितियाँ। इन्हीं के अनुकूल व्यक्तित्व-विभाजन के भी बौद्धिक और सांवेगिक दो पक्ष हैं। बौद्धिक दृष्टि से आज सत्य-असत्य का संघर्ष उतना बड़ा नहीं रहा जितना कि सत्य-सत्य का। आज की बौद्धिक और यांत्रिक प्रगति ने सत्य को देखने-परखने की अनेक दृष्टियाँ प्रदान की है। जिनसे उनके अनेक पक्ष उद्घाटित होने लगे हैं। सत्य के ये भिन्न पक्ष कभी एक दूसरे के पूरक, कभी प्रतियोगी और कभी घोर विरोधियाँ बनाकर उपस्थित होते हैं। पूरक न होने पर कोई संघर्ष नहीं, पर प्रतियोगी और विरोधी होने की स्थिति में सब से बड़ी समस्या उनमें से एक चुनाव को उत्पन्न होती है। चुनाव का यह प्रश्न एकवैचारिक द्वन्द्व को जन्म देता है। अनुकूल सत्य के भिन्न-भिन्न पक्ष अपने-अपने समर्थन के लिए व्यक्ति के व्यक्तित्व को भी भिन्न-भिन्न टुकड़ों में बाँट लेते हैं। ऐसी परिस्थिति में यह समझ पाना कि व्यक्ति का कौन सा पक्ष अधिक या सर्वाधिक सच्चा है, एक बड़ी समस्या है।

1· हिन्दी साहित्य कोश - भाग - 1, सं·डा·धीरेन्द्रवर्मा - पृ· 214·

"संशय की एक रात" में राम और विभीषण के माध्यम से इस खण्डित व्यक्तित्व की समस्या को उठाकर उसे समूह के विवेक के द्वारा समाधान देने का प्रयास किया है। वाल्मीकी या तुलसी रामायण में राम का व्यक्तित्व जटिल नहीं हैं इसलिए वह कथा संभाव्य [Predictable] है। जब कि इसके विपरीत आज की चेतना कई धरातलों पर एक साथ आघरित होती हैं। अनेक रूढ़ियों का स्थान मूल्यों ने लिया हैं और एक स्थिति में दो विरोधी मूल्य भी एक दूसरे से टकराते हैं। इसलिए जब नरेश मेहता पौराणिक राम को अपने कथा-संदर्भ में बैठाते हैं तब आज के मनुष्य की ही भाँति बोलने लगते हैं। क्यों कि युग नियति ने उन्हें उलझनों में डालकर उनको झकझोर दिया है। उनके विवेक ने उन्हें युगीन समस्याओं के बारे में सोचने के लिए बाध्य किया। उनका खण्डित व्यक्तित्व उनके चिन्तन और कर्म के बीच एक बहुत बड़ी खाई है। स्वयं राम अपने विवेक और कर्म में सामंजस्य खोज नहीं पाते। उनका व्यक्तित्व अपने खण्डित रूप में आधुनिक व्यक्ति के अन्तर्विरोधों का प्रतिनिधित्व करता है। खण्डित व्यक्तित्व की चरम परिणति यहाँ तक पहुँच जाती हैं कि अपने कर्तव्य को पूरा करने में भी उन्हें असमर्थ बनाती है। इस दुविधा के कारण व्यक्ति में अप्रामाणिक स्थितियों का जन्म हो रहा है। यह कौन जान सकता है कि इस अप्रामाणिक व्यक्ति में भी अन्य आसक्तियाँ हो जाती है। संशय किसी के मन में हो गये पक्षी के पंख के समान सन्दर्भ से खण्डित होकर निष्प्रयोजित हो जाता है। कवि यहाँ राम के व्यक्तित्व को समकालीन मनुष्य की द्विधाग्रस्तता और खण्डित मन: स्थिति इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—

"दो सत्य
दो संकल्प
दो - दो आस्थाएँ —
व्यक्ति में ही
अप्रामाणिक व्यक्ति पैदा हो रहा है,

कौन जाने
अप्रामाणिक व्यक्ति में भी
अन्य आसित हों ।
क्या हो
क्या न हो की बालू में
किसी पाखीपंख से टूटे हुए
सन्दर्भ खण्डित
निष्प्रयोजित !! "[1]

वास्तव में इस द्विधाग्रस्त मन: स्थिति का कोई प्रमाण नहीं है । इस दुविधा की स्थिति के कारण ही अनेक अप्रामाणिक स्थितियों का जन्म हो रहा है । इसी के कारण मन अनेक शंकाओं का निवास स्थान बन गया है । इसी संशय के कारण राम का व्यक्तित्व क्या हो क्या न हो के प्रश्नों से भर उठा है । एक अनुत्तरित संशय का सर्पवृक्ष उन्हें दिनरात पीपल के समान सताने लगा है । राम अपने खण्डित व्यक्तित्व का समाधान समस्त प्रकृति से पाना चाहता है । वह हर तरफ से अपनी संशयाग्नि को बुझाना चाहते हैं तथा अपने में घिरे अनंत प्रश्नों का समाधान पाना चाहते हैं । वह सत्य की जीत होना चाहते हैं । इसे वह युद्ध या छद्म के द्वारा नहीं मानवीय सौहार्द के धरातल पर पाना चाहते हैं । उनका व्यक्तित्व इसी संशय पर विभाजित हो रहा है कि वह संभव होगा या नहीं । अपने संशय के बारे में समस्त प्रकृति से इस प्रकार प्रश्न करते हुए पूछते हैं कि —

" मैं सत्य चाहता हूं
युद्ध से नहीं
छद्म से भी नहीं

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 23.

मानव का मानव से तत्व चाहता हूँ
क्या यह सम्भव है ?
क्या यह नहीं है ? "।

यहाँ राम की बौद्धिक दृष्टि ने उनमें सत्या-सत्य के प्रति संघर्ष पैदा किया है तथा अन्तर्विरोधी परिस्थितियों में पड़कर उनका व्यक्तित्व खण्डित एवं विभाजित हो रहा है । इसी खण्डित व्यक्तित्व के कारण वह सीता, दशरथ सहित अन्य पुरजन और परिजनों की ओर से अपने को गलत समझने की ओर सोचकर चिन्तित होने लगे हैं । क्यों कि उनके जीवन में अब परिताप और पश्चात्ताप के सिवा कुछ भी नहीं रहा जो होना है वह हो गया है । उन स्थितियों को बदलने की शक्ति अब उनमें नहीं है । इसलिए राम नियति के हाथों में अपने को विवश समझने लगे हैं । प्राचीन राम कथा में राम उच्च मानवीय आदर्शों के रूप है लेकिन नरेश मेहता का राम परम्परागत राम से भिन्न है । वह आज के खण्डित और विभाजित व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करते हैं।

राम का चिन्तन यहाँ भी अत्यन्त आदर्शवादी है लेकिन द्विधा और अनिर्णय की मन:स्थिति में राम स्वयं को विवश और असमर्थ पाते हैं । इस स्थिति में वह सीता का ही नही साम्राज्य तक को स्वीकारना नहीं चाहते हैं। इसी सीता को पाने के लिए उन्होंने स्वयंवर के समय में धनुष तोड़ा, इतने बड़े-बड़े सम्राटों का सिर नीचा किया । लेकिन आज अपने आदर्शों के लिए सीता को प्राप्त करना नही चाहते हैं ।

" जाणविद्व पारवो सा विवश
साम्राज्य नहीं चाहिए,

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 31.

मानव के रक्त पर पग धरती आती
सीता भी नहीं चाहिए,
सीता भी नहीं । "[1]

राम का खण्डित व्यक्तित्व जब स्वयं निर्णय लेने में असमर्थ रहा तो उन्हें समूह के निर्णय के अनुसार चलने के लिए विवश किया गया है । युद्ध करने के लिए निर्णय लेने के बाद भी उनका व्यक्तित्व विभाजित होने लगता है । वह सोचते हैं कि - यह कैसी विडम्बना है - मेरा चिन्तन सहज करेगा, आचरण युद्ध बनेगा, क्यों कि अब मैं निर्णय हो चुका हूँ जो मेरे विषय में हो चुका है । फिर भी उनका आन्तरिक मन युद्ध करने के पक्ष का कदापि समर्थन नहीं करता । निर्णय लेने के बाद भी व्यक्तित्व के इस टूटन को केवल विधि की विडम्बना समझते हैं । ऐसी विडम्बनागत अन्तर्विरोधों के बारे में इस प्रकार कहने लगते हैं --

" कैसी विडम्बना
मेरा चिन्तन सहज करेगा
और आचरण युद्ध बनेगा ।
क्यों कि मैं निर्णय हूँ
हो चुका हुआ अब निर्णय हूँ । "[2]

इसी प्रकार विभीषण भी संशय ग्रस्त एवं खण्डित व्यक्तित्व के रूप में है । लेकिन विभीषण एक उभरा हुआ व्यक्तित्व के रूप है क्यों कि वे अपना देश छोड़कर विदेश में राम के सहायार्थ आते हैं । राम तो युद्ध को स्वीकार करने के विषय

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 32.
2. - वही - पृ. 65.

में संबंधी होने के कारण सीता को अपनी व्यक्तिगत समस्या मानते हैं, किन्तु विभीषण की संशय शीलता अन्याय एवं अत्याचारशील एक उपनिवेशवादी साम्राज्य व्यवस्था के प्रति युद्ध करने का है । जब वह भविष्य के बारे में सोचते है तथा उसकी ओर से स्वार्थी एवं राष्ट्रद्रोही जैसे अपवाद मिलने की ओर चिन्तन करते है तब उनका मन अत्यन्त संशय एवं खण्डित हो रहा है । विभीषण का यह चिन्तन भी आज की पीढ़ी के उस मनुष्य का चिन्तन है - जिसे संशय की पीड़ा दु:ख देती है । अपनी मन: स्थिति के बारे में विभीषण राम से इस प्रकार कहते हैं —

" अभी टूटे हुए व्यक्तित्व की जो बात
कही थी आपने
सार्थक लगी ।
द्वन्द्व
मुझ में भी कहीं पर है,
मुझे भी सालता है
स्वयं का संघर्ष,
मैं भी विभाजित हूँ । "[1]

विभीषण के समक्ष प्रश्न है कि मानवीय शुभाशुभ कर्मों का निर्णय करने वाला कौन है ? वह युद्ध को अंतिम सत्य और दर्शन मानते हैं । लेकिन राष्ट्र के प्रति शंकित होकर सोचने लगते हैं कि इस युद्ध में साथ दें या न दे ? भविष्य के प्रति उत्पन्न शंका उनके व्यक्तित्व के विभाजन का कारण बनने लगी है । अपने इसी संशय को वे राम के समक्ष इस प्रकार प्रस्तुत करते है —

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 71 - 72.

" राम !
मेरी आत्मा में भी यही है द्वन्द्व
x x x
जब हमारे तर्क तक मर जाएँगे
तब
हमें क्या कहकर पुकारा जाएगा ? कि
राष्ट्र संकट के समय
मैं आक्रमण के साथ था
राज्य पाने के लिए ? "।

विभीषण राम को सामूहिक अन्धता और संशय को वैयक्तिक अन्धता का रूप मानते हैं। उनके मन में भी राम के समान अनंत संशय है फिर भी वह युद्ध को अनिवार्य मानते हैं। काव्य में राम का विभाजित और खण्डित व्यक्तित्व आधुनिक युगीन अन्तर्विरोधों से उत्पन्न आस्था और अनास्थाओं के बीच में पड़कर जूझता ही रहा। इसलिए ही विभीषण को परिस्थिति के आगे विवश होकर विद्रोही प्रकृति को अपनाना पड़ा। राम व्यवस्था के प्रति बेचैन और विभीषण गलत व्यवस्था को अस्वीकार करके। इसलिए व्यवस्था का आभास मिलने पर राम का निस्संग होना स्वाभाविक है। अपनी विद्रोही प्रकृति के अनुसार विभीषण परिस्थितियों का सामना करना चाहते हैं इसलिए वे निस्संग नहीं हो सकते। इस तरह परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों के बीच में उत्पन्न संशय एवं खण्डित व्यक्तित्व की समस्या को परिस्थितियों का सामना करते हुए उसके यथार्थ को स्वीकारते हुए चलने के द्वारा सुलझाया गया है।

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 71 - 72.

निष्कर्ष :-

नरेश मेहता के खण्ड काव्यों में युगबोध के अंतर्गत विभिन्न सामाजिक आर्थिक राजनैतिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं का जो निरूपण किया गया है उससे कथ्य चयन के विभिन्न कथा स्रोतों के सहारे समस्याओं का समाधान मिलता है। सामाजिक समस्याओं में व्यक्तिगत मूल्य एवं समाज कल्याण की भावनाओं की प्रधानता है। अस्पृश्यता, गरीबी एवं नारी शोषण जैसी समस्याओं के पीछे निहित व्यवस्थागत दोषों के निवारण के मार्गों को सुझाना मेहता के काव्यों का ल रहा है। राजनीतिक भूमिका के अंतर्गत व्यक्ति, समाज, राजा, राज्य एवं राज्य व्यवस्था की समस्याओं एवं उनके सम्बन्धों पर विचार करने से स्पष्ट होता है कि राष्ट्र की सुरक्षा को प्रधानता देते हुए व्यक्ति में स्वतंत्र विचारों के बीजों को बोया गया है। उनके द्वारा उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद का विरोध किया गया है। अपनी स्वाधीनता के लिए स्वीकृत युद्ध और हिंसा का समर्थन किया गया है। युद्ध और शांति, लघुमानव की प्रतिष्ठा, जनतांत्रिक भावादर्श, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता एवं खण्डित व्यक्तित्व जैसी समस्याओं को केन्द्र में रखकर उनसे जुड़े युगीन समस्याओं का चित्रण आपके काव्यों का लक्ष्य रहा है। राम राज्य की कल्पना के सहारे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और जनतांत्रिक भावों की रक्षा की आवश्यकता प्रतिपादित है। उनके संशय के माध्यम से युग के खण्डित व्यक्तित्व एवं युद्ध और शांति जैसी समस्याओं के समाधान का प्रयत्न आपके काव्यों में मुखर है। लघु व्यक्तित्व की सार्थकता पर विचार करते हुए काव्य में लघु मानव की प्रतिष्ठा की गयी है। मिथकीय कल्पना के सहारे युग जीवन के समुन्नत बोध का चित्रण साहित्यकार की युगबोधीय प्रतिबद्धता का प्रमाण बन गया है।

तृतीय अध्याय

नरेश मेहता का काव्य : सांस्कृतिक चेतना

तृतीय अध्याय

नरेश मेहता का काव्य : सांस्कृतिक चेतना

संस्कृति एक व्यापक शब्द है, जिसकी धार्मिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, आर्थिक एवं साहित्यिक सन्दर्भों में विभिन्न व्याख्याएँ की गई है। संस्कृति शब्द का मूल अर्थ है सम्यक् कृति। संस्कृति किसी भी देश, जाति या समाज का प्राणतत्व होती है। संस्कृति का शाब्दिक अर्थ इस प्रकार है - " संस्कृत भाषा के सम् उपसर्ग तथा " कृ " धातु के संयोग से संस्कृति शब्द निष्पन्न हुआ है जिसका अर्थ सामान्यतः परिष्करण या परिमार्जन की क्रिया अथवा सम्यक् रूपेण निर्माण से है। " संस्कृति " के शाब्दिक अर्थ की अपेक्षा भावार्थ अधिक विशद एवं व्यापक है। डा॰ प्रसन्न कुमाराचार्य के शब्दों में - इसमें परिमार्जन या परिष्कार के अतिरिक्त शिष्टता एवं सौजन्य के भावों का भी समावेश हो जाता है। "[1] अंग्रेजी में संस्कृति का पर्याय कल्चर है, जो लाटिन भाषा के शब्द " कुल्टुरा " से बना है और कल्चर में भी वही धातु है जो एग्री - कल्चर में है। अतः कल्चर का अर्थ भी पैदा करना या सुधारना है।[2] अतः संस्कृति भूमि की भाँति मनुष्य की मानसिक एवं सामाजिक अवस्थाएँ भी विकसित हुआ करती है। " संस्कृति " अथवा " कल्चर " मनुष्य की सहज

1· भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता - डा॰प्रसन्न कुमाराचार्य - पृ॰ 1·

2· भारतीय संस्कृति की रूपरेखा - बाबूगुलाबराय - पृ॰ 1·

प्रवृत्तियाँ, नैसर्गिक शक्तियाँ तथा उसके परिष्कार का द्योतक है अर्थात् मानव जीवन के प्रचार-विचार का शुद्धिकरण है जिसका परम उद्देश्य जीवन का परमोत्कर्ष प्राप्त करना है ।

1· सांस्कृतिक चेतना :-

संस्कृति शब्द के साथ ही " सभ्यता " को भी जोड़ा जाता है । हम इन दोनों को अलग-अलग अर्थों में स्वीकार कर चल रहे हैं । हमारी स्थापना में संस्कृति नागरिक मनुष्यों के दृष्टिकोण, धारणा और व्यक्तित्व को सूक्ष्म रूप से सूचना देनेवाली शक्ति है । व्यक्तिगत संस्कृति से यहाँ हमारा अधिक प्रयोजन नहीं । सांस्कृतिक जीवनबोध की पर्याय है और सभ्यता उसको कार्य-रूप में परिणत करने का माध्यम । " क्रिया, इच्छा और ज्ञान में से " क्रिया " का पथ सभ्यता से अधिक सम्बन्धित रहता है और इच्छा तथा ज्ञान का संस्कृति से । अत: संस्कृति भावमय और ज्ञानमय है, सभ्यता कर्ममय । "[1]

संस्कृति मूलत: जातीय और राष्ट्रीय आकार को पारकर अन्तराष्ट्रीय बन्धुत्व तक फैलती रहती है । राष्ट्रों का पारस्परिक सहयोग सांस्कृतिक आधार पर ही होता है । इस अर्थ में, संस्कृति कुछ ऐसी चीज का नाम होता जाता है , जो बुनियादी और अन्तराष्ट्रीय है ।[2] राष्ट्रीय सीमाओं

1· सामयिक जीवन और साहित्य - डा·रामरतन भटनागर - पृ· 341·

2· संस्कृति के चार अध्याय { दिनकर } प्रस्तावना - पं· जवहरलाल नेहरू - पृ· 11·

में आबद्ध व्यावहारिक जीवन जीने के अभ्यास से मनुष्य संस्कृति के मुक्तपथ को भूलकर " हिन्दू संस्कृति " " मुस्लिम संस्कृति " और " ईसाई संस्कृतियों " के कटघरे बना लेता है । विशुद्ध रूप से ये कटघरे स्थिरता, जड़ता और साम्प्रदायिकता को यह सामूहिक उपलब्धि और श्रेयस्कर शक्ति को अपनाया के अन्तर्गत बाँध लेते हैं । जब इतिहास में ऐसे अवसर आते हैं, मनुष्यता का विघटन हो जाता है । समाज और राजनीति की स्थिति मनुष्य के बाह्य संगठन के अनुरूप स्वाभाविक, स्वस्थ और अस्वाभाविक एवं अस्वस्थ होती रहती है । सामाजिक अवस्था का बोध संस्कृति ही करती है । समग्र संस्कृति का बोध प्रबुद्ध व्यक्ति और समाज दोनों को हो सकता है और इन दोनों में से किसी के मानस में समाज का संस्कार करने की प्रेरणा जन्म ले सकती है । समाज की प्रक्रिया में ही संस्कृति उभरती है और तत्कालीन निरोधी मूल्यों को उकेलकर उसे स्वस्थ रूप प्रदान करती है । साहित्य का सम्बन्ध संस्कृति से है । अतः उसमें ऐसी संस्कृति की झलक मिल सकती है । धर्म, दर्शन तथा काव्येतर कलाएँ आरम्भ में सांस्कृतिक सूत्रों को संयोजने और अनुभूतियों को बिम्बित करने के लिए स्वरूप ग्रहण करती हैं; पर कालान्तर में वे मनुष्य की अखण्ड चेतना से समीपी सम्बन्ध नहीं रख पाती । इन सबका सम्बन्ध सभ्यता के बिन्दुओं से भी बना रहता है । अतएव साहित्य की एक ऐसी चीज है , जिसमें संस्कृति की जीवन्त धरोहर उपलब्ध रहती है । महाकाव्यों में राष्ट्रीय व्यक्तित्व प्राप्त होता है । खण्डकाव्यों में भी मनुष्य मात्र की भावचेतना और मानसिक समृद्धि का आलोक रहता है, अतः ये रचनायें संस्कृति की समग्रता को स्थापित करने में अधिक समर्थ हैं । संस्कृति का सब कुछ साहित्य में नहीं आ पाता, इसलिए उसका विवेचन स्वतन्त्र रूप से भी होता है । विभिन्न देशों की लिखित और अलिखित सांस्कृतिक परम्पराओं के इतिहास इसके प्रमाण हैं । यहाँ उल्लेखनीय है कि सांस्कृतिक परम्पराएँ नष्ट नहीं

होती अपितु समय और नवीन सम्पर्कों के कारण उनके स्वरूप में परिवर्तन होता रहता है अथवा उनमें नये सन्दर्भ जुड़ते रहते हैं । यह परिवर्तन ही संस्कृति को युगानुरूप बनाता है । एक संस्कृति जब दूसरे संस्कृति के सम्पर्क में आती है, तब प्रायः वे एक दूसरे को प्रभावित करती हैं । कभी-कभी यह प्रभाव बहुत तीव्र होता है । भारतीय और पाश्चात्य संस्कृतियों के विषय में नेहरू जी का यह मत द्रष्टव्य है " हिन्दुस्तान पर पश्चिमी संस्कृति का आघात एक गतिशील समाज और आधुनिक चेतना का गतिहीन समाज पर आघात था जो मध्यकालीन विचारधारा से बन्धा हुआ था । "[1]

नरेश मेहता द्वारा साहित्य क्षेत्र में पदार्पण का समय सांस्कृतिक ऊहापोह का समय था । भारतीय जनता परम्पराओं के नाम पर रूढ़ियों, अन्धविश्वासों और बाह्याडम्बरों का पालन कर रही थी, जिनसे विमुख होकर शिक्षित वर्ग पश्चिमी संस्कृति की ओर प्रवृत्त हो रहा था । देश में नव जागरण और समाज-सुधार आन्दोलन के प्रणेता भारतीय संस्कृति को पुनर्जीवित करने के लिए प्रयत्न कर रहे थे । नरेश मेहता यद्यपि भारतीय संस्कृति में प्रगाढ़ आस्था रखते थे, किन्तु जड़ परम्पराओं के पालन को वे समाज के लिए वांछनीय नहीं मानते थे । भारतीय जीवन, भारतीय चिन्तन, पाश्चात्य चिन्तन के साथ-साथ स्वातन्त्र्योत्तर जीवन दर्शन से भी प्रभावित हुआ । कवि पश्चिमी संस्कृति के हितकर तत्वों को ग्रहण करने के पक्ष में तो थे, किन्तु उसके अन्धानुकरण के सर्वथा विरुद्ध थे । उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी विज्ञान और दर्शन की शताब्दी रही है । नये-नये वैज्ञानिक आविष्कारों तथा दार्शनिक स्थापनाओं द्वारा मानव के कार्य व चिन्तन धरातल में पूर्णता

---

1. हिन्दुस्तान की कहानी - नेहरू - [अनु॰ रामचन्द्र टंडन] पृ॰ 357.

दिखाई पड़ती है । बीसवीं शताब्दी है जबकि विज्ञान उन्नति के परम शिखर पर है, लेकिन भारतीय जीवन दृष्टि आस्थावान है । इससे पता चलता है कि भारतीय दर्शन की जड़ें हमारे जीवन में अपना स्थान बना चुकी है । वस्तुत: नरेश मेहता भारतीय संस्कृति से उन मिथ्याडम्बरों को उतारकर उसे एक नवीन रूप प्रदान करना चाहते थे और अपनी काव्य कृतियों के माध्यम से उन्हें इस दिशा में यथेष्ट सफलता प्राप्त हुई है ।

आधुनिक युग में भारतीय संस्कृति संकट के दौर से गुजर रही है । उसका प्रच्छन्न रूप आये हुए विदेशी शासकों की सदियों तक चली कुटिल नीति से तिरोहित हो चला था । प्रतिक्रिया स्वरूप भारतीय प्रतिभाओं ने उसे पुनर्जीवित करने का व्रत विभिन्न माध्यमों से लिया । ब्रह्म समाज की स्थापना, आर्य समाज का उदय, थियोसोफिकल सोसाइटी का जन्म और रामकृष्ण परमहंस के आगमन से इस संस्कृति का मौलिक और सत्यात्मक स्वरूप पुन: जागृत हुआ । इन्हीं के प्रभाव से भारतीय जागरण में आत्म परीक्षण की प्रवृत्ति आयी । क्रांत वेदान्ती स्वामी विवेकानंद, लोकमान्य तिलक, महायोगी अरविन्द और महात्मा गाँधी का योगदान हमारे नवजागरण में सहायक ही नहीं हुआ, इसकी प्रेरणा से हम वह पृष्ठभूमि पा सके, जिसमें सांस्कृतिक चर्चायें हो सकती थी । मानवता की व्यावहारिक भूमिका में प्रवेश ले सकने की क्षमता इन्हीं मनीषियों के प्रभाव से प्राप्त हुई ।

भारतीय सांस्कृति के प्रति नरेश मेहता अत्यन्त आस्था रखते हैं । जिस प्रकार नवजागरण भारतीयों में सांस्कृतिक चेतना को जगाने में सहायक हुई हैं उसी प्रकार उन्होंने अपने आख्यानक काव्यों के द्वारा सांस्कृतिक चेतना को जगाने के लिए प्रयत्न किया हैं । भारतीयों को अपनी संस्कृति

के प्रति सोचने के लिए बाध्य किया है । इतना ही नहीं उन्होंने भी हमारे प्राचीन मनीषियों के समान अपने आख्यानक काव्यों के माध्यम से सम्पूर्ण मानवता को नीवन भावभूमि पर प्रवेश पा सकने की क्षमता को प्रदान किया है । उन्होंने पौराणिक कथाओं को अपने आख्यानक काव्यों की कथावस्तु बनाया है । दर असल रामायण और महाभारत कथाओं का अपना सांस्कृतिक महत्व है । इनकी एक लम्बी परम्परा है । ऐसे ही राष्ट्र पुरुषों ने भी जो अपने त्याग और बलिदान द्वारा देश की संस्कृति एवं सभ्यता को सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया है । इतिहास की घटनाएँ, इतिहास के पात्र, इतिहास के आदर्श जब समाज की प्रतिष्ठित परम्परा बन जाते हैं तो उनका सांस्कृतिक महत्व बढ़ जाता है । जिन काव्यों में ऐसी परम्पराएँ अंकित हो जाती है तो वे लोक की निधि बन जाते हैं । ये परम्पराएँ जन साधारण की सम्पत्ति बन जाती है । प्रत्येक मनुष्य इनसे परिचित होता है और इनको अपनाता है तथा इन से प्रेरणा लेता है । जातीय मिथकों तथा जातीय कथाओं की सार्थकता हमारे आज के जीवन संघर्ष के संदर्भ में भी है । उन्होंने राम-कृष्ण पात्रों का आधार इसलिए लिया है कि वे मनुष्य को बहुत बड़ा सम्बल और संजीवन प्रदान करते हैं, नर में नारायण का जो तत्व इन पात्रों में है वह कुछ भक्तों के लिए उपास्य बन सकते हैं । उन्होंने विवेकानन्द, अरविन्द और गांधी जैसे महात्माओं द्वारा पश्चिमी संस्कृति के अनुकरण में संस्कृति के प्रति मोहभंग को स्पष्ट किया है । अपनी अस्मिता को पहचानने के लिए संस्कृति को सुरक्षित रखने के लिए उन्होंने किसी दूसरों की सहायता को अनिवार्य नहीं माना है । इसलिए उन्होंने आख्यानक काव्यों के द्वारा सांस्कृतिक चेतना को जगाने का नवीन शोध शुरू किया है । संस्कृति मनुष्य की ऊर्ध्वयात्रा को परिसीमित करना संभव नहीं है । वैदिककाल को एक विशाल रचलिपि में अंकित करने की कवि की यह साधना निरन्तर चलती रही

है । इसी साधना के परिणाम स्वरूप उन्होंने अपने भीतर के समस्त कटुतम अनुभवों को पचाकर उनमें से केवल मांगलिकता को ही निःसृत होने दिया है और उसी साधना के फलस्वरूप उन्होंने अपनी सनातन संस्कृति के स्वस्थतम जीवाणुओं को अपने भीतर पूर्ण विकास तक पहुँचाया है । संस्कृति मनुष्य की रचना होती है । प्रकृति के आधार पर अपने उद्योग से मनुष्य ने जो कुछ बनाया उसी को संस्कृति कहते हैं । प्रकृति के स्रोतों से संस्कृति की पहचान और शोध की जो प्रक्रिया नरेश मेहता के कवि व्यक्तित्व में आज के तीस वर्ष से भी अधिक पहले प्रारम्भ हुई थी, समस्त आर्ष साहित्य के मन्थन और चिन्तन के बीच से गुजरती हुई आज अपनी आख्यानक काव्य भूमि पर प्रतिष्ठित है । आज भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठतम गायकों में नरेश मेहता का नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है । उन्होंने भारतीय संस्कृति के मूल उद्गमों को ढूँढने, उसके बीच में आई विकृतियों और दोषों को पहचानने और उनसे बचने के साथ-साथ संस्कृति के उदात्तीकरण का जो एक विराट कवि सुलभ प्रयास किया है वह हर दृष्टि से श्लाघनीय है ।

1.1. संस्कृतिगत मूल्य :-

नरेश मेहता ने परम्परागत एवं आधुनिक मूल्यों का समन्वय कर नवीन विचारों की शृंखला को जोड़ा है । भारतीय सांस्कृतिक चेतना मूल्यों, आचार-विचार, सांस्कृतिक समन्वय तथा सांस्कृतिक आदर्शों के रूप में उनके काव्यों में उद्घाटित की गयी है । इनपर विस्तृत चर्चा अपेक्षित है --

1.1.1. धर्म :-

कवि ने सांस्कृतिक चेतना के मूल में धर्म को ऊँचा स्थान दिया है। भारतीय संस्कृति के सम्बन्ध में वे कहते हैं - " जातीय ऊर्ध्वोन्मुखी अस्मिता की वाहिका धर्म हुआ करती है । मैं पुन: स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि धर्म से तात्पर्य किसी सम्प्रदाय, मत या संस्थान से नहीं है । धर्म प्रकृति की भाँति उदार और असंग होता है । काव्य और साहित्य के लिए मैं इसी धर्म की अस्मिता का पक्षधर हूँ । "[1] उनकी यह धार्मिक दृष्टि " महा प्रस्थान " में स्पष्ट परिलक्षित होती है । द्रौपदी पाँच पाण्डवों की पत्नी होकर भी मन से अकेला पार्थ की हो रही है। विभाजित व्यक्तित्व किसी का होने पर भी धर्म उसे स्वीकार नही कर सकता । प्रकृति के समान सभी के प्रति समदृष्टि रखना धर्म का स्वभाव है । इस लिए ही वह किसी के साथ भेद भाव नहीं दिखाती है। धर्म च्युत होने का वह समर्थन नही कर सकती है । धर्म को परित्यागने के कारण ही द्रौपदी सब से पहले हिम में गल जाती है । ऐसे धर्म के उदार स्वरूप के बारे में युधिष्ठिर भीम से इस प्रकार कहते हैं —

" धर्म भी प्रकृति है
इसलिए सागर की भाँति
शव नहीं स्वीकार किया करता । "[2]

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - भूमिका - पृ. 14.
2. - वही - पृ. 84.

कवि धर्म को सर्वत्र उसके व्यापकतम अर्थ में ही ग्रहण किया है । धर्म अपने व्यापक अर्थ में मनुष्य को पशु से भिन्नता प्रदान करनेवाला तत्त्व है । इस रूप में वह संस्कृति का समानार्थी ही है, क्यों कि संस्कृति का चरम उद्देश्य मनुष्य को पशुधर्म से ऊँचा उठाकर मानव धर्म की पूर्णता तक ले जाना है । युधिष्ठिर ने अपने जीवन के अनेक अपमानों को इसी दृष्टि से ही सहन किया है । वे धर्म के विशेष अर्थ के बारे में भीम से यों कहते हैं —

" सामनेवाला यदि आवेग में
पशु हो गया हो
तो विवेक के रहते
प्रतीक्षा करो
उसके पुन: मनुष्य होने को । " ¹

धर्म अपने सीमित या संकुचित अर्थ में सम्प्रदाय-विशेष की उपासन-पद्धति और उसके आचार-विचार आदि का द्योतक होता है । " शबरी " काव्य में उच्चवर्णवाले धर्म को सीमित क्षेत्र में बाँधने का प्रयत्न करते हैं । शूद्रों को धार्मिक कृत्यों के अधिकारी नहीं मानते हैं । कवि धार्मिक रूढ़ियों के विकृत रूप को प्रश्रय देने की मनोवृत्ति को धर्म के उदात्त स्वरूप के लिए हानिकारक मानते हैं । इस सन्दर्भ में कवि का विचार मनुष्य में धार्मिक चेतना को जगाने में समर्थ है —

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 87.

" क्या धर्म-तत्त्व से ऊँची
है वर्णाश्रम मर्यादा ?
सब व्यर्थ तपस्या-पूजन
यह गंगा भी है झूठा । "[1]

अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए प्रजा द्वारा स्वीकृत युद्ध को भी धर्म सम्मत माना गया है । " संशय की एक रात " में रावण के विरुद्ध अपनी संस्कृति के रक्षार्थ सन्नद्ध प्रजा का निर्णय इस प्रकार का है ---

" राघव
ये लाघव
अब न होंगे पराभव
किसी शक्ति से । "[2]

" महाप्रस्थान " में युधिष्ठिर के द्वारा युद्ध को तत्कालिक धर्म के रूप में स्वीकार किया गया है --

" एक तात्कालिक धर्म भी होता है --
कर्तव्य ।।
जब युद्ध कर्तव्य हो गया
तो अनासक्त होकर
वह भी किया । "[3]

1· शबरी - नरेश मेहता - पृ· 59·
2· संशय की एक रात - पृ· 64·
3· महाप्रस्थान - पृ· 88·

लोक पक्ष में धर्म की परिसमाप्ति लोक मंगल अथवा विश्वकल्याण के लिए आत्म - बलिदान देने में निहित मानी गयी है । गांधीजी के जीवनदान के द्वारा इस तथ्य का निरूपण किया गया है । वे अपने जीवन की आखरी साँसों तक विश्वकल्याण के लिए चिन्तित रहे हैं ।[1]

1.1.2. आध्यात्मिकता :-

भारतीय संस्कृति की आत्मा उसकी आध्यात्मिकता में निवास करती है । आध्यात्मिकता ने ही उसे वह संजीविनी प्रदान की है - जो उत्थान और पतन की सम-विषम परिस्थितियों में भी उसके जीवन को अक्षुण्ण रखती आयी है, जब कि संसार की अन्य अनेक प्राचीन सभ्यताएँ और संस्कृतियाँ नाम को शेष हैं, भारतीय सभ्यता और संस्कृति को ही यह गौरव प्राप्त है कि उसकी परम्परा निरन्तर बनी हुई है । इसका रहस्य उसकी आत्मा की जीवन्तता उसकी आध्यात्मिकता में ही है । इसलिए आध्यात्मिकता ही भारतीय मनीषी की कुंजी बनी हुई है । धर्म ही यहाँ के जीवन का आधारभूत स्तम्भ बनकर उसे भयंकर परिस्थितियों के आघात-प्रत्याघातों से सुरक्षित रख सकता है । भारतीय समाज ने इन्द्रिय, मन, बुद्धि और आत्मा में जो सूक्ष्मतत्व है उसे ही मूलभूत आधार माना है । भारतवासियों का विश्वास है कि परमात्मा समस्त विश्व में व्याप्त है । वह सब में विराजित है इसलिए किसी प्राणी के प्रति वैर या हिंसा का भाव नहीं उत्पन्न होना चाहिए । शबरी, वन, सरिता, धरती सबको भगवान की सृष्टि मानती है । ऐसे भगवान की तुलना में मनुष्य को पापी समझती है जो सभी से वैर करता है ।

---

1. प्रार्थना पुरुष - नरेश मेहता - पृ. 64.

यह मनुष्य के पाप कर्मों के प्रति चिन्तित होती है कि उसके इस आत्म-हनन से क्या होनेवाला है । मनुष्य में आध्यात्मिक चेतना को जगाने में शबरी के यह विचार अत्यन्त सहायक है --

" प्रभु ने कितने मधुर बनाये
वन, सरिता, यह धरती ।
पर मनुष्य यह कितना पापी
वैर सभी जीवन से
नहीं जानता क्या होगा
उसका इस आत्म-हनन से । "[1]

1.1.3. नारी गौरव :-

भारतीय पुनरुत्थान के वैचारिक आंदोलन का एक प्रमुख आयाम नारी गौरव के रूप में प्रकट हुआ । शताब्दियों से उपेक्षित और पीड़ित नारी को घर में और समाज में उचित सम्मानपूर्ण पद प्राप्त हो, देश के विकास में उनका समान सहयोग हो, इस भावना से नारियों से सम्बन्धित कुत्सित रूढ़ि-रीतियों को समाप्ति की तीव्र आवश्यकता अनुभव की गयी । स्वयं राजाराममोहन राय ने अपने प्रबल प्रयत्न से सती प्रथा का अन्त कराया । विधवा विवाह के पक्ष में, तथा बालविवाह एवं अनमेल विवाह आदि के विपक्ष में, ब्रह्मसमाज, आर्य समाज आदि की क्रियाशीलताएँ विकसित हुई । मध्य - कालीन दृष्टि में नारी या तो, साधना-मार्ग की बाधा होने के कारण

---

1. शबरी - नरेश मेहता - पृ. 7.

त्याज्य थी, या फिर, केवल भोग की वस्तु थी । उसका कार्य क्षेत्र घर के सीमित वातावरण में बद्ध मान लिया गया था, और इस के लिए उसका किसी प्रकार की शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करना आवश्यक समझ लिया गया था । " आधुनिक युग की विचार दृष्टि ने नारी की इस स्थिति को समाज और देश के लिए अत्यन्त हानिकारक ठहराया । पत्नी के रूप में योग्य सह - योगिनी, माता के रूप में योग्य शिक्षिका, और साथ ही, अपनी स्वतंत्र विद्या-बुद्धि और कर्म कुशलता से समाज और देश के जीवन विकास में सहयोग देनेवाली एक महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में नारी की भूमिका को पहचानने का आग्रह हुआ । "[1]

नरेश मेहता ने पुनर्जागरण की नारी सम्बन्धी उपर्युक्त नवीन विचारधारा को अपने काव्यों में स्थान दिया । उन्होंने अपनी नवीन काव्य चेतना के अनुसार " महा प्रस्थान " में द्रौपदी के माध्यम से नारी के विविध रूपों का दर्शन करके उसके प्रति अपने गौरव भाव को व्यक्त किया है —

" पाण्डवदल की सांसारिकता
भार्या, प्रिया, सेविका
और पण्डिता
द्रुपदसुता
द्रौपदी —
सेविका धर्मराज की
भीमसेन की चतुर स्वामिनी
एकनिष्ठ वह पार्थप्रिया
पाण्डवी । "[2]

1. मैथिलीशरण गुप्त का काव्य सांस्कृतिक अध्ययन -डॉ॰ आशागुप्त - पृ॰ 52॰
2. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ॰ 53॰

" प्रवादपर्व " में सीता के पत्नीत्व, आसन्न मातृत्व और साम्राज्ञी जैसे उसके व्यक्तित्व के विभिन्न रूपों का परिचय मिलता है। वह अपने इन सभी रूपों को अपने दाम्पत्य जीवन का अविभाज्य अंग समझती है —

" यह साम्राज्ञी स्वरूप
मेरा आज का यह आसन्न मातृत्व
सब मात्र पड़ाव हैं
यात्रान्त नहीं
पटाक्षेप भी नहीं।
यह नहीं लगता कि
ये सारी घटनाएँ
ये प्रसंग
हमारे दाम्पत्य जीवन के अविभाज्य अंग थे। " [1]

ऐसे ही कवि ने गांधारी का आदर्श पत्नीत्व का परिचय दिया है। वह धृतराष्ट्र की पत्नी होने के नाते आँखों में पट्टीलगाकर कृत्रिम अंधापन को स्वीकार कर सदा पति की अनुगामी बनकर रही है —

" राज्य लक्ष्मी गान्धारी ने
स्वीकारा कृत्रिम
अन्धापन। " [2]

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 75.
2. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 44.

नारी केवल पुरुष की अनुगामी एवं आदर्श पत्नी ही नहीं है आवश्यकता पड़ने पर अपने पति को कर्तव्यबोध भी करती है । " प्रवादपर्व " में सीता अपने पर आपादित कलंक से विचलित न होकर परित्यक्ता होने का दुःख सहकर भी हृदय से पूरी तरह राम का साथ देती है । वह अपने पति के कर्तव्य मार्ग में बाधा बनना नहीं चाहती है । वह एक आदर्श पत्नी के रूप में राम से इस प्रकार कहती है —

" साधारणता के इस नारायण को
आर्यपुत्र !
न्याय के प्रतिनारायण की अपेक्षा है
और
मुझे भी । "[1]

" महाप्रस्थान " में द्रौपदी के आदर्श पत्नी रूप का परिचय मिलता है । हिम में गलनेवाली द्रौपदी अपनी रक्षा के लिए पतियों को बुलाती है । लेकिन वह मन से अपने पतियों के संकल्प मार्ग में बाधा नहीं बनना चाहती है —

" कौन ?
कानों के इतने पास
ये किसकी गर्म साँसें हैं ?
पार्थ ?
धर्मराज ? ?

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 81.

क्या तुम्हें अपनी कृष्णा का मोह
उस महापथ से लौटा लाया ?
अथवा तुमने मेरे लिए
अपने धर्म का परित्याग कर दिया ? " 1

" शबरी " काव्य में शबरी का पत्नीत्व और मातृत्व का परिचय भी मिलता है —

" अर्धरात्रि की गहन निशा में
सोये थे सब बच्चे,
पति की बाँह गले में थी
थे मोहसूत्र ये कच्चे । " 2

प्रेम और वात्सल्यमयी नारी के दो प्रमुख रूप हैं । प्रकृति ने नारी को सुकोमल बनाने के साथ-साथ उसे मातृत्व के कठोर कर्तव्य को वहन करने का वरदान भी दिया है । नारी का प्रेयसी रूप यदि उसके जीवन का आकर्षण युक्त मधुरपक्ष है तो मातृत्व मंगलकारी पुनीत पक्ष । कवि ने नारी हृदय के इन दोनों रूपों का परिचय अपने काव्य में दिया है । ममता की मूर्ति स्नेह एवं शुचिता की साकार प्रतिमा, संवेदना की स्रोतस्विनी, त्याग की तरंगिणी माँ, अनादिकाल से ही स्तुत्य रही है । नारीत्व के चरम विकास को प्राप्त, यह अतुलनीय मानवी, कवि हृदय के स्नेह, सम्मान एवं श्रद्धा की अधिकारिणी रही है । उसके पुनीत रूप को देखकर राष्ट्र की कल्पना माता के रूप में की गई है । भारतीय संस्कृति में भी जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसि " का स्वर मुखरित कर हमारे ऋषियों ने नारी के चरम विकास के प्रति श्रद्धा व्यक्त की है ।

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 77.
2. शबरी - नरेश मेहता - पृ. 21.

नरेश मेहता ने नारी के मातृ रूप को अत्यन्त सम्मान दिया है तथा उसकी व्यंजना विविध प्रकार से की है । " महाप्रस्थान " में संतान वियोगिनी माता की विषादानुभूतियों का भी मर्मस्पर्शी चित्रण किया गया है । द्रौपदी संतान विहीन दशा में अपने नारीत्व को व्यर्थ समझती है —

" मेरा नारीत्व
मेरा मातृत्व
सब व्यर्थ गया युधिष्ठिर । "[1]

कवि ने गांधारी के संतान वियोगिनी मातृ रूप का हृदय विदारक चित्रण अत्यन्त करुणा भरे शब्दों में किया है —

" एक दिन
युद्ध क्षेत्र में
राज्यलक्ष्मी गाँधारी का
वर्षों बाद
सायास अन्धता से पटल हटाना —
कैसी थी दुर्दान्त
अग्निमय, शस्त्र सरीखी दृष्टि,
क्यों कि वह माँ थी
जिसके सौ-सौ पुत्र
शवों में अंग-भंग होकर फैले थे
यहाँ-वहाँ
मांस के गिद्ध-ग्रास से । "[2]

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ॰ 76॰
2. - वही - पृ॰ 51॰

कवि की दृष्टि ने नारी व्यक्तित्व के दो पक्षों को स्पष्ट रूप से लक्षित किया है, नारी का पत्नीत्व-मातृत्व, दूसरा पक्ष है नारी की स्वतंत्र सत्ता और महत्ता । ये दोनों पक्ष नारी के जीवन में परस्पर सहायक और उन्नायक रहे हैं । इस स्थिति की अनुकूलता के रूप में पुरुष का सहयोग भी अपेक्षित है । वांछित रूप में वह सहयोग उपलब्ध नहीं होने पर नारी के पातिव्रत्य और उसकी स्वतंत्र सत्ता के बीच तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है । ऐसी स्थिति का परिचय कवि ने शबरी के द्वारा किया है । शबरी के पारिवारिक जीवन में पति का सहयोग नहीं मिलता है । फलत: वह अपनी वैयक्तिक चेतना की रक्षा के लिए पारिवारिक बन्धनों को तोड़-कर घर से चली जाती है । ऋषि मतंग की कृपा से भक्ति, ज्ञान और योग में निपुण बन जाती है । अपनी स्वतन्त्र सत्ता से साधना मार्ग में सफल हो जाती है । शबरी के ऐसे स्वतन्त्र तेजोमय रूप के प्रति मतंग भी मुग्ध हो गए हैं —

" मन्दार पुष्प सा जिसका
सर्वस्व समर्पित प्रभु को,
जो स्वयं तपस्या है अब
क्या वेद-मन्त्र है उसको । "[1]

इसके साथ उन्होंने नारी के निर्वासिता, अस्पृश्य, तपस्विनी रूपों का भी वर्णन किया है ।

---

1. शबरी - नरेश मेहता - पृ. 48.

1.1.4. राष्ट्रीय भावना एवं गाँधीवादी विचारदर्शन :-

हमारे देश में स्वतन्त्रता आन्दोलन एवं राष्ट्रीय भावना का उदय पुनरुत्थान के वैचारिक आन्दोलन के प्रसार के रूप में हुआ। इसी के दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि पुनरुत्थान की सेवा से ही राष्ट्रीयता ने जन्म लिया। स्वतन्त्रता आन्दोलन को आगे चलकर महात्मागाँधी का नेतृत्व प्राप्त हुआ। गाँधीजी ने इस आन्दोलन को नये आयाम प्रदान किये, इसको व्यापक जन-जागरण, समाज-सुधार, आर्थिक स्वावलम्बन एवं नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों से जोड़ा। अतः अहिंसा, सत्याग्रह, मानवीय साम्यवाद एवं चरखा आन्दोलन इसके विचारदर्शन के प्रमुख आयाम बनें। नरेश मेहता भी पुनरुत्थान - वादी विचार दर्शन का समर्थन करते हैं। भारतीय संस्कृति के इसी पुनरुत्थान के प्रसार स्वरूप वे गाँधीवाद एवं भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन से अत्यन्त प्रभावित हुए है। अपने विद्यार्थी जीवन में वह स्वयं गाँधीजी के आदेशानुसार देश की रक्षा के लिए अनेक आन्दोलनों में भाग लिया। इसी राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर उन्होंने आगे के अपने काव्यों में स्वदेश की महिमा का गुणगान किया है। "संशय की एक रात" में हनुमान ने अपने देश के गौरव का गान करते हुए उसकी स्वतन्त्रता की रक्षा की आवश्यकता को स्पष्ट किया है ---

"हे रघुकुल तिलक !
हमारा यह सुन्दर दक्षिण प्रदेश
रावण

यह किसी अन्य का
उपनिवेश हो
यह स्वीकार नहीं अब
किसी मूल्य पर । "[1]

भारतीय राष्ट्रीय भावना का एक महत्वपूर्ण आयाम अन्तर्राष्ट्रीय अथवा विश्वकल्याण भी है । संकुचित राष्ट्रीय भावना राष्ट्र को स्वार्थी और दम्भी बनाती है । उससे ग्रस्त होकर संसार के अन्य राष्ट्रों का अहित करने से नहीं चूकते । गत दो विश्वयुद्ध संकुचित राष्ट्रीय भावना के ही कुपरिणाम थे । भारतीय नेताओं के सामने यह सदैव स्पष्ट रहा है । इसके पीछे भारत का चिराचरित "वसुधैव कुटुम्बकम्" का आदर्श रहता आया है । विश्व-मानव भ्रातृत्व की भावना से वे सदैव परिचित रहे हैं । भारतीय स्वतन्त्रता और भारत के उत्थान को वे वृहत्तर विश्व स्वातंत्र्य और विश्वकल्याण के सोपान के रूप में ही देखते आये हैं । नरेश मेहता ने भी राष्ट्रीयता के इस अन्तराष्ट्रीय पक्ष को अपने काव्यों में यत्र-तत्र अभिव्यंजित किया है । इसके सम्बन्ध में महात्मागांधी इस प्रकार कहते हैं —

" कर्म हमारे नीराजन हों
विश्व एक परिवार बने
राग-द्वेष सब त्याग, मनुज
का कल्याणी संसार बने । "[2]

1· संशय की एक रात – नरेश मेहता – पृ· 64–65·
2· प्रार्थना पुरुष – नरेश मेहता – पृ· 21·

महात्मागांधी ने एक महान् राजनैतिक नेता के रूप में जहाँ देश को स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर उत्सर्ग होना सिखाया, वही उन्होंने देश के चरित्र को ऊँचा उठाने के लिए स्वयं अपने आचरण से जो आदर्श उपस्थित किये है बहुत सीमा तक वैष्णवी आदर्श थे। इसलिए गांधीजी के व्यक्तित्व एवं आदर्शों के साथ नरेश मेहता की वैष्णव भावना का सहज तादात्म्य स्थापित हो चुका है। वे उन्हें राम, कृष्ण, बुद्ध और ईसा के समान मिथक मानते हैं। निम्न लिखित शब्दों में गांधीजी के प्रति उनकी निश्छलभक्ति एवं श्रद्धा भाव व्यक्त हुआ है —

" गांधी ! तुम ही हो देश,
तुम्हीं इतिहास, तुम्हीं इसकी जय,
जैसा भी होता विनयशील
इसका प्रमाण है नमक-विजय। "1

सत्य और अहिंसा प्राचीन भारतीय संस्कृति की महान् देन हैं। इस युग में जब समस्त विश्व दो विश्वयुद्ध में प्रयुक्त वैज्ञानिक उपकरणों से त्रस्त था तब महात्मागांधी ने अपने सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों को, विश्व में शान्ति उत्पन्न करने के लिए समस्त विश्व के सामने मानवीय आदर्शों के रूप में प्रस्तुत किया। उनका विचार था कि विश्व में सच्ची शांति सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों द्वारा ही स्थापित हो सकती है। अहिंसा और सत्याग्रह के मानवीय प्रभाव के बलपर विरोधी का हृदय परिवर्तन किया जा सकता है इस बात में गांधी जी की निष्ठा थी। उन्होंने अंग्रेजों के विरोध में सत्य और अहिंसा की गरिमा को ही उपयुक्त माना —

---

1. प्रार्थना पुरुष - नरेश मेहता - पृ. 46.

" पूर्ण अहिंसा औ सत्याग्रह
से विरोध है सम्भव,
यही मार्ग है जिससे
दानवता का पूर्ण पराभव । "[1]

अहिंसा गांधीजी के लिए केवल नीति ही नही सर्वोच्च आस्था एवं एकमात्र निष्ठा है । उनके जीवन का प्राण स्पन्दन है । उन्होंने एकबार कहा था कि सत्य और अहिंसा का परित्याग कर के हमें भारत की स्वतन्त्रता भी नहीं चाहिए । इसी प्रकार " संशय की एक रात " में राम रक्त सनें हाथों से मिलनेवाली सीता को भी स्वीकारना नहीं चाहते हैं —

" मानव के रक्त पर पग धरती आती
सीता भी नहीं चाहिए,
सीता भी नहीं । "[2]

राम के इस प्रकार के प्रसंग में पलायन या कायरता का भाव नहीं है । वह केवल अहिंसा द्वारा ही सब कुछ साधना चाहते हैं । ऐसे ही गांधीजी की अहिंसा कायरों की अहिंसा नहीं थी । एक सन्दर्भ में गांधीजी अहिंसा की प्रतिष्ठा के बारे में इस प्रकार कहते हैं कि - " सत्य का आचरण अहिंसा है । जब हम सत्य को व्यवहार में उतारते है तो हमको अहिंसा का पालन करना होता है । इस सिद्धान्त के बारे में बड़ी सावधानी की जरूरत होती है । जब तक हमारा अन्तर शुद्ध नहीं है, अहिंसा नहीं सूझती । योग सूत्र के अनुसार - " अहिंसा

1· प्रार्थना पुरूष - नरेश मेहता - पृ· 25·

2· संशय की एक रात - नरेश मेहता- पृ· 32·

प्रतिष्ठायां तद् सन्निधौ वैरत्याग: । " अहिंसा की प्रतिष्ठा और उसकी सन्निधि में मनुष्य का वैर भाव तिरोहित हो जाता है । संसार में प्राणिमात्र के प्रति दुर्बुद्धि समाप्त हो जाना अहिंसा है । अहिंसा साधने का मतलब सारे संसार के प्रति प्रेम साधना है । साथ ही हमें अपने मनोविकारों और अन्य तृष्णाओं को वश में करना और किसी के प्रति दुर्भाव नहीं रखना चाहिए । "[1]

राष्ट्रीय शक्ति को संगठित करने के उद्देश्य से महात्मागाँधी ने साम्प्रदायिक समन्वय की आवश्यकता को गहराई से अनुभव किया है । विशेष रूप से स्वतंत्रता के बाद हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच उन परिस्थितियों में एकता का भाव अपेक्षित था । लाखों हिन्दु-मुस्लिम दीन-हीन घर हीन हुए । मुस्लिम दिल्ली छोड़कर पंजाब जा रहे थे । गाँधीजी दिल्ली में उतरें । मुसलमानों की रक्षा के लिए उपवास किया । अपने प्राणों की बाजी लगाकर मुसलमानों को अभय प्रदान किया । इससे हिन्दू नेतागण कंपित हो गये । गाँधीजी की दशा को देखकर काजी-मुल्ला भी डर गये । जब उन सभी की ओर से एक होने का आश्वासन मिला तब उन्होंने अपना उपवास तोड़ दिया —

" मुस्लिम-रक्षा के खातिर तब
बापू ने उपवास किया
बाजी लगा प्राण की अपनी
मुसलमान को अभय दिया ।
काँप गये हिन्दू नेता गण
काजी-मुल्ला सभी डरे

---

1. कुछ नीति-कुछ राजनीति - भवानीप्रसाद मिश्र - पृ. 24 से उद्धृत

तोड़ा तब उपवास कि लिखकर
जब आश्वासन दिये गये । " [1]

इस प्रकार कवि की साम्प्रदायिक चेतना पर साम्प्रदायिक समन्वय का गहरा प्रभाव रहा है । जिस प्रकार गांधी जी के वैष्णवी संस्कार उसके मार्ग में बाधक नहीं बनें, उसी प्रकार नरेश मेहता की वैष्णवी वृत्ति भी उदार छाया में सभी सम्प्रदायों के बीच एकता की स्थापना के लिए प्रयास करती चली है । जैसा कि कहा गया है कि राष्ट्र के उत्थान के लिए साम्प्रदायिक समन्वय अनिवार्य है । न केवल राष्ट्र का स्वातंत्र्य और उसका उन्नयन, अपितु राष्ट्र की संस्कृति का विकास भी साम्प्रदायिक समन्वय की नीवं पर ही टिक सकता है । धार्मिक मतवाद का संस्कृति में महत्त्वपूर्ण स्थान भले ही हो, किन्तु, संस्कृति का व्यापक और विशाल रूप राष्ट्रीय आधार पर ही खड़ा हो सकता है । दिनकर के शब्दों में - "धार्मिक विकास की एकता मनुष्यों की सांस्कृतिक एकता को जरूर पुष्ट करती है । इस दृष्टि से एक तरह की एकता तो वह है जो हिन्दू-समाज में मिलेगी, जो पारसी, किरस्तानी समाज में मिलेगी । लेकिन धर्म के केन्द्र से बाहर जो संस्कृति की विशाल परिधि है, उसके भीतर बसनेवाले सभी भारतीयों के बीच एकतरह की सांस्कृतिक एकता भी है । " [2] इस राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक आधार पर ही विभिन्न मत-मतान्तरों के बीच पारस्परिक प्रेम और सौहार्द की वृद्धि होने की अपनी आकांक्षा को कवि व्यक्त करता है ।

1· प्रार्थना पुरुष - नरेश मेहता - पृ· 62·

2· संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर - पृ· 659·

1.1.5. अनुकरण की प्रवृत्ति :-

भारतीय संस्कृति की प्रतिष्ठा के सन्दर्भ में नरेश मेहता ने जनमानस पर पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव एवं अन्धानुकरण की प्रवृत्ति पर अपना विचार व्यक्त किया । पश्चिमी सभ्यता की अन्धानुकरण में भारतीय युवकों की मानसिक दासता का चित्रण हमें " प्रार्थनापुरुष " में मिलता है । वास्तव में हमारे राजनैतिक सिद्धान्त, हमारी भाषा और साहित्य, हमारा रहन-सहन, आचार-व्यवहार सब हमारे संस्कृति के अंग है पर आज हम कितनी बेदर्दी से उसी कल्चर की जड़ काट रहे हैं। पश्चिमीवालों को शक्तिशाली समझकर हम इस भ्रम में पड़ गये है कि उनमें सिर से पाँव तक गुण ही गुण है । इसी अन्ध भक्ति में दोष भी गुण मालूम होते हैं —

" देख विलायत का वैभव
आतंक चढ़ा उसके मन पर
बना स्वयं अंग्रेज, उन्हीं का
लहजा, भूषा धारण कर । " [1]

जब गांधीजी को इस स्थिति का ज्ञान हुआ तब उन्होंने अपनी संस्कृति की महिमा को स्वीकारने लगे हैं —

---

1. प्रार्थना पुरुष - नरेश मेहता - पृ. 11.

" क्रमश: सारे जीवन की
महिमा, उस पर अब प्रकट हुई,
अंग्रेज नहीं, है भारतीय वह
यही सत्यता प्रकट हुई । " 1

काव्य में अन्य संस्कृतियों का अनुकरण को छोड़कर अपनी संस्कृति पर गर्व का अनुभव करने का सन्देश दिया गया है ।

1·1·6· विश्व बंधुत्व की भावना :-

" वसुधैव कुटुम्बकम् " की भावना भारतीय संस्कृति की प्राचीन देन है । इस भावना का विकास उपनिषद काल से होता हुआ बौद्ध युग तक आया है । परन्तु बाद में इस विचार धारा का लोप हो गया । फिर भी भारतीय संस्कृति में इसके तत्व विद्यमान रहे हैं । इस युग में आकर यह विचारधारा फिर बलवती हुई और इसे पश्चिमी मानवतावाद का विशेष योग मिला । आधुनिक काल में महात्मागांधी, अरविन्द और रवीन्द्र आदि धर्म विशेष से ऊपर उठकर व्यक्ति का सम्बन्ध समस्त विश्व से जोड़ने का प्रयास करते हैं । इनके विचारों में एक ओर व्यक्ति है तो दूसरी ओर विश्व । ये वैयक्तिक स्वतन्त्रता के साथ-साथ समस्त विश्व में एकता के सूत्र ढूँढते हैं और इस प्रकार सारे विश्व को एक कुटुम्ब बनाने की भावना का प्रचार करते हैं।

भौतिकतावादी दर्शन व्यक्ति की अपेक्षा समाज को अधिक महत्व देते हैं क्योंकि उसके अनुसार व्यक्ति समाज की देन है । अत: भौतिक-तावादी दर्शन भी व्यष्टि तथा समष्टि के बीच आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था

1· प्रार्थना पुरुष - नरेश मेहता - पृ· 11·

के माध्यम से विश्व बन्धुत्व की भावना पर बल देता है। सारांश यह है कि भारतीय और पाश्चात्य दोनों ही विचारधाराएँ भिन्न मार्गों के द्वारा विश्व बंधुत्व की भावना को स्पष्ट करते हैं —

" विश्व एक परिवार बने
मैं चला, सुखी हों सारे जन। "[1]

भारतीय संस्कृति के प्रति कवि की यह शोध दृष्टि कोई अन्धी या परम्परावादी नहीं है। वे इसे अच्छी तरह जानते और पहचानते हैं कि जहाँ भारतीय मनीषा सहस्राब्दियों से एक विशिष्ट अस्मिता को बनाये रखे हैं वहीं वे यह भी जानते हैं - इस भारतीय चिन्तन परम्परा में ऐसे विकार भी आते रहे हैं जिनके कारण यह देश बार-बार अधोगति को प्राप्त होता रहा है। वे कहते हैं - " मुझे सदा यह लगता रहा कि जिस देश और जाति के पास जितना बड़ा इतिहास, समुन्नत संस्कृति, धार्मिक उदात्त दृष्टि एवं श्रेष्ठ साहित्य होता है, उसके दो ही परिणाम हुआ करते हैं। या तो हम सामान्य व्यक्ति की भाँति अपने अतीत का गौरव-गान करते हुए अपनी हीनता को छिपाते रहें अथवा अतीत की उस महिमा मण्डित महादीपता के समक्ष अपना भी कोई समदीप समानान्तर रूप से निर्मित करें। "[2] ये दोनों ही परिस्थितियाँ आत्मघाती हैं। कहना नहीं होगा कि ये दोनों परिणतियाँ इस देश में बड़े पैमाने पर चरितार्थ हुई हैं। जहाँ देश का एक विशाल जनसमुदाय अतीत की यशोगाथा में ही अपने को तल्लीन करते हुए अपने सारे वर्तमान के कर्तव्य बोध को भुला देती है और वहीं ऐसे विशिष्ट व्यक्तियों का निर्माण होता है,

---

1. प्रार्थनापुरुष - नरेश मेहता - पृ. 64.
2. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 10.

जो अपने व्याटोप में अपने को बन्दी बना लेते हैं । परिणाम वही हुआ है जिसे नरेश मेहता कहते हैं, एक भयानक अस्मिता हीनता । वे तो मानते ही है कि इस अस्मिता हीनता और जड़ता में अधिक अंतर नही है । अपने खण्ड काव्य " संशय की एक रात " में नरेश मेहता ने भारतीय संस्कृति के महत्त्वपूर्ण पक्ष को नयी अर्थवत्ता से उजागर किया है । युद्ध पूरे इतिहास का एक घिनौना सत्य रहा है । परन्तु पूरे संसार का इतिहास एक युद्ध से दूसरे युद्ध तक के बीच के क्रिया कलापों का ही इतिहास रहा है । युद्ध केवल राज्य विस्तार के लिए ही नहीं लड़े गये हैं । धर्म के लिए युद्ध हुए, न्याय के लिए युद्ध हुए । यहाँ तक कि शांति के लिए युद्ध हुए हैं । राम सीता को मुक्त करने के लिए जब लंका की ओर प्रस्थान करते हैं तो उनके मन में भी एक प्रश्न उभरता है क्या युद्ध ही एक मात्र रास्ता है ? तो फिर बन्धुत्व का प्रश्न ही नही उठता —

" ये यज्ञ
ये आश्रम
देवोपासना
मानव एकता —
यदि बिना युद्धों के नही हैं सत्य । " [1]

राम की यह शंका वस्तुतः कवि की शंका है, उसी का संशय है । क्या बिना भीषण नरसंहार के किसी बड़े लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो सकती ? और क्या इस बर्बर नरसंहार के पश्चात् सचमुच किसी बड़े लक्ष्य की प्राप्ति

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 23 - 24.

होती है ? गीता में कृष्ण ने अपने तर्कों से युद्ध की अनिवार्यता से अर्जुन को सन्नद्ध किया है । राम भी " संशय की एक रात " में अन्ततः परिषद के निर्णय के अनुसार युद्ध के लिए चल पड़ते हैं । परन्तु प्रश्न अपनी जगह पर बना रहता है । क्या मानव संस्कृति की समस्त विकास यात्रा के उपरांत आज भी इस युद्ध की विभीषिका से, युद्ध की बर्बरता से उभर उठ पाये हैं ?

नरेश मेहता जिस युग में जी रहे हैं युद्ध उसका सब से भयानक अनुभव है । इस शताब्दी में दो-दो विश्व युद्ध हुए । भयानक नरसंहार हुआ । परमाणु-बमों से नागासाकी और हिरोशिमा को तहस-नहस कर दिया गया । आज के संसार के शक्ति का मापदण्ड इसी युद्ध क्षमता से ही होता है । अणुबम तो अब पुराना पड़ चुका है । कितने अणुमारक आयुध, क्षेपयास्त्र, आविष्कार हो चुके हैं । बटन दबाकर मास्को, न्यूयार्क या वाशिंगटन से पूरे विश्व का विनाश सम्भव है । पूरी सभ्यता, सारी संस्कृति, एवं मानव जाति का समूल नाश आज के मनुष्य के हाथों में है । इतने बड़े नाश की क्षमता से युक्त आज के मनुष्य के विवेक को कितना बड़ा विराट होना पड़ेगा, यही आज मानव-संस्कृति का सबसे बड़ा प्रश्न है ।

कवि अपने इसी प्रश्न को राम के माध्यम से " संशय की एक रात " में उठाता है । उन्हें लक्ष्मण का तेजस्वी स्वर आश्वस्त नहीं कर पाता । लक्ष्मण ने बड़े ही तर्क पूर्ण और आस्था भरे शब्दों में कहा --

" हम केवल चलते हैं

x x x

बन्धु ! यह असम्भव है

कर्म और वर्चस को

छीन सके कोई भी

जब तक हम जीवित है । "[1]

लक्ष्मण की यह ओजस्वी भंगिमा कृष्ण की उस वर्चस्वी वाणी के कितनी निकट है, यह हम आज भी समझ सकते हैं, परन्तु नरेश मेहता की योजना ऐसी नहीं है कि वह संशय समाधान प्राप्त कर ले। क्यों कि वे जानते हैं कि समाधान वह है ही नहीं, जो इन प्रतिवादी तर्कों में प्रस्तुत किया जाता है। इसलिए गीता के संशयालु अर्जुन है जिन्हें कृष्ण के तर्कों के आगे नतमस्तक होते जाना है, उनके कर्म के दर्शन के समक्ष निर्विकार भाव से झुक जाना ही अर्जुन की नियति है, परन्तु नरेश जी के राम लक्ष्मण से बड़े, बहुत बड़े हैं। उनका संशय लक्ष्मण द्वारा प्रस्तुत समाधान से भी बहुत बड़ा है। हनुमान और जामवंत के तर्क भी राम के संशय के आगे बौने रह जाते हैं। आखिर बहुमत के निर्णय को, परिषद के निर्णय को राम स्वीकार करते हैं, युद्ध करने के लिए तैयार होते हैं, परन्तु प्रश्न उनका बना रहता है —

" मैं सत्य चाहता हूँ

युद्ध से नहीं,

खड्ग से भी नहीं

मानव का मानव से सत्य चाहता हूँ

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 15-16.

क्या यह संभव है ?
क्या यह नहीं है । "[1]

यही तो आज का प्रश्न है । भारतीय संस्कृति का सबसे बड़ा ज्वलंत प्रश्न है । गांधी का प्रश्न है, बुद्ध का प्रश्न है । यही तो नरेश मेहता का संशय है । राम पूरे दायित्वबोध के साथ कहते हैं --

" यदि मानवीय प्रश्नों का उत्तर मात्र
युद्ध है
खड्ग है
तो
लो
समर्पित है तुम्हें
तुम्हारे अज्ञात जनों को

x x x

धनुष, बाण, खड्ग और शिरस्त्राण । "[2]

यही है राम की संस्कृति । मानव के रक्त पर पग धरती हुई आनेवाली सीता भी नहीं चाहिए । यही है अहिंसा के प्रति अन्य आस्था । परन्तु जैसे पार्षदों के सामूहिक निर्णय के सामने सिर झुकाकर निर्विकार मन से युद्ध के निर्णय को राम स्वीकार करते हैं, वैसे ही आज के बड़े से बड़े विवेक धारी पुरुष अपने वैयक्तिक विवेक को एक

---

1. संशय की एकरात - नरेश मेहता - पृ. 31.
2. - वही - पृ. 31-32.

तरफ करके युद्ध के सामने घुटने टेकते हैं । कवि की समस्या यहीं है कि संस्कृति के भीतर वह कितनी शक्ति आयेगी तथा युद्ध एकमात्र विकल्प नहीं रह जायेगा ।

कवि की मान्यता है कि ऐसे युद्ध अपनी समाप्ति के पश्चात् भी समाप्त नहीं हो पाते । अपने पीछे अनेक युद्ध की शृंखला छोड़ जाते हैं । जो युद्ध पहले बाहरी रणक्षेत्र में लड़े जाते हैं, वही बाद में अन्तस्तल में लड़े जाते हैं —

" युद्ध क्या ऐसे ही होते समाप्त ? ?
जब शस्त्रों से ये
शेष कर दिये जाते हैं
युद्ध स्थल में —
तब अन्तःस्थल में युद्ध
s शेष हो
जीवन भर चलते रहते हैं । "[1]

भारतीय संस्कृति का केन्द्रीय उत्स करुणा है । उसी करुणा में यह युद्ध भाव समाहित है । भयानक से भयानक युद्धता को इस महा करुणा में डुबोकर शांत किया जा सकता है । हिंसा इसी सरोवर में स्नान करके रूपान्तरित हो सकती है । महावीर बुद्ध से लेकर गाँधी तक इसी महाकरुणा के अवतार-पुरुष थे । नरेश मेहता इस करुणा से किस सीमा तक आई थे इसका दर्शन उनकी राममुद्रा में ही हो सकता है । तुलसी के राम भले ही शील, सौन्दर्य और शक्ति के अपूर्व समन्वय रहे हो,

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 42.

परन्तु " संशय की एक रात " में जो राम का करुणामय स्वरूप चित्रित हुआ है वह निश्चय ही कवि की एक नव्य दृष्टि का ही परिणाम है । राम की वीरता का वर्णन तो सर्वत्र हुआ है । राक्षसों के महा विनाश के लिए उनका अवतार ही माना गया । पुराणों की इस अवतारी धारणा के पश्चात् राम के करुणा रूप को उभारने की आवश्यकता ही नहीं समझी गयी । परन्तु नरेश मेहता जी राम के व्यक्तित्व में इस महाकरुणा की अवतारणा बड़े ही मार्मिक स्तरों पर करते हैं —

" अमोही प्रशात्मकता की
अग्नि यह
कौन से अभिषेक जल से शान्त हो ? " ।

राम के भीतर जो यह अनुताप की ज्वाला है उसे अपनी महा - करुणा से भिंगोकर वे सुला देना चाहते हैं । इस महाकरुणा का तत्व नरेश मेहता के काव्य में जगह-जगह पर दृष्टिगोचर होता है । " महा - प्रस्थान " में युधिष्ठिर अपनी हिमालय यात्रा के अन्तिम चरण में पहुँच कर कहते हैं —

" ओ तृतीय प्रहर के रात्रि-आकाश ।
व्योम केश !
सावित्री- पत्तियों औ नक्षत्र-फूलों वाले
अश्वत्थ तुम्हीं हो ।
जब तुम पृथ्वी पर

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 21.

नदियों के श्लोक लिखते हो
तब तुम्हारी करुणा
हिमालय हो जाती है । "[1]

इसी करुणा में स्नात कवि की आत्मा अपने सृजन के लिए पाथेय जुटाती हैं । युधिष्ठिर करुणा को साम्राज्य से सर्वोपरि स्थान देते हैं। जैसे वे भीम से कहते हैं —

" करुणा मेरा धर्म है भीम !
किसी भी सम्बन्ध
साम्राज्य या शक्ति के सामने
मैं इसे नहीं छोड़ सकता । "[2]

कवि युधिष्ठिर के व्यक्तित्व के केन्द्र में इसी करुणा को प्रतिष्ठित किया है । वह सबकुछ छोड़ सकते हैं, परन्तु करुणा को नहीं । इस बिन्दु तक पहुँचते-पहुँचते नरेश मेहता उस व्यामोह से एकदम परे आ चुके होते हैं जिससे किसी सीमा तक वे अपने युवाकाल में जुड़े थे । इतना ही नहीं वे उसपर चोट भी करते हैं । उन्हें लगता है कि जिस संस्कृति में यह करुणा एक आन्तरिक मूल्य नहीं बन सकती।उसमें व्यक्ति की सत्ता पर समाज और समाज के नाम पर राज्य का वर्चस्व होता चला जायेगा और सारे मानवीय मूल्य ध्वस्त होते चले जायेंगे । राज्य वहाँ एक निरंकुश तंत्र में बदल जाता है और उसके भारी भरकम पाँवों के नीचे सारी मानवीय गरिमा पददलित हो जाती है । युधिष्ठिर कहते हैं—

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 121.
2. - वही - पृ. 87.

"आज, नहीं तो कल
राजा से अधिक कठोर हो जाएँगे
ये राज्य —
और सुदूर भविष्य में
राज्य से भी अधिक अमानवीय हो जाएँगी
ये राज्य - व्यवस्थाएँ । "[1]

इस तथ्य का दर्शन आज हम अपने युग में कितने निभ्रान्त ढंग से कर रहे हैं । समता और शोषण मुक्ति के नाम पर स्थापित हुए राज्य और उसकी राज्य-व्यवस्थाएँ क्रूर रूप धारण कर चुकी हैं। आज व्यक्ति के मूल्य एवं मर्यादाएँ उस राज्य और राज्य - व्यवस्थाओं के नीचे पद मर्दित हैं । कवि इस अमानवीय स्थिति की अभिव्यक्ति युधिष्ठिर के मुख से कहलाते हैं —

"राज्य व्यवस्था की नींव में
कराहते मनुष्य का होना
एक अनिवार्यता है अर्जुन । "[2]

व्यष्टि और व्यवस्था के अवरोधी स्वर को केवल भारतीय संस्कृति ही उभार सकी हैं और वह भी व्यक्ति के पूरे उन्नयन और विकास के साथ । इस देश की संस्कृति में व्यक्ति को जहाँ उसने अपने को अरण्यों में रचते हुए मानवीय मुक्ति के सूत्रों का प्रणयन किया है उसे पश्चिमी दृष्टि से समझ ही नहीं जा सकता जहाँ व्यक्ति केवल समाज के शोषण का षड्यंत्र करता फिरता है ।

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ॰ 98॰
2. - वही - पृ॰ 99॰

कवि तो इस व्यवस्था का उद्घोषक हैं । इसे ही दूसरे रूप में उसने अपने "शबरी" नामक खण्ड काव्य में स्थापित किया है । भूमिका में कवि कहते हैं – "शबरी अपनी जन्मगत निम्न वर्गीयता को वर्ग दृष्टि के द्वारा वैचारिक उर्ध्वता में परिणत करती हैं । यह आत्मिक या आध्यात्मिक संघर्ष, व्यक्ति के सन्दर्भ में मुझे आज भी प्रासंगिक लगता है । सामाजिक मूढ़ता, परिवेशगत जड़ता तथा अपने युग के साथ संलापहीनता की स्थिति में व्यक्ति केवल अपने को ही जागृत कर सकता है । अपने को ही सम्बोधित कर सकता है । इसी संघर्ष के माध्यम से "स्व" पर हो सकता है, व्यक्ति समाज बन सकता है ।"[1] शबरी के माध्यम से कवि भारतीय संस्कृति के उसी अस्मिताबोध को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया है जिसे हम प्रह्लाद से लेकर गाँधी तक देखते है, परन्तु जो व्यापक स्तर शताब्दियों से सोया हुआ है । इस देश में व्यक्ति की मेधा को गहरी प्रतिष्ठा दी गई है । उसी के माध्यम से यहाँ समाज के विकास की परिकल्पना की गई है । जब-जब और जिस-जिस युग में यह व्यक्ति की मूल्यवत्ता, उसका उत्कर्ष अपनी परम अवस्था में रहा यह देश विश्व में शीर्ष पर रहा । जब-जब हमने व्यक्तिमता को रौंदा और गहरे अन्धानुकरण में फँसे, देश रसातल में गया । शबरी एक प्रतीक चरित्र हैं जिसने सामूहिक जड़ता से अपने चैतन्य की रक्षा की है और इस प्रकार नरेश मेहता के शब्दों में एक मन्त्र चरित्र बन सकी है । उसके जूटे फलों को खाकर राम कृत कृत्य हो उठते है और कहते हैं –

"मैं तो आया हूँ केवल
करने जयकार सती का
मैं हूँ कृतार्थ पाकर यह
स्वागत-सत्कार सती का ।"[2]

---

1. शबरी – नरेश मेहता – भूमिका – पृ. 9.
2. – वही – पृ. 79.

जिस ऊँचाई पर शबरी पहुँच हुई है, वहाँ व्यक्ति एकाकी या निपट अकेला हो जाता है, परन्तु उसमें अंकुरित संकल्प शक्ति आ जाती है। एक स्थल पर कवि ने लिखा है — शिखर होने का तात्पर्य यही है निपट अकेला होना। लेकिन कवि मानता है कि व्यक्ति-मानस और समष्टि-मानस में समरसता स्थापित करना ही कवि का उद्देश्य है। यह समरसता जिस काव्य में जितनी ही उदात्त होगी उसमें उतनी ही काव्यात्मकता होगी। नरेश मेहता के काव्य में व्यक्ति मानस और समष्टि-मानस की यह समरसता निश्चय ही एक उदात्ततर भूमि पर स्थापित होती गई है। यह स्थिति बहुत से आर्ष-काव्यों की है। भारतीय संस्कृति के महान् रचनाकारों ने इस कठिन साधना को साधा है। वे केवल यथार्थ के अनुवादक नहीं रहे हैं। उन्होंने यथार्थ की इस कटुता का शोध धर्म और दर्शन की "भूमि" पर किया है। यथार्थ को धर्म और दर्शन दो डैने प्रदान करके ही काव्य अपनी काव्यात्मक यात्रा आरम्भ कर सकता है।"[1] नरेश मेहता के काव्यों में धर्म और दर्शन दोनों डैने आद्यन्त वर्तमान है जिनसे वे उड़ान भरते रहते है और ऊर्ध्व से ऊर्ध्वतर को चलते चले जाते हैं।

भारतीय संस्कृति के विकास क्रम में अनेक विकृतियाँ आती गई हैं। कवि उनको लेकर बहुत ही चिन्तन शील रहा है। वैदिक संस्कृति को पौराणिकता ने जिस प्रकार संशोधित एवं परिवर्दित किया है उसपर भी उनकी पूरी सहमति नहो हैं। उनकी दृष्टि में जहाँ पुराणों ने राम और कृष्ण के मनुष्य रूप को एक ईश्वरतत्त्व प्रदान करके एक नयी भागवत भक्ति की परम्परा का शुभारम्भ किया। वही उन्हीं पुराणों ने वेद के सर्वमान्य एवं सर्व प्रमुख देवता इन्द्र के चरित्र को अधः पतित

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - भूमिका - पृ. 10.

करने की दुरभिसन्धि की । इन्द्र के साथ किया गया यह अति-चार संस्कृति के वैदिक प्रवाह को कई अर्थों में क्षरित करता है । नरेश मेहता ने लिखा है — "वेद में जो विष्णु एक गौण देवता है उनकी वैदिक वामनता को पुराणों ने विराटता में परिणत कर दिया । विष्णु को ऐसी प्रमुखता मिलने में निश्चय ही इन्द्र बाधक हो सकते थे । अतः जिस रूप में, जिस भाषा में और जिस क्रूरता के साथ इन्द्र को विष्णु के महाभिषेक में बलिपशु बनाया गया वह नितान्त जघन्य कृत्य था ।"[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि नरेश मेहता की दृष्टि अपने प्राचीन ग्रन्थों तथा उनके प्रतिपाद्य को ज्यों का त्यों अन्ध स्वीकृति प्रदान करने-वाली नहीं है । वे मूल्यान्वेषण की कोशिश में समस्त सांस्कृतिक चेतना के विकास को उनके अन्तर्विरोधों के साथ देखते हैं तथा उनके स्वस्थ पक्ष को ही स्वीकार करते हैं । इसी क्रम में उन्होंने आगे लिखा है - "देवराज इन्द्र आर्य सभ्यता के परमाराध्य थे जिन्होंने "असुर - महत" (अहुरमज्द) वरुण पंथियों से संघर्ष करके आर्य-सभ्यता को स्वरूपित किया था । वह कोई काल्पनिक चरित्र नहीं थे । उनकी जिजीविषा, चरित्र एवं व्यवहार अत्यन्त मानवीय था । समस्त वेद पद-पद पर जिसकी स्तुति से भरे पड़े हैं वही हमारे पुराणों में कुण्ठा, लम्पट, चरित्रहीन, षड्यन्त्री, कायर तथा पदलोलुप बना दिया गया ।"[2] इसलिए नरेश मेहता अत्यन्त आक्रोश के साथ कहते हैं कि इतने बड़े किसी जातीय मिथक का घोर पतन, नृशंस हत्या शायद ही कहीं और हुई हो । "भारतीयता के अस्मिता हीन हो जाने का और क्या प्रमाण हो सकता है ? निश्चय ही राम और कृष्ण इन्द्र के स्थानापन्न नहीं बन सके इसलिए वर्चस्वी इन्द्र

1• प्रवाद पर्व - नरेश मेहता - भूमिका - पृ• 21•

2• महाप्रस्थान - नरेश मेहता - भूमिका - पृ• 20•

का पराभव, आधारभूत भारतीय वर्चस्विता, अस्मिता का पराभव है । "[1]

उपर्युक्त उद्धरण से यह बात स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है कि नरेश मेहता की मूल चिन्ता संस्कृति की शोध है । और यदि भारतीय संस्कृति में जहाँ तहाँ घुन लगे हैं उसे निर्विकार बनाने की भी उन्हें उतनी ही व्याकुलता है । कुछ तो ऐसा अवश्य भारतीय चिन्तनमें प्रवाहमान रहा है, जिसके कारण इस देश को बार-बार पराभव का शिकार होना पड़ा है । इस देश के गत पाँच हजार वर्ष के इतिहास का एक बहुत बड़ा अंश विदेशी दासत्व का रहा हैं । इस देश की चिन्तन धारा में कुछ मूलभूत भौरियाँ रही है, जिनमें सारा विवेक फँसकर डूबता रहा है और अन्ततः हम अस्मिता हीनता और आलस्य के गर्त में गिरते रहे हैं। निष्काम कर्म की प्रतिष्ठा पर खड़ा देश इस सीमा तक उदासीनता और अकर्मण्यता का शिकार होगा, सहसा विश्वास नही होता । इसी चिन्ता युक्त मनः स्थिति में नरेश मेहता ने लिखा है - " कई बार मुझे लगता है कि इस देश, जाति, संस्कृति और सभ्यता की ऐसी प्रदीर्घ अस्मिता हीनता का क्या कारण है ? वेद, उपनिषद्, उन्नत दर्शन सम्प्रदाय, प्रगल्भ आकार ग्रन्थ, पुष्कल सद्ग्रन्थ, सन्तों महात्माओं की अक्षुण्ण परम्परा के होते हुए भी यह देश क्रमशः अस्मिताहीन कैसे होता गया ? ज्ञान की सारी पोथियों का स्थान अन्ततः सत्यनारायण की कथा पोथी ले लेती हैं। शीर्षस्थ देवत्व का स्थान क्रमशः अप्रमुत्पन्न होते-होते कैसे अजीब देवी-देवता पर जाते है । "[2]

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - भूमिका - पृ. 23.
2. - वही - पृ. 24.

उपर्युक्त पंक्तियों में यह चिन्ता अत्यन्त गहराई से अभिव्यक्त हुई है। जहाँ इस देश के इस गहन पराभव को लेकर नरेश मेहता इतनी तलस्पर्शी चिन्ता से घिरे हैं वहीं यह स्वीकार करना होगा कि उनकी दृष्टि कई ऐसे महत्वपूर्ण बिन्दुओं से नहीं टकराई है, जिन्हें हम सहज ही इस दुरवस्था के कारणभूत तत्वों में गिन सकते हैं। इससे यह विदित होता है कि इस देश के अधिकांश मानसिक व्यामोह का प्रमुख कारण काल-दृष्टि रही हैं। स॰ही॰वात्स्यायन अज्ञेय ने इसे रेखांकित किया है :-

" ऋषि मुनि साठ हजार वर्ष तक तपस्या कर लेते थे। आज साठ वर्ष को मानवीय आयु की औसत मानकर उससे हजार गुनी अवधि की कल्पना, खैर की भी जा सकती है, लेकिन देवताओं की आयु गणना करने के नाते ही फिर यथार्थता का आँचल छूट जाता है। इस प्रकार सनातना के बोध तक पहुँचते-पहुँचते हम काल की यथार्थता का बोध खो देते हैं। सनातनता की भावना लम्बी कालपरम्परा की भावना नहीं, काल की अयथार्थता की भावना है। "[1] इस प्रकार अज्ञेय ने इस देश की नस पर हाथ रखा है। परन्तु कालचिन्तनका जो सबसे भयावह पक्ष इस देश के चरित्र में प्रतिफलित हुआ है वह तो है काल की चक्रीय गति की परिकल्पना। हमारी मानसिक बनावट को एकदम पंगु कर देनेवाली परिकल्पना यही चक्रीय परिकल्पना है। पाश्चात्य चिन्तन में काल की गति एकरेखीय गति है। उनके यहाँ जो क्षण व्यतीत हो गया वह कभी भी लौटकर वापस नहीं आनेवाला है। अत: वे प्रत्येक क्षण की मूल्यवत्ता से परिचित है, परिचित ही नहीं उससे गहराई से निबद्ध है, जबकि हमारे युग तो बार-बार वापस आयेंगे। सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग का क्रम चलता ही रहेगा। फिर क्या त्वरा है, क्या,

---

1. आत्मनेपद - [भारतीयता] - अज्ञेय - पृ॰ 100-101.

चिन्ता है। जो कुछ भी रह गया फिर रहेगा। कर्म के प्रति एक गहरी संस्कृति क्यों बने? जीवन के प्रति भी वही धारणा! आत्मा अमर है! शरीर बदलता रहा है, चैला है! पुराना पड़ेगा, क्षरित होगा, आत्मा फिर नया चैला धारण करेगी। जन्म, मृत्यु, जन्म-मृत्यु का भय केवल ऊपरी है, आत्मा तो अजर-अमर है। "न जायते म्रियेता वा कदाचित्।" आत्मा को तो न शस्त्र छिद कर सकते हैं, न अग्नि जला सकती है, न जल भिगा सकता है, न वायु सुखा सकती है। फिर क्या चिन्ता, क्यों चिन्ता, क्यों जल्दी? गीता के इस अमोघ सिद्धान्त ने जहाँ मनुष्य जाति को एक अकूत आत्म विश्वास दिया है। अपनी अविनश्वरता के प्रति यही पूरे भारतीय मानस में एक गहरी कर्म हीनता का संस्कार भी कूट-कूट कर भरा है। यह संस्कार कोई 100-50 वर्षों में निर्मित होनेवाला संस्कार नहीं है, इसकी जड़ें बहुत ही गहरी हैं और इसे निर्मूल कर पाना लग-भग असम्भव सा हो गया है क्यों कि वे ही सूत्र तो हमारी संस्कृति की शक्ति के मूलस्रोत भी हैं। उन्हीं से हम संजीवन ग्रहण करते हैं, विशिष्ट संस्कृतिवाले बनते हैं। किन्तु उन्हीं सूत्रों को हमारी कर्मण्यता को लोप करते जाने का भी श्रेय जाता है।

नरेश मेहता की सांस्कृतिक चेतना की सबसे केन्द्रीय धारा उनकी — उदात्तता की है। भारतीय संस्कृति और भारतीय चिन्तन का सबसे केन्द्रीय पक्ष उनकी उदात्तता ही है। संकीर्णता, प्रतिशोध, हिंसा जैसी भावनाओं से क्रमशः उठते चले जाना भारतीय संस्कृति से क्रमशः संसक्त होते जाना है। उदात्तता ही उसे उस महाकरुणा और विराट् सम्वेदना की अनुभूति से सिंचित करती है जहाँ साराविश्व अपनी मांगलिक छवियों से उसे सम्मोहित करता रहता है। माटी के माटीपन तो सभी देखते हैं परन्तु उस माटी में कितनी-कितनी वनस्पतियाँ उगती हैं? कितने रूप, रंग और गंधवाले पुष्प खिलते हैं, कितनी औषधियाँ अंकुरित

होती है, कितने-कितने पल समस्त प्राणि जगत को अर्पित होते है ? माटी की इस विपुल राशि भूत कल्याणी सुषमा से साक्षात्कार होने पर मनुष्य का हृदय किस भूमि पर अवस्थित होगा ? संसार में दुष्चताएँ कम नहीं है । प्रत्येक मनुष्य के हृदय में देवासुर संग्राम छिड़ा हुआ है । परन्तु मनुष्य प्रकृतितः ऊर्ध्वगामी होता है । उसकी ऊर्ध्वयात्रा का इतनी उज्जवल इतिहास है कि उस पथ पर चलनेवाले क्रमशः अपने को इन सारी दुष्चताओं से मुक्त करता जाता है । ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, प्रतिशोध, संघर्ष, युद्ध सभी मानवीय अनुभव के गोचर आयाम है । इन्हें इनकार नहीं किया जा सकता, परन्तु ये अभिष्ट नहीं है । ये उस मंगलमयी राह की अवरोधक मंजिले है जिन्हें मनुष्य पार करते हुए आगे बढ़ता चला जा सकता है । नरेश मेहता की काव्य-यात्रा क्रमशः हमें उस भूमि तक पहुँचने की एक अनथक तपश्चर्या है जहाँ पहुँचकर हमें स्रष्टा का वह कल्याणकारी महाभाव अपने में गहरा उतरता हुआ अनुभूत होता है ।

1·1·7· समन्वित दृष्टिकोण :-

संस्कृति, धर्म, नारी गौरव भावना, आध्यात्मिकता, राष्ट्रीय भावना एवं गाँधीवादी विचारधारा, सत्य-अहिंसा, करुणा, विश्व बंधुत्व भावना, व्यष्टि और समष्टिगत विवेचन, नारी का अस्मिताबोध, कर्म की नवीन व्याख्या एवं उदात्तता आदि के विषय में नरेश मेहता के विचारों का अनुशीलन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि जीवन के प्रति उनका विशेष गौरव था, तथापि वे जड़ परम्पराओं के विरुद्ध थे और अन्य संस्कृतियों के गुणों तथा अच्छाइयों को अपने आचार-व्यवहार में समाहित करने के पक्ष में थे । भारतीय संस्कृति की सत्य, अहिंसा, त्याग और

करुणा तथा विश्वबंधुत्व आदि भावनाओं को वे जीवन के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानते थे। वे धर्म के विशिष्ट अर्थ की व्याख्या करने के साथ धर्म के नाम पर समाज में होनेवाले अन्यायों का विरोध करते हैं। ऐसे अनाचारों को समाप्त करके मानव धर्म की स्थापना करने का सन्देश देते हैं। नारी के विभिन्न रूपों का वर्णन करके उनके प्रति अपनी गौरव भाव को व्यक्त करते हैं। आध्यात्मिकता को भारतीय आत्मा कह कर उसे जगाने की आवश्यकता को स्पष्ट करते हैं। राष्ट्रीय भावना को जगाकर अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करने का सन्देश देते हैं। ऐसी स्वतंत्रता को सत्य और अहिंसा आदि मानवतावादी भूमिका के आधार पर प्राप्त करने की आकांक्षा व्यक्त, करते हैं। सत्य और अहिंसा की महिमा का वर्णन करते हैं। करुणा को मानव धर्म के रूप में स्वीकारने का संदेश देते हैं। पाश्चात्य शिक्षा और संस्कृति के प्रभाव में पड़कर भारतीय जीवन मूल्यों और मान्यताओं को अनादर करनेवाले युवकों के उस अनुकरण प्रवृत्ति का खण्डन करते है। अपने काव्यों में धर्म और दर्शन का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। विश्व को एक ही परिवार बने रहने की आकांक्षा करते हुए अपनी विश्वबंधुत्व भावना को व्यक्त करते है। युद्ध को भारतीय संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष मानकर उस के प्रति विभिन्न मत प्रस्तुत करते हैं। अंत में हिंसा के सामने अहिंसा की औन्नत्य को सिद्ध करते हैं। करुणा को भारतीय संस्कृति का केन्द्रीय उत्स मानकर हरेक मनुष्य में इसी करुणा को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। भारतीय संस्कृति के माध्यम से व्यष्टिएवं समष्टि के अवरोधी स्वर को व्यक्ति के पूर्ण व्यक्तित्व के साथ उभारते हैं। " शबरी " के माध्यम से अपने समाज के उसी अस्मिता बोध को पुनरुज्जीवित करने का प्रयत्न करते है जहाँ ऊँच-नीच की भावना न हो। कवि अपने काव्यों में

धर्म और दर्शन की दोनो स्थितियों का वर्णन किया है जिनसे वे अर्ध्व से अर्ध्वतर की चलते चले जाने मे समर्थ हो गये है । " संशयकी एक रात " में गीता के धर्म सिद्धान्त को नया आयाम देने का प्रयत्न किया है । कवि की सांस्कृतिक चेतना की सब से बड़ी केन्द्रीय विचारधारा उनकी उदारतता है । संकीर्णता, प्रतिशोध और हिंसा जैसी भावनाओं से क्रमश: उठते चले जाना भारतीय संस्कृति से क्रमश: आक्त हो जाना है । इससे स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने प्राचीन ग्रन्थों तथा उनके प्रतिपाद्य विषयों को अपने आख्यानक काव्यों में ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं किया है । वे नवीन मूल्यान्वेषण की दिशा में समस्त संस्कृति को उसके अन्त - र्विरोधों के साथ देखते हैं तथा उसके स्वस्थ पक्ष को स्वीकार करते हैं। ऐसे ही कवि हमारे देश की जाति, संस्कृति और सभ्यता की अस्मिता हीन होने के कारणों को जानने के प्रयत्न करने के द्वारा भारतीय सांस्कृतिक चेतना को जगाने की दिशा में अपना विशिष्ट योगदान देते हैं।

1.2. आचार विचार :-

भारतीय संस्कृति में आचार-विचारों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान हैं । इन्हें संस्कृति के रक्षक भी माना गया है । नरेश मेहता के द्वारा ऐसे आचार विचार के अंतर्गत आनेवाले विभिन्न प्रकार के मानवीय सम्बन्धों एवं उनके बीच में आनेवाले संघर्ष, समन्वय, एवं विद्रोह की स्थितियों को विभिन्न नामों के द्वारा स्पष्ट किया गया है —

1.2.1. सम्बन्धों का संतुलन :-

मानवीय सम्बन्धों का अध्ययन मुख्यत: समाज शास्त्र का विषय है । इसलिए शास्त्रीय ग्रन्थों में " समाज " शब्द का प्रयोग मानव सम्बन्धों के सभी तन्तुओं के लिए किया जाता हैं । मैरिसयिन्सबर्ग के अनुसार —

"वस्तुत: समाजशास्त्र का लक्ष्य सामाजिक व्यवहार की व्याख्या करना या उनको समझना है। मानव सम्बन्ध के सम्पूर्ण क्षेत्र सामाजिक व्यवहार के अंतर्गत नही आ सकते।"[1] फिर भी व्यापक अर्थ में समाजशास्त्र मानवीय क्रियाओं और अन्योन्य सम्बन्धों उनकी स्थितियों परिणाओं का अध्ययन है। इसलिए मानवीय सम्बन्धों के अर्थ में "समाज" शब्द का प्रयोग किया जा सकता है। वीर कान्दरल ने भी समाज - शास्त्र को ऐसा विशिष्ट विज्ञान माना है। जिसका सम्बन्ध मानसिक बन्धनों के ऐसे परम्परा हैं जो समाज में मनुष्य से मनुष्य को संबद्ध करते हैं।[2] माता-पिता, बच्चा, भाई-बहन आदि शब्द सामाजिक निर्माण का आवश्यक भाग बन जाता है।

सामाजिक व्यवस्था और पारस्परिक सम्बन्धों के विषय में हिन्दू शास्त्रकारों के मतों की मीमांसा करते हुए लगभग यही तथ्य पंढरीनाथ प्रभु ने भी प्रतिपादित किया है। उनके मतानुसार-हिन्दू शास्त्रकारों ने सामाजिक जीवन और व्यवहार की चर्चा के क्रम में सबसे पहले पृथ्वी पर मानव के अस्तित्व का प्रश्न उठाया, फिर मानव और परमसत्ता के सम्बन्ध विषयक मूल प्रश्न पर विचार किया और उसी के आधार पर प्रत्येक वस्तु, व्यक्ति, घटना और परिस्थितियों के साथ अपने सम्बन्ध को परि - भाषित किया। इस प्रकार हिन्दुओं के लिए परमसत्ता के साथ व्यक्ति का सम्बन्ध ही उसके अन्य व्यक्तियों, परिवार, समूह और समाज - जिसके सम्पर्क में वह आता है या रहता है। भारत देश और वस्तुत: सम्पूर्ण

---

1. समाजशास्त्र - मॉरिस गिन्सबर्ग - अनुवादक - महेन्द्रनाथ वर्मा - पृ. 4.
2. - वही - पृ. 3.

निर्जीव सृष्टि के साथ के सम्बन्ध को निरूपित करता है ।"[1] इतना ही नहीं सभ्य मनुष्य की पहचान भी यही है कि वह वहाँ तक उद्देश्य, लक्ष्य और विचारों में समूह बल्कि सारी मानवता के साथ समरूपता स्थापित कर सकता है ।

सम्बन्धों की यह सत्ता परिवर्तनशील होती है । पिटरिम सोरोकिन ने अपनी पुस्तक सोसल एण्ड कल्चरल डायनामिक्स " में यह स्थापित किया है कि समाज की पुस्तक में ही कुछ ऐसी स्वभाविक शक्तियाँ है जिनके फलस्वरूप समाज में परिवर्तन होता चलता है । अतः मानवीय सम्बन्ध भी परिवर्तनशील होते रहते हैं । भौतिक वस्तुओं की अन्तर्वस्तु में परिवर्तन हो जाने पर उसका प्रभाव उसके स्वरूप पर नहीं पड़ता लेकिन मानवीय सम्बन्धों के विषय में यह लागू नहीं होता । जैसे प्रत्येक परिवार में पाये जानेवाले पिता-पुत्र या पति-पत्नी का सम्बन्ध एक सा नहीं होता क्योंकि पिता-पुत्र, पति-पत्नी का अलग-अलग व्यक्तित्व होते हैं । व्यक्तियों की भिन्नता के कारण सम्बन्धों की परिवर्तनशीलता स्वाभाविक है ।[2] सम्बन्धों की दूसरी विशेषता

1. ~~The Hindu in his sustric discussions of social life and~~ practices first raises the fundamental question of the significance of man's existence on earth, gives consideration to basic question of the relation between man and the possivle ultimate purpose and fulfilment of his existence and upon such bases, seeks to define and formulate his relations with every other things, persons, events and circumstances in the world. Thus for the Hindu, the individual relations with the ultimate principle defines his relations with other men, with his family with the group of Society which he lives on with which he comes contact with his village, and his country and indeed with intive animate and inanimate Creation.

Hindu Social Organisation-Pandarinadh Prabhu-Page 77-78

बहुलता और विविधता है। "समाजशास्त्र मानव-मानव के बीच के उन सभी सम्बन्धों को समेट लेता है जो मान्य संरचना और संघटनवाले निर्धारित अनुष्ठानों या सम्मेलनों में समाविष्ट हो सकते हैं तथा समाज शास्त्री व्यवहारत: अपने को इन अनुष्ठानात्मक संरचना से सम्बद्ध सम्बन्धों तक इसलिए सीमित रखते हैं क्यों कि असंघटित वैयक्तिक सम्बन्ध इतने अधिक और वैविध्य पूर्ण होते हैं उनका वैज्ञानिक विवेचन हो ही नहीं सकता।"[1] इसका अभिप्राय यह हुआ कि सम्बन्धों की परिधि विशाल है और समाजशास्त्र विविधता को स्वीकार करता हुआ भी एक सीमा तक ही उनका विवेचन कर पाता है। इन अनंत सम्बन्धवाले मानवीय सम्बन्धों का वर्गीकरण और विवेचन भी संभव नहीं है। इसलिए नरेश मेहता ने समाजशास्त्रीय दृष्टि से अपने काव्यों में आनेवाले विविध प्रकार के सम्बन्धों तथा उनका विवेचन इस प्रकार प्रस्तुत किया है —

1·2·1·1· पारिवारिक सम्बन्ध :-

मानवीय सम्बन्धों की आधारशिला पारिवारिक सम्बन्ध ही हैं। प्रत्येक गृहस्थ को माता-पिता, स्त्री, पुत्र तथा परिजनों के साथ रहना पड़ता है। सम्पूर्ण प्राणि जगत के साथ प्रत्येक का योग है और हरेक को जीवन यात्रा के लिए दूसरे का दायित्व कम नहीं है, यह सत्य होते हुए भी हर मनुष्य में इस बात का ज्ञान तो नहीं होता, लेकिन प्रत्येक गृहस्थ को अपने परिवार के लिए अपने को दान करने का सुयोग अवश्य मिलता है। परिवार के प्रत्येक सदस्य के प्रति गृहस्थ का जो कर्तव्य एवं दायित्व होता है, यथोचित रूप से उसका पालन करने से अन्त: करण को क्रमश: प्रसारित होने का मौका मिलता है।

1· समाजशास्त्र-विचारधारा - { सोरोकिन विचारों का सारांश }
रवीन्द्रनाथ मुखर्जी - पृ· 28·

" संशय की एकरात " में राम की चिन्ता के माध्यम से उनके पारिवारिक सम्बन्ध व्यक्त होते हैं । वह अपने पारिवारिक दुःखों के लिए स्वयं को जिम्मेदार मानते हैं । यही उनकी वेदना का मूल कारण बन गयी है । इसलिए ही वे युद्ध करके प्रजा के दुःखों का भी कारण बनना नहीं चाहते हैं । नहीं चाहने पर भी उनके जीवन में अनेक घटनाएँ घटी है । ऐसा होने के कारणों को ढूँढने में ही वह बार-बार असफल हो रहे हैं । पारिवारिक कर्तव्य विफलन के बारे में वह अपने पितात्मा से इस प्रकार कहते हैं ---

" नन्दीग्राम के एकान्तवाला
भरत का वह
सौम्य मुख,
उर्मिला की पति प्रतीक्षित दीठि,
मेरे तपते हुए आकाश में
मिहिरहीना दिशाओं सी
श्वेत, मौन, उदास
माताएँ --

जैसे
एक असफल साँझ रक्तिम
ग्रीष्माकाश में
असमाप्त होने के लिए होती रहे
आधी रात तक ।
कैसी त्रासदी !!
राज्य पाने की नहीं की कामना
फिर भी गृहकलह । "[1]

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 43.

1·2·1·2· माता-पिता-पुत्र का सम्बन्ध :-

परिवार में माता-पिता के प्रति पुत्र का कर्तव्य महत्त्वपूर्ण होता है । जब पुत्र अपने कर्तव्य को पूरा करने में असमर्थ हो जाता है तो वह अत्यन्त मानसिक वेदना का अनुभव करता है । " संशय की एक रात " में राम अपने माता-पिता के दुःखों के लिए अपने को ही निमित्त मानकर अत्यन्त मानसिक वेदना का अनुभव करता है । वे लक्ष्मण से प्रश्न के रूप में इस प्रकार कहते हैं कि —

" पिता की मृत्यु
विधवा जननियाँ
कौन है इनका निमित्त ? " [1]

1·2·1·3· पिता-पुत्र का सम्बन्ध :-

" संशय की एक रात " में राम युद्ध करने के विषय में जब सही निर्णय लेने में असमर्थ हो रहे हैं तब उनकी पितात्मा दशरथी छाया उनको कर्तव्य बोध करने के लिए अवतरित होती हैं । दशरथी छाया अपने पुत्र के संशय एवं पश्चात्ताप को दूर करना चाहती हैं । वे स्वयं अपने मोह को अपनी मृत्यु का कारण मानते हैं । उन्होंने कैकेयी को दो वचन देकर अपनी मृत्यु का स्वयं क्रय किया है । वह राम का राज्याभिषेक करना चाहते हैं । उनके अभीष्ट के विरुद्ध ही राम का वनवास हुआ है । इसलिए राम के परिताप और पश्चात्ताप को अनुचित मानते हैं । वह

1· संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ· 20·

अपनी स्थिति के लिए स्वयं को जिम्मेदार मानते हैं । वह राम से अपने संशय, परिताप और मोह को त्याग कर कर्तव्य निभाने के लिए प्रेरणा देते हैं ---

" राम !
मेरा मोह
मेरी मृत्यु थी ।
x x x
मैं ने वचन देकर मृत्यु क्रय की थी
इसलिए
तुम्हारा परिताप-पश्चात्ताप समुचित नहीं ।" 1

1.2.1.4. पति-पत्नी सम्बन्ध :-

साधारणतः पति-पत्नी को जीवन यात्रा का सहचर कहते हैं। इन दोनों के आपसी सम्बन्धों को महत्वपूर्ण माना जाता है । अपने जीवन में मिली निराशा के कारण पाण्डव द्रौपदी सहित " महाप्रस्थान " की यात्रा में निकलते हैं । यात्रा के समय द्रौपदी बार-बार हिम में गलने लगी है । वह अत्यन्त करुणा और दुःख भरे स्वर में अपने को इस हिम यातना से बचाने के लिए बार-बार अपने सभी पतियों को पुकारती है । लेकिन कोई भी उसकी रक्षा करने का प्रयत्न तक नहीं करता । द्रौपदी अतीत की स्मृतियों में डूबकर अपने दाम्पत्य जीवन की व्याख्या अर्जुन से इस तरह करने लगी है --

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 47.

"अपनी कृष्णा की किस परीक्षा ले रहे हो ?
पार्थ !
प्रत्येक ऐसी परीक्षा
पत्नी के प्रति अविश्वास ही है,
और ऐसी परीक्षा के बाद
नारी
पुरुष के लिए अप्राप्य हो जाती है । "[1]

इससे स्पष्ट होता है कि संशय बोध व्यक्ति के व्यक्तित्व को और उसके मानस को असन्तुलित बना देते हैं । दाम्पत्य जीवन में परस्पर विश्वास की अत्यन्त आवश्यकता होती है । विश्वास जब अविश्वास में बदल जाते हैं तो सन्देह की दृष्टि विकसित होती है । ऐसी स्थिति में व्यक्ति अथवा पति अपने संशय या अविश्वास का समाधान परीक्षा के द्वारा करता है, किन्तु अविश्वास के कारण उसे असफलता ही मिलती है । द्रौपदी यही स्पष्ट करना चाहती है कि प्रत्येक परीक्षा के बाद नारी पुरुष के लिए अप्राप्य हो जाती है । इसी स्थिति को वह उपर्युक्त उदाहरण में स्पष्ट करती हैं । द्रौपदी के द्वारा पति-पत्नी के सम्बन्धों पर की गयी यह टिप्पणी वर्तमान संदर्भ में अपनी अत्यन्त मूल्यवत्ता रखती है ।

साधारणत: राम और सीता को पति-पत्नी के अनुराग तथा उनके आपसी विश्वासों का प्रतीक मानते हैं । दोनों का जीवन प्रेम और कर्तव्य के लिए संघर्षरत रहा है । दोनों का जीवन प्रजा के लिए अर्पित रहा है । "प्रवादपर्व " में सीता का आदर्श पत्नी का रूप है । वह अपने पति के आदर्श एवं मूल्य संरक्षण की साधना में सहायक बनना

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 75.

चाहती है । वह अपनी स्वतंत्रता के लिए कभी नहीं मचलती है । वह न्याय और सत्य जैसे जीवनादर्शों की रक्षा करना चाहती है । वह न्याय की रक्षा के लिए राम को सहयोग देना चाहती है । वह अपनी ओर से आश्वस्त होकर हरेक काम करने के लिए राम को सलाह देती है । वह न्याय की रक्षा केलिए पुन: परीक्षा देने तक तैयार होती है --

" मेरी ओर से
आप को सर्वथा आश्वस्त होना चाहिए आर्यपुत्र ! कि
आसन्न मातृत्व के
इस संकट की स्थिति में भी
मैं आपकी राज्य-गरिमा
और अपनी चरित्र-मर्यादा केलिए
कोई सी भी परीक्षा दे सकती हूँ । " [1]

दाम्पत्य जीवन में पति-पत्नी के बीच अपनी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता होती है । लेकिन पत्नी के विचार को कोई महत्त्व न देकर ठुकरानेवाले पति भी होते हैं ---

" स्वयं मन्दोदरी ने
आग्रह किया
फेर दो सीता
अग्नि है
छूना मत इसे
पर
सम्राट केवल हँस दिये । " [2]

1· प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ· 81·

2· संशय की एकरात - नरेश मेहता - पृ· 74 - 75·

पति-पत्नी के सम्बन्धों में आपसी मन-मुटाव के कारण परिवार भी विच्छिन्न हो जाते हैं। शबरी के जीवन के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है।

1·2·1·5· स्त्री-पुरुष सम्बन्ध :-

प्राचीनकाल से लेकर आधुनिककाल तक समाज स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को एक ही रूप में स्वीकार करता आया है - वह है लैंगिक सम्बन्ध। जब भी नारी और पुरुष इस लिंगीय परिधि का अतिक्रमण करके व्यक्ति के रूप में एक दूसरे के सामीप्य के आकांक्षी हुए, चाहे वह सखा या मैत्री का सम्बन्ध हो या गुरु और शिष्य का सम्बन्ध। हरबार समाज ने उन्हें यौन सीमा में ही देखा और स्वीकार किया। मनुष्यता इस बिन्दु पर आकर बार-बार टकराती और विफल होती रही है। नरेश मेहता ने "शबरी" में भी इस सनातन प्रश्न को नयी अर्थवत्ता के रूप में उभरा है। शबरी शूद्रा है, अस्पृश्य है, परन्तु इन सब से कठिन प्रश्न यह है कि वह स्त्री है। मतंग एक महान ऋषि है। ज्ञान और साधना के अपूर्व संगम है, परन्तु ऋषि को यह छूट नहीं है कि वह एक शूद्रा की शिष्यता को स्वीकार करें। जब ऋषि इस सीमा का अतिक्रमण करते हैं और शबरी को अपने आश्रम में स्थान देते है तो यह काम आश्रम के अन्य सदस्यों के विरोध में होता है। जिस प्रकार ऋषि मतंग शबरी की तपश्चर्या से प्रभावित होकर उसे अधिक आत्मीयता, स्नेह और आशीषा देने लगे है उसी प्रकार आश्रमवासी उन दोनों के साहचर्य को संशय और संदेह के घेरे में देखते हैं। यहाँ तक कि आश्रम समाज स्वयं अपने गुरु को शबरी सहित आश्रम से निकाल देने का निर्णय लेता है —

" करना ही होगा वर्जित
दासी शबरी, जो शूद्रा
शिष्य का चरित्र यह कैसा !
क्या मिल सकती है शिक्षा ? " 1

1.2.1.6. भाई-भाई का सम्बन्ध :-

" संशय की एक रात " में राम अपने भाई लक्ष्मण को अपनी इन्द्रियाँ समझते हैं तथा लक्ष्मण से भी कहते हैं। युद्ध के बारे में अपनी संशय की अवस्था में सब कुछ निर्णय लेने का भार अपने भाई पर छोड़ देते हैं —

" लक्ष्मण !
जैसा उचित समझो
बात कर लो,
तुम्हीं मेरी इन्द्रियाँ हो। " 2

ऐसे संशयी राम को निस्संशय होकर युद्धोन्मुख बनाने में लक्ष्मण महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। छाया बनकर सदा उनके साथ रहने में ही उनकी भातृ भक्ति स्पष्ट होती है —

" अमृत पुत्र !
छाया सा
अनुज यह सदा पीछे लगा रहा
ताकि देख सकूँ उसको

---

1. शबरी - नरेश मेहता - पृ. 46.
2. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 8.

जिसको पाने को
आकुल हैं
बन्धु ! आप । "[1]

इसी समाज में रावण और विभीषण जैसा भाई भी है । विभीषण अपने परिवार और राज्य की सुरक्षा के लिए सीता को वापस भेजने केलिए रावण से विनती करते हैं । लेकिन रावण भाई की बातों को स्वीकारने केलिए तैयार नहीं है । वह इसे अपने प्रति भाई का विद्रोह समझते हैं । फलत: वह अपने राज्य के समस्त दिक्पालकों, देवताओं और शक्ति के सम्मुख विभीषण को अपमानित कर राज्य से बहिष्कृत करते हैं —

" अपने ही बन्धु के उठे हाथ को
x x x
अभिव्यक्ति हीन
भाषाहीन और
स्वत्वहीन बना देने वाले
अप्रतिम प्रतापी । "[2]

पाण्डवों का भातृ प्रेम अत्यन्त श्लाघनीय है । युधिष्ठिर के प्रति उनके अन्य भाई अत्यन्त निष्ठावान होकर उनका साथ देते रहते हैं । ऐसे ही महात्मा विदुर अपने भाई धृतराष्ट्र के स्वभाव से परिचित होते हुए भी उनके प्रति अत्यन्त श्रद्धा रखते थे । वह किसी भी स्थिति में राज्य एवं उनको छोड़कर जाने का प्रयत्न नहीं करते । वह आजीवन वचनबद्ध होकर अपने धर्म का पालन करते रहे हैं —

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 12.
2. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 48.

" विदुर
आग्रह की सीमा तक
धारे रहे स्वत्व में
आ जीवन संकल्प
धर्म का । "[1]

1·2·1·7· गुरु-शिष्य का सम्बन्ध :-

व्यक्ति में ज्ञान सम्पन्नता सिद्ध होने तथा उसमें पूर्णता प्राप्त होने के लिए किसी गुरु की आवश्यकता होती है । इसलिए मानव समाज में गुरु को इतना महत्व दिया गया है । उन्हें भगवान से भी ऊँचा माना गया है । नरेश मेहता ने अपने खण्डकाव्य " शबरी " में इस सम्बन्ध का बड़ा सटीक वर्णन किया है । शबरी अपने लक्ष्य सिद्धि केलिए मतंग को अपना गुरु मानकर उनकी कृपा प्राप्ति केलिए उनसे इसप्रकार प्रार्थना करती है --

" प्रभु के श्रीमुख से प्रवचन सुन
यह भवसागर तर जाऊँगी,
पापी हूँ, गुरु की कृपा हुई
तो हरि-गुण गा तर जाऊँगी । "[2]

ज्ञाननिधि मतंग भी समाज के बाह्य आचारों को प्रधानता देने के ढंग से अभी तक ऊपर नहीं उठे हैं । इसलिए वह शबरी को अपने यहाँ आश्रय देने केलिए तैयार नहीं होते हैं । लेकिन शबरी का श्रेष्ठ विचार उनके विवेक को जगाने में सहायक होते हैं । फलतः मतंग ऋषि आश्रमवासियों

1· महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ· 39·
2· शबरी - नरेश मेहता - पृ· 20·

के विरोध करने पर भी उसे अपनी शिष्या बना लेते हैं । गुरु की कृपा पाकर शबरी शिष्या से भक्त बनने लगी हैं । वह अपना सारा समय भगवान की आराधना उपासना में बिताने लगी है । उस भक्तिन का तेजोमय रूप दिन पर दिन बढ़ने लगा है । ऐसी शिष्या के गुरु होने के नाते मतंग स्वयं अपने आप को धन्य समझने लगे हैं —

" कैसे शिष्या से अब यह
थी भक्त बन रही प्रतिदिन,
कोई क्या गुरु हो सकता
इसका, जो प्रभु को अर्पण । " [1]

गुरु के दिखाए हुए मार्ग पर चलकर जब शिष्य सभी केलिए प्रशंसा पात्र बन जाता है तब गुरु अत्यन्त मानसिक आनंद का अनुभव करता है । शबरी भगवान राम की कृपा से पुण्य लोक की ओर प्रस्थान करती है । ऋषि मतंग अत्यंत संतुष्ट होते हैं —

" केवल मतंग थे अविचलित
संतोष बड़ा था मन में,
कृपा से शक्ति बनी वह
सम्भव सब कुछ जीवन में । " [2]

---

1. शबरी - नरेश मेहता - पृ. 48.
2. - वही - पृ. 80.

1·2·1·8· भक्त और भगवान का सम्बन्ध :-

भारतीय भक्ति के इतिहास में भक्त और भगवान के सम्बन्ध में इतना बताया गया है कि भक्त कभी भगवान के पास नहीं जाते, भगवान ही भक्त के पास आते हैं। ऐसे विश्वास का उदाहरण हमें " शबरी " खण्डकाव्य में मिलता है। शबरी को श्रेष्ठ भक्तिन समझकर राम उसके यहाँ स्वयं अपने भाई सहित चले जाते हैं। उन्हें देखकर शबरी अपने उद्धार केलिए आया हुआ भगवान समझती है। क्योंकि शबरी अनेक वर्षों से उन्हीं की प्रतीक्षा कर रही है। उसका विश्वास है कि एक न एक दिन भगवान राम उसका उद्धार करने के लिए स्वयं आएँगे। आज उन्हें देखकर सोचने लगी है —

" वह समझ गयी यह प्रभु है
आये कृतार्थ करने को
हैं यही राम-लक्ष्मण जो
आये दर्शन देने को। " [1]

भगवान की इस कृपा पर शबरी अपनी कृतज्ञता को इसप्रकार प्रकट करती है —

" यह कैसी महाकृपा थी
प्रभु अपने से थे आये
दुर्गम अरण्य-वन चलकर
क्षुद्रा शबरी-घर आये। " [2]

1· शबरी - नरेश मेहता - पृ· 84·
2· - वही - पृ· 73·

अब भक्तिन शबरी भगवान में विलीन होने केलिए अत्यन्त तत्पर होती है। अब वह भगवान से एक क्षण भी अलग होकर उनके वियोग को सहना नहीं चाहती है। वह राम से अपने उद्धार केलिए इस प्रकार निवेदन करती है —

" शबरी बोली तब प्रभु से
है मात्र निवेदन इतना
मैं सहन नहीं कर सकती
अब तो वियोग, क्षण जितना। " 1

अंत में भक्तिन शबरी भगवान का कृपा पात्र हो जाती है तथा मुक्ति को प्राप्त करती है। अतः भगवत् कृपा प्राप्त करना भक्ति की परा - काष्ठा का निदर्शन माना गया है।

1·2·1·9· व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध :-

व्यक्ति समाज का अभिन्न अंग है, सामाजिक अखण्डता का खण्ड है जो समाज को पूर्णता प्रदान करता है। व्यक्ति का समस्त कार्य - व्यापार समाज से प्रभावित होते हैं। समाज में रहकर ही व्यक्ति प्रगति प्राप्त कर सकता है। समाज से व्यक्ति को पृथक करके नहीं देखा जा सकता। मानव विकास के इतिहास में व्यक्ति और समाज का समान महत्व है। व्यक्ति केलिए समाज का होना एक अनिवार्य आवश्यकता है। समस्त प्राणी जगत में मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जिसके पास अपनी स्वतंत्र बुद्धि है। मनुष्य पशु-पक्षियों की तरह केवल जीने केलिए ही नहीं जीता,

---

1· शबरी - नरेश मेहता - पृ· 79·

बल्कि वह निरंतर विकास की ओर अग्रसर है । अपने इस विकासशील स्वभाव के कारण मनुष्य अपनी आदिम अवस्था से वर्तमान अवस्था तक पहुँचा है परन्तु विकास की यह प्रक्रिया अकेले व्यक्ति के द्वारा नहीं वरन् सामूहिक प्रयास के द्वारा ही सम्भव है । यदि व्यक्ति संघटित नहीं होते तो उनका विकास भी अवरुद्ध हो जाता है । यह संगठन और सहयोग समाज में ही सम्भव है । अतः व्यक्ति समाज पर पूर्णतः निर्भर है । इसलिए व्यक्ति और समाज के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध के बारे में " महाप्रस्थान " में युधिष्ठिर अपना मत इसप्रकार व्यक्त करते हैं ——

" समाज अमूर्त होता है
व्यक्ति नहीं,
और व्यक्ति के पुरुषत्व को कुचल दोगे
तो वन
गन्धमादन कैसे बन पायेगा पार्थ ?
फूल का एकाकीपन
अरण्य की सामूहिकता की शोभा है
विरोधी नहीं । "[1]

1·2·1·10· राजा और प्रजा का सम्बन्ध :-

राष्ट्र का उत्थान, देश की समृद्धि और उसका सर्वांगीण विकास राजा और प्रजा के सम्बन्धों पर निर्भर रहता है । राज्य परिवार का ही विकसित रूप है । जिस प्रकार परिवार की पूर्णता, पारिवारिक सहयोग, समर्पण, सेवा और सम्मति पर निर्भर है, उसी प्रकार राज्य का

1· महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ· 99 - 100·

चरम आदर्श राजा और प्रजा के निकटतम सम्बन्धों पर निर्भर होता है। आधुनिक राज्यों में प्राय: प्रजातन्त्र प्रणाली का ही प्रचलन है। अतएव हम राज्य और नागरिक के सम्बन्ध की चर्चा करते हैं। प्राचीन भारत में नृपतंत्र ही अधिक प्रचलित था अतएव राजा और प्रजा के विषय में विचार किया जाना आवश्यक प्रतीत होता है। प्राचीन साहित्य में अनेक सुखी एवं महत्वपूर्ण राज्यों का वर्णन भी मिलता है। ऐसे राज्यों की व्यवस्था और पद्धति का अध्ययन करने पर पता चलता है कि उनमें राजा और प्रजा अथवा शासक और शासित के बीच का सम्बन्ध अत्यन्त आत्मीयतापूर्ण और सौहार्द युक्त थे। राजा वस्तुत: प्रजा के निमित्त जीवन धारण करता था और प्रजा राजा केलिए सर्वस्व बलिदान कर देने को तत्पर रहती थी। राजा का सुख समस्त प्रजा का सुख था और प्रजा के उत्सव राजा के जीवनोत्सव थे। इसी प्रकार राजपरिवार का विषाद समस्त प्रजा केलिए दुस्संवाद बन जाता था और प्रजा की पीड़ा समस्त राज परिवार केलिए चिन्ता का विषय होती थी। राम के राज्य को इसका उदाहरण मान सकते हैं। यद्यपि बल या शक्ति के प्रयोग से लोक पर शासन किया जा सकता है लेकिन पाशविक बल से जनता के हृदय को जीत नहीं कर सकते। रावण का राज्य इसका एक प्रमाण है --

" कहाँ थी प्रजा ?

x x x

राजाज्ञाओं के विराट
भयातुर मौन में आबद्ध
एक
अकेला स्वर्ण सिंहासन
और उस पर

राज्यश्री के
एकमात्र स्वर्ण प्रतीक सा बैठा हुआ
शक्ति का महा उपासक
एक सम्राट । "[1]

हृदय-सम्राट अर्थात् लोकप्रिय शासक बनने केलिए आवश्यक है । राजा का जन-जन से सम्पर्क हो । वह प्रजा के दुःखों को अपना दुःख समझे और उसके निवारण हेतु उसमें अपूर्व बल एवं पराक्रम हो । जनप्रिय शासक केवल वही हो सकता है जिसने जनता-जनार्दन के निमित्त अपना जीवन समर्पित कर दिया है, जो त्याग एवं बलिदान की साकार प्रतिमा है, जिसका हृदय असीम प्रेम से आपूरित है । "प्रवादपर्व" में राम प्रजा के जीवन मूल्यों के रक्षार्थ अपने वैयक्तिक सुख का त्याग करते हैं । वह निस्वार्थ भाव से प्रजा की पीड़ा को दूर करने केलिए सभा में सीता केप्रति ऐसा निर्णय लेते हैं —

" कल सूर्योदय के साथ ही
सीता
वनवास केलिए प्रस्थान करेंगी । "[2]

ऐसे ही "संशय की एक रात" में राम युद्ध विरोधी होकर भी प्रजा के निर्णय के अनुसार युद्ध करने के लिए तैयार होते है —

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 46.
2. - वही - पृ. 103.

" अब मैं निर्णय हूँ
सबका
अपना नहीं । " [1]

" महाप्रस्थान " में युधिष्ठिर राजा और राज्य व्यवस्थाओं को प्रजा को खानेवाला भेड़िया मात्र समझते हैं । उनका विश्वास है कि वे कभी भी प्रजा के संरक्षक नहीं बन सकते । इसलिए युधिष्ठिर उस राजा और राज्य व्यवस्थावाली प्रणाली को समूल रूप से समाप्त होने की आकांक्षा व्यक्त करते हुए कहते हैं कि —

" संव्यसाची !
राज्य-व्यवस्था के माध्यम से
मनुष्य को
क्यों इन भेड़ियों का भोज्य
बना देना चाहते हो ?
इन साधारण जनों से
तुम्हारी क्या शत्रुता है पार्थ ? " [2]

अतः युधिष्ठिर राज्य की गरिमा को प्रजानिमित्त मानने के द्वारा राजा और प्रजा का सम्बन्ध दृढ होने की आकांक्षा व्यक्त करते हैं ।

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 86.
2. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 103.

1·2·2· नारी का आत्म संघर्ष :-

कवि श्री नरेश मेहता ने अपने काव्यों में नारी के आत्मसंघर्ष को अनुभूति की वैयक्तिकता में आत्मान्वेषण के साथ अभिव्यक्त किया है। कवि की काव्यानुभूति केवल आत्मान्वेषण तक ही सीमित नहीं है, उसमें आत्मसंघर्ष भी निहित है। उसका आत्मसंघर्ष अपनी चेतना के बाह्य जगत से है। " शबरी " काव्य में शबरी का आत्मसंघर्ष चेतना के निम्न - वर्गीय घेरे को तोड़ने का संघर्ष है। घर का वातावरण उसके विपरीत है, इसलिए वह गहरी बेचैनी में जी रही है। वह ऐसे परिवेश से मुक्त होकर आत्मोन्नति प्राप्त करना चाहती है लेकिन ऐसा न होने की स्थिति में द्वन्द्व का अनुभव करती है। शबरी का संघर्ष यहाँ अपने परिवेशगत अनुभव एवं अपने अभिमत के बीच के द्वन्द्व से उत्पन्न संघर्ष है --

" बीत जाएगा क्या यह
सारा जीवन इसी नरक में ? " ।

द्रौपदी भी आत्मावलोकन करते समय आत्मसंघर्ष का अनुभव करती है। विगत जीवन की सारी घटनाएँ चंचल चलचित्रों के समान एक-एक करके याद आते हुए उसे और अधिक सताने लगी है। वह अपने मन को ऐसी पूर्व - वासनाओं से मुक्त नहीं कर सकती है तथा पतियों की अनुगामी बनकर यात्रा भी नहीं कर सकती है। ऐसी द्वन्द्वात्मक स्थिति में वह अत्यन्त आत्मसंघर्ष का अनुभव करती है --

---

1· शबरी - नरेश मेहता - पृ· 8·

"मैं इस हतभाग्यता का क्या करूँ महराज !
देह से मैं तुम्हारे साथ चली आयी थी
परन्तु मन
उन्हीं हत्याओं, चीत्कारों, षड्यन्त्रों
और कूटनीतियों के बीच
वैभव की जूठन बीनने में लगा रहा । "[1]

राम इतिहास पुरुष है । उन्हें इतिहास पुरुष के रूप में राज्य, युद्ध, धर्म, प्रासाद का ही ध्यान रखना है न कि परिवार का । सीता राम के साथ ऐसी स्थिति का भी अनुभव किया है । इसलिए वह ऐसी पत्नी को तुच्छ मानती है जो इतिहास पुरुष के पार्श्व में एक प्रतिमा मात्र सी खड़ी रहे —

"मुझे तो
इतिहास – पुरुष के पार्श्व में
केवल एक प्रतिमा सा खड़ा होना था । "[2]

1·2·3· नारी विद्रोह भावना :-

विरोध या विद्रोह को किसी के प्रति अपनी असहमति को व्यक्त करने का माध्यम कह सकते हैं । मानव सभ्यता एवं संस्कृतियों के विकास केलिए प्रयत्न करनेवाले इस युग में भी स्त्रियों पर होनेवाले अत्याचारों का कोई अंत नहीं हैं । आज के समाज में भी धर्मराजों की कोई कमी

1· महाप्रस्थान – नरेश मेहता – पृ· 76·
2· प्रवादपर्व – नरेश मेहता – पृ· 79·

नही है । ऐसे ही कौरव समाज का अंत भी नहीं हुआ है । अपमानित द्रौपदियों की संख्या भी कम नही है । इन सारी स्थितियों के प्रति कवि ने अपना विद्रोह " महाप्रस्थान " में द्रौपदी के द्वारा अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है । धर्मराज कहलानेवाला युधिष्ठिर राज्य एवं भाइयों के साथ पत्नी को भी द्यूत क्रीड़ा में हार गए । पाँच पतियों में वस्तु के समान बाँट दी जानेवाली द्रौपदी के जीवन की विडम्बना की इति यहाँ पर भी पूरी नहीं हुई है । पति कहलानेवाले पुरुष के द्वारा क्रीत वस्तु के समान उसे जुँए के दाँव पर भी लगा दिया गया । दुर्योधन के आज्ञानुसार दु:शासन ने रजस्वला द्रौपदी को बलिपशु के समान घसीट लाया । उस भरी सभा में उसदिन कुल, कुटुम्ब तथा पाँच पतियों के सम्मुख उसे विवस्त्र करने को बाधित किया गया । पामर दु:शासन ने उसे दासी कहकर सम्बोधित किया । धृतराष्ट्र, भीष्म तथा द्रोण सबके सब देखते ही मौन रह गये । पाँच पतियों के प्रति पत्नीत्व के कठोर कर्तव्य का निर्वाह करनेवाली यह नारी उन क्लीव पतियों के समक्ष ही भरी सभा में वस्त्रहीन की जाने लगी । उसका वस्त्रापहरण पूरे मानवीय सभ्यता-संस्कृति एवं नारी गौरव हरण का प्रतीक बन गया है । पाँच-पाँच पति होते हुए भी जो नारी अरक्षिता एवं अनाथ के समान वस्त्रापहरण केलिए प्रस्तुत कर दी गयी है तो उसकी व्यथा का सहज ही अंदाज लगाया जा सकता है । द्रौपदी की व्यथा विद्रोह की पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है —

" नहीं —
नहीं, अब कौरववंश नहीं रह सकता ।
सम्भव होता —
तत्क्षण धरती को चीर

डुबा देती कौरव-पाण्डव की
कुल-कुटुम्बता । "[1]

नारी का आर्तनाद सुनकर दौड़कर आनेवाले श्रीकृष्ण के समान पुरुष भी होते हैं । श्रीकृष्ण ने वस्त्रदान कर के द्रौपदी के गौरव का रक्षा किया । इसलिए द्रौपदी कृष्ण के बिना आज अपने अस्तित्व तक नहीं सोच सकती । उन के प्रति अपनी कृतज्ञता यों प्रकट करती है —

" सुनकर आया अपनी कृष्णा की पुकार
सोच नहीं पाती
यदि कृष्ण न होते
तो इस कृष्णा का क्या होता ? "[2]

व्यक्ति स्वातंत्र्य की अपूर्व चेतना के इस युग में आज की नारी पुरुष से स्वतंत्र व्यक्तित्व और अस्तित्व के प्रति न्याय की माँग कर रही है । वह अपनी व्यक्ति इयत्ता की स्वतंत्र सम्मान जनक प्रतिष्ठा चाहती है । " शबरी " खण्डकाव्य में शबरी आधुनिक नारी के समान इसप्रकार सोचने लगती है कि इस घर की चार दीवारों के आगे मेरा अपना कोई अस्तित्व है व्यक्तित्व हैं । अपने धार्मिक स्वावलंबन की दिशा में पति तथा परिवार बाधक बनता है तो उसका स्वाभिमान विद्रोह करता है । अपने इस प्रखर स्वाभिमान एवं चैतन्य की रक्षा केलिए अपने भीतर बैठे हुए पत्नीत्व-मातृत्व के भावों की हत्या करने में वह नही संकोच करती है —

1· महाप्रस्थान – नरेश मेहता – पृ· 58·
2· – वही – पृ· 59·

" घोर वितृष्णा घिर आयी
श्रमणा शबरी के मन में,
त्यागो यह परिवार - मोह
यदि करना कुछ जीवन में । "[1]

सीता इतिहास पुरुष राम की पत्नी है । उनका अपना कोई व्यक्तित्व नहीं । इतिहास में ही उन्हें जीना है । इतिहास ही उन्हें बनाता बिगाड़ता है । ऐसे इतिहास के प्रति सीता का विद्रोह है । राज भवनों के प्रति विद्रोह है जहाँ निजता का कोई महत्व नहीं होता :—

" आज यह चिन्ता क्यों
आप में वह वैयक्तिकता थी आर्य पुत्र ?

x x x

इतिहास ने
यज्ञ-पुरुष को कब एकान्त दिया ?
राजभवनों में
व्यक्ति नहीं
इतिहास-पुरुष पला करता है आर्यपुत्र । "[2]

1·3· सांस्कृतिक समन्वय :-

नरेश मेहता ने अपने काव्यों में सांस्कृतिक समन्वय के अंतर्गत मानव जीवन के विभिन्न स्तरों पर आनेवाले अनेक प्रकार के मूल्यों का समन्वय किया है —

1· शबरी - नरेश मेहता - पृ· 21·
2· प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ· 78·

१·३·१· स्थूल एवं सूक्ष्म का समन्वय :-

जीवन केलिए स्थूल एवं सूक्ष्म तत्वों के समन्वय की अत्यन्त आवश्यकता होती है। क्यों कि एक का सम्बन्ध आकार से है तो दूसरे का अन्तर्जगत से। किसी भी एक को दूसरे से अलग कर देने से उसकी महत्ता प्राय: समाप्त हो जाती है। यदि स्थूल से सूक्ष्म को अलग कर दिया जाय तो स्थूल केवल भावहीन-संज्ञाहीन एवं निर्जीव शरीर के समान रह जायेगा और यदि स्थूल से सूक्ष्म को विरक्त कर दिया जाय तो वह एक सौंदर्यमयी रमणीमात्र रह जायेगी। जिस के पास भाव है पर अभिव्यक्ति के साधन के अभाव में वह व्यर्थ हैं। इसलिए मानव जीवन की सार्थकता इन दोनों के समन्वय में निहित मानी गयी है। वास्तव में स्थूल शब्द अत्यन्त व्यापक है और इसके अंतर्गत संसार की समस्त बाहय वस्तुओं को सरलता से सम्मिलित कर सकते हैं। वास्तविक संसार के घात-प्रतिघातों को सहते-सहते मानव जब थक जाता है तथा संघर्ष की भीषणता से उसका मन विचलित हो जाता है, तब उसे अपने सम्पूर्ण जीवन में निराशा एवं नीरसता ही दृष्टिगोचर होती है। उस क्षण वह जीवन से उदासीन होकर विश्व में एक विश्राम-स्थली की खोज में चला जाता है। "महाप्रस्थान" में पाण्डवों की स्थिति को इस केलिए एक उदाहरण के रूप में ले सकते हैं। "महाभारत" के भयानक युद्ध के बाद भी वे स्थूल एवं सूक्ष्म स्थितियों में समन्वय स्थापित नहीं कर सके। युद्ध के परिणामों ने उनकी वेदना को और भी बढ़ाया। फलत: वे ऐसी स्थितियों से त्रस्त होकर स्वर्ग की ओर प्रस्थान करते हैं —

> "किन्नर-गन्धर्वों और यक्ष-देव के सोपानों से ही
> जाना होता ऊर्ध्वलोक में।
> सौंप दिये रथ मैदानों को
> छोड़ दिये पथ वनानियों में,

अब केवल संकल्प छोड़ कर
पाण्डवदल के पास
नहीं कुछ अन्य सम्पदा
मृत्युलोक की । •[1]

लेकिन पाण्डवों के समान जो भी मानव किसी लक्ष्य प्राप्ति में इस स्थूल जगत को छोड़कर दूर चले जाते है तो वहाँ पहुँचने के बाद भी विश्व की कठोरता के कारण उन्हें सुख एवं शांति कहीं भी सुलभ नहीं होती है तो वह बाह्य विश्व का परित्याग कर धीरे-धीरे अन्तर्मुखी हो जाते है क्यों कि इसके अतिरिक्त उनके पास कोई सुगम मार्ग ही अवशेष नहीं रहता । इसलिए नरेश मेहता ऐसी स्थूल एवं सूक्ष्म स्थितियों का समन्वय सुख-दु:ख के समन्वय में निहित मानते हैं । जो पदार्थ भाव से ऊपर उठकर सुख-दु:ख की स्थितियों में समन्वय स्थापित कर सकें-उनके प्रति कवि अपनी श्रद्धा व्यक्त करता है । कवि सुख-दु:ख को आन्तरिकता से सम्बन्धित मानता है । वे दु:ख को प्रभु के समान विराट मानकर उसकी सर्वव्यापकता को स्वीकार करता है क्यों कि सुख की परिधि अत्यन्त सीमित होती है । वे मानव के स्थूल जगत-गत दु:खों के कारणों का भी उल्लेख करते हैं । जिनके व्यामोह में पड़कर व्यक्ति ऊपर उठने में असहाय हो रहा है । कवि के अनुसार देशकाल की समस्त प्रभुता, सम्पन्नता और सम्पदा को अपने अधीन चाहनेवाला मनुष्य दु:ख कातर हो रहा है । सुख के विस्तार की चाह ही असुरत्व है —

"सीता !
सम्भवत: दु:ख ही प्रभु है।
सुखी है वह निषाद
सुखी है वह शबरी

1• महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ• 33•

जो पदार्थ भाव से अमर हैं,
परन्तु हम तो
देश और काल की
समस्त प्रभुता
सम्पन्नता और सम्पदा
अपने अंग पर धारण करना चाहते हैं ।
हम का यह विस्तार
हम की यह प्रभुता ही
आसुरी भाव है
रावणत्व है । "[1]

कवि स्थूल जगत से मनुष्य को सूक्ष्म की ओर पलायन करने एवं फिर स्थूल से सूक्ष्म की ओर मुड़ने के कारणों को उल्लेख करते हैं । कवि मनुष्य के ऐसे पलायन केलिए उनके सुख-दु:खों को कारण मानता है । इसलिए वह मनुष्य को सुख-दु:ख के पदार्थ भाव से परे उठकर इन स्थूल एवं सूक्ष्म स्थितियों में समन्वय स्थापित करने के मार्ग को सुझाते हैं ।

1·3·2· धरती एवं स्वर्ग का समन्वय :-

ऋग्वेद में कहा गया है कि तपस्वी व्यक्ति स्वर्ग जाते है —

" तपसा ये अनाधृष्या स्तपसा ये स्वर्ययु:
तपो ये चक्रिरे महस्तांश्चिदेवापि गच्छतात् । "[2]

1· प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ· 69·
2· ऋग्वेद - 9/113/11·

अथर्ववेद के अनुसार ज्ञानी लोग दिव्य मार्ग से सीधे स्वर्ग जाते हैं और प्रकाशमय स्थान को प्राप्त करते हैं —

" प्रजानन्त: प्रति गृहणन्तु पूर्वे प्राणमंगेभ्य: पर्याचरन्तम् ।
दिवं गच्छ प्रति तिष्ठा शरीरै: स्वर्ग याहि पथिभि देव यानै:।। "[1]

तपस्विनी शबरी ज्ञान और तपस्या की अधिकारी है । वह जीवन में अपनी चेतना के द्वारा युग की समस्त जड़ता एवं मूढ़ता को तोड़ने में सफल हुई है । वह अपने पावन कर्मों के द्वारा राम कृपा पाकर धरती एवं स्वर्ग का समन्वय करते हुए स्वर्ग की ओर प्रस्थान करती है । उसको पाकर स्वर्ग भी कृतार्थ हो जाएगा —

" आकाश भागवत की वह
थी प्रथम श्लोक सी-शबरी
करने कृतार्थ जाती थी
अब स्वर्गलोक शबरी । "[2]

1·3·3· बहिरंतर का समन्वय :-

मानव जीवन में बाहरी यात्रा के साथ अन्तर्यात्रा भी चलती रहती है । जब व्यक्ति भीतर की यात्रा को पूरा करने में सफल होता है तब उन्हें बाहरी वर्चस्व केलिए दौड़ना भी व्यर्थ साबित होता है । युधिष्ठिर अन्त: बाह्य का समन्वय करते हुए उसके यथार्थ सत्य एवं स्वरूप के बारे में भीम से इस प्रकार कहते हैं —

1· अथर्ववेद - 2/3/4/5
2· शबरी - नरेश मेहता - पृ· 92·

" कितना निर्मम है
यह सत्य —
जब यात्रा
अपने ही भीतर समाप्त हो जाती है
तब वैसे ही
बाहरी वर्चस्व को पुकारना
कोई अर्थ नहीं रखता भीम ! " 1

बाहरी रूप से मन के युद्ध और आतंक शायद दिखाई न दें, पर आंतरिक अनुभव में मनुष्य अपने स्वत्व और छोटी-मोटी सत्ता की स्थापना में इस युद्ध और आतंक को ही सामाजिकता के पर्याय बनाये हुए है । मनुष्य का नाश आज सबसे बड़ा संकट है । मानवता का रथ जिस अन्धे मार्ग पर बढ़ रहा है वह भयावह है क्योंकि सारी सामाजिकता अपने-अपने स्वत्व केलिए जूझनेवाले व्यक्ति को एक दूसरे केलिए युद्ध और आतंक का पर्याय बनाये हुए है इस गहरे संकट से युधिष्ठिर जैसा प्रज्ञावान व्यक्ति अंदर से बहुत अधिक विचलित है —

" एक दिन
युद्ध और आतंक ही
सामाजिकता के पर्याय बन जायेंगे

x x x

मानवता का यह रथ
किस अंधे मार्ग पर बढ़ रहा है
तुम नहीं जानते पार्थ !
संकट वहीं अधिक गहरा है । " 2

1· महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ· 84·
2· - वही - पृ· 96·

आज के परिवेश में व्यक्ति अपनी अन्तः बाहय स्थितियों का समन्वय करने में असमर्थ हो रहा है । प्रयत्न करके भी परिस्थितियों को अनुकूल बनाने में असमर्थ हो रहा है । " प्रवादपर्व " में सीता ऐसे सृष्टि विधान को किसी घटना की भूमिका समझती है । कभी-कभी व्यक्ति को किसी घटना से टक्कर लेने के पहले उससे सम्बन्धित कुछ सूचनाएँ मिलती रहती है । ऐसी स्थिति में व्यक्ति अपने आन्तरिक संघर्ष को पूरा करके बाहरी स्थितियों से सामना करने केलिए तैयार होता है । जब व्यक्ति इन दोनों स्थितियों में समन्वय स्थापित करने में सफल होता है तब उन्हें कोई कठिनाई नहीं होती । यहाँ समन्वय के सन्दर्भ में सीता का कथन अत्यंत प्रासंगिक लगता है —

" लगता है
यह किसी घटना की भूमिका है
क्योंकि बाहर जाने के पूर्व
व्यक्ति
भीतर की यात्रा सम्पन्न करता है । " [1]

" प्रवादपर्व " में राम व्यक्ति स्वातंत्र्य की रक्षा के सन्दर्भ में मानसिक संघर्ष का अनुभव करते हैं । बाहरी संघर्षों को सदा केलिए समाप्त करने केलिए राम सीता का परित्याग करते हैं । राम सर्वज्ञ है । उन्हें मालूम है कि सीता के इस प्रवाद के द्वारा उसके वैयक्तिक स्वातंत्र्य को दबाया गया है । वह सीता तथा प्रजा के स्वातंत्र्य की रक्षा में समन्वय नहीं कर सके । फिर यही समस्या उनके आन्तरिक संघर्ष का कारण बन गयी है । इस प्रकार हम देखते है कि जहाँ अन्तः बाहय का समन्वय संभव नहीं होता वहाँ संघर्ष की स्थिति बनी रहती है —

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 64.

" आसन्न मातृत्व की दुर्वह स्थिति में
प्रिया को
किस प्राप्ति के लिए निर्वासित किया राम ? " 1

1·4· सांस्कृतिक आदर्श :-

प्राचीनकाल से लेकर आज तक विभिन्न जातियों के अंशदान को ग्रहण कर भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक धरोहर विविध आदर्शों में प्रतिफलित हुई है । वैदिक साहित्य से लेकर आज तक ये आदर्श राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं नैतिक रूपों में विकसित होते हुए धर्म, नारीगौरव, विश्वबंधुत्व, आध्यात्मिकता और समन्वयवादी प्रवृत्ति जैसे मानदण्ड प्रस्थापित करते हैं। इसका समन्वय परिचय उपर्युक्त सांस्कृतिक चेतना के अंतर्गत दिया गया है । इनमें सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह जैसे सांस्कृतिकतत्त्व भी नैतिक आदर्शों से मिलते जुलते है, अतः इन सांस्कृतिक आदर्शों पर भी विचार करना परम आवश्यक है ।

विभिन्न विद्वानों ने संस्कृति को विभिन्न अर्थों में देखा है । डा· हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार - " संस्कृति मनुष्य की विविध साधनों की सर्वोत्तम उपलब्धि है । " 2 डा· राधाकृष्णन ने संस्कृति को विस्तृत अर्थ में स्वीकृत किया है । उनके अनुसार - " संस्कृति ··· विवेक, बुद्धि और जीवन को भली प्रकार जानने का नाम है । " 3 इस प्रकार संस्कृति मानव के जीवन मूल्यों से [नैतिक] सम्बद्ध रहती है । परिस्थिति के

1· प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ· 109·
2· अशोक के फूल - हजारी प्रसाद द्विवेदी - पृ· 64·
3· स्वतंत्रता और संस्कृति - डा· राधाकृष्णन [अनुवादक - पी·त्रिपाठी] पृ· - 53·

अनुसार मानव-मूल्य थोड़े बदलते रहते हैं इसलिए संस्कृति का बाह्य रूप युग के साथ बदलता दिखाई देता है, परन्तु अपने कुछ शाश्वत तत्वों के कारण उसकी आत्मा नहीं बदलती । उदाहरणार्थ हमारी भाषा, साहित्य और अर्थ व्यवस्था आदि संस्कृति के बाह्य अंग बदल सकते हैं परन्तु, सत्य, अहिंसा, अस्तेय जैसे शाश्वत तत्व नहीं बदल सकते । संस्कृति मानव समाज को अंतिम आदर्श तक पहुँचनेवाली सीढ़ी है । वह मानव को विभाजित और संकुचित करनेवाली प्रवृत्तियों पर अंकुश रखने की प्रेरणा देकर उसे अधिकाधिक मानवीय बनाती है ।

व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक संस्कृति उसका कुछ विशिष्ट संस्कार करती रहती है, उसे अच्छी बातें सिखाती है, बुरी बातों का निरोधन करती है । समाज में कैसा वर्ताव करें, कैसे बोले, कैसे चले इन सब के आदर्श वह हमारे सम्मुख प्रस्तुत करती है । दूसरे शब्दों में वह व्यक्ति का समाजीकरण करने में तत्पर रहती है । मनुष्य स्वभावतया सुखवादी तथा स्वार्थ परायण होता है परन्तु संस्कृति उसको परहित-परायण और मानववादी बनाने का अद्भुत कार्य करती है । सहानुभूति, परोपकार, परधर्म, सहिष्णुता और विश्वव्यापी दृष्टिकोण का परितोष करने में संस्कृति प्रभावी मार्गदर्शिका बनती है ।

जिस संस्कृति में हमने जन्म लिया, जिसमें हमारा पालन पोषण हुआ, जिसमें हमें अपना शेष सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करना है, उस संस्कृति पर हमारी पूर्ण निष्ठा होती है, इसलिए उसको परिवर्तित करने अथवा उसको त्याग देने की बात का हम कड़ा विरोध करते हैं । उदाहरण के लिए संस्कृति ने परिवार के लिए जो आदर्श हमारे सामने रखा है उसमें भले ही हमने

थोड़े मामूली परिवर्तन किये हो - जैसे संयुक्त परिवार के बदले विभक्त परिवार - परन्तु परिवार-संस्था को अनावश्यक समझकर छोड़ देने के लिए हम तैयार नहीं हो सके ।

संस्कृति के मूल घटकों को कुछ हिस्सा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचने का कार्य हमारी शिक्षा पद्धति, धार्मिक संस्थाएँ राज्य घटना, समाचारपत्र, चित्रपट आदि के माध्यम से होता रहता है । वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण अब संस्कृति का संचारण बड़े जोर के साथ हो रहा है । मानव समाज पर एक तरह से संस्कृति का नियंत्रण रहता है । संस्कृति उस समाज की एक सीमा तक आचरण के आदर्श, ध्येय, लक्ष्य या मान दण्ड निश्चित करती है । समाज के हर व्यक्ति को उन मानदण्डों के अनुसार चलना पड़ता है - यह उसका नैतिक कर्तव्य बन जाता है ।

१·४·१· सांस्कृतिक आदर्श का युगीन परिवेश :-

नरेश मेहता प्राचीन सांस्कृतिक आदर्शों के साथ युगीन मानसिकता के अनुरूप संस्कृति के कुछ नये आयाम उद्घाटित करते हुए दिखाई पड़ते हैं । अन्तराष्ट्रीयता आज हमारे जीवन का अनिवार्य धर्म बन गयी है । इसलिए इन आयामों को और भी महत्त्वपूर्ण स्थान मिलने लगा है । मार्क्सवाद, समाजवाद, विकासवाद और मनोविज्ञान जैसी विचारधाराएँ विश्वजनीन प्रभाव को स्थापित कर चुकी है । देश, समाज और जाति ने वैयक्तिक स्तर पर मूल्य विघटन की स्थिति का अनुभव किया है । प्राचीन एवं नवीन संस्कृतियों के द्वन्द्व से सारा युग विश्व चेतना, संत्रस्त, संशय ग्रस्त, कुण्ठित एवं विद्रूप मानसिकता में जी रहा है । ऐसे युगीन परिवेश में कवि नवीन सांस्कृतिक आदर्शों की प्रस्थापना करते हुए अपने दायित्व को

निभाने का प्रयत्न करता है। उनके काव्यों में सांस्कृतिक आदर्शों का प्रतिफलन विभिन्न रूपों में हुआ है। जैसे — 1. राजनीतिक आदर्श 2. सामाजिक आदर्श 3. मूल्यगत आदर्श 4. नैतिक आदर्श –

1.4.1.1. राजनीतिक आदर्श :-

नरेश मेहता की दृष्टि राजनीति में निरंकुशता के स्थान पर लोक कल्याण भावना की प्रतिष्ठा का समर्थन करती है। वे अन्याय और अत्याचार के विरूद्ध लोक शक्ति के जागरण में विश्वास करते हैं। देश की रक्षा के लिए शासक और प्रजा के सहयोग को आवश्यक मानते हैं। उनकी राष्ट्रीयता विश्वमंगलकारी मानवतावाद में बाधक नहीं साधक बनती है।

मानव समाज ने अपनी सुरक्षा व समृद्धि के लिए जिस राज्य संस्था को जन्म दिया, वही राज्य संस्था यदि सत्ता दृप्त होकर व्यक्ति के शोषण, अत्याचार व अन्याय में प्रवृत्त हो जाती है तो समाज के रहने के लिए वह अभिशाप बन जाती है। इसलिए कवि राजनीतिक निरंकुशता को मानवीय दृष्टि से नियंत्रित करना चाहते हैं। वे राज्य को नियंत्रित करने के लिए धर्म और विचारों को स्वतंत्र रखना चाहते हैं। उनकी दृष्टि में राजनीति को स्वार्थी व सत्तालोलुप व्यक्तियों का व्यवसाय बन जाने की अनुमति देना उचित नहीं है। कवि युधिष्ठिर और अर्जुन के संवाद के माध्यम से एक राजनीतिक आदर्श की स्थापना करना चाहता है। वह राज्य की शक्तिमत्ता एवं उसकी मर्यादा को व्यक्ति कल्याण के लिए निमित्त होने की आकांक्षा करता है —

" राज्य की गरिमा को

व्यक्ति की गरिमा का पर्याय होने दो

किसी भी व्यवस्था का

व्यक्ति से बड़े हो जाने का अर्थ होगा

अमानवीय तन्त्र !! "[1]

इसलिए व्यक्ति चाहे अधिपति या राजा बन सकता हैं परन्तु राष्ट्र कभी नहीं। अगर कोई ऐसा राष्ट्र बनकर प्रजा को पीड़ित करने का प्रयत्न करें तो उनका पतन अनिवार्य हो जाता है --

" रावण

राष्ट्र का प्रतीक बन चुका था

इसलिए लोगों के वर्चस्व ने

राष्ट्रीय मुक्ति केलिए युद्ध किया। "[2]

कर्तव्य च्युत होकर अधिकारमद में डूबे हुए राज्य और राजा को कर्तव्योन्मुख बनाना प्रजा का दायित्व माना गया है।[3] इस प्रकार कवि राजा और प्रजा के आपसी कर्तव्यों के द्वारा उनके सम्बन्धों के माध्यम से एक निष्कंटक राजनीतिक फिर नवीन आचरणीय आदर्श की स्थापना होने की आकांक्षा व्यक्त करते हैं।

---

1. महाप्रस्थान - नरेशमेहता - पृ. 99.
2. प्रवादपर्व - नरेशमेहता - पृ. 98.
3. - वही - पृ. 42.

1·4·1·2· सामाजिक आदर्श :-

सामंती समाज व्यवस्था में उच्छृंखल पुरुष की महत्वाकांक्षाओं का नग्न नृत्य दुर्बल वर्ग को पाशविक अत्याचार का ग्रास बनता है । पुरुष की दर्पान्धता प्रकृति की सुकुमार सृष्टि नारी जाति के प्रदर्शन एवं अपमान में भी लज्जा का अनुभव नहीं करती । इस सामंती प्रवृत्ति के कुसंस्कार आज भी हमारे समाज को खोखला कर रहे हैं । कवि ने अपने काव्यों में केवल नारी की बगौरव गरिमा को प्रतिष्ठित करना ही नहीं उसके माध्यम से सामाजिक आदर्शों की स्थापना भी की हैं । उन्होंने युगीन मानसिकता के अनुरूप नारी व्यक्तित्व का विश्लेषण भी प्रस्तुत किया है । अतीत के कथा पटल पर " महा प्रस्थान " में द्रौपदी समाज में व्याप्त विषमताओं के मध्य जीनेवाली नारी जीवन की करुणा का प्रतीक बनकर उभरी है जो अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व की सार्थकता खोजती हुई दिखाई पड़ती हैं —

" मैं इस दुर्भाग्यता का क्या करूँ महाराज !
देह से मैं तुम्हारे साथ चली आयी थी
परन्तु मन
उन्हीं हत्याओं, चीत्कारों, षड्यन्त्रों
और कूटनीतियों के बीच
वैभव की जूठन बीनने में लगा रहा । " ¹

" प्रवादपर्व " में सीता के माध्यम से नारी के परम्परागत आदर्शों से जुड़े विराट चिन्तन को व्यक्त किया गया है । नारी को पुरुष के साधना मार्ग में सहायक माना गया है । सीता सामाजिक न्याय की रक्षा के लिए व्यक्तिगत रागात्मकता

1· महा प्रस्थान - नरेश मेहता - पृ· 76

को त्यागने तक तैयार होती है । वह राज्य, न्याय और राष्ट्र को व्यक्तियों तथा सम्बन्धों से बढ़कर सर्वोच्च स्थान देती है । [1]

सामंती व्यवस्था में नारी को जड़ सम्पत्ति की तरह अपहरण करना सामान्य बात होती थी । "संशय की एकरात" में सीता का अपहरण समाज में पाशविक वृत्तियों के तांडवनृत्य को प्रदर्शित करता है । इस घृणित-प्रवृत्ति के कुसंस्कार कुछ अंशों में आज भी भारतीय समाज में दिखाई देते हैं — जो राम के परिताप के माध्यम से व्यक्त हुए है —

"परिताप
पश्चाताप —
ओ आँखों की झाँइवालों
जानकी !
जानते भी क्यों गये हम
स्वर्णमृग हित ?
क्यों गये पथ भूल ??
उस वंचक के पदों में
सर्प बन सौमित्र – रेखा
क्यों नहीं लिपटी ?" [2]

सारे विधिविधान एवं मर्यादाएँ केवल नारी के लिए ही है । "प्रवा - दपर्व" में सीता का चरित्र निष्ठुर परित्यक्ता की परिताप कथा का प्रतीक हैं । इस काव्य में मिथकीय घटना को आधुनिक युगीन परित्यक्ता नारी

---

1. **प्रवादपर्व** – नरेश मेहता – पृ. 80.
2. संशय की एकरात – नरेश मेहता – पृ. 6.

जीवन की विडम्बना के अंतर्गत प्रस्तुत किया गया है । सीता के प्रस्थान के माध्यम से पुरुष की निर्दयता के साथ नारी की असहायता व्यक्त होती है ।[1]

समाज के दर्पान्ध पौरुष का उद्दाम विलास एक ओर नारी का गणिका, परिचारिका, नर्तकी तथा देवदासी जैसे विभिन्न रूपों में शोषण करता है तथा वही दूसरी ओर समाज में मानव के बीच जाति भेद या वर्गभेद की दीवारें खड़ा करके दुर्बल वर्ग का शोषण भी करता है । मध्य युगीन संस्कारों के कारण आज भी हमारे समाज में ऊँच-नीच के भेद भाव की समस्या कम नहीं हुई है । नरेश मेहता ने शबरी चरित्र के माध्यम से शूद्रा की शिव शक्ति स्वरूप में परिणत करते हुए वर्ग भेद को कर्म विधान के द्वारा सुलझाने का मार्ग दिखाया है ।[2]

" शबरी " काव्य प्रगति शील आदर्शों से सम्बन्धित है । काव्य में शबरी पौराणिक नारी होते हुए भी आधुनिक चेतना से सम्पृक्त है । उसके परम्परागत एवं प्रगतिशील स्वरूप की प्रशंसा प्रसंग इस प्रकार करते हैं —

" जब तक शबरी शूद्रा थी
थी तब तक वह प्राकृतजन,
अब वह नर से भी ऊपर
है शक्ति, देवि, नारायण " [3]

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ० 103
2. शबरी - " - पृ० 10
3. - वही - पृ० 53

1·4·1·3· मूल्यगत आदर्श :-

जब व्यक्ति विशेष के समक्ष यह प्रश्न उभर कर आता है कि जीवन मूल्यों का आधार क्या हो ? जीवन को कैसे यापन करें या कैसे जियें ? यह धारणा ही संस्कृति एवं जीवन मूल्यों को समानांतर स्थिति पर ला खड़ा करती हैं। अर्थात् जब यह समस्या उठती है, जीवन कैसा होता है ? उसका जीवन कैसा होना चाहिए तथा वस्तु स्थिति कैसी हो, उसके रूप का वैसा ही दर्शन करना यथार्थ का बोध होता है, मूल्य-प्रक्रिया कार्य करने की पद्धति " तथ्य " से सम्बन्धित होती है, जबकि जीवन कैसा होना चाहिए में आदर्श होता है। आज के मूल्य वांछित, शुभ और उचित होना चाहिए आदि के अर्थ से सम्बन्धित होता हैं। मूलतः यहाँ तथ्य तथा " मूल्य " की दो प्रमुख धारणाएँ बन सकती हैं — [illegible] — तथ्य का सम्बन्ध यथार्थ से और " आदर्श " का सम्बन्ध " मूल्य " से हो सकता है। आज आदर्श से जुड़ा रहने के कारण जीवन मूल्यों के महत्त्व को स्वीकार करता है। यह मानव जीवन के मान दण्ड और दृष्टिकोण हैं और हम जीवन मूल्यों को जीवन धर्म या जीवनादर्श का पर्याय कह सकते हैं। इस प्रकार मूल्य मानवीय मानसिक धारणा है जो धर्म, श्रेयस, श्रेष्ठ, सौंदर्य व कल्याण तथा विकास से सम्बन्धित रहते हैं।

" मूल्य " व समाज के आदर्श से सम्पृक्त होने के कारण ये मानव जीवन के मान दण्ड है, जो हमारे अनुभवों, विचारों तथा चिन्तन को संयमित करते हैं। " मूल्य एक जीवन जीने का दृष्टिकोण है, तरीका है। "[1] आज मूल्यों को विविध रूपों से स्वीकार किये जाने के कारण इसकी परिभाषा अत्यन्त व्यापक और जटिल हो गयी है। आज के परिवेश में इसका प्रयोग दर्शन शास्त्र, समाज -

---

1· साठोत्तर हिन्दी कहानी : मूल्यों की तलाश - डा·वासुदेव शर्मा - पृ· 12

शास्त्र, नीति शास्त्र, विज्ञान शास्त्र, अर्थ शास्त्र, मनो विज्ञान शास्त्र तथा आध्यात्मिक आदि में होने के कारण बहुमुखी हो गयी है । इसे किसी एक बिन्दु तक केन्द्रित नहीं किया जा सकता है । इस प्रकार मूल्य चिन्तन में उपयोगिता और आन्तरिक मूल्यानुभूति है, जो व्यक्ति विशेष की आकांक्षाओं, आवश्यकताओं, अभिलाषाओं, संवेदनाओं, महत्वाकांक्षाओं आदि की पूर्ति का लक्ष्य है । यही कारण है कि मूल्य व्यक्ति के अभावों, अभिलाषाओं, मनो - वृत्तियों एवं तज्जनित तनावों से उत्पन्न उद्देश्यों की पूर्ति करता है । ये वैचारिक इकाइयां है जो हमारे शुभ-अशुभ कार्यों की पहचान में सहायक है । मूल्य व्यक्ति को नियंत्रित ही नहीं करते है अपितु उसके व्यक्तित्व की संरचना भी करते हैं ।

जीवन मूल्य हमारे जीवन का आन्तरिक धर्म है और ऐसा विचारक पक्ष है, सिद्धान्त है, दृष्टिकोण है तथा धारणा है, जिसकी उपलब्धि हेतु हम जीवन की सर्व श्रेष्ठ वस्तु का त्याग करते है अथवा हम जीवन का कोई ऐसा महत्वपूर्ण अंश मत के रूप में अदा करते है जिसका हमारे जीवन में महत्व होता है । इस प्रकार यह कहा जा सकता है - यदि कोई व्यक्ति " सत्य " के लिए घर का त्याग करता है या देश प्रेम के लिए प्राण त्यागता है तो उस के लिए " सत्य " तथा " देश प्रेम " मूल्यवान मूल्य होंगे । यह हमेशा सत्य, शुभ या कल्याण के लिए प्रयोग होते हैं । जो उच्च श्रेष्ठ शुभादि के अंतर्गत समाहित होते हैं । निरन्तर मूल्य साधनात्मक मूल्यों के अन्तर्गत आ जाते है जो साध्य के निर्माण एवं विकास में सहायक होते है । अतः ईमानदारी, सत्य, करुणा, प्रेम, दया, अहिंसा, त्याग, परोपकार, आदर, वात्सल्यता, ममता, सेवाभाव, मानवता, नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों की प्राप्ति के लिए कोई व्यक्ति जोखिम उठता है तो वह " मूल्य " उस के लिए परम मूल्य होंगे । मूल्य मानव जीवन को स्थायी नहीं बनाता है बल्कि उसे अनेक महत्वपूर्ण उपादानों से

उत्कृष्ट भी करता है । जिसके बलपर सामाजिक व्यवस्था संचालित होती है । उसकी संस्कृति स्थिर होती है । मूल्य अच्छाई, भलाई, सच्चाई तथा जनसेवा के लिए ही होते हैं । ऐसे मूल्य सामाजिक मूल्यों के अन्तर्गत समाविष्ट होते हैं ।

स्वतंत्रता, समानता एवं विश्वबंधुत्व जैसे मूल्यों को भी सांस्कृतिक आदर्श के अंतर्गत लिया गया है — इनको मानवीय सम्बन्धों की उदात्त भूमि को निर्मित करने में सहायक होनेवाले तत्व माना गया है ।

" संशय की एक रात " में स्वतंत्रता के मूल्य को सीता के चरित्र के माध्यम से व्यक्त किया गया है । इसलिए हनुमान अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए युद्ध को अनिवार्य मानते हैं । वह सीता को अपनी अपहृत स्वतंत्रता का प्रतीक मानकर उसकी रक्षा की आवश्यकता को इस प्रकार स्पष्ट करते हैं —

" रावण अशोक वन की सीता
हम साधारण जन की अपहृत स्वतंत्रता । " [1]

" प्रवादपर्व " में एक ओर युगीन निरंकुशतावादी मूल्यों पर प्रहार करते हुए दूसरी ओर स्वतंत्रता एवं समानता जैसे आदर्शों का समर्थन किया गया है । मनुष्य की अभिव्यक्ति को स्वतंत्रता के मूल्य में ही राज्य की भलाई निहित माना गया है । इसलिए राम अभिव्यक्ति की रक्षा की आवश्यकता को स्पष्ट करते हुए लक्ष्मण से इस प्रकार कहते हैं कि --

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 64.

"गूँगेपन से कहीं श्रेयस है
वाचालता ।
जिस दिन
मनुष्य अभिव्यक्ति हीन हो जाएगा
वह सबसे अधिक
दुर्भाग्य पूर्ण दिन होगा । "[1]

अतः राम मानवीय स्वतंत्रता, मानवीय भाषा और उनकी अभिव्यक्तिगत गरिमा को समान आदर देना चाहते हैं । इसी प्रकार "प्रार्थनापुरुष" में गाँधी जी भी विश्व को एक परिवार बने रहने की आकांक्षा व्यक्त करते हैं ।

1·4·1·4· नैतिक आदर्श :-

नरेश मेहता ने न्याय और सत्य जैसे चिरंतन मूल्यों को नैतिक आदर्शों के अन्तर्गत वर्णित किया है । कवि ने युगीन समस्याओं के सन्दर्भ में सत्य और न्याय की महत्ता को पुनः प्रतिष्ठित किया है । "प्रवादपर्व" में भरत और राम के संवाद के माध्यम से उनके राजनीतिक परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में न्याय की महत्ता को इस प्रकार प्रतिष्ठित करते हैं —

भरत : न्याय समदर्शी होता है प्रभु !

राम : केवल समदर्शी ही नहीं
उसे तत्वदर्शी भी होने दो ।
राज भवनों और राजपुरुषों से ऊपर
राज्य और न्याय को
प्रतिष्ठापित होने दो भरत ! "[2]

1· प्रवाद पर्व —— नरेश मेहता - पृ· 43·

2· प्रवाद पर्व - नरेश मेहता - पृ· 41 - 42·

कवि न्याय की महत्व को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि न्याय यथार्थ सत्य को स्वीकार करता है न कि व्यक्तियों तथा सम्बन्धों को । कवि इतिहास को इसका साक्षी मानते हैं —

" न्याय
व्यक्तियों को नहीं,
सम्बन्धों को नहीं, बल्कि
उत्पन्न स्थितियों को देखता है, और
हमें तथा
इतिहास की इसी की प्रतीक्षा है । "[1]

महाप्रस्थान में कवि सत्य के महत्व की रक्षा की आवश्यकता को स्पष्ट करते हैं । युद्ध के संदर्भ में युधिष्ठिर का असत्य भाषण सत्य की प्रतिष्ठा के निमित्त माना गया है —

" असत्य का आश्रय लेना पड़ा
युद्ध में —
" आहत अश्वत्थामा ... नर या कुंजर "[2]

1·4·2· यांत्रिक सभ्यता का विरोध :-

यांत्रिक सभ्यता के कारण संस्कृति के लिए भी गम्भीर खतरा पैदा हो गया है । हमारी संस्कृति जर्जर एवं रुग्ण हो गयी है । शिक्षा का प्रचार तथा राजनीतिक और सामाजिक स्वाधीनता के कारण सांस्कृतिक संकट कम नहीं

1· प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ· 94·
2· महाप्रस्थान- नरेश मेहता - पृ· 39·

हो पाया है । सामाजिक संगठन की यांत्रिकता, जटिलता, पेचीदगी तथा विस्तार के कारण मानों मानव समाज ने अपनी बुद्धि, स्मृति और नैतिक उद्देश्य खो दिया है । अज्ञेय ने इस समस्या का बड़ा सही विश्लेषण प्रस्तुत किया है । आज का युग मशीनी युग है । मशीनी युग की उपलब्धि है — " मास प्रोडक्शन । " . . . उस के लिए विज्ञापनबाजी आवश्यक है विज्ञापन बाजी स्वयं मशीनयुग की विशेषताओं को उग्रतर बनाती है, और साहित्य को सस्ता, घटिया और एकरस बनाने का कारण बनती है । "[1] वस्तुत: आधुनिक सभ्यता विज्ञान की नोंकपर खड़ी है । पत्र-पत्रिकाओं का स्तर गिरता जा रहा है ।

जीवन की यांत्रिकता, जीवन गति की क्षिप्रता आदमी की मशीन पर निर्भरता, आदमी और मशीन की सम्पृक्ता के कारण व्यक्ति स्वातंत्र्य के लिए भी संकट की स्थिति उपस्थित हो गया है । सभी क्षेत्रों में केवल सतही सम्बन्धों का विकास दिखाई देता है । मानव जाति की जीवन धारा भीड़ में व्यक्ति मानों अपने ही लिए अजनबी हो गया है । सांसारिक सुविधाओं का जो मोहजाल पूरी मानवता को प्रारम्भ से ही घेरे हुए है और आज अधिक शक्ति-शाली हो चुका है । आज वस्तुएँ मनुष्य की सारी मूल्य दृष्टि के केन्द्र में आती चली जा रही है । विज्ञान ने अपने अन्वेषण की दिशा इन्हीं सुविधाओं को अर्जित करने की मानवीय क्षमता की ओर मोड़ दिया है । परिणाम स्वरूप पूरे विश्व में एक दौड़ चल पड़ी है । मनुष्य की इन्द्रियाँ धीरे-धीरे अकर्मण्य होती जा रही है । उसकी त्वचा ऊष्मा और शीत के थपेड़ों को झेल नहीं सकती, उसके हाथ कठोर और थकानेवाले कार्यों का सम्पादन नहीं कर सकते । वह चारों ओर से एक विशेष आच्छादन में ढका जा रहा है । जीवन और प्रकृति से उसका साक्षात्कार न्यूनतम होता जा रहा है । इन्हीं वस्तुओं के अर्जन में

---

1. त्रिशंकु - अज्ञेय - पृ. 23.

मनुष्य का सबकुछ दाँव पर लगता जा रहा है । प्रश्न है व्यक्ति स्वातंत्र्य की दिशा क्या हो, उसका आधार क्या हो ? यही वह समस्या है जो आधुनिक बोध के केन्द्र में है । यही प्रश्न आधुनिकताबोध को अधिक तीव्र और धारधार बनाता है । नरेश मेहता भी मानव संस्कृति एवं सभ्यता का हरण करनेवाली ऐसी यांत्रिक सभ्यता का विरोध करते हैं जो व्यक्ति के जीवन में बाधक बनानेवाली है । "महाप्रस्थान" में युधिष्ठिर ने इस यांत्रिक सभ्यता का स्वरूप प्रस्तुत किया है जो आधुनिक मनुष्य के आत्म हनन का कारण बन गया है —

"वस्तुओं से हीन होते जाने का
अर्थ है
व्यक्तित्व से सम्पन्न होते जाना ।
युद्ध, राज्य, साम्राज्य, सम्पदा, सम्बन्ध
इन सबकी सीमाएँ हैं पार्थ ।
ये ही
वे कुचक्र हैं
जिन्हें व्यक्ति
अपने चारों ओर बुन लेता है
और फिर कभी
इस सफलता को सुगन्ध के परिवृत्त से
बाहर आना नहीं चाहता । ।"[1]

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 93.

कवि भौतिक सभ्यता का आघन्त विरोध करते हैं । उनके अनुसार ये दुर्ग, प्रासाद, स्मृतिभवन, चारण- प्रशस्तियाँ, टूटे शिला लेख आदि जड़ता के प्रतीक हैं । ये व्यक्ति को अमरता प्रदान करने वाले नहीं है । क्यों कि ये जड़ का ही प्रतिनिधित्व करते हैं चेतनता का नहीं --

" ये दुर्ग, प्रासाद, स्मृति-भवन
चारण - प्रशस्तियाँ
ये टूटे इतिहास वाले शिला लेख
व्यक्ति को अमरता देंगे ?
पार्थ !
जड़, जड़ का ही प्रतिनिधित्व कर सकता है । "[1]

आज का मानव यांत्रिक सभ्यता का दास होकर केवल युद्ध को ही अपने लक्ष्य सिद्धि का साधन मान रहे हैं । वह स्वयं अपने तथा संसार के विनाश का कारण बन रहा है । इस संदर्भ में राम द्वारा मनुष्य की पात्रता पर विचार किया गया है --

" जब कि हम
सन्धियों से
युद्ध से
नियति पाना चाहते हैं ।
इस वैराट्य के सन्दर्भ में
आयोजन में
लक्ष्मण ।

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 94.

पथ पुभे बाण के टूटे फलक से
अधिक अपनी पात्रता
क्या है ? " 1

1·4·3· बुद्धिवाद का विरोध :-

जीवन और जगत को समझने में तथा उनकी व्याख्या करने में मनुष्य की बुद्धि को सर्वाधिक महत्व देनेवाले दृष्टि को साधारणतः बुद्धिवाद कहा जाता है। डा· वासुदेव शर्मा इसी बुद्धितत्व को बौद्धिक चेतना का आधार मानते हैं। 2 डा· गोपालदत्त सारस्वत के अनुसार तर्क, वाद, शंका, प्रश्न-विचार, सिद्धान्त प्रमाण विवेचन आदि बौद्धिकता के लक्षण है। 3 विज्ञान की सफलता दिन-पर-दिन बुद्धिवादी दृष्टिकोण को व्यापक और लोकप्रिय बनाती जा रही है। आज के वैज्ञानिक युग में समस्त भौतिक-अभौतिक वस्तुओं का वैज्ञानिक दृष्टि से परीक्षण किया जा रहा है। शिक्षा एवं विज्ञान के विकास ने व्यक्ति मन को प्रभावित किया और व्यक्ति मन में बौद्धिक विकास हुआ। वह ज्यों-ज्यों शिक्षित होता गया त्यों-त्यों बौद्धिक होता गया। उनके विचार, चिन्तन तथा दृष्टिकोण बदलते गए। फलस्वरूप नये दृष्टिकोण बनाते गए। इसका प्रभाव जीवन मूल्यों पर पड़ा क्यों कि नए चिन्तन से नई धाराएँ बनी और नए मूल्यों की रचना हुई।

बुद्धितत्व बौद्धिक चेतना को जागृत करती रही है। जब हम बुद्धि तक ही सीमाओं में रहकर चैतन्य रहते हैं, तब बौद्धिक चेतना इसका पथ प्रदर्शन करती है और बौद्धिक चेतना सामाजिक अंध विश्वासों के प्रति विद्रोह करती है

1· संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ· 10·
2· साठोत्तर हिन्दी कहानी मूल्यों का तलाश - डा· वासुदेव शर्मा - पृ· 78·
3· आधुनिक हिन्दी काव्यों में परम्परा तथा प्रयोग - डा·गोपाल दत्त सारस्वत - पृ· 350·

क्यों कि वह किसी बात को बिना तर्क के ग्रहण नहीं करती है निरंतर आलोचना ही उसकी माँग है । यही कारण है कि बुद्धि जीवी व्यक्ति अपने विश्वासों, मान्यताओं, क्रियाकलापों आदि के विषय में जिज्ञासु रहता है वह किसी तत्व का बिना ठोस आधार के स्वीकार नही करता है । वह परम्परागत मान्यताओं, आदर्शों, प्रतिमानों तथा महापुरुषों के विचारों एवं आचारों का भी तर्क संगत आधार पर अनुसंधान करना चाहता है । बौद्धिक व्यक्ति प्रत्येक तथ्य का अनुसंधान किये बिना चैन से नही बैठ सकता । जिस प्रकार विज्ञान अस्पष्ट विचारों एवं अनिश्चित मान्यताओं से संतुष्ट नहीं रहता है उसी प्रकार बुद्धि अंधविश्वासों, आडम्बरों तथा अन्य सामाजिक धारणाओं को परीक्षण के बिना ग्रहण नहीं करती है । जब बुद्धितत्व को अत्यधिक महत्व दिया जाता है या उसे साध्य मान लिया जाता है तब उसमें मिथ्यातत्व आ जाता है । बुद्धिवादी हृदय हीन हो जाता है । दम्भी हो जाता है । उसके लिए बुद्धि ही परम लक्ष्य होती है । ऐसी स्थिति आस्था को तो जन्म देती ही है साथ ही उसके जीवन को सहृदयता और भावना से विमुख भी करता है । यही कारण है कि बौद्धिक प्रवृत्ति ने हमारे जीवन मूल्यों को ही नहीं तोड़ा अपितु हमारे भावात्मक सम्बन्ध भी हिला दिए । परिणामत: आज के परिवेश में आदर्श, धारणा, मान्यता और परम्परा आदि परिवार के मधुर सम्बन्ध रूखे होते जा रहे हैं।

" महाप्रस्थान " में द्रौपदी के द्वारा पति-पत्नी के अजनबीपन तथा अकेलेपन व टूटते व्यक्ति मन का चित्रण किया गया है । हिम में गलनेवाली द्रौपदी अपनी रक्षा के लिए बार-बार पतियों को पुकारती है । लेकिन उनमें से कोई भी उसकी रक्षा करने का प्रयत्न नहीं करते हैं । सभी उसके पुकार को सुनकर भी अनसुना कर देते हैं । बौद्धिकता की अधिकता ने उन्हें अपनी पत्नी तक सोचने के लिए बाध्य नही किया । इस लिए वह मातृत्व के साथ आज अपनी नारीत्व को भी व्यर्थ समझती है । इसके साथ हिम का अभेद्य ठण्डापन सहयात्रा

के सूत्र को काटने लगा है इसलिए वह अजनबी पन एवं अकेलापन का अनुभव करती है ---

" मेरा नारीत्व
मेरा मातृत्व
सब व्यर्थ गया युधिष्ठिर !
भीम ! अर्जुन !
माद्रीपुत्रों ! सब व्यर्थ गया ।
अब मेरे और तुम्हारे बीच
हिम का यह अभेद्य
धारदार ठण्डापन
सहयात्रा के सूत्र काट रहा है । "[1]

मानव जीवन में नहीं चाहने पर भी कुछ घटनाएँ अनायास ही आती रहती हैं । " प्रवादपर्व " में राम को अपनी पत्नी से अलग होकर अकेलेपन का अनुभव करने का दुःख अत्यन्त सताता है —

" सीता !
तुम्हें नहीं लगता कि
हमारे वाद्य में
केवल
एक ही राग आज तक बजता रहा है --
विषाद का ?

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 78.

तुम्हें प्रत्येक बार
चाहे वह विवाह हो
या युद्ध
पाने की चेष्टा में
खोता ही गया हूँ प्रिये ! "[1]

बौद्धिक चेतना के कारण ही नारी का सशक्त अहं तथा व्यक्तित्व उभरकर सामने आया है । इसी बौद्धिक चेतना के कारण शबरी रूढ़िवादी जीवनमूल्यों तथा आदर्शों के प्रति आस्था के भाव को व्यक्त करती है । वह अपने अस्तित्व या चैतन्य की खोज में पति-पत्नी के सम्बन्धों को तोड़ने के लिए संकोच नहीं करती है । वह कर्तव्य पूर्ति में पारिवारिक सम्बन्धों को केवल बन्धन मात्र समझती है । वह सभी लौकिक बन्धनों से परे भगवान के बन्धन को श्रेष्ठ समझती है —

" सब बन्धन से वहीं श्रेष्ठ है
उस प्रभु का ही बन्धन
कुल-कुटुम्ब की चिन्ता से
अच्छा है प्रभु - आराधन । "[2]

उपर्युक्त कथनों में व्यक्ति के अकेलेपन या अलगावपन के अनुभव के साथ पारिवारिक सम्बन्धों के विघटन का संकेत भी मिलता है । यहाँ युधिष्ठिर भी अपने पारिवारिक सम्बन्धों के विघटन होने का अनुभव करते हैं —

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 65.
2. शबरी - नरेश मेहता - पृ. 20.

" पंचतत्व की भाँति
यह पाण्डवता
अब अन्तिम रूप से
विघटित होने को है भीम ! " [1]

" संशय की एक रात " में राम अपनी बौद्धिक चेतना के अनुसार युद्ध के बारे में हरेक प्रकार के तर्क प्रस्तुत करते हैं । उनका तर्क विचारणीय है लेकिन वह परिस्थितियों के अनुकूल नहीं है । यह जानते हुए भी राम अपने संशय से ऊपर नहीं उठ सके । हनुमान राम के बुद्धिवाद का विरोध करते हुए उनसे इस प्रकार कहते हैं --

" हमारे कारण ही
अनागत युद्धों की नींव पड़े
पर
इस डर से
क्या हम न्याय और अधिकार छोड़ दें ! " [2]

लक्ष्मण भी राम के बुद्धिवाद के विरोध में इसी प्रकार के विचार प्रस्तुत करते हैं ---

" प्रभु ! क्षमा करें मेरे इस भावका
क्या इस प्रश्न के
हम ही अन्तिम निर्णायक हैं ?
क्या हम ही अन्तिम मानवता हैं ? [3]

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 114.
2. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 69.
3. " वही - पृ. 67.

हर विषय को तर्क की कसौटी पर कसकर स्वीकार करनेवाले की प्रशंसा युधिष्ठिर द्वारा की गयी है । वह इसे विवेकवान का लक्षण मानते हैं। क्यों कि यही तर्क मनुष्य को पूर्ण व्यक्तित्व सम्पन्न करने में या अपने को बिगाड़ने में सहायक होता है । इसलिए वह तर्क की सही दिशा का ही समर्थन करते हैं —

" विवेक का तर्क ही यह है पार्थ !
या तो वह तुम्हें स्वर्ण कर देगा
या क्षार । "[1]

1.4.4. ह्रासोन्मुख आदर्शों के विनाश की आकांक्षा एवं उत्कर्षोन्मुख आदर्शों की स्थापना :-

पुराने विश्वासों, धारणाओं के विरोध में नूतन मान्यताओं का जन्म एक अनिवार्यता है । विशेषत: स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात देश की युवा पीढ़ी भी परम्परागत मान्यताओं और रूढ़ आदर्शों के प्रति विद्रोही बनी है । वह परम्परागत मान्यताओं का बन्धन स्वीकार करना नहीं चाहती । वैज्ञानिक उपलब्धियों अथवा आधुनिक जगत से प्रत्यक्ष सम्बन्ध जुड़ जाने के कारण देश की युवा पीढ़ी भी पश्चिमी दर्शन, संस्कृति तथा रहन-सहन को स्वीकार करने लगी है । इसलिए क्रमश: हमारा वर्तमान परम्परित समाज-व्यवस्था से अलग होता हुआ नूतन सभ्यता में प्रवेश कर रही है । फलत: जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण उभरा रहा है । इस नये चिन्तन के माध्यम से हमारे परम्परागत जीवन मूल्यों में बदलाव आ रहा है । आज की यह युवा पीढ़ी सजग अस्तित्व बोध के कारण परम्परागत आदर्शों के सम्मुख प्रश्नचिह्न लगा रही है । इस नयी

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 105.

दृष्टि के सन्दर्भ में शीघ्र ही स्वतंत्र भारत में जीवनगत आस्था के दो पक्ष या रूप दिखाई देने लगे है, प्रथमत: पुराने आदर्शों मूल्यों और रूढ़ियों के साथ पूरी सच्चाई के साथ जुड़े रहना और दूसरा रूप सभ्यता के नये उपकरणों को स्वीकार कर समस्त प्राचीन रूढ़ियों और अंधविश्वासों को तिलांजलि देकर नये जीवन को अपनाने की आकांक्षा । यही कारण है कि परम्परिक सम्वेदना आधुनिक सम्वेदना में व्यापक टकराहट की स्थिति उपस्थित हो गयी हैं । आधुनिक सम्वेदना का पलड़ा भारी हो रहा है और पारम्परिक जीवन मूल्यों-वाली सम्वेदना दबती चली जा रही है ।

आज हम वैज्ञानिक दृष्टिकोण की कसौटी पर हरवस्तु और हरचिन्तन का परीक्षण करने लगे हैं । पारम्परिक आदर्शों के प्रति अनन्य श्रद्धा समाप्त हो रही हैं । वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाते ही संवेदनशील मन जीवन के प्रत्येक पक्ष को एवं परम्परागत मान्यताओं का भी बुद्धि की आँख से परखने का आदी हो गया है । नये सामाजिक सन्दर्भों में हम आज परम्परागत आदर्शों एवं जीवन मूल्यों को असारता महसूस करने लगे हैं । आधुनिक जीवन के सन्दर्भ में नैतिकता बेमानी लगने लगी है क्यों कि तथाकथित नैतिकता की आड़ में कितने ही महान व्यक्तियों ने अपने स्वार्थ को पूरा किया था । आज इस झूठी नैतिकता का आश्रय दुराग्रह सा लग रहा है । परम्परित रूढ़ नैतिकता का पिछड़े सामाजिक मूल्यों का नवीन मूल्यों पर जबरदस्ती आरोपण समझा जाने लगा है । परम्परा के भावनिक आदर्श अब बेकार लगने लगे हैं । इसके विपरीत पारम्परिक आदर्श अव्यवहारिक भीरूता एवं कायरता के पर्याय तक बन चुके हैं । आधुनिक संदर्भ में पुरानी मान्यताओं को विकृतियों का दूसरा रूप माना गया है । विज्ञान और नवीन शास्त्रों की कसौटी पर परम्परागत सत्य, असत्य में बदलता जा रहा हैं । युगीन मानसिकता के अनुरूप नरेश मेहता अपने काव्यों में ऐसे ह्रासोन्मुख

परम्परागत आदर्शों के चित्रण के साथ उसके विरोध में उत्कर्षोन्मुख नवीन विचार-धारा का भी चित्रण प्रस्तुत करते हैं —

"संशय की एक रात " में लक्ष्मण, हनुमान, जाम्बवन्त, विभीषण, दशरथ एवं जटायु की छायाओं द्वारा युद्ध का समर्थन किया गया है । विभीषण हर युग में युद्ध को ही अन्तिम सत्य और दर्शन मानते हैं । उसके आगे वह शेष सभी को शोभा एवं वंचना मात्र मानते हैं । [1] लेकिन राम युद्ध को अन्तिम सत्य मानने के लिए तैयार नहीं है । वह परम्परावादी ह्रासोन्मुख विचार धारा का विरोध करते हुए मानव जाति के लिए उत्कर्षोन्मुख आदर्शों की स्थापना करने की दिशा में अपने पितात्मा से इस प्रकार कहते हैं —

" ये सब स्वीकारोक्तियाँ हैं
सत्य नहीं ।
इनकी वास्तविकता को
कभी चुनौती ही नहीं गया ।
इन अंधे विश्वासों को
किसी संशय ने निगला ही नहीं ।

किसी वर्चस्वी तर्क ने
इनके सत्य को
प्रश्न कर
बौना किया ही नहीं । " [1]

1• संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ• 49•

ऐसे ही युधिष्ठिर राज्य और राजाओं को युद्ध का निमित्त मानते हैं। वह उन दोनों के स्थान पर मानवीय क्षमा और प्रजा का समर्थन करते हैं। वह व्यक्तियों के बीच में राज्य को ही सूत्र माननेवाले विचार को सबसे बड़ा छल मानते हैं। वह समाज में ह्रासोन्मुख आदर्शों के बदले उत्कर्षोन्मुख आदर्शों की स्थापना करना चाहते हैं। लेकिन परम्परावादी कभी भी एकाएक नयी विचार - धारा से सहमत होने के लिए तैयार नहीं होते हैं। अर्जुन भी इसी वर्ग के है —

> "यदि राज्य न होगा
> तो समाज का क्या होगा ?"[1]

युधिष्ठिर अर्जुन के द्वारा सूचित आदर्श को समाज के लिए विनाशकारी मानते हैं। वह ऐसे आदर्श को आज के समाज में सदा के लिए स्थापित रहने का समर्थन नहीं करते हैं। वह समाज की सुरक्षा के लिए राज्य को अनिवार्य नहीं मानते हैं। वह समाज को धर्म के नियमों पर चलने का समर्थन करते हैं। राज्य की उच्छृंखलता को रोकने के लिए धर्म और मानवीय विचारों को स्वतंत्र रखना चाहते हैं। नहीं तो उनकी दृष्टि में यह समाज मानव के लिए रहने योग्य नहीं रह जायेगा। वह अत्यन्त व्यक्तिवादी है। व्यक्ति स्वातंत्र्य को सुरक्षित रखना चाहते हैं। वह समाज में सभी को समान अधिकार देने की आकांक्षा व्यक्त करते हैं। वह समाज में किसी एक व्यक्ति को विशेषाधिकार नहीं देना चाहते हैं। क्यों कि व्यक्ति का वह विशेषाधिकार उसे सभी से दूर ले जाती है —

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 97.

" राज्य के नहीं
धर्म के नियमों पर समाज आधारित है ।

x x x

किसी भी व्यक्ति को
इतना प्रतिष्ठापित मत करो कि
पीछे सब के लिए
वह अलंघ्य विन्ध्याचल हो जाए । " 1

परंपरावादी सदा अपनी परंपरा को सुरक्षित रखना चाहता है । वे दूसरों की बातों में आकर कभी भी अपनी परंपरा को तोड़ना या भंग करना नहीं चाहते हैं । अर्जुन पुनः राजा के सम्बन्ध में अपना विचार व्यक्त करते हैं --

" धर्म का प्रतिपादक
राजा ही तो होगा । " 2

व्यक्ति की चेतना को जगाकर उनको उत्कर्षोन्मुख आदर्शों की स्थापना की दिशा दिखानेवाले युधिष्ठिर के विचार अत्यंत श्लाघ्यनीय हैं । जैसे - वह अर्जुन के विचार के खण्डन में अपना अभिमत यों व्यक्त करते हैं --

" यह सबसे खतरनाक दर्शन है पार्थ !
क्रूरताओं और षड्यन्त्रों का प्रतीक
राजा और राज्य
मानवीय उदात्तताओं और करुणा के प्रतीक
धर्म के प्रतिपालक नहीं हो सकते । " 3

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 97.
2. - वही - पृ - 97
3. - वही - पृ - 97

गाँधीजी भी व्यक्ति चेतना पर अखण्ड विश्वास रखते हैं। इसलिए वह सदियों से गुलामी की नींद में सोई हुई भारतीयों को जगाकर उसके द्वारा स्वतंत्रता प्राप्त करना चाहते हैं। इसलिए वह स्वयं भारत बनकर पूरे देश में विचरण करने के लिए तैयार होते हैं —

" जगेगा देश, जगाने पर
मैं भूमि-पुत्र बन विचरूँगा,
उत्तर-दक्षिण-पूरब-पश्चिम
मैं भारत ही बन जाऊँगा। "1

आज विश्व भर में व्यक्ति स्वातंत्र्य की रक्षा का समर्थन किया जा रहा है। चाहे वह राजतंत्र हो या प्रजातंत्र प्रजा के निर्णय को रौंदनेवाले आदर्श का विनाश होने की आकांक्षा व्यक्त की गयी है। मानवीय इतिहास में कोई भी राज्य आज तक मानवीय स्वातंत्र्य को छीनकर ज्यादा दिन टिका नहीं रहा। प्रजा को भाषाहीन, अभिव्यक्तिहीन और स्वत्वहीन बनानेवालों के विचारों को राज्य या समाज के लिए ह्रासोन्मुख आदर्श माना गया है। इसके उदाहरण के रूप में रावण को लिया गया है। इसलिए राम द्वारा ऐसे राजा एवं राज्य का अंत होने की कामना की गई है। राज्य और व्यक्ति के विकास में सहायक होनेवाले उत्कर्षोन्मुख आदर्श की स्थापना करते हुए राम लक्ष्मण से इस प्रकार कहते हैं —

" मानवीय स्वातन्त्र्य
मानवीय भाषा और
मानवीय अभिव्यक्ति के
प्रति इतिहास का सामना

---

1. प्रार्थना पुरुष - नरेश मेहता - पृ. 32.

वैसे ही
मानवीय प्रतिगरिमा के साथ
करना होगा लक्ष्मण !
प्रतिइतिहास को इतिहास से नहीं
विनय से स्वीकारना होगा । "[1]

प्राचीन भारत सामंती युग के अन्य देशों की तरह ही धर्म परायण देश था । तब समाज में सारे कार्य धर्म-सम्मत हुआ करते थे । समाज का एक वर्ग अपने समूह के निर्णय को ही समाज के लिए सर्वोपरि सिद्ध करना चाहता था । अपनी परंपरावादी विचारधारा के समर्थन में सामाजिकता से बढ़कर धर्म को महत्त्व देना नहीं देना चाहते हैं । वे यज्ञ-याग और पूजन आदि को शूद्रों का काम नहीं मानते हैं ।[2] वैज्ञानिक प्रगति ने मनुष्य के इस संकुचित दृष्टि को पीछे धकेल दिया है । वर्ण व्यवस्था एवं जाति व्यवस्था के प्रति विद्रोह प्रकट किया गया है । जीवन और दर्शन सम्बन्धी दार्शनिक मान्यताएँ आज अव्यावहारिक मानी जाने लगी है । जन्म-मृत्यु के रहस्य वैज्ञानिक प्रयोगशाला में उद्घाटित हो रहे हैं । अत: आज का व्यक्ति पूर्ववर्ती धार्मिक चिन्तन के प्रति आस्थावान नहीं रहा है क्यों कि वैज्ञानिक उपलब्धियों के निष्कर्षों पर परीक्षण के उपरांत इस प्रकार के विश्वासों को अन्ध विश्वास माना गया है --

" क्या आत्मा की उन्नति केवल
है उच्च वर्ग तक ही सीमित ?
प्रभु तो हैं सबके पिता, भला
उनका आराधना क्यों सीमित ? "[3]

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 50.
2. शबरी - नरेश मेहता - पृ. 43.
3. - वही - पृ. 31.

<u>निष्कर्ष :-</u>

नरेश मेहता के काव्य में वर्णित सांस्कृतिक चेतना के सम्यक मूल्यांकन के पश्चात हम निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि उन्होंने अपने आख्यानक काव्यों में धर्म, आध्यात्मिकता एवं विश्वबंधुत्व भावना जैसे मूल्यों के सहारे देश की जाति, संस्कृति एवं सभ्यता की अस्मिता के प्रश्न पर विचार किया है। उसके क्षीण होने के कारणों को जानने के प्रयत्न के द्वारा भारतीयों में सांस्कृतिक चेतना को जगाने की दिशा में अपना विशिष्ट योगदान दिया है। भारतीय संस्कृति में आचार - विचारों के अंतर्गत आनेवाले विभिन्न प्रकार के मानवीय संबंधों एवं उनसे जुड़े संघर्ष, समन्वय एवं विद्रोह की स्थितियों को विभिन्न रूपों में स्पष्ट किया गया है। विभिन्न सिद्धांतों के घेरे में रहकर जब सारा देश, समाज और जाति वैयक्तिक स्तर पर मूल्य विघटन की स्थिति का अनुभव करने लगे हैं तब नरेश मेहता ने युगीन परिवेश के अनुकूल प्राचीन सांस्कृतिक आदर्शों के साथ संस्कृति के कुछ नये आयाम उद्घाटित कर पाये हैं। यांत्रिक सभ्यता एवं अतिशय बौद्धिकता का विरोध किया गया है। संस्कृति एवं समाज को केन्द्र में रखकर ह्रासोन्मुख आदर्शों के विनाश की आकांक्षा एवं उत्कर्षोन्मुख आदर्शों की स्थापना का समर्थन किया गया है। इस तरह सांस्कृतिक चेतना के निरूपक ये सभी तत्व कवि की सृजनात्मक सामर्थ्य का परिचायक बन गये हैं।

चतुर्थ अध्याय

नरेश मेहता का काव्य : वैचारिक पृष्ठभूमि

चतुर्थ अध्याय

नरेश मेहता का काव्य : वैचारिक पृष्ठभूमि

नरेश मेहता का चिंतन 1932 से लेकर अब तक प्रवाहमान रहा है। इस काल के अन्तराल में साहित्यिक धरातल पर अनेक विचार उभरे और मिट गए। नरेश मेहता इन सभी विचारों से अवगत रहे किन्तु किसी वाद के कटघरे में बंधकर अपने को सीमित नहीं किया। उन्हें जिसे अच्छा लगा उसे चुना और जो त्याज्य लगा उस तरफ देखा भी नहीं। अतः उनके विचारों के प्रवाह में आधुनिकता बोध से लेकर प्रगतिशीलता, अस्तित्ववाद, कालबोध आदि सभी दृष्टियों का आभास मुखरित हुआ है। इस अध्याय में आलोच्य कृतियों के सन्दर्भ में नरेश मेहता की क्रमबद्ध वैचारिक श्रृंखला पर दृष्टिपात डालना उचित होगा —

1. आधुनिकता बोध :-

आधुनिकता का अर्थ है – स्वचेतना, अर्थात् अपने वातावरण और परिवेश के परिप्रेक्ष्य में अपने आप को देखना। स्वचेतना का बोध और सम्पर्क वर्तमान का कार्य है। आधुनिक व्यक्ति वर्तमान की चिन्तना (बोध) के माध्यम से भविष्य को देखता है और स्थापित करता है। "आधुनिकता" आधुनिक की भाववाचक संज्ञा है। आधुनिकता से अभिप्राय है – अपने चारों ओर के संश्लिष्ट (समन्वित) आधुनिक जीवन को नये ज्ञान विज्ञान के आलोक में देखना। आधु-निकता की परिभाषा देते हुए डा॰ रामेश्वर लाल खण्डेलवाल ने कहा है कि – "आधुनिकता जीवन और जगत को कालबिन्दु से देखने-समझने की एक भिन्न – स्थिति या दृष्टि-भंगिमा है, जो मुख्यतः हमारे बौद्धिक धरातल से सम्बन्धित

रहकर हमारे जीवन मूल्यों का निर्धारण व जीवन प्रणाली का नियमन तथा मूल्यांकन करती है । "[1] आधुनिक भावबोध के विकास में वैज्ञानिक चिन्तन एवं प्रगति तथा यथार्थवादी दृष्टिकोण का विशिष्ट योगदान है । श्री अमृतराय ने मन के संस्कारों को प्रमुखता देते हुए कहा है - " मन की वह प्रवृत्ति जो मध्ययुगीन रूढ़ियों और अन्ध विश्वासों से नाता तोड़कर आधुनिक ज्ञान के आलोक में, तर्क और विवेचन की कसौटी पर जीवन के हर व्यापार को परखती है और स्वयं अपने विवेक से किसी निष्कर्ष पर पहुँचती है । "[2] आधुनिकता अपने परिवर्तित रूप में समसामयिकता के नाम से प्रसिद्ध है । इस दृष्टि से आधुनिकता का अर्थ है वर्तमान युगबोध । इस रूप में वह अपनी दृष्टि वर्तमान पर केन्द्रित रखती है तथा मुक्त जीवन एवं भावुक यथार्थ बोध ही इसका प्रमुख लक्ष्य है । अत: आधुनिकता मनुष्य को वर्तमान संदर्भ में अपने आप को संस्कार करने के लिए आवश्यक भविष्योन्मुखी दृष्टि प्रदान करती है ।

नरेश मेहता के काव्यों में आधुनिकता बोध के विभिन्न आयामों को स्पष्ट अभिव्यक्ति मिलती है । कवि के सृजनात्मकबोध ने सार्वभौम मानवीय दृष्टि को आत्मसात किया है, फलत: उनकी रचना की परिधि और अंदाज स्वाभाविक रूप से आधुनिकता बोध से सम्पन्न हो गया है । कवि आधुनिकता बोध के विस्तार के मूल में वैज्ञानिक दृष्टिकोण की प्राथमिकता और प्राबल्य को स्वीकार करते हैं । यह वैज्ञानिकतावादी दृष्टिकोण निष्ठुर होकर सत्य को खोजने की व्याकुलता और इस खोज के क्रम में श्रद्धा-विश्वास, परंपरा और धर्म किसी भी बाधा को सहने के लिए तैयार नहीं है । वैज्ञानिक दृष्टि क्यों कि

1• संभावना - अंक - 2 - सं• रामेश्वरलाल खण्डेलवाल - पृ• 88•

2• सहचिंतन - अमृतराय - पृ• 31•

तर्क की कसौटियों पर विषय को कसकर स्वीकार करती है इस कारण से उक्त अमूर्त आध्यात्मिक मूल्यों को वह सहज ही अस्वीकार कर देती है । " संशय की एक रात " में वैज्ञानिकता जनित आधुनिकता की अभिव्यक्ति मिलती है । काव्य में राम आस्था-अनास्था, विश्वास - अविश्वास, भ्रम एवं संशय ग्रस्त आधुनिक प्रजा के प्रतीक हैं । आज का मनुष्य इसी आधुनिकता से पीड़ित है । उनकी वैज्ञानिकता ने उन्हें किसी विषय के प्रति स्थिर विश्वास प्रदान नहीं किया है । हर विषय के प्रति तर्क वितर्क करना उनका स्वभाव हो गया है । अनिर्णय एवं दोहरे मानदण्डों का जीवन उनकी नियति है । राम आधुनिक मानव की भाँति इस प्रकार कहने लगते हैं कि —

" दो सत्य
दो संकल्प
दो - दो आस्थाएँ —
व्यक्ति में ही
अप्रमाणिक व्यक्ति पैदा हो रहा है । "[1]

" महाप्रस्थान " में द्रौपदी आधुनिकता की प्रतीक है । वह अपने व्यक्तित्व का विश्लेषण युधिष्ठिर के समक्ष में अत्यंत ईमानदारी से करती है —

" मैं इस हत भाग्यता का क्या करूँ महाराज !
देह से मैं तुम्हारे साथ चली आयी थी
परन्तु मन
उन्हीं हत्याओं, चीत्कारों, षड्यन्त्रों

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 23.

और कूटनीतियों के बीच
वैभव को कुल्न बीनने में लगा रहा । "[1]

महाप्रस्थान की यात्रा में निकली द्रौपदी को "स्वाहापर्व" में अश्वत्थामा की आत्मा से मुलाकात होती है । वह एक तरह से आधुनिक मानव की ही प्रेतात्मा है जो अमरता का अभिशाप वहन करती प्रतीत होती है, क्यों कि आसक्त एकाकीपन ही शाप है । द्रौपदी स्वयं अपने को और अश्वत्थामा दोनों को ही चाहे वे कैसे ही धार दार रहे हों, पर अब संदर्भ-च्युत स्वीकार करती है —

" आसक्त एकाकीपन ही
शाप है अश्वत्थामा !
चाहो तो इसे
लौट भी वह सकते हो !

× × ×

सन्दर्भ से कट जाने के बाद
कैसा ही मेधावी
घास की अनाम पत्ती की भाँति
कैसा निरीह हो जाता है
अश्वत्थामा ! "[2]

सचमुच मानवीय अनुभव का युद्धोत्तर आधुनिक-संदर्भ कट चुका है । अस्तित्व वाद सारी मेधा के बावजूद निरीहता में परिणत हो चुका है, भले ही मनुष्य

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 76.
2. - वही - पृ. 79.

" वैभव को लूटने खोनने " में लगा हो । अश्वत्थामा की पैशाचिकता भी अब यातना से ऊब रही है । वह जीवन की स्निग्धता की याचना करता है, पैशाचिक नंगेपन से मुक्त होने की कामना करता है --

" मुझे वस्त्र और तैल चाहिए
द्रौपदी ! तुम्हारी
या किसी की यातना नहीं ।। "[1]

कवि इस वैज्ञानिकतावादी दृष्टि को आधुनिक मानव के आत्महनन का कारण मानते हैं —

" वस्तुओं और सफलताओं के माध्यम से
अमरता प्राप्त करने को ही तो
तुम पुरुषार्थ और संकल्प कहते हो ? "[2]

कवि आधुनिकता को गुणात्मक धारणा मानता है तथा समस्त समसामयिक विचारणा एवं अभिव्यक्ति को आधुनिकता के रूप में स्वीकार करता है । उन्होंने दार्शनिकों और इतिहासकारों के आधुनिकता सम्बन्धी दृष्टिकोण को स्वीकार किया है । कवि की यह विचारधारा हरिवंशराय " बच्चन " की विचारधारा से मिलती है । हरिवंश राय " बच्चन " दार्शनिकों और इतिहासकारों के आधुनिकता सम्बन्धी दृष्टिकोण को इस प्रकार स्पष्ट करते हैं - " दार्शनिकों की दृष्टि में यह व्यापक अर्थों में समय की सतत्ता की

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 81.
2. - वही - पृ. 93.

अवधारक है, जो भूत और भविष्य के मध्य पड़ता है और इतिहासकारों के लिए समय का महज एक सुविधाप्रद विभाजन है ।"[1] "संशय की एक रात" में कवि ने हनुमान को तार्किक दृष्टि के अंतर्गत इतिहास की दिशा एवं वर्तमान दशा पर अपना मत प्रस्तुत किया है । हनुमान इसी तर्क दृष्टि के द्वारा समकालीन व्यक्ति के बोध को स्पष्ट करते हुए राम से कहते है कि —

"हम केवल घटना हैं ।
इतिहास नहीं ।
सम्भव है
हमारे कारण ही
अनागत युद्धों की नींव पड़े
पर
इस डर से
क्या हम न्याय और अधिकार छोड़ दें ।
नहीं
नहीं महराज !
समय ही करेगा प्रतिकार
हर बार
अनुचित का ।"[2]

---

1. आधुनिक हिन्दी कविता में विचार - बलदेव वंशी - पृ. 2 से उद्धृत
2. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 69.

कवि आधुनिकता के साथ विद्रोह के सम्बन्ध को स्वीकार करते हैं। विद्रोह हिन्दी साहित्य की एक प्रवृत्ति बनकर रही है। यहाँ विद्रोह का अर्थ कुछ स्पष्ट कर लेना उचित होगा। डा॰ हरदयाल विद्रोह के अर्थ को इस प्रकार स्पष्ट करते है - "विद्रोह से हम समझते हैं कि किसी व्यक्ति या व्यक्ति समूह के द्वारा किसी सत्ता, व्यवस्था, परम्परा, रूढ़ि आदि का अस्वीकार और उसे व्यक्त करने का प्रयत्न ही विद्रोह है। व्यवस्था आदि का सम्बन्ध राजनीति, समाज, नैतिकता, धर्म आदि किसी से हो सकता है। केवल राजनैतिक सत्ता या व्यवस्था का अस्वीकार, विरोध और उसे समाप्त करने का प्रयत्न मात्र ही विद्रोह नहीं है वह विद्रोह के एक प्रकार का विशेष है। विद्रोह राजनीति के इतर सत्ताओं एवं व्यवस्थाओं के खिलाफ भी हो सकता है। विद्रोह के लिए उसकी सफलता अनिवार्य नहीं है। प्रत्येक विद्रोह सफल हो तभी हम उसे विद्रोह माने अन्यथा नहीं, यह ठीक बात नहीं है। अलग-अलग विद्रोहों की प्रकृति, तीव्रता, कला विधि और परिणति भिन्न-भिन्न हो सकती है। यह तो हो सकता है कि हम एक प्रकार के विद्रोह को समर्थन दें, दूसरे प्रकार के विद्रोह को समर्थन न दें, किन्तु यह नहीं हो सकता है कि हम एक प्रकार के विद्रोह को विद्रोह माने, दूसरे प्रकार के विद्रोह को विद्रोह न मानें।"[1] कवि ने यहाँ विद्रोह का प्रयोग साधारण अर्थ में ही लिया है। "संशय की एक रात" में रावण को निरंकुश सत्ता को अस्वीकार करते हुए उसे समाप्त करने के प्रयत्न को विद्रोह माना गया है। अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए संघर्ष एवं विद्रोह का सहारा लेना एवं उन भावों को प्रकट करना आधुनिकता का ही प्रतिफलन है। ऐसी आधुनिकता के सम्बन्ध में हनुमान राम से यों कहते हैं —

---

1. आधुनिकता बोध और विद्रोह - डा॰ हरदयाल - पृ॰ 9.

" ओ
राघव !
हे लाघव
अब होंगे न पराभव
किसी भी रण से !
हम साधारण जन
युद्ध-प्रिय थे कभी नहीं
और न लंका युद्ध लड़ेंगे
युद्ध भाव से ।
महाराज !
साम्राज्यवादित्व के द्वारा
हम साधारण जन
अर्धसभ्य कर दिये गये । " 1

राजनैतिक व्यवस्था भी विद्रोह का एक मुख्य क्षेत्र रहा है । हम अंग्रेजों के सम्पर्क के कारण आधुनिकता-बोध के सम्पर्क में आए । हमें हमारी पराधीनता अनुचित मालूम होने लगी । उस पराधीनता से मुक्त होने के लिए हम 1947 तक अंग्रेजों के खिलाफ लड़े । हिन्दी साहित्य में इस पराधीनता के विरुद्ध चलनेवाले संघर्ष की अनुगूँज विभिन्न युगों में विभिन्न रूपों में हमें सुनाई देती है । " प्रार्थना पुरुष " में वीर ने अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोही भाव प्रकट किया है । स्वदेश प्रेम, आत्मगौरव एवं ऐक्य का नारा दिया —

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 65.

" करो या मरो, देशवासियो !
यह समय का नारा
अंग्रेजों ! अब भारत छोड़ो
हिन्दुस्थान हमारा !! "[1]

" शबरी " में सामाजिक व्यवस्थाओं की मूढ़ता के प्रति तर्क के माध्यम से विद्रोह व्यक्त किया गया है --

" क्या आत्मा की उन्नति केवल
है उच्च वर्ग तक ही सीमित ?
प्रभु तो हैं सब के पिता, भला
उनकी आराधना क्यों सीमित ? "[2]

व्यक्ति स्वातंत्र्य चेतना आधुनिकता की प्रमुख बात रही है। आधुनिकता को वैयक्तिकतावादी दर्शन भी कहते हैं। अस्तित्ववादी चिंतन को उसके आत्म निग्रह एवं व्यक्ति निरंतरता का मूलाधार माना गया है। " महा प्रस्थान " में कवि आधुनिकता के इस व्यक्ति स्वातंत्र्य की चेतना को राज्य व्यवस्थाओं के विवेचन के संदर्भ में प्रस्तुत किया है --

" प्रत्येक व्यवस्था के पास
अपने बघनख होते हैं अर्जुन !
सुदूर भविष्य में
क्या यह नहीं सम्भव है कि
राज्य-व्यवस्था

---

1. प्रार्थनापुरुष - नरेश मेहता - पृ. 55.
2. शबरी - " - पृ. 31.

समाज से स्वतन्त्रचेता व्यक्ति को ही
या तो समाप्त कर दे
या उन्हें इतना विवश, पंगु बना दे कि
उनका अग्नि-व्यक्तित्व
राज्य-व्यवस्था की निरंकुशता को
कभी चुनौती ही न दे पाये ? "[1]

आधुनिकता का यथार्थ से गहरा सम्बन्ध है । परम्परागत यथार्थ अपने परिवेश और जीवन से एकदम अलग-अलग था । वहाँ यथार्थ या तो एकदम भौतिक स्थूलता का अर्थ उगलने लगता था । अथवा आत्यन्तिक रूप से अध्यात्म से जुड़ जाता था । आज का यथार्थ विज्ञान की मथानी से जीवन और परिवेश को मथकर निकाला गया सारभूत यथार्थ है । इसी का यह परिणाम है कि हर परिस्थिति, तथ्य अथवा तत्त्व को तर्क की कसौटी पर कसने से पूर्व प्रश्नाकुल मुद्रा में देखना आधुनिकता की एक महत्त्वपूर्ण भंगिमा है । कहने में अतिशयोक्ति न होगी कि यहाँ यथार्थ प्राचीन और नवीन जीवन दृष्टि को अलगाता है । कवि आधुनिकता के इस यथार्थ को स्वीकार करता है । " प्रवादपर्व " में जीवन के प्रति इस नवीन या यथार्थवादी दृष्टिकोण को राम के धर्म सम्बन्धी चिन्तन के माध्यम से व्यक्त किया गया है —

" जीवन भर
एक प्रत्यंचा सा तना हुआ
धर्म के बाणों को वहन करने के लिए
पात्र या अपात्र
दिशा या अदिशा में सन्धान करने के लिए

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 108 - 109.

केवल साधन है ?
मनुष्य
क्या केवल साधन है ?
क्या केवल माध्यम है ? ? "।

इस तरह कवि जीवन के प्रति यथार्थ दृष्टिकोण को व्यक्तित्व और परिवेश के अन्तर्विरोध का गहरे संवेदनात्मक स्तरों पर अनुभव करने लगा है। जीवन दृष्टि की नवीनता कुछ सापेक्ष है अतः साहित्य में वह एक निरंतर विकासशील प्रक्रिया बनी रहती है। आधुनिकता के मूल में विद्यमान मानसिकता का इसी रूप में पोषण करती हुई वह अपनी प्रासंगिकता को सिद्ध करती है। यही उसकी उपलब्धि भी है और सार्थकता भी।

2. प्रगतिशीलता :-

प्रगतिशीलता मूल्य नहीं मूल्य को समझने की उदार दृष्टि है। मूल्यों को बदलते हुए परिवेश में समझना तथा उन्हें जीवन में स्थापित करने का प्रयास करना ही प्रगतिशीलता है।"[2] यह प्रगतिशीलता, मार्क्सवादी, लेनिनवादी प्रगतिशीलता से भिन्न है। मार्क्सवादी, लेनिनवादी प्रगतिशीलता का केन्द्र अर्थ है। प्रगतिवादी साहित्य सर्वहारा वर्गों को लेकर लिखा गया साहित्य था, जो नारों की गूँजों में डूब गया। तत्कालीन सामाजिक संदर्भों की समझ प्रगतिवाद में नहीं उभर पायी। मध्यकालीन काव्य में तुलसीदास कुछ अर्थों तक प्रगतिशील थे, उससे भी अधिक प्रगतिशील थे उनके पूर्ववर्ती कबीर, जिन्होंने अपने समय की सामाजिक समस्याओं का उदारता से आकलन करते हुए

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 19 - 20.
2. नयी कविता में मूल्य बोध - शशिसहगल - पृ. 87.

उन्हें बदलने का प्रयास किया । नयी कविता में भी यही प्रगतिशीलता उभरकर आयी लेकिन नये कवि के सम्मुख नये प्रश्न थे, समस्याएँ नयी थी, मूल्य भी नए थे । परम्पराओं को तोड़कर आगे बढ़ना एवं जीवन के लिए घातक मूल्यों को बदलने का प्रयास करना भी प्रगतिशीलता ही है ।

नरेश मेहता के काव्यों में भी प्रगतिशील आयामों को प्रस्तुत किया गया है । " संशय की एक रात " में राम की दृष्टि अत्यंत प्रगतिशील है । वे युद्ध की आवश्यकता को जानते हैं लेकिन युद्ध द्वारा ही सब कुछ साधने के विश्वास का समर्थन नहीं करते हैं । वह इस प्राचीन परंपरा को तोड़कर मानवता के धरातल पर सब कुछ साधना चाहते हैं । ऐसे विश्वासों का खण्डन करते हुए अपने पितात्मा से यों कहते हैं —

" ये सब स्वीकारोक्तियाँ हैं
सत्य नहीं ।
इनकी वास्तविकता को
कभी चुनौती ही नहीं गया ।
इन अंधविश्वासों को
किसी संशय ने निगला ही नहीं । " [1]

कवि की प्रगतिशीलता वर्तमान व्यवस्था के चित्रण द्वारा आगत के आदर्श रूप की कल्पना करता है । " महा प्रस्थान " में प्रगतिशील शासन व्यवस्था के प्रति युधिष्ठिर अत्यंत आस्था व्यक्त करते हैं । ऐसी व्यवस्था के भविष्य के बारे में अर्जुन से प्रश्न के रूप में इस तरह कहते हैं —

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 49.

" आज जिस राज्य व्यवस्था का
साम्राज्यी स्वरूप
हमारे युग में आरम्भ हुआ है
कल जब यही
भिन्न मान्यताओं के अनुभवों से जुड़कर
एक ऐतिहासिक सभ्यता का बन जाएगा
तब
वह भाषा-ग्रन्थ होगा
या इतिहास ??
वह
राज्य-लोलुप, निरंकुश सत्ताधारियों का इतिहास होगा
या अनाम, निरीह साधारण जनों का भाषा-ग्रन्थ
होगा ? " ।

" प्रजापर्व " में कवि की प्रगतिशील दृष्टि राजा को प्रजा के अधिकारों के बारे में मानवीय दृष्टि से सोचने के सम्बन्ध में स्पष्ट होती है । कवि राम के माध्यम से प्राचीन परम्पराओं को तोड़कर प्रजा को अपनी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता दिलाना चाहते हैं एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के महत्व का वर्णन करते हैं । सम्पूर्ण पृथ्वी में व्यक्ति की अपनी अभिव्यक्ति के द्वारा नर से नारायण बनने की आकांक्षा व्यक्त करते हैं । बदलते हुए युगानुरूप शासन व्यवस्था को सरलीकृत करते हुए प्रजा के अधिकारों की सुरक्षा पर बल देते हैं । अपनी प्रगतिशील दृष्टि का परिचय देते हुए कहते हैं कि —

---

1. महाप्रस्थान – नरेश मेहता – पृ. 103.

" नहीं
नहीं राम !
इतिहास की भी वनस्पतियों की भाँति
सम्पूर्ण मेदिनी को
शोभा और गन्ध होने दो,
उसे मानवीय अभिव्यक्ति का
औपनिषदिक पद दो । " [1]

कवि की वैचारिक दृष्टि ने "शबरी " को प्रगतिशील कर्मठता की प्रतीक बनाया है । भारतीय समाज में धार्मिक क्षेत्र में उपस्थित मूल्यगत संक्रमण को दूर करने के लिए उदात्त भूमिका का निर्वाह किया है । कवि ने वर्ग भेद को कर्मठता द्वारा सुलझाया एवं धार्मिक रूढ़ियों को तोड़कर धार्मिक आचरण को सर्वजन सुलभ बनाया । अतः शबरी कवि की प्रगतिशील दृष्टि से तीर्थ के समान पवित्र रूप को प्राप्त करती है —

"यदि पम्पासर है तीर्थ
रहेगा आगे, तो शबरी से
आदिकाल की सतियाँ भी हैं
सती आज, तो इस शबरी से । " [2]

कवि साम्प्रदायिक संकीर्णता के दोषों के प्रति खेद प्रकट करता है । उनकी प्रगतिशील दृष्टि प्रजा को साम्प्रदायिक विद्वेषों तथा राष्ट्रीय सीमाओं से ऊपर उठकर मानव मूल्यों को प्रतिष्ठित करने की ओर सोचने के लिए बाध्य

1· प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ· 33·
2· शबरी - " - पृ· 60·

करती है । उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि अगर देश इन संकीर्णताओं से ऊपर नहीं उठ सकता तो स्वतंत्रता का कोई महत्व नहीं है —

" क्या विषम भाग्य, क्या भोगणेगा
भारत को आजादी आयी
नर-मुण्डों की माला डाले
कैसी आजादी यी आयी । "[1]

3· अस्तित्ववाद :-

अस्तित्ववाद यूरोप की आधुनिक विचारधारा तथा साहित्यिक चिन्तन पद्धति है । उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से अस्तित्ववाद का बीज पनपने लगे हैं । दूसरे विश्व युद्ध के बाद एक विशेष दर्शन पाश्चात्य साहित्य में अस्तित्ववाद के नाम से आया । मशीनी जीवन की तीव्रगति तथा अस्तित्व के प्रति संघर्ष ने मानव को अतिरिक्त रूप से सचेत किया । " इस दर्शन का आधार है मनुष्य का अस्तित्व । यह मानता है कि मनुष्य ही सर्वोपरि है । अत: उसके अस्तित्व का विवेचन ही इसका लक्ष्य है । "[2] अस्तित्ववाद के दो वर्ग है — 1· आस्तिक – ईश्वरवादी । इस वर्ग में कीर्कगार्द, कार्ल – यास्पर्स, ग्रैबियल, मार्सेल, पास्कर और सारेन प्रमुख हैं । कीर्कगार्द सहित अधिकांश ईश्वरवादी दार्शनिक ईश्वर के अस्तित्व को मानते हैं । किन्तु व्यक्ति के व्यक्तित्व के लिए उसे किसी प्रकार का उत्तरदायी नहीं मानते हैं ।

1· प्रार्थना पुरुष – नरेश मेहता – पृ· 61·
2· नयी कविता – उद्भव और विकास – डा· रामवचन राय – पृ· 95·

निरीश्वरवादी दार्शनिकों में नीत्शे का नाम प्रमुख है । उनके अनीश्वरवादी चिन्तन का प्रभाव कार्लयास्पर्स, मार्टिन हेडगर, सार्त तथा कामू आदि पर पड़ा । सार्त के कारण इस जीवन दर्शन का अधिक प्रचार और प्रसार प्राप्त हुआ । सार्त ने ही यूरोपीय युद्ध कालीन स्थितियों से उत्पन्न व्यक्ति की निराशा और अवसान का विश्लेषण करते हुए मानवीय स्वतंत्रता का प्रबल समर्थक माना है । निरीश्वरवादी ईश्वर में विश्वास नहीं करते । वह स्वयं का निर्माता है । वह प्रत्येक क्षण को सार्थक रूप में भोगना चाहता है । इस प्रकार दोनों ही चिन्तनधारायें मनुष्य को अपने अस्तित्ववादी सार्थकता के लिए उत्तरदायी मानती है । सार्त अस्तित्ववाद को मानव महिमा का सिद्धांत मानते हैं -- जिसमें मनुष्य को कर्म के आधार पर परि - भाषित किया जाता है ।

आधुनिक हिन्दी कविता में अस्तित्ववादी जीवन दर्शन की संस्थापना एक महत्वपूर्ण प्रवेश है, वैचारिक सरणियों को नकारकर नवीन भावभूमियों का संक्रमण करती हुई स्वातंत्र्योत्तरकालीन जन चेतना को स्वीकारा है । यह गतिशील चिन्तनपूर्ण दृष्टिकोण है । जिसमें द्वितीय विश्वयुद्धोत्तर विघटन-शील स्थिति, अणु विनाश की नरसंहारात्मक प्रक्रिया एवं तज्जन्य मानवीय संकट का बोध (सर्वत्र, कुण्ठा, निराशा, घुटन का व्यापक स्वर) तथा उसके तथ्यात्मक विश्लेषण में इस चिन्तनधारा का वास्तविक मंतव्य निहित है । तद्युगीन (द्वितीय महायुद्धोत्तर) विषाक्त वातावरण में व्यक्ति विवेक के बलपर नयी समस्याओं, नये मूल्यों को उपयोगी प्रमाणित करने के लिए नये सिर से सोचने लगे हैं । इन्हें निष्कर्ष में यही मिला कि जीवन और मृत्यु किसी पुस्तक की भूमिका और उपसंहार जैसे दो परिच्छेद हैं तथा मौत अनिश्चित कालीन भय की सूचक । इसलिए इस अनिश्चित भय से त्राण

पाने के लिए जीवन को एक अर्थ देना स्वाभाविक हो गया । अस्तु, अस्तित्व-वाद आधुनिक युग की संकटापन्न स्थितियों का तथ्यपरक व्याख्या प्रस्तुत करती है जहाँ व्यक्ति-अस्तित्व समष्टि अस्तित्व के समक्ष बौना हो गया है । यह तुच्छ या लघु व्यक्तित्व अथवा लघु अस्तित्व का स्वभाव है कि वह स्व अस्तित्व को बनाये रखने के दुर्दान्त संघर्ष में निरंतर जूझ रहें और इसी प्रक्रिया के द्वारा विश्व के व्यक्ति की स्वतंत्रता संबद्धता द्वारा गुणात्मक मूल्यों का बोध करा सके । व्यक्ति की स्वतंत्र संबद्धता ही उसे सम्पूर्ण मानवता से बाँधती है । व्यक्तिगत उत्तरदायित्व का बोध और मानवीय कारुण्य चेतना अस्तित्व का मूल सारतत्व है । अस्तित्ववाद की परिभाषा देते हुए डा•नगेन्द्र ने कहा है कि - "अस्तित्ववाद अमूर्त धारणा के विरुद्ध मानव की स्वातंत्र्य चिन्तन-क्षमता का निर्जीव सामान्य के प्रति जीवन विशेष का विद्रोह है । "[1]

नरेश मेहता ने अपने काव्यों के माध्यम से मानव अस्तित्व से जुड़ी स्थितियों को अभिव्यक्त किया है । अस्तित्ववाद हर हालत में युद्ध का विरोध करता है । एक ओर वह पूँजीवादी एवं सत्तालिप्सु साम्राज्यवादी शक्तियों की युद्ध-प्रवृत्ति को अस्वीकार करता है, दूसरी ओर उनकी प्रतिहिंसा से उठनेवाले शोषितों के हिंसात्मक संघर्ष का भी विरोध करता है और इसलिए ही मार्क्सवाद का भी विरोध करता है । वस्तुतः यह दर्शन बाह्य संघर्ष एवं बाह्य द्वन्द्व को अस्वीकार करता है क्यों कि इस के लिए बाह्य वास्तविकता होती ही नहीं आंतरिक सत्य ही वास्तविकता है इसलिए संघर्ष और द्वन्द्व संत्रास, घुटन आदि के एहसास केवल व्यक्ति के भीतर अर्थवत्ता प्राप्त करते हैं।

1• नयी समीक्षा - नए संदर्भ - डा•नगेन्द्र - पृ• 46•

यह अर्थवत्ता रचनाधर्मी होती है । " संशय की एक रात " में कवि रावण को साम्राज्यवादी शक्तियों के प्रतीक के रूप में तथा जांबवंत और हनुमान आदि समस्त दीक्षणवासियों को उनके अत्याचारों से पीड़ित एवं उनका विरोध करनेवाले साधारण जनता के रूप में प्रस्तुत किया है । रावण के विरुद्ध राम द्वारा युद्ध करने के लिए वे सभी तैयार होते है । कवि अपनी अस्तित्ववादी मानसिकता के कारण मन की हिंसात्मक प्रवृत्तियों को अस्वीकार करता है और निष्कासित करता है । ये दोनों पक्ष एक दूसरे से बहुत दूर हैं । अस्तित्ववादी नया मानववाद व्यक्ति के अंतर्गत गहरे पीड़ा बोध को बुनियादी महत्व प्रदान करता है क्यों कि वही से नया सृजन संभव होता है ।

" संशय की एक रात " अस्तित्ववादी रचना है । यह राम कथा पर आधारित है । वे वाल्मीकि और तुलसी के समान राम को एक मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में नही वरन् एक विवेकशील एवं प्रश्नाकुल राजकुमार के रूप में प्रस्तुत किया है । युगीन संवेदनाओं को सामाजिक एवं वैयक्तिक धरातल पर भोगा जा रहा है । आज भी यही स्थिति है । राम ऐसे प्रज्ञावान व्यक्तियों का प्रतीक हैं जो अपने व्यक्तिगत विवेक को सामाजिकता के आगे विसर्जित कर देते हैं और अस्वीकार के रचनात्मक धरातल तक उठ नहीं पाते । ऐसे लोग वस्तु स्थिति के प्रति शंकालू एवं असंतुष्ट रहते हैं । संत्रास में जीते हैं, फिर भी जीवन मूल्यों के रक्षा के लिए अपने आप को समर्पण कर देते हैं । कवि के अनुसार राम अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए युद्ध नहीं कर रहे हैं । सीता की मुक्ति अनिवार्य होने पर भी युद्ध से प्राप्त होनेवाली सीता को प्राप्त करना नहीं चाहते हैं । वह संदिग्ध मानसिकता में, असहनीय वेदना के क्षणों में जीते हैं । उनका अंतर्मन युद्ध से बचना चाहता है —

" बाण बिद्ध पाखी सा विवश
साम्राज्य नहीं चाहिए
मानव के रक्त पर पग धरती आती
सीता भी नहीं चाहिए । " [1]

कवि ने मानवीय आस्था एवं अस्तित्व की संरक्षा को लघु मानव [लक्ष्मण] की संघर्षरत चेतना से जोड़कर अंकित किया है —

" हम केवल चलते हैं
अपने में
अपने से बाहर
धूम और अन्धकार घेरे
हम चलते हैं । " [2]

लेकिन राम कवि या लक्ष्मण के निर्णय को स्वीकारने के लिए तैयार नहीं है । राम के भीतर से अनेक प्रश्न उभारे जाते हैं । उनके मन में युद्ध, सत्य, कर्म और न्याय के संबंध में अनेक प्रश्न उठते हैं लेकिन किसी प्रकार के समाधान से उनके प्रश्नों का समाधान नहीं मिलता । इन समस्त प्रश्नों या शंकाओं के उपरांत वह सामाजिक मूल्यों को स्वीकार करके सभी के निर्णय को स्वीकार करते हुए अपने स्वतंत्र विचार को छोड़ देते हैं । अपने अस्तित्ववादी विवेक से कहते हैं —

" ओ मेरे विवेक
मुझ से मत प्रश्न करो
संशय की बेला अब नहीं रही । " [3]

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 32.
2. - वही - पृ. 15.
3. - वही - पृ. 92.

कवि राज्य व्यवस्थाओं और मानव अस्तित्व के बीच के वैषम्य को स्वीकार करता है । वह राज्य-व्यवस्था की शक्ति सम्पन्नता को व्यक्ति की अस्तित्वहीनता का प्रतीक मानता है । इसके सम्बन्ध में युधिष्ठिर अर्जुन से इस प्रकार कहते हैं —

" राज्य के
आतुल शक्ति सम्पन्न होने का अर्थ ही है
व्यक्ति का स्वत्वहीन होना । "[1]

" प्रवादपर्व " में कवि अपने अस्तित्ववादी चिंतन को लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा की आवश्यकता को स्पष्ट करने के संदर्भ में व्यक्त करता है । जिस प्रकार मनुष्य को अस्तित्वहीन बनाने के प्रयत्न होते रहे हैं उसी प्रकार वह अपने अस्तित्व को अत्यन्त कौशलता के साथ सुरक्षित करने का प्रयत्न कर रहा है । इसलिए कवि मानवीय अस्तित्व की सुरक्षा पर बल देते हुए कहता है —

" जब-जब भी
लोगों को
इतिहासहीन कर देने की चेष्टा की गयी है
तब - तब
वे लोग
अपनी पिपीलिकावत साधारणता के साथ
इतिहास की आग पर चलकर
पुराण पुरुष बन जाते रहे हैं । "[2]

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 99.
2. प्रवादपर्व - " - पृ. 31.

कुलीन विभीषिकाओं से व्यक्ति अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखने का प्रयत्न करता है । कवि ऐसी मानव अस्तित्व के प्रति अपनी श्रद्धा यों व्यक्त करते हैं —

" एक घटना
एक व्यक्ति
फिर हमें तूफानों के उबलते
उफनतेपन में फेंक जाता है,
और हम
जल की विशाल हिल्लोलता में
रिक्त नारियल से
डूबने-उतराने लगते हैं । " [1]

समय के अनुसार देश की स्वतंत्रता में ही व्यक्ति का स्वातंत्र्य निहित माना गया है । मानव ऐसी अपनी स्वतंत्रता एवं अस्तित्व की सुरक्षा के लिए प्राणों तक त्यागकर विभिन्न प्रकार के परीक्षाओं को सामना करने के लिए तैयार होते हैं । अतः मानवीय अस्तित्व के रक्षा की आवश्यकता को यों स्पष्ट किया गया है —

" निर्विरोध, निष्काम भाव से
कोटि-कोटि नर-नारी,
अधिकारी हित, आहुति देने
कर दी लेकें तारी । " [2]

1· प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ· 59·
2· प्रार्थनापुरुष - " - पृ· 26·

4. कालबोध :-

वैदिक वाङ्मय से लेकर आधुनिक चिन्तन तक " काल " विचार का बिन्दु रहा है । " काल " अपनी प्राचीनतम अवधारणा में एक निरपेक्ष प्रवाह है, जिसके संदर्भों में अन्यों का मापन किया जाता है । वेदों में वह कालपुरुष के रूप में उपनिषदों में " आभासोसत्ता " के रूप में एवं पुराणों में " विश्वनियंता " के रूप में वर्णित है । बौद्ध धर्म के अनुसार " काल " का अस्तित्व " भूत " वर्तमान और भविष्य में है । जैन धर्म में काल " गति नियंता " चेतन जगत का सूत्रधार है । वस्तुत: प्राचीन अवधारणों में काल गतिशील निरपेक्ष सत्ता है तथा भौतिक घटनाओं एवं वस्तुओं का गुण धर्म ।

नरेश मेहता के काव्यों में काल बोध की अभिव्यक्ति मिलती है । " महाप्रस्थान " में " स्वर्गपर्व " के प्रारम्भ में ही कालबोध का संकेत मिलता है । इसका प्रारम्भ रात्री के तृतीय प्रहर के आकाश से आरम्भ होता है । रात्रि की महिम काली घनी घड़ियों को पार करके, हिमाधियों का स्वरूप सहकर व्यक्ति विवत्व का जो रूप प्राप्त करता है वह सूर्योदय के पूर्व " तृतीय प्रहार के ... रात्रि आकाश " में स्थित " व्योमकेश " जैसा होता है । रात्री के इस प्रहर में ही प्रजा का असली रूप जागृत होता है —

" रात्रि के इस प्रहर में
तुम्हारे तपस्वी नेत्रों में
सरस्वती जागृत है ।
देवी के चरण-स्पर्श से
हिमालय, वेद हो गया है "।[1]

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 121.

" स्वर्गपर्व " के अंतिम चरण में युधिष्ठिर को कालपुरुष की लीला का साक्षात्कार होता है और युधिष्ठिर पूर्ण प्रज्ञावान बन जाते हैं —

" युधिष्ठिर ! निर्वेद के
इस प्रशान्त बिन्दु की नींव में
इतिहास और गाथाओं का यह कोलाहल
अब शान्त हो चुका है ।
इस राशिग्राही कालपुरुष की लीला को
स्वीकार करो युधिष्ठिर !
स्वीकार करो ।
अब तुम इतिहासहीन
कुल-गोत्रहीन
स्वत्व नहीं
प्रज्ञा हो । "[1]

रात्रि की तृतीय प्रहर के कालबोध में स्वर्गबोध जागृत होता है क्यों कि उसके भीतर सनातन सूर्योदय का रहस्य अकुंठित है । प्रत्यूष अनिवार्य है । उसी से जीवन-यज्ञ पूर्ण होता है । हमने आधुनिक जीवन में रात्री के दो प्रहरों का साक्षात् हो लिया है - महाभारत और उसकी परिणतियों का । इसके बाद के यात्रा पर्व के लिए आधुनिक मानस को तैयार नही कर पाये । पर बिना यात्रा पर चले, बिना स्वाहा-पर्व से गुजरे अंधकाराच्छन्न मानवीय चेतना का सूर्योदय कैसे दिखेगा ? युधिष्ठिर प्रज्ञापुरुष हैं, सारी यात्राओं को झेले हुए हैं, यहाँ तक प्रज्ञा भी स्वाहा हो गए हैं । इसलिए उन्हें काल बोध ऐसा होने लगा है —

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 125.

" पूर्व दिशा में
इस कालपुरुष का
होम के लिए हाथ उठ चुका है ।
प्रद्युम्न को इस ब्राह्मणी को
यह सम्पन्न करने दो । "[1]

" संशय की एक रात " में राम और दशरथी छाया के संकेत के द्वारा काल के औन्नत्य को स्थापित किया गया है । राम सृष्टि में सत्ता सत्य के निर्णयकर्त्ता के बारे में जानना चाहते हैं तब छाया उनके संशय को दूर करने के संदर्भ में कालबोध कराती है । दशरथी छाया के अनुसार सृष्टि में सब कुछ समय के नियमानुसार ही चलते हैं । इस अग्निचक्र में केवल कर्म ही गति है । इसलिए किसी से प्रश्न करना व्यर्थ है —

" यहाँ जो है केवल
नियम है
जिसका वृहद् विराट चक्र है ।
कर्म ही गति है
इस अग्निचक्र की ।
तब किससे कर रहे हो प्रश्न
राघव ? "[2]

कवि काल की इस अखण्डता को स्थापित करते हुए उसके आगे मनुष्य को केवल कर्म का क्षण मानते हैं । वह महाकाल अजन्मा एवं अमर्त्य है । उस महाकाल को जन्म से, मृत्यु से, सम्बन्धों से खंडित या विभाजित नहीं किया जा सकता ।

1· महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ· 125·
2· संशय की एक रात - " - पृ· 48·

उस महानियम के निकट हम केवल कर्म के क्षण हैं । उस समय से बाधित होने पर भी मानव अपने आप को उस समय को अर्पित करता है । इसलिए किसी से प्रश्न करना व्यर्थ है कर्म ही उत्तर है —

" उस अजन्मे अमर्त्य महाकाल को
न जन्म से
न मृत्यु से
न सम्बन्धों से
योजित या विभाजित किया जा सकता ।
उस महानियम के निकट
हम केवल कर्म के क्षण हैं ।
जो कि
बलिपशु से बाधित, समर्पित
उस अविनाशी
महाकाशी अग्नि चक्र को ।
तब किससे कर रहे हो प्रश्न
राघव ? " [1]

कवि काल के नियम के बारे में बताता है । सृष्टि में हरेक कर्म, क्षण या व्यक्ति घटित होकर कालातीत हो जाता है । इस प्रकार सम्बन्ध हीन होकर घटित हो जाना ही काल का नियम है । इसलिए कवि ऐसी कालातीत स्थितियों के प्रति पश्चात्ताप करना व्यर्थ समझते हैं —

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 48 - 49.

" जहाँ प्रत्येक कर्म
क्षण या व्यक्ति
घटित होकर कालातीत हो जाता है ।
यह सम्बन्धहीन घटित होना ही
अग्नि है
नियम है
दिगम्बर्णी पुरुष है । " [1]

कवि काल के विराट रूप तथा स्वभाव का चित्रण प्रस्तुत करता है । इस तात्पर्य से ही हरेक क्षण जन्म लेते हैं फिर घटित होकर उस काल गति में विलीन हो जाते हैं । विराट नियमवाला यह काल सम्बन्धों को नहीं केवल स्थितियों को पैदा करता है । यह उसका स्वभाव है । स्थितियों को संचित करते चलती है लेकिन उनके बोध के सम्बन्धों को नहीं देखती --

" यह वैराट्य
यह महानियम --
सम्बन्ध नहीं
स्थितियाँ पैदा करता है
यह तो गुण है
जो उन्हें संचित किये रहता है
सम्बन्ध नहीं । " [2]

" प्रवादपर्व " में काल के नियमके आगे मनुष्य की विवशता के बारे में बताया गया है । समय के निर्णय के अनुसार कर्म करते जाना ही मनुष्य का कर्तव्य है । मानव बुद्धि के नियम के विपरीत कर्म च्युत कभी नहीं हो सकता --

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 52.
2. - वही - पृ. - 53.

" वर्षा के इस तटस्थ
भागवत - अनुष्ठान से
कोई मुक्ति नहीं
कोई निष्कृति नहीं !! " [1]

अत: कवि काल को शब्दों में समय के अर्थ में स्वीकार किया है । समय की अखण्डता का प्रतिपादित करते हैं । मनुष्य को इस महाकाल के आगे क्षण मात्र मानते हुए समय का सदुपयोग करने का सन्देश देते हैं ।

5. क्षणवाद :-

क्षण काल का एक आयाम हैं । क्षणवादी महत्ता कहीं न कहीं कालबोध की अवधारणा से सम्पृक्त हैं । मृत्यु बोध और अस्तित्वबोध के समान यह क्षणबोध भी अस्तित्ववादी विचार धारा का ही एक अंग हैं । अस्तित्ववादी दर्शन ने व्यक्ति को स्वतंत्रता स्थापित करते हुए, ईश्वर के प्रति आसक्ति को व्यर्थ और निराधार बताते हुए क्षण का महत्व प्रतिपादित किया है । पश्चिम में इस क्षणवाद को जन्म देनेवाले दार्शनिक विलियम जेम्स, हेनरी बर्गसा, जोला तथा मेक्सपिकाहे आदि प्रमुख हैं । कालप्रवाह या ऐतिहासिक नैरंतर्य को वे क्षण का योग फल मानते हैं । क्षणवाद के कारण ही मनुष्य प्रत्येक क्षण को स्वतंत्रता को स्वीकार करते हुए उनमें से प्रत्येक को भोगने की आकांक्षा करता है क्यों कि वह मानता है कि जो क्षण हमारे सामने हैं वह शायद उसी के रूप में पुन: उपस्थित न हो । यही क्षणवादी भावबोध वर्तमान को समग्रता से जीने के लिए प्रेरित करता है । क्षणवादी भावबोध भोगवादी प्रवृत्तियों को भी जन्म देता है ।

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 23.

डा॰ धर्मवीर भारती क्षण को सम्पूर्ण जीवन प्रक्रिया से सम्बद्ध मानते हुए लिखते हैं - " कितने ही क्षण और कितनी ही स्थितियाँ जो प्रत्यक्षत: असंबद्ध लगती है, कुल मिलाकर हमारे चेतन, अर्ध चेतन मन में लहर पर लहर इस एक बिन्दु को उभारती रहती है और सम्पूर्ण जीवन प्रक्रिया एक क्षण से संबद्ध हो जाती है । "[1] क्षणवाद भविष्य के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता । क्षण के दो स्वरूप स्थूल और सूक्ष्म बताते हुए सूक्ष्म क्षण को सत्य की अनुभूति का क्षण माना है । यही क्षण मुक्ति का क्षण भी है । नये कवियों के काव्यों में इस क्षणवाद की अभिव्यक्ति कहीं न कहीं मिलती हैं ।

नरेश मेहता ने अपने काव्यों में इस क्षणवाद के प्रति अपनी आस्था को व्यक्त किया है । इस के अंतर्गत कवि ने प्राचीन मान्यताओं के प्रति नवीनता के आग्रह को स्पष्ट किया है । इसी क्षणवाद की परिकल्पना में उन्होंने दुर्धर्ष मानवीय जिजीविषा, संघर्षरत क्षणवादी आस्था तथा लघुमानव के सामर्थ्य के आयामों को उद्घोषित किया है । यह सब नूतनता का ही प्रतिफलन हैं। कवि ने कालबोध की महिमा के अंतर्गत काल को विभिन्न इकाइयों के रूप में उन क्षणों को सार्थकता को स्थापित करने का प्रयत्न किया है । " संशय की एक रात " में दशरथी छाया और राम के संवाद के द्वारा क्षणवादी आस्था कर्म एवं संशय के विवेचन के संदर्भ में प्रस्तुत हुई है —

" यदि मैं मात्र कर्म हूँ
तो यह कर्म का संशय है ।
यदि मैं मात्र क्षण हूँ
तो यह क्षण का संशय है । "[2]

1· नयी कविता संवेदना और शिल्प - मंजुला पुरोहित - पृ· 52 से उद्धृत

2· संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ· 51·

जटायु राम के संशय को दूर करने के प्रयत्न में समय की विराटता के माध्यम से क्षणवादी महत्व को सिद्ध करते हैं। जटायु के अनुसार इस काल गति का कोई आदि और अंत नहीं है । वह गतिशील है । वह शाश्वत है । वही क्षण था युग था । उसके आगे हम नियम मात्र है । उसके पूर्व और बाद में भी हम नहीं होते । इसलिए हमें कुछ जन्म लेता मरता हुआ लगता है । इस जनन मरण से उस समय का कोई संबंध नहीं है । वह अविनश्वर है । इस काल के किसी प्रश्न को, समय के किसी संशय का, सत्य के किसी शंका को दूर करने को प्रयत्न करना व्यर्थ है । इसलिए वर्तमान शाश्वत नहीं है । काल के इन्हीं क्षणों को सार्थक बनाते हुए वर्तमान में समग्रता से जीने के लिए राम को प्रेरित करते हैं। जटायु अपने क्षणवादी दृष्टिकोण का परिचय इस प्रकार देते हैं —

"यहाँ कुछ नहीं समाप्त हुआ
क्यों कि कभी
कुछ नहीं आरंभ हुआ

* * *

केवल हम ही
उस क्षण के पूर्व तक उसमें नहीं थे
केवल हम ही
उस क्षण के बाद नहीं होते
इसीलिए हमें
कुछ जन्म लेता, मरता लगता है ।
अन्यथे अविनश्वर क्षण या समय को नहीं ।

राघव ! इस काल के किस प्रश्न को
समय के किस संशय का
सत्य के किस शंकात्व को
निकाला चाहते हो ? " 1

और लक्ष्मण के द्वारा भी क्षणवादी महत्व को स्पष्ट किया है । लक्ष्मण लघुमानव की प्रचण्ड शक्ति और चेतना के विश्वास के प्रतिनिधि हैं । वह काल एवं नियति को महत्वपूर्ण नहीं मानते हैं । वह मानव की शक्ति एवं सामर्थ्य पर विश्वास रखते हैं । वह युद्ध या सन्धि जैसे हर काम के प्रयोजन को स्वीकार करते हैं । वह मानव को किसी अदृश्य हाथों में परिचालित यंत्र नहीं मानते हैं । वे हर क्षण में होनेवाले काम के प्रयोजन के द्वारा उन क्षणों को सार्थक बनाना चाहते हैं । वह अपनी क्षणवादी विश्वास के बारे में राम से यों कहते हैं —

" सन्धि या कि युद्ध
टूटे सन्दर्भ की
मात्र विवशता ही नहीं है ।
नहीं हैं हम
केवल परिचालित यन्त्र मात्र
किसी अदृश्य
अन्धे हाथों के । " 2

शबरी काव्य में क्षणवादी महत्व के बारे में बताया गया है । शबरी भक्ति में तन्मय होकर भगवान की राह की प्रतीक्षा में प्रतिक्षण को महत्वपूर्ण मानती है —

1· संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ· 53 - 54·
2· - वही - पृ· 14·

"झोंट्या के बाहर सीढ़ी
पर जैसे बेला मिलती,
है कोई संग में प्रतिक्षण
ऐसी आहट सी मिलती ।"[1]

8· मृत्यु-बोध :-

"मृङ्· " प्राण त्यागे धातु से त्युक् प्रत्यय करने पर मृत्यु शब्द बनती है ।[2] व्यक्ति के जीवन में मृत्यु की अनिवार्यता के कारण भारतीय दर्शन और अस्तित्ववाद दोनों में मृत्यु पर पर्याप्त विचार हुआ है । भारतीय हिन्दू-दर्शन में " मृत्यु " एक नये जीवन में प्रवेश करने की एक पूर्व भूमिका है, नव जीवन प्राप्ति की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है । जब सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर को धारण करता है तो सामान्य भाषा में इसे मृत्यु कहते हैं ।[3]

मृत्यु एक जैविक घटना है, जिसमें जीवन का ह्रास लक्षित होता है । यह नश्वरता की द्योतक शक्ति और जीवन के पुन: जीवनारण करने का एक सोपान है । साथ ही मनुष्य के अस्तित्व के सामने प्रश्नचिह्न और उसकी गतिविधियों पर पूर्ण विराम है । अत: मनुष्य प्राय: इससे प्रारम्भ से ही भय खाता रहा । जनसाधारण कभी इसको सहज और स्वाभाविक रूप में नहीं ले सका । भय का मूल कारण है अज्ञान । भय के कारण का अभिज्ञान ही सर्वोत्तम उपलब्धि है । अत: मृत्युबोध को जानना-पहचानना इसके संत्रास की जकड़न से मुक्त होने के लिए आवश्यक है । इसलिए विभिन्न

1· शबरी - नरेश मेहता - पृ· 44·

2· मृत्यु रहस्य - वेदाचार्य श्री वेणीराम शर्मा गौड़ - पृ· 7·

3· प्रेमचंदोत्तर कथा साहित्य में अस्तित्ववाद - डा· शुकदेव सिंह - पृ·189·

तांत्रिक दर्शनों ने भी मृत्यु के साक्षात्कार का प्रयास किया है । अन्तर इतना है कि कहीं यह प्रयास सकारात्मक (Positive) है तो कहीं नकारात्मक (Nagative).

ईसाई धर्म के अनुसार मृत्यु अमानवीय है अर्थात् अन्य प्रकार के शाश्वत जीवन का आरम्भ है । हिन्दू धर्म के अनुसार यह केवल जन्म के समान ही आत्म-जीवन का देह धर्मी बन्धन है, अर्थात् मानवीय है । मानवीय स्वतंत्रता की बाधक नहीं है और साधक भी नहीं है । श्रीमद्भगवद्गीता में " मृत्यु " को वस्त्र परिवर्तन की सी सहज स्थिति में स्वीकार किया गया है — जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे वस्त्रों को धारण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीर को त्यागकर दूसरे नये शरीर को प्राप्त करता है [1] तथा जैसे जीवात्मा का इस देह में बालपन, जवानी और वृद्धावस्था होती है वैसे ही अन्य शरीर की प्राप्ति होती है । उस विषय में धीरपुरुष मोहित नहीं होता ।

नरेश मेहता के काव्यों में मृत्युबोध कवि की संवेदनशीलता का अंग बनकर प्रस्तुत हुई है । काव्य में इस प्रवृत्ति के विवेचन करने से पहले इसका संक्षिप्त विवेचन करना प्रासंगिक न होगा । जिजीविषा और मुमूर्षा दोनों परस्पर विरोधी मानव संवेदनाएँ हैं । जिजीविषा अस्तित्व को बनाये रखने और मुमूर्षा उसे समाप्त करनेवाली प्रवृत्ति है । मृत्युबोध तो सैद्धांतिक दृष्टि से अस्तित्व धारा का ही अंग है, नये कवि की सचेतन प्रक्रिया और संवेदनशीलता को सर्वाधिक प्रभावित करता है । प्रश्न है कि मृत्यु-बोध कब होता है ? — " एक तो मृत्यु के भय या आतंक के रूप में जिसे जिजीविषा

---

1. श्रीमद्भगवद् गीता - अध्याय - 2 - श्री विद्या प्रकाशानंद स्वामि द्वारा विरचित - श्लोक - 22.

कह सकते हैं, दूसरे जब मनुष्य का अस्तित्व सार्थक शून्य हो जाता है और बृहत्तर या निस्सीम शून्य में अस्तित्व को निमग्न कर देना जब एक अनि - वार्यता बन जाता है, वस्तुत: तभी मृत्युबोध होता है । "[1] इस स्थिति में मृत्यु दंश नहीं देती और विभीषिका वहाँ आ नहीं पाती । तब मृत्यु भी जीव की भाँति एक शुद्ध सत्य बन जाती है और व्यक्ति की सत्ता अस्तित्व को प्रामाणिक सिद्ध करती है । हेडगर के शब्दों में — " मृत्यु मनुष्य को प्रामाणिक जीवन यापन का परिचय ही नहीं करवाती, उसे जीवन में सक्रिय भी करती है । ... मृत्यु का चुनाव, उसका वरण मनुष्य को दैनिक जीवन के प्रति पराङ्मुख, विरक्त या उदासीन नहीं बनायेगा बल्कि उसमें एक तटस्थ भाव या स्थिति प्रज्ञता उत्पन्न करेगा, जिससे वह दैनिक जीवन के व्यापार से त्रस्त नहीं जायेगा और " स्व " को तद्रूप नहीं करेगा । वह सीमित सार्थकता के साथ उन्हें स्वीकार करेगा । इस तटस्थता से उसके जीवन में आत्मशक्ति, सद्भाव और सहिष्णुता उत्पन्न करेगी । "[2] हेडगर की भाँति अन्य अस्तित्ववादियों ने भी मृत्यु का विवेचन किया है । निष्कर्ष रूप में अस्तित्ववादियों की यह बद्धमूल धारणा है कि अस्तित्व की प्रामाणिकता मृत्यु के वरण की भावना में निहित है क्यों कि - मृत्यु की वरण की भावना जीवन को समग्रता से देखने की शक्ति प्रदान करती है । प्रयोगवाद के पुरस्कर्ता और नयी कविता के पुरोधा अज्ञेय ने भी स्वीकार किया है कि — " मृत्यु का सामना करना, उसपर विजयी होने की कामना भी बिलकुल स्वाभाविक है - मृत्यु से बड़ा होने के प्रयत्न में वह जीवन से भी बड़ा हो सकता है ।"[3] कवि इन सभी अभिमतों से सहमत होते हुए दिखाई पड़ते हैं एवं काव्य में इनका स्थान भी दिया है ।

1· नयी कविता संवेदना और शिल्प - मंजुला पुरोहित - पृ· 51·

2· अस्तित्ववाद - (हेडगर) - डा· महावीर दाधीच - पृ· 69·

3· आत्मजयी - अज्ञेय - पृ· 5·

" महाप्रस्थान " में युधिष्ठिर को अपने आत्मीय सम्बन्धों के हनन होने की स्थिति में " मृत्युबोध " होता है । स्वर्गारोहण के दुर्गमपथ पर हर पग में उसको मृत्युबोध होने लगता है । उन्हें अपने शरीर के भिन्न अंगों के समान एक-एक करके सारे सम्बन्ध, आत्मीयता, बांधवता, रागात्मक संसार, सुगंधित स्मृतियां और इन सब का वहन करनेवाला यह व्यक्तित्व प्रतिक्षण इतिहास में विसर्जित होता दिखाई पड़ता है । प्रज्ञा पुरुष युधिष्ठिर मृत्यु के विराट नाटक की लीला को अच्छी तरह पहचानते हैं । वे ऐसी मृत्यु के संबंध में अर्जुन से कहते हैं —

" मैं जानता हूँ
इस दुर्गम स्वर्गारोहण में
मेरे अभिन्न अंगों की भाँति
एक-एक करके सारे सम्बन्ध
आत्मीय बान्धवता
रागात्मक संसार
सुगन्धित स्मृतियाँ
और इन सबको वहन करता
यह व्यक्तित्व
प्रतिक्षण
इस हिम में विसर्जित हो रहा है ।
मुझे मृत्यु के इस विराट नाटक की
पूर्ण प्रतीति है अर्जुन ! [1]

1· महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ· 110·

साधारणत: मानव प्रगति को रोकनेवाली सब से बड़ी बाधा शायद भय है, भय के रूप विविध तथा असंख्य होते हैं, वह अपने-आप में विरोध युक्त, तर्कहीन, अनुचित और प्राय: बुद्धि-संगत होता है । मृत्यु का भय सब प्रकार के भयों में सब से अधिक सूक्ष्म और हठी होती है । उसकी जड़े अचेतनात्मक में गहरी पैठी होती है और वहाँ से उन्हें उखाड़ फेंकना आसान नहीं होता । प्रत्यक्ष ही यह भय कई मिश्रित तत्वों से बना होता है , ये चीजे हैं - सुरक्षा की भावना, आत्म रक्षा की चिंता जिसका भाव होता है कि चेतना का सूत्र लगातार सुनिश्चित रूप से चलता रहें, अज्ञात के पीछे हटना, अप्रत्याशित और अचिंत्य से उत्पन्न उद्वेग और शायद इस सब के पीछे की गणुओं की गहराई में छिपी हुई यह सहज भावना काम करती है कि मृत्यु कोई ऐसी वस्तु नहीं जिससे बचा न जा सके और यह भी कि यदि कुछ शर्ते पूरी की जा सके तो उस पर विजय प्राप्त की जा सकती हैं, यद्यपि यह सत्य है कि स्वयं भय ही इस विजय के मार्ग में एक गहरी बाधा है । कारण, हम उसी पर विजय प्राप्त कर सकते हैं जिससे हम डरते नहीं और जो मृत्यु से डरता है वह पहले से ही मृत्यु के द्वारा विजित हो चुका है ।[1] यह विचारधारा कवि के अभिप्राय से मिलती-जुलती है । कवि के अनुसार मृत्यु व्यक्ति का सहचर बन कर रहता है । ऐसी स्थिति में उससे भयभीत होना व्यर्थ है । यह भय व्यक्ति की अज्ञानता का सूचक है । मृत्यु अपने पदचिह्न को न हिम, न आकाश और न किसी को छोड़े बिना सभी पर समान रूप से रखती है । हिम के व्याघ्र के समान संभावित मृत्यु अपनी दबे पैरों से सहयात्रा कर रही है । कवि मृत्यु को उदार सहयात्री मानकर निर्भय सहित उसपर विजय पाने का सन्देश देता है —

" हिम के व्याघ्र सी
सम्भावित मृत्यु —
कैसे दबे पैरो से सहयात्रा कर रही है ।

---

1. मृत्यु - अरविंद के लेखों से संकलित - पृ. 22.

मृत्यु अपना कोई पद चिह्न
न हिम
न आकाश
न समय किसी पर नहीं छोड़ती,
पर प्रत्येक के साथ
प्रत्येक क्षण सहयात्री है ।
ऐसे उदार सहयात्री से
भय कैसा पार्थ ? "[1]

मृत्यु अपने मन माने रूप में सामनेवाले को वंचित करने में सफल होती है । जब व्यक्ति उसके स्वरूप को पहचानने में असमर्थ हो जाता है तभी वह मृत्यु के जाल में फँस जाता है । "प्रार्थनापुरुष" में मंदिर जानेवाले गाँधीजी ने सामने खड़े हुए व्यक्ति को देखकर उन्हें साधारण आदमी सा समझा लेकिन देखते ही वह अनाम काल बनकर निकला है । उसने अपनी पिस्तौल से गाँधीजी पर गोलियाँ चलायीं । गाँधीजी के पास बहुत कम समय था । उस थोड़े समय में भी वे उस अवश्यम्भावी मृत्यु से घबरायें नहीं और अपने आप को पूर्णरूपेण होश में रखते हुए तथा साथ ही अपनी जीवनभर की साधना को पूर्णता प्रदान करते हुए "हे" राम कहकर संसार से बिदा ली —

"समझे मात्र व्यक्ति है सम्मुख
पर वह निकला काल अनाम
चली गोलियाँ, बापू बोले,
राम ! राम ! हे राम !! राम !!! "[2]

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 111 - 112.
2. प्रार्थनापुरुष - " - पृ. 63.

मृत्यु दो तरह की होती है - "एक तो स्वेच्छा देहत्याग और दूसरी साधारण मृत्यु।"[1] योगी लोग स्वेच्छा से देहत्याग करते हैं —

"थीं सुलग उठीं शबरी में
योगाग्नि पुण्य-ज्वालाएँ,
था दिव्य तेज उस मुख पर
सूरज की स्वर्ण - प्रभाएँ।"[2]

आज के विसंगतिपूर्ण जीवन में मृत्यु का भय व्यक्ति को सदा बना रहता है। परिवेशिक संत्रास को निरंतर झेलते हुए कभी-कभी तो वह मृत्यु को मुक्ति का साधन मानकर स्वीकार कर लेता है। जब व्यक्ति निर्भय होकर स्वच्छन्द मृत्यु को वरण करने के लिए तैयार होता है तब उसे अपने मार्ग को कोई भी भयावहता विचलित नहीं कर सकती। अपनी निर्भयता के द्वारा व्यक्ति अपने मन चाहे रूप को प्राप्त कर सकता है। युधिष्ठिर इसका प्रमाण है। वह अपनी प्रजा को किसी भी मूल्य पर अपने ही सम्राट के रूप के सामने विवश या विनत होते हुए नहीं देखना चाहते हैं। इसलिए स्वच्छन्द मृत्यु को स्वीकार करके अपने व्यक्ति रूप को त्यागकर निर्मल प्रकृति बनना चाहते हैं। स्वच्छन्द मृत्यु के लिए निर्भयता की आवश्यकता होती है। वास्तव में भय को निर्भयता से जितना भय होता है उतना और किसी से नहीं है। निर्भयता की स्थिति में व्यक्ति भय पर विजय पा सकता है तथा स्वच्छंद मृत्यु को प्राप्त कर मृत्युंजय हो सकता है। ऐसी स्वच्छन्द देहत्याग के बारे में युधिष्ठिर अर्जुन से इस प्रकार कहते हैं —

---

1. मृत्यु रहस्य - वेदाचार्य श्री वेणीराम शर्मा गौड - पृ. 7.
2. शबरी - नरेश मेहता - पृ. 92.

"मैं यहाँ
व्यक्ति से प्रकृति बनने ही आया हूँ पार्थ
इसीलिए
इस प्रजायात्रा की समस्त भयावहता भी
मुझे विचलित नहीं कर पा रही ।
मैं अपने इस प्रजारूप को
किसी भी मूल्य पर
अपने ही सम्राट रूप के सामने
बिकता या
विनत होते नहीं देख सकता था ।
पार्थ !
भय को निर्भय से
जितना भय लगता है
उतना और किसी से नहीं ।"[1]

मृत्यु के भयपर विजय प्राप्त करने की विधि व्यक्ति के स्वरूप या उनकी चेतना की अवस्थाओं के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है । जीवन की अमरता एवं नश्वरता जैसे अन्य रूपों से जो व्यक्ति पूर्ण परिचय प्राप्त करता है । वही मृत्यु भय से बच जाता है । ऐसे ही जब व्यक्ति अपनी परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करने में असमर्थ हो जाता है तब उसे इच्छाहीन मृत्यु प्राप्त होती है । यहाँ अर्जुन युधिष्ठिर जैसे भाई के वैचारिक सखा एवं पाण्डवों में मेरु दण्ड होकर भी वह कभी अपने जीवन में पुरुषार्थ की स्थिति से ऊपर नहीं उठ सके हैं । युधिष्ठिर ने समस्त स्थितियों से ऊपर उठकर कभी एकान्तिक मृत्यु को प्राप्त करने की संकल्प तो की है लेकिन अर्जुन ने अपने कर्मों के प्रायश्चित के रूप में अता-

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 112.

मायिक मृत्यु को प्राप्त किया है । युधिष्ठिर अर्जुन की असामायिक मृत्यु पर अपनी वेदना को यों व्यक्त करते हैं —

" मेरे वैचारिक सखा !
पाण्डवता के मेरु दण्ड !
ऐकान्तिक मृत्यु की तो कल्पना की थी
किन्तु
वह ऐसी अप्रत्याशित
असत्यी होगी नहीं जानता था ।
गाण्डीव - पुरुष !
तुम पुरुषार्थ से अमर नहीं उठ पाये ।
अत्या तुम चले गये !! " 1

जो निर्भय न बनकर, मृत्यु रहस्य को न जानकर मृत्यु-भय पर विजय प्राप्त करने में असमर्थ हो जाता है उन्हें स्वयं मृत्यु अपने अधीन कर लेती है । इसलिए कवि समाज से यही पूछना चाहता है क्या उसे उसी प्रकार नित्यप्रति गलते-घुलते हुए असमय ही मृत्यु को वरण करना होगा ?

जब व्यक्ति अधैर्य होकर भय का दास होता है उन्हें हर पग में मृत्यु का आभास होता है । " स्वाहापर्व " के अंत में महाशक्तिशाली भीम चलने में असमर्थ होते हैं । उसकी सारी देह हिममय हो रही है । हिमालय बँधा हुआ प्रतीत होता है। मृत्युबोध की स्थिति में भीम इस प्रकार बोलने लगते हैं —

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 113.

"मैं
मैं कहाँ हूँ ??
शयनकक्ष के दीपक क्यों बुझे हैं ?
दासी ! गवाक्ष खोल दो
श्वास अवरुद्ध हो रहा है
....
....
अब नहीं !! "[1]

इस तरह भीम को भी अपनी मनः स्थिति के कारण असमयिक मृत्यु को स्वीकार करना पड़ा।

इस प्रकार कवि अपने काव्यों में मृत्यु की स्वच्छन्द एवं असामयिक स्थितियों पर अपना विचार प्रस्तुत किया है। मृत्यु को मानव का सहचारी मानकर उसके सकारात्मक रूप का स्वागत किया है। मृत्यु की सम्भावना के प्रति श्रद्धा व्यक्त की गयी है। मानव को अपने अस्तित्व को पहचानकर मृत्यु-भय पर विजय प्राप्त करने का सन्देश दिया है। निर्भय बनकर स्वच्छन्द मृत्यु को स्वीकारने की दिशा में व्यक्ति स्वयं प्रकृति बनने का निरूपण किया है। जीवन में मृत्यु की अनिवार्यता के बारे में श्री अरविन्द कहते हैं कि - "जड़ द्रव्य की चेतना में पूर्णता और प्रगति की आवश्यकता जगाने के लिए मृत्यु एक अनिवार्य साधन है। इस के बिना प्राणी जिस अवस्था में है उसी में अनंत काल तक संतुष्ट बना रहता है।"[2]

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 116.
2. मृत्यु - अरविन्द के लेखों से संकलित - पृ. 1.

7. समाजवाद :-

समाजवाद एक आर्थिक और राजनैतिक सिद्धान्त अथवा बहुत से सिद्धांतों का सम्मिश्रण है जिनका समाज के अस्तित्व और संगठन से संबन्ध है ।[1] वास्तव में समाजवाद वह आंदोलन है जो पूँजी और भूमि में व्यक्तिगत सम्पत्ति का अन्तकर और व्यक्तिगत जोखिम और स्पर्धा की इतिश्री करके, उन्नति के अवसरों में समानता स्थापित करना चाहता है , जिससे शोषण बन्द हो जाए और आर्थिक दशाओं को भीषण विषमता का लोप हो जाए ।[2] इस प्रकार समाजवाद भूमि, उद्योग, बैंक, यातायात तथा संचार के साधन आदि राष्ट्रीय सम्पत्ति पर राज्य या समाज के स्वामित्व का समर्थन करता है, आय के न्यायपूर्ण वितरण पर बल देता है तथा वह चाहता है कि समाज में लिंग, जाति, प्रजाति, वर्ग, धर्म आदि के आधार पर किसी का भेद भाव न हो ।

समाजवादी समाज के हर नागरिक को स्वतंत्र देखना चाहते हैं । इसके लिए आवश्यकता पड़ने पर राज्य पर अंकुश लगाने का समर्थन करते हैं । राज्य के अन्याय, असमानता और विशेष सुविधाओं का अन्त करना चाहते हैं । नरेश मेहता ने भी अपने काव्यों में इस समाजवादी विचारधारा को व्यक्त किया है । कवि राज्य व्यवस्था के दोषों के लिए व्यवस्थापक को दोषी नहीं मानते हैं क्यों कि व्यवस्था का स्वरूप ही ऐसा होता है । इसलिए व्यवस्था का मुकुट धारण करते ही मनुष्य का मनुष्यत्व ही नष्ट हो जाता है । कवि इसे स्वाभाविक मानता है । इसलिए वह राज्य व्यवस्थाओं के उन अधिकारों को समाप्त करके समाज में सभी को समान अधिकार प्राप्त करने की आकांक्षा करता है । उदाहरण

---

1. इन्साइक्लोपीडिया आफ रेलिजियन एण्ड एथिक्स - मुल्लर वाल्यूम - XI - पृ. 634.

2. समाजवाद की रूपरेखा - श्री अमरनारायण अग्रवाल - पृ. 20.

के लिए अपने आरम्भिक स्वरूप में ही इस राज्य व्यवस्था ने द्रोण के स्वतंत्र व्यक्तित्व को छीनकर उस परम मेधावी को अपना एक क्रीत दास बनाया है। ऐसे ही राजवंशी होकर भी राज्य के कृपापात्र नहीं होने के कारण उस परम भागवत विदुर का चरित्र अर्थहीन बन कर रह गया है क्यों कि हरेक व्यवस्था के पास बघनखों के रूप में अनेक विशेष अधिकार होते हैं। इसलिए कवि ऐसी राज्य व्यवस्थाओं के प्रति अपने संदेह को व्यक्त करते हुए कहता है —

" आज जब कि
राज्य-व्यवस्था का यह आरम्भ है
और आरम्भ में ही
स्वतन्त्रचेता द्रोण की आहुति दे दी गयी ।
अपने षड्यन्त्रों
कुचक्रों में सहयोगी बनाकर
राज्य ने उस मेधावी को
एक क्रीतदास से अधिक
कोई महत्व नहीं दिया ।

x x x

अकेला दुर्योधन ही
दुर्विनीत नहीं था अर्जुन !
व्यवस्था का मुकुट धारण करते ही
किसी भी व्यक्ति का
मनुष्यत्व नष्ट हो जाता है !! "[1]

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 108 - 109.

कवि भी अन्य समाजवादियों के समान समाज को व्यक्ति के लिए आवश्यक और व्यक्ति से अधिक महत्वपूर्ण मानता है । इन दोनों के हितों में संघर्ष हो तो सामाजिक भलाई को प्रधानता देना उचित समझता है । इन दोनों के अन्योन्याश्रित संबंधों के बारे में यों कहते है —

" समाज अमूर्त होता है
व्यक्ति नहीं,
और व्यक्तियों के मूलतत्व को कुचल दोगे
तो वन
गन्धमादन कैसे बन पायेगा पार्थ ? " [1]

समाजवाद राज्य की तुलना में समाज की सुरक्षा पर बल देता है । समाजवाद के अनुसार - समाज राज्य के नहीं धर्म के नियमों पर आधारित होता है । अपने अस्तित्व की सुरक्षा के लिए राज्य पर अंकुश बनाये रखने के लिए धर्म और विचारों की स्वतंत्रता होना चाहिए —

" राज्य के नहीं
धर्म के नियमों पर समाज आधारित है ।
राज्य पर अंकुश बने रहने के लिए
धर्म और विचार को
स्वतन्त्र रहने दो पार्थ !
अन्यथा यह समाज
रहने के योग्य नहीं रह जायगा । " [2]

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 99.
2. - वही - पृ. 97.

समाजवाद सामाजिक न्याय को सभी को समान रूप से दिलाना राजा का कर्तव्य समझता है —

" राजा को
न्याय को समग्र मानवता के
विशाल परिप्रेक्ष्य में ही देखना चाहिए । " [1]

समाजवाद समाज या राज्य की ओर से होनेवाले आर्थिक शोषण को समाप्त करना चाहता है और जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं को जुटाना अपना लक्ष्य घोषित करता है । कवि ने इस के लिए द्रोणाचार्य जैसे पात्र का सहारा लेकर उनके माध्यम से इस समस्या का विवेचन किया है —

" अभिमन्यु का सामूहिक वध
तथा युद्ध के अनेक अनाचार
द्रोणाचार्य अपनी आँखों से देखने के लिए
विवश
क्यों ?
इसलिए कि राज्य
उनका भरण-पोषण कर रहा था ।
कितना बड़ा मूल्य
एक विवेकवान को चुकाना पड़ा सव्यसाची । " [2]

1· प्रवादपर्व – नरेश मेहता – पृ· 41·
2· महाप्रस्थान – " – पृ· 107·

कवि अपनी समाजवादी विचारधारा के अनुसार समाज में जाति, लिंग और धर्म आदि पर होनेवाले संकुचित भेदभावों को शबरी के संवाद के माध्यम से समाधान देना चाहते हैं —

" अन्त्यज अछूत, फिर शबर जाति
उस पर स्त्री, क्या हेतु कहूँ ?
अध्यात्म-पिपासा लेकर मैं —
आयी हूँ, कैसे बात कहूँ ? " [1]

समाजवाद सम्प्रदाय के नाम पर होनेवाले अत्याचारों को दूर करके सम-समाज की स्थापना करना चाहता है —

" चाकू-भाले दिखला-दिखला
था जिसने किया मुस्लिम बनने
क्या सवाल था शादी का
हिन्दू थी, डाल लिया घर में । " [2]

8• मानववाद :-

मानववाद मानव-स्वातंत्र्य का दर्शन है । उसकी बुनियादी आस्था है कि मनुष्य सभी चीजों का प्रतिमान है, मनुष्य अपना साध्य स्वयं है तथा किसी अन्य महत्तर ध्येय की प्राप्ति का साधन नहीं है । [3] मानव कल्याण को लक्ष्य

1• शबरी - नरेश मेहता - पृ• 29•
2• प्रार्थनापुरुष - " - पृ• 59•
3• नवमानववाद - स्वातन्त्र्य और लोकतंत्र का दर्शन - वी•एम•तारकुण्डे -पृ• 1•

करके उद्भूत यह विचारधारा मनुष्य को सृष्टि का केन्द्र मानती है । प्राचीन काल में ईश्वरीय शक्तियों के सामने मनुष्य अपने को अकिंचन समझता था । उस समय मनुष्य की दृष्टि धार्मिकता से अनुशासित थी लेकिन बाद में मनुष्य को यह विश्वास होने लगा कि ईश्वर नहीं मनुष्य ही उसका विधाता है । अपने संसार को बनाने-बिगाड़नेवाला मनुष्य ही हैं । इस प्रकार " पारलौकिक मूल्यों के स्थान पर इहलौकिक लक्ष्यों को प्रमुखता देनेवाली विचारधारा को मानववाद के नाम से अभिहित किया गया ।

पहले " ह्यूमनिज़्म " के लिए " मानवतावाद " शब्द प्रयुक्त होता रहा । आगे मानववाद शब्द भी प्रयुक्त हुआ । इन दोनों शब्दों के बीच के अंतर पर भी कुछ समीक्षकों का ध्यान पड़ गया । एक दृष्टिकोण यह भी है कि मानवतावाद मनुष्य को धार्मिक मूल्यों से सम्बन्धित है अर्थात् मानवतावाद धर्म, सम्प्रदाय, ईश्वर एवं देवताओं की सीमा क्षेत्र में समविष्ट होता है । इसके सम्बन्ध में डा॰ नवलकिशोर लिखते हैं — ईसा को दिव्य न मानकर मनुष्य मानना ईसाई मत में " मानवतावाद " कहलाता है । हिन्दू अवतारों को महापुरुषों के रूप में कल्पित करना भी इसी प्रकार का मानवतावाद कहा जायगा । किन्तु इस शब्द का सामान्य व्यवहार मानव सेवा के आधार-परक अर्थ में होता है । "[1] मानववाद में कोई विराट महापुरुष नहीं सामान्य जन ही सब मूल्यों का अन्तिम निर्णायक होता है । मानववाद में मनुष्य ईश्वर से सम्पृक्त नहीं रहता ।

मनुष्य का लौकिक सुख और कल्याण ही मानववाद का मूलभूत लक्ष्य है । मानववाद मानवहित की वकालत करता है । मानववादी विचारधारा का उद्देश्य एक ऐसे विश्व का निर्माण करना हैं जिसमें मनुष्य की समानता हो,

---

1· मानववाद और साहित्य - डा· नवल किशोर - पृ· 2·

मनुष्य का प्रमाण मनुष्य ही हो, गरीबी का उन्मूलन हो, और लोगों को भोजन, वस्त्र, निवास आदि की सुविधा हो, सामाजिक,आर्थिक, राजनैतिक, बौद्धिक और भावात्मक स्वतंत्रता का उपभोग हो और इस प्रकार एक नयी मानव संस्कृति का उदय हो ।

भारतीय भाषाओं में मानववाद के आधुनिक रूप का विकास पाश्चात्य संपर्क के उपरांत हुआ है । रूसो, रस्किन, टालस्टाय, श्वाइत्जर, कार्ल मार्क्स एडलर, युंग, रसेल, सार्त्र आदि पाश्चात्य विचारकों ने इस सम्बन्ध में विचार - विमर्श किया है । राजा राममोहनराय, दयानंद सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, टैगोर, महात्मागांधी, डा॰ राधाकृष्णन आदि दार्शनिकों ने भी इस पर सोच-विचार किया है ।

आधुनिक युग मानववादी चेतना से सम्पन्न है । वैज्ञानिक और दार्शनिक उपलब्धियों के फलस्वरूप प्राचीन मूल्यों का विघटन हो गया है और नवीन मूल्यों की स्थापना हुई है । आज सभी मनुष्य के तौर-तरीके एवं रीति - रिवाज सभी मनुष्यों की चेतना के अंग बन गए हैं । मनुष्य,मनुष्य का दर्शक बन गया है । एक नूतन मानववाद का उदय हो रहा है ।

नरेश मेहता के काव्यों में भी इन मानववादी प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया गया है । 'नहि मनुष्यात् श्रेष्ठतरम् हिं किंचित " महाभारत की यह उक्ति कवि के मानववादी चिन्तन का केन्द्र बिन्दु रही है । मानवीय गरिमा में दृढ आस्था एवं मानवीय महत्ता मानववादी चिंतन एवं प्रस्थान बिन्दु रही है । उनके काव्यों में इस विचारधारा की अभिव्यक्ति सर्वत्र मिलती है । " महा - प्रस्थान " में मानवीय गरिमा को जीवन के यथार्थ के संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है ।

काव्य में युधिष्ठिर साम्राज्य से बढ़कर अनाम मनुष्य को महत्वपूर्ण मानता है। मनुष्य में विराट देवता के प्रति अपनी मानववादी आस्था को व्यक्त करते हुए भीम से कहते हैं —

" किसी भी साम्राज्य से बड़ा है
एक बन्धु
एक अनाम मनुष्य !!
मुझे मनुष्य में विराट देवता में
सदा विश्वास रहा है। "[1]

इसी क्रम में " महाप्रस्थान " में सामाजिक परिप्रेक्ष्य में मानवीय गरिमा को युधिष्ठिर द्वारा यों उजागर किया गया है —

" समाज अमूर्त होता है
व्यक्ति नहीं

x x x

फूल का एकाकीपन
अरण्य की सामूहिकता की शोभा है
विरोधी नहीं। "[2]

" प्रजापर्व " में राजा एवं राज्य-व्यवस्थाओं के स्वरूप के विवेचन के माध्यम से मानवीय स्वतंत्रता को प्रतिस्थापित किया गया है, जो आगे चलकर मानवीय अस्तित्व की महिमा को प्रतिपादित करने में सहायक हुई है —

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 86.
2. - वही - पृ. 99 - 100.

" नहीं
नहीं राम !
इतिहास को भी वनस्पतियों की भाँति
सम्पूर्ण मेदिनी की
शोभा और गन्ध होने दो,
उसे मानवीय अभिव्यक्ति का
औपनिषदिक पद दो,
व्यक्ति मात्र को
इतिहास से परित्राणित होने दो,
क्यों कि
इतिहास —
मानवीय विष्णु की कण्ठ भी
वैजयन्ती है । " 1

ऐसे ही कवि कर्मशीलता के महत्व को प्रतिपादित करता है । वह कर्म को मानव-वादी दर्शन का सार मानता है । इसी कर्मशीलता के औन्नत्य को लघुमानव की संघर्ष एवं आस्था से जोड़कर राम के नियतिवाद के विरोध में लक्ष्मण द्वारा स्पष्ट किया गया है —

" कितने ही लघु हों
इससे क्या ?
सार्थक हैं ।
स्वत्व है हमारा
कर्म — " 2

1· प्रवादपर्व — नरेश मेहता — पृ· 33· — 34

2· संशय की एक रात — नरेश मेहता — पृ· 14·

कवि अपने मानवतावादी चिंतन के अनुरूप " महाप्रस्थान " में द्रौपदी पात्र के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त किया है । काव्य में उसकी भूमिका संक्षिप्त है । फिर भी मानवीय मूल्यों को उभारनेवाली दाम्पत्य जीवन के संदर्भ में उसका यह कथन मानवीय सामर्थ्य को ही प्रस्तुत करता है —

" अपनी कृष्णा की हिम-परीक्षा ले रहे हो ?
पार्थ !

x x x

और ऐसी परीक्षा के बाद
नारी
पुरुष के लिए अप्राप्य हो जाती है । "[1]

घृणा के सिद्धांत के आगे व्यक्ति का कोई महत्त्व नहीं होता है । उसके सामने मानवता एवं करुणा का कोई अर्थ नहीं होता है । इसलिए कवि ने ऐसी स्थिति से ऊपर उठकर मानव एवं मानवता की सुरक्षा के लिए प्रयत्न करने की आवश्यकता को निम्न उद्धरण के द्वारा स्पष्ट किया है —

" व्यक्ति नहीं होता है जो
होता सिद्धान्त घृणा का है
अर्थ नहीं कुछ उसके आगे
मानवता-करुणा का है । "[2]

1· महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ· 75·
2· प्रार्थना पुरुष - " - पृ· 58·

वर्तमान युग में सामाजिक दृष्टि से शूद्रा को मानवाधिकारों से वंचित रखना अनुचित माना गया है । मतंग ऋषि समाज का ध्यान इस ओर आकृष्ट करते हुए यहीं सिद्ध करना चाहते हैं —

" क्या धर्मतत्त्व से ऊँची
है वर्णाश्रम मर्यादा ?
तब व्यर्थ तपस्या पूजन
यह गंगा भी है शूद्रा । " [1]

इस तरह कवि अपने काव्यों के माध्यम से हरतरफ से मानव अस्तित्व की सुरक्षा पर बल देता है जो उनके मानववादी चिन्तन का केन्द्र है । अतः मानववाद वह जीवन दर्शन है जो मानव को दिव्य गुण सम्पन्न बनाकर उन्हें लोककल्याण कारक बनाने की ओर सक्रिय करता है ।

9· अपमान-बोध :-

मानक हिन्दी कोशकार ने अपमान को इस प्रकार व्याख्यायित किया है – अपमान [पु·सं·] अप मा शब्द ; मान [+ ल्युट – अन] । अभिमान और उद्दण्डपूर्वक किया जानेवाला वह काम या कही जानेवाली वह बात जिससे [अपनी या किसी की प्रतिष्ठा या सम्मान कम होता है अथवा वह उपेक्ष्य या तुच्छ ठहरता हो । किसी का आदर या इज्जत घटानेवाला काम या बात [डिस्ग्रेस, इन्सल्ट] 2· तिरस्कार 3· दुत्कार । " [2] अपमान प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दो प्रकार से हो सकता है इसके अतिरिक्त परिवेश एवं स्थितियाँ भी अपमान

1· शबरी – नरेश मेहता – पृ· 59·

2· मानक हिन्दी कोश – राम चन्द्र वर्मा – पृ· 127·

का बोध करवा सकते है । स्वातंत्र्योत्तर युग में लघुताबोध, उपेक्षा एवं तुच्छता का भाव, " अपमान-बोध " की परिणति है । अपमान भी इसका कारक हो सकते है कि- आक्रमण तथा संघर्ष के मूल में इसकी अवस्थिति रहती है । छोटे-छोटे झगड़ो [शक्ति का हो या समुदाय] का आधार अपमान रहा होगा । भले ही इसमें उपेक्षा, हीनता, तुच्छता और घृणा का भाव अधिक प्रत्यक्ष रहा हो । इसलिए संघर्ष, आक्रमण [युद्ध] के मूल में यह भाव प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से अवश्य रहता है ।[1]

अपमान बोध का विस्तृत आयाम है । इसमें समाहित की जा सकनेवाली मनोवृत्तियाँ एवं स्थितियाँ अनेक होती हैं — ईर्ष्या, द्वेष, कुण्ठा, भय, ग्लानि, उदासी, क्षेभ, आत्महत्या आदि । अपमान प्रतिशोध का जन्म देता है तथा संघर्ष एवं युद्ध इसकी परिणति है । समकालीन हिन्दी काव्यों में अपमान-बोध की अभिव्यक्ति इन्हीं संदर्भों में हुई है । सामान्यत: अधिकांश काव्यों की प्रासंगिकता का संघर्ष सूत्र अपमान बोध से जुड़ा है ।

नरेश मेहता के काव्यों में भी अपमान-बोध की अभिव्यक्ति हुई है । कवि भी अपमान को युद्ध और संघर्ष का मूल कारण मानता है । " संशय की एक रात " का आधार भी राम-रावण का संघर्ष ही है । इस युद्ध की पृष्ठभूमि में लक्ष्मण ने शूर्पणखा की नाक काट दी । यह रावण के लिए अपमान की बात बन गई । यहीं से उनके बीच संघर्ष की भूमिका तैयार हुई । फलत: रावण ने सीतापहरण करके राम के सामने प्रतिशोध की भावनाओं को पनपाया । रावण पीड़ित प्रजा के लिए उनसे प्रतिशोध लेने के लिए अब सीता माध्यम बन गई है । इसलिए ही हनुमान सीता को अपनी अपहृत स्वतंत्रता का प्रतीक मानकर युद्ध

---

1. नयी कविता की नाट्य मुखी भूमिका - हुकुमचंद राजपाल - पृ. 54.

के लिए सन्नद्ध होते हैं । इसी क्रम में विभीषण भी रावण द्वारा अपमानित हुए हैं । वह भी राम के साथ मिलकर रावण के अत्याचारों का अंत करने केलिए तैयार होते हैं । लेकिन राष्ट्र के हित चिन्तनमें पड़कर, राष्ट्र के प्रति नागरिक के रूप में अपने कर्तव्य के बारे में सोचकर, युद्ध के प्रति संघर्ष और अनिर्णय की स्थिति का अनुभव करते हैं । वह अपने मानसिक द्वन्द्व को राम के सामने यों व्यक्त करते हैं —

" द्वन्द्व
मुझ में भी कहीं पर है,
x x x
मुझ में भी अनिर्णय है ।
x x x
मैं भी युद्ध की अनिवार्यता को मानता हूँ
किन्तु
अपने राष्ट्र के प्रति
क्या यही कर्तव्य है मेरा
उस पर हो रहे
इस आक्रमण में साथ दूँ ? "[1]

इस प्रकार " संशय की एक रात " में पूर्व घटनाओं के द्वारा अपमान-बोध को व्यक्त किया गया है । " प्रवादपर्व " में राम सीता से इसी अपमान-बोध के बारे में रावण से प्रजा के प्रतिशोध लेने के बारे में परिचय देते हैं ।[2] " महा -

---

1. संशय की एकरात - नरेश मेहता - पृ. 72.
2. प्रवादपर्व - " - पृ. 49.

प्रस्थान " में द्रौपदी द्वारा दुर्योधन का अपमान " महाभारत " युद्ध का कारण बन गया है । इसके साथ विभिन्न लोगों के अपमानों के प्रतिशोध के रूप में यह युद्ध हुआ । अर्जुन द्वारा कर्ण का अपमान, द्रुपद द्वारा द्रोण का अपमान इसी क्रम में द्रष्टव्य है । भीम द्वारा दुर्योधन का जंघा प्रहार और दुःशासन के हृदय का रक्तपान आदि " अपमान जनित प्रतिक्रियाएं ही हैं । " द्रौपदी द्वारा अपमानित दुर्योधन प्रतिशोध के रूप में उसे भरी सभा में अपमानित करना चाहता है इसे पाण्डव विशेष कर भीम अपना अपमान समझकर प्रतिज्ञा करते हैं । इससे हम यह कह सकते है कि संसार में हुए संघर्षों का प्रमुख कारण अपमान-बोध ही है तथा यह अपमान-बोध उन्हें प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्षदोनों रूपों में हुआ होगा । महाभारत युद्ध इसका एक प्रत्यक्ष प्रमाण है । अपमान-बोध से पीड़ित व्यक्ति की मानसिक दशा का चित्रण यहाँ द्रष्टव्य है —

" आहत तन
अपमानित मन के भीम
सदा इस पाण्डवता की
वज्र सरीखी देह रहे हैं ।
पर [illegible] व्यर्थ गया
वह दुर्योधन की जंघा पर करना प्रहार
केवल ललाट पर लगा रहा
उस ओर अनैतिकता का
लांछन
क्या हुआ दुःशासन के
हृदय-रक्त का पान ?
हुआ मन शान्त ?
नहीं

आज भी गरल सरीखा
कण्ठ जल रहा
तेरह वर्षों का वनवास काल —
अपमान, दुःख औ' घोर यातना ।
दुर्योधन, दुःशासन के वे सारे छलबल
स्वयं भीम की गदाशिक्ति
औ' पार्थ गजबल । " 1

अतः यह कहा जा सकता है कि नरेश मेहता के काव्यों में अपमानबोध, विद्वेष ग्लानि, प्रतिहिंसा एवं युद्ध के रूप में प्रतिफलित हुआ है । संदर्भ पौराणिक है किन्तु, आज के व्यक्ति की ग्लानि, कुण्ठा, प्रतिहिंसा, विद्वेष आदि मानवीय मनोवृत्तियों के इसी पक्ष को समीक्ष्य काव्यों में पुरावृत्तों के माध्यम से सार्थक अभिव्यक्ति प्रदान कर सका है ।

10· संशय :-

"एक ही धर्मी में परस्पर-विरुद्ध धर्मद्वय-प्रकार-ज्ञान को संशय कहा जाता है । तात्पर्य यह है कि एक ही धर्मी में परस्पर विरुद्ध दो धर्मों की सत्ता तो असम्भव है, परन्तु [संशय-प्रयोजक परिस्थिति में] एक ही पदार्थ में परस्पर विरुद्ध दो धर्मों का एक ही साथ ज्ञान हो [अर्थात् एक ही ज्ञान के विषय में यदि दो विरुद्ध धर्म हो] तो उस अनिश्चयात्मक परस्पर-विरुद्ध-पक्षोल्लेखि-ज्ञान को संशय कहा जाता है । परस्पर विरुद्ध धर्मों का स्पष्ट उल्लेख होना ही चाहिए । संशय में यदि स्पष्ट उल्लेख नहीं है तब तो उस ज्ञान को अनध्यवसाय कहा जाएगा । " 2

1· महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ· 41·
2· वैशेषिक दर्शन एक अध्ययन - श्री नारायण मिश्र - पृ· 152·

नरेश मेहता के काव्यों में यही संशय युगीन समस्याओं को व्याख्यायित करने के संदर्भ में व्यक्त हुआ है । कवि दो परस्पर विरोधी तत्वों के माध्यम से इस संशय की सार्थकता को स्पष्ट करता है । उन्होंने एक ओर अपने संशय के माध्यम से युगीन सत्यान्वेषण के लिए प्रयत्न किया है तो दूसरी ओर उसी युगीन यथार्थ के प्रति अत्यन्त गहनता से गंभीर विचार प्रस्तुत किया है । " संशय की एक रात " में राम के माध्यम से इस संशय की सार्थकता को स्पष्ट किया गया है । राम व्यष्टि और समष्टि के द्वन्द्व, आस्था और अनास्था, युद्ध या शान्ति से सम्बन्धित संकल्प और विकल्प के टकराव से उत्पन्न संक्रमण जनित संशयात्मक स्थितियों से यथार्थबोध को पाठकों को कराते हैं । काव्य में नायक राम आधुनिक प्रज्ञा के प्रतीक बनकर अपने संशय के माध्यम से युगीन सत्यान्वेषण के लिए पूरे युग को बाध्य करते हैं । युगीन समस्याओं के समाधान ढूँढने के प्रयत्न में संशय-बोध की सार्थकता को स्पष्ट करते हैं । लक्ष्मण अपने संशय को छोड़कर मार्ग में मिलनेवाले समस्त सुविधाओं और असुविधाओं का सामना करते हुए चलने में ही मानव जीवन की सार्थकता निहित मानते हैं। उनके अनुसार - हमें निरंतर चलते रहना चाहिए । मार्ग में हमें तीर्थ मिले, चामर की चाह मिले या पलकों में काँच धँसे, प्यास से दम तोड़े फिर भी हमें शत्रुओं से जीवनहित युद्ध करना चाहिए । लक्ष्मण राम का संशय का समाधान देने के प्रयत्न में उनसे कहते हैं —

" हम केवल चलते हैं

* * *

चीलों से
आखिर तक
युद्ध करें जीवन हित " ।

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 15.

आधुनिक युग की सबसे बड़ी समस्या युद्ध है । सदियों से मानव इसका समाधान ढूँढने में इससे बचने में असमर्थ हो रहा है फिर भी वह अपने युग में शांति स्थापना करने के लिए प्रयत्न करता ही रहा है । इस दिशा में उनका अन्वेषण निरंतर चलता ही रहा है । कवि राम में संशय का आरोप करके उनके द्वारा अस्तित्व की खोज में निकले मानव की समस्याओं के अन्तर्द्वन्द्व को उभरा है । आज का मानव हरतरफ समस्याओं के जाल में फँसा हुआ है । अपनी स्थिति से उभर उठने के प्रयत्न में वह छटपटा रहा है । राम का संशय ऐसी यथार्थ की खोज में प्रत्यंचा साधे खड़ा हुआ है ।

" संशय की एक रात " में संशय जहाँ यथार्थ की सार्थकता को खोजती है तो " महाप्रस्थान " में उसका सम्बन्ध राज्य व्यवस्था एवं उस व्यवस्था के अमानवीय कृत्यों से है । युधिष्ठिर राज्य व्यवस्थाओं के स्वरूप के माध्यम से अपने संशय को व्यक्त करते हैं । इसके सम्बन्ध में वे अर्जुन से इस प्रकार कहते हैं —

" आज, नहीं तो कल
राजा से अधिक कठोर हो जाएँगे
वे राज्य —
और सुदूर भविष्य में
राज्य से भी अधिक अमानवीय हो जाएँगी
वे राज्य-व्यवस्थाएँ । " 1

" प्रवादपर्व " में यही संशय मानव जीवन की सार्थकता को खोजने के संदर्भ में राम के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है —

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 95.

" कर्म के बाणों को वहन करने के लिए
पात्र या अपात्र
दिशा या अदिशा में सन्धान करने के लिए
केवल साधन है
मनुष्य
क्या केवल साधन है ?
क्या केवल माध्यम है ?? "।

राम आधुनिक प्रज्ञा का प्रतीक है । लक्ष्मण किंकर्तव्य विमूढ चेतना की जागृति का प्रतिनिधित्व करते हैं । सीता के व्यक्तित्व से जुड़ी हुई समस्या राज्य के सभी के मानस को कल्लोलित करने लगती है । राम ऐसे संघ को इतिहास-बोध से संस्पर्शित करते हुए स्वागत के संघर्ष के माध्यम से व्यक्त करते हैं —

" बारम्बार एक ही नाटक
व्यक्ति के जीवन में दुहराया जाता है ।

x x x

एक निष्णात त्रासदी
जिसके गौण पात्र
स्थान, सन्दर्भ बदल गये हैं
परन्तु
मुख्य पात्र
वह तीनों हैं —
राम, सीता और लक्ष्मण !!

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 20.

किस महोत्सव के अवसर पर
किस प्रयोजन पर
यह त्रासदी झेली जा रही है
कोई नहीं जानता राम !!
कोई नहीं !! "[1]

11. संत्रास :-

त्रास या संत्रास आज के जीवन में बहुपलब्ध है । साहित्य में आत्यन्तिक रूप से इसका आगमन गत दो विश्व युद्धों की देन है । अतः पश्चिमी साहित्य में इसकी सर्वप्रथम अभिव्यक्ति हुई है । हेडगर के अनुसार - सत्य के अभिव्यक्त वस्तु की ओर यह दौड़ मनुष्य में संत्रास उत्पन्न करती है । वह अपने को सत्य और सम्भावना से अलग मानता है - क्यों कि उसे ऐसा महसूस होता है कि उसका सत्य ऐसा है कि उसकी वस्तुगतस्थिति, व्यवस्था और समूहगत लोसता को विशृंखल कर देता है । समूह और वस्तु से टूटने की आशंका उसमें संत्रास उत्पन्न करती है तो दूसरी ओर सत्व से च्युत होने की अनुभूति भी संत्रास का कारण है । अपने अवास्तविक अस्तित्व के निवैयक्तिक रूप में निजी अस्तित्व को छिपाने की प्रेरणा त्रास (डैड) से उत्पन्न होती है । त्रास का स्पष्टीकरण करते हुए वे कहते हैं कि - त्रास का मुख्य अर्थ वह भय है जो किसी एक स्थान पर पकड़ में न आ सके किसी ऐसी वस्तु से भी सम्बद्ध न हो सके जहाँ भय की आशंका हो । भय मूलतः जगत में होने के भाव का पर्याय है और त्रास हमें संसार से काटकर एकान्त में जाने को विवश करता है ।[2] मानक - हिन्दी कोश में त्रास को भय माना गया है -- त्रास एक ऐसा भय है जिसमें

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 111.
2. अस्तित्ववाद (हेडगर) - डॉ. महावीर दधीची - पृ. 47 से उद्धृत

विरुद्धअनिष्ट हानि, क्षति की आशंका होती है ।[1] इसके अन्य अर्थ में संत्रास शब्द के लिए" हण्डी मिडेशन " शब्द का प्रयोग किया गया है । वस्तुत: संत्रास एक प्रकार के भय से भिन्न भय, वेदना, मानसिकवेदना, विभीषिका की समन्वित मनःस्थिति है ।

भारतीय साहित्यशास्त्र " त्रास " की चर्चा भाव के रूप में करता रहा है किन्तु आज विश्वयुद्धों पश्चात् एवं युद्ध होने के आशंकाओं के कारण संत्रस्त है । आज का व्यक्ति निराशा, भय एवं आतंक मिश्रित भावों के बोध जी रहा है । संत्रास-बोध व्यक्ति में उसके अस्तित्वबोध पर निर्भर करता है । अमृतराय के अनुसार - अब प्रश्न है कि क्या यही (परिवेशगत) घुमड़न, आक्रोश, असंतोष, तनाव, संत्रास है ? आप के अनुसार नहीं क्यों कि आप ने संत्रास का अर्थ " टेरर ही लिया है या इसी टेरर से संत्रास निकला ? किन्तु, मैं कहना चाहता हूँ कि अपने आप में इसी घुमड़न, इसी आक्रोश, इसी तनाव और इसी असंतोष की सहेल है ।[2]

नरेश मेहता के काव्य में इसी संत्रास की अभिव्यक्ति " महाभारत " युद्धोपरांत की युगीन मानसिकता के माध्यम से व्यक्त होती है । पाण्डवों की जयता के प्रति किसी में संतोष का आभास नहीं है । सर्वत्र उजाड़ता व्याप्त है । सम्पूर्ण साम्राज्य तथा प्रजा के मन पर इसका प्रभाव दिखाई पड़ता है । युद्ध से शेष बचे लोग भी निर्जीव होते रहे हैं । उनकी आँखों के जरिए से युगीन त्रासदी यों स्पष्ट होने लगी है —

" यह राज्यारोहण था
या था शवसाधन
कापालिक का ?

1· मानक हिन्दी कोश (सं) - रामचन्द्र वर्मा - पृ· 209·
2· आधुनिक भावबोध की संज्ञा - अमृत राय - पृ· 127·

कैसी उजाड़ता
नगर-पुरों-महलों-मेहराबों
लोगों के मुख पर भी
लिखी हुई ।
पाण्डवता की जयता के प्रति
कैसा ठण्डा स्वागत था ।
उन शेष बचे लोगों को
त्रासद आँखों में —
जैसे प्रणम्य हो । "[1]

त्रास भय से निकटतर है । इसको भय का अन्तर्स्थापन या आन्तरिक जगत का भय भी कह सकते हैं । दोनों ही आगत दुःख से सम्बन्धित है, भय में जहाँ दुःख से पलायन की वृत्ति जाग करती है वहाँ त्रास में दुःख अन्तर को सालता रहता है । भय का कारण, स्थान और लक्ष्य निश्चित और ज्ञात होता है । त्रास का मूलकारण अज्ञात भय की आशंकाएँ और संभावनाएँ हैं जिनकी अनुभूति संत्रस्त मनुष्य को होती है । इस प्रकार महाप्रस्थान में संत्रास युद्ध के परिणामों को भोगनेवाली युगीन मानसिकता के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है ।

12. कर्मवाद या कर्मवादी जीवन-दर्शन :-

संसार को कर्मभूमि कहा जाता है । कर्म में मनुष्य का अस्तित्व निहित है । क्षण भर के लिए आदमी कर्मविरत नहीं हो सकता है । गीता में इस कर्म को अत्यंत महत्व दिया गया है —

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 43.

" नहि कश्चित क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत
कार्यते ह्यवशः कर्मसर्वः प्रकृति जै गुणैः " [1]

जब तक जीवन है तब तक कर्म से कोई विरत नहीं हो सकता है । संशय की एक रात " में प्रायश्चित-परिताप तथा विभिन्न प्रकार के संशय एवं शंकाओं के माध्यम से राम को निकाल कर कर्तव्योन्मुख बनाने के प्रयत्न में हनुमान, लक्ष्मण और दशरथी छाया तथा जटायु आदि प्रयत्नशील हैं । वास्तव में कर्म मानव जीवन का वरेण्य मूल्य है । लक्ष्मण कर्म की महानता को स्वीकार करते हैं । कर्म एवं वर्चस्व पर व्यक्ति के अधिकार को सिद्ध करते हुए राम से कहते हैं —

" बन्धु ! यह असम्भव है
कर्म और वर्चस को
छीन सके कोई भी
जब तक हम जीवित हैं । " [2]

दशरथी छाया राम से केवल कर्म को स्वीकारने का संदेश यों देती है —

" पुत्र मेरे
संशय या शंका नहीं
कर्म ही उत्तर है
यश जिसकी छाया है
उस कर्म को वरो । " [3]

---

1. श्रीमद् भगवद्गीता - तृतीय अध्याय - श्लोक - 5
2. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 16.
3. - वही - पृ. 54.

सृष्टि का मूलाधार है क्रियाशीलता । सृष्टि में जन्मे मानव की गति और नियति यह है कि वह कर्म की अव्याहत धारा के साथ प्रवाहित हो । कर्म की अनिवार्यता कभी-कभी एक धार-धार अस्त्र के समान मानव को, न केवल उनके देह को ही नहीं बल्कि उसके व्यक्तित्व को अपनी रागात्मिकताओं से विलग करके असंग एवं निर्मम कर्म करते हुए चले जाने के लिए विवश करती है । इस कर्म-भूमि पर मनुष्य केवल माध्यम मात्र होता है । वह प्रत्यंचा लगा हुआ कर्म के बाणों को वहन करने के लिए विवश होता है । कर्म के इस तटस्थ और भागवत अनुष्ठान से मानव को कोई निष्कृति नहीं है । कर्म की यह कृत्या महाकाली है जो जीवनमात्र के कपालमाला को धारण किए रहती है । ऐसे कर्म की अनिवार्यता के बारे में कवि प्रश्न करता है —

" क्या यही है मनुष्य का प्रारब्ध ? कि
कर्म
निर्मम कर्म
केवल असंग कर्म करता ही चला जाए ?
ऐसे ही वह कर्म

x x x

रागात्मिकताओं को भी काट कर रख दे । " 1

कर्म के बारे में कवि का यह विचार पूरे भारतीय कर्म सिद्धांत को नया आयाम देता है । " प्रार्थना पुरुष " में गाँधीजी का कर्म दर्शन राष्ट्रहित की प्रवृत्तियों के लिए कभी भी शासन का मुखापेक्षी नहीं रहा । वे जनता की पल-प्रति-पल आत्मनिर्भरता के हिमायती थे । उनके अनुसार लोक राज में सब से प्रथम प्राथमिकता लोक कर्तव्य की है । लोक को जागृत कर अपने आप को भाग्यविधाता

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 19

बनाने के लिए वे आजीवन प्रयत्नशील रहे। गांधीजी कर्मठ व्यक्ति थे इसलिए वे क्रियात्मक कर्मों को महत्व देते थे। पराधीन भारत को स्वतंत्र कराने के लिए उन्होंने लोगों को क्रियाशील बनने की प्रेरणा दी। वे कर्म की अनिवार्यता एवं उसके महत्व के बारे में यों सोचते हैं —

"सोचा गांधी ने – क्रान्ति तभी
सम्भव है जब यह देश जगे,
पुरुषार्थ तभी जगेगा जब
यह देश, हाथ से कर्म करे।" [1]

पुरुषार्थहीन की तुलना में कर्मवीर की प्रशंसा करते हुए कवि इस प्रकार कहते हैं —

"पुरुषार्थहीन हो सत्ता से
डरते आये हैं सब युग में,
हैं कर्मवीर हो सत्ता औ'
इतिहास बनाते सब युग में।" [2]

कवि कर्म करने के अधिकार से व्यक्ति को वंचित करनेवाली सामाजिक मर्यादाओं पर व्यंग्य करते हैं। वे समाज से यही पूछना चाहते हैं कि क्या धर्म तत्व से ऊंची है वर्णाश्रम मर्यादा? यही सच है तो वे तपस्या पूजा को व्यर्थ समझते हुए गंगा को भी झूठा सिद्ध करते हैं। [3]

---

1. प्रार्थनापुरुष – नरेश मेहता – पृ. 32.
2. – वही – पृ- 32
3. शबरी – नरेश मेहता – पृ. 59.

इस प्रकार कवि ने अपने काव्यों के द्वारा मानव से अपनी काया को कर्मभूमि मानकर आजीवन शेष्ठ कर्म वरण करने का संदेश दिया है। वे कर्म में जीवन की सार्थकता निहित मानते हैं। कर्म की अनिवार्यता पर बल देकर उसके महत्व को स्पष्ट करते हैं।

13· नैतिकदायित्व - बोध :-

कला की तरह नैतिकता भी अनेकता में एकता का अर्जन है। " आदर्श व्यक्ति वह है जो अपने आप में अनेक वैविध्यों, जटिलताओं तथा जीवन की सम्पूर्णता को अत्यन्त कुशलता से एकाग्र कर लेता है। "[1] यशदेव शल्य के अनुसार नीति की न्यूनतम परिभाषा - " कर्तव्याकर्तव्य का क्षेत्र है। "[2] इस अर्थ में उचित कर्म ही चाहे बौद्धिक हो या शारीरिक - नैतिक हो सकता है। लेकिन कौन सा कर्म उचित है, और कौन सा अनुचित, इसका निर्णय करना आसान नहीं है क्यों कि एक ही कार्य एक वर्ग के लिए उचित तथा दूसरे वर्ग के लिए अनैतिक हो जाएगा। इसी समस्या को दर्शन के स्तर पर यह कहकर सुलझाया गया कि संसार में सिवाय शुभ संकल्प के कुछ भी शुभ नहीं है। मानव कल्याण की बात सोचना नैतिक है, लेकिन जब मानव-कल्याण के लिए कुछ कदम उठाये जाते हैं तो एक वर्ग उसे नैतिक कहता है तथा दूसरा वर्ग अनैतिक। इस बात का निर्णय कैसे हो सकता है कि क्या नैतिक है क्या अनैतिक? इसी प्रश्न के उत्तर में नैतिकता का अर्थ निहित है। इस प्रश्न का उत्तर सम्भवतः " बहुजन हिताय-बहुजनसुखाय " सूत्र में निहित है। या इस बात को यों कहा

---

1. Morality like art, is the achievement of unity in diversity the highest type of man is he who, effictively unites himself the widest variety, complexity and completeness of life - The story of Philosophy - will Durant - P - 385.

2· आलोचना - अप्रैल - जून - 68 - यशदेवशल्य - पृ· 32·

जाय कि नैतिक-अनैतिक का निर्णय कार्य के परिणाम से होता है, न कि कार्य सम्पादन के साधनों से । मानव हत्या किसी भी दृष्टि से नैतिक नहीं कही जा सकती, लेकिन राष्ट्र-रक्षा या मानव-मूल्यों के लिए लड़े गये युद्धों में हजारों-लाखों मानव हत्याएँ नैतिक हो जाती है । चंद्रमल के दृष्टिकोण से - नैतिक तथ्यों का नैतिक दृष्टि से परीक्षण करने पर सभी नैतिक चिंतक उनकी मूल्यात्मकता के बारे में सदैव एक ही निष्कर्ष पर पहुँचेंगे । इसी अर्थ में नैतिक निर्णयों को सार्वभौमिक कहा जा सकता है । "[1] नैतिक मूल्यों के सापेक्ष्य को स्वीकार करना अधिक वैज्ञानिक प्रतीत होता है क्यों कि किसी भी द्रव्य, वस्तु अथवा स्थिति के समय एवं स्थान के साथ ही नैतिक या अनैतिक को स्वीकार किया जा सकता है । इससे भी अधिक उदारवादी दृष्टिकोण यह है कि नैतिक-अनैतिक कुछ नहीं है, बल्कि व्यक्ति की चेतना ही किसी वस्तु स्थिति को नैतिक या अनैतिक बना देती है । इसलिए नैतिक मूल्यों के सम्बन्ध में कोई अंतिम निर्णय देना संभव नहीं है । फिर भी सामाजिक संदर्भों में जो बात सामाजिकहितों को आहार करे उसे अनैतिक कहा जा सकता है । नैतिक मूल्यों के निर्णय करने के द्वारा नरेश मेहता ने नैतिक मूल्यों की सुरक्षा के प्रति व्यक्ति के नैतिक दायित्व-बोध का वर्णन किया है । कवि नैतिक दायित्व बोध का परिचय इस प्रकार देता है --

" व्यक्ति
चाहे वह राजपुरुष हो या
इतिहास-पुरुष अथवा
पुराण-पुरुष
मानवीय देश-कालता से उपर नहीं होता राम !
इतिहास से भी बड़ा मूल्य है

---

1. दार्शनिक - त्रैमासिक - अक्टूबर - 65 - श्री चंद्रमल - पृ. 233.

सत्य —
परात्पर सत्य, ऋत —
और
यही तुम्हारी चरित्र-मर्यादा है
ऋतम्भरा व्यक्तित्व है। "[1]

कवि राजसत्ता से बढ़कर जनसत्ता को और उसे भी सत्य और ऋत से जोड़कर ही स्वीकार करते हैं। राम की सभा में जब इस समस्या पर विचार किया जाता है कि एक साधारण धोबी ने सीता जैसी निष्कलंक, पावन एवं महिमामयी नारी पर शंका की अंगुली उठाकर कितना दुस्साहस किया है तो राम उसे बिलकुल ही एक नया दृष्टिकोण देते हैं। राम की चिन्ता यह नहीं है कि - उस धोबी की शंका साधार है या निराधार। राम के सामने यह प्रश्न बिलकुल दूसरे छोर पर केंद्रित होता है - क्या यही शंका यदि एक साधारण व्यक्ति या किसी साधारण नारी के सम्बन्ध में प्रस्तुत की गयी होती तो हमें कोई आपत्ति होती है? तब क्या उसकी शंका पूरी वेगवत्ता और आक्रामता के साथ उस नारी चरित्र को तहस-नहस करने में कुछ कम प्रभावकारी होती? क्या कोई बात अपनी सार्थकता को खो देती है, जब उसका इशारा किसी उच्चासीन व्यक्ति की ओर हो? राम इस बात को यों स्पष्ट करते हैं —

" सत्ता के गोमुख पर बैठकर
उसके सारे जीवन-जलों को
अपने ही अभिषेक के लिए
सुरक्षित रखना —
यह कौन सा दर्शन है लक्ष्मण? "[2]

1· प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ· 35·

2· - वही - पृ· 41·

परन्तु आज देश में यही हो रहा है । एकबार व्यक्ति सत्ताधीश होकर उसके सारे शक्तिबलों को अपने ही कल्याण के लिए रखना चाहते हैं । कवि ने उपर्युक्त उद्धरणों के द्वारा प्रजा के अधिकारों को सुरक्षित रखने में राजा के नैतिकदायित्व को स्पष्ट किया है ।

" प्रार्थना पुरुष " में गाँधीजी के जीवन में नैतिकता के महत्व के बारे में कवि यों कहते हैं —

" टकराते थे तर्क, अचल थी
चट्टानी नैतिकता,
थी गाँधी के लिए, स्वतन्त्रता
से ऊँची नैतिकता । " [1]

मूल्य विघटन की स्थिति में जगत में नैतिकता के अर्थ के बारे में इस प्रकार प्रश्न किया गया है —

" मनुष्यत्व कैसे बदले, इस
चिन्ता में रत, अन्तर
क्या नैतिकता अर्थ नहीं
रखती कोई जगती पर ? " [2]

---

1. प्रार्थनापुरुष - नरेश मेहता - पृ. 53.
2. - वही - पृ. 54.

निष्कर्ष :-

नरेश मेहता के काव्यों की वैचारिक पृष्ठभूमि के सम्यक आकलन के पश्चात् निष्कर्षतः कहा सकता है कि युग जीवन के समुन्नत बोध को प्रतिफलित करने वाले विविध आयामों आधुनिकता बोध, काल बोध, अपमान बोध, मानव - वादी एवं समाजवादी विचारों की गवेषणा के आधार पर ही समीक्ष्य काव्यों में जीवन-दर्शन विधायक प्रत्ययों की प्रतिष्ठा की गई है। अस्तित्ववाद के द्वारा संशय एवं संत्रास जन्य स्थितियों के बीच में मानव अस्तित्व पर विचार किया गया है। इसी अस्तित्व से जुड़े काल एवं क्षण की सार्थकता पर स्पष्ट विचार है। मृत्यु को मानव जीवन का अनिवार्य अंग माना गया है। प्रगतिशील विचारों को महत्व दिया गया है। सभी काव्यों में आशंत कर्मवादी जीवन दर्शन का समर्थन है। युग के संदर्भ में व्यक्ति के नैतिक कर्तव्य पर प्रश्न चिह्न लगाया गया है। सच तो यह है कि इनकी काव्य संरचना पौराणिक पुराख्यानों और परिचित पात्रों के परिवेश में विकसित हुआ है। फिर भी वह इसलिए नितांत नवीन, युगीन, मौलिक और प्रासंगिक है कि उनके माध्यम से जिस विचार दर्शन की प्रतिष्ठा हुई है, वह सार्वभौम, सार्वजनीन और सार्वकालीन है। मानव की महत्ता, मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा, मानवीय आस्थाओं, विश्वासों और मानवीय अस्मिता के संघर्षों से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से संबंधित होने के कारण समीक्ष्य खण्ड काव्य कवि के सृजनात्मक प्रयास के परिचायक हैं।

पंचम अध्याय

नरेश मेहता का काव्य : शिल्प विधान

पंचम अध्याय

नरेश मेहता का काव्य : शिल्प - विधान

शिल्प शब्द अंग्रेजी के " टेक्नीक " शब्द का हिन्दी अनुवाद है। काव्य कला के संदर्भ में शिल्प का संबंध अभिव्यक्ति की प्रणाली से है। किसी काव्य कृति की श्रेष्ठता कवि की अनुभूति की गहराई एवं सचाई पर जितनी निर्भर होती है, उतनी ही वह अनुभूति की अभिव्यक्ति को प्रभावकारी स्वरूप देनेवाली शिल्प-विधि पर निर्भर रहती है। कवि अपनी अनुभूतियों को स्थापित करने के लिए जो विधि अपनाता है उसे शिल्प-विधान कहते हैं। काव्य के अवयवों का संस्कार और उनके सामंजस्यपूर्ण आकलन में कवि की कारयित्री प्रतिभा एवं विधायक कल्पना जिन स्पाकारों एवं विन्यासों का अन्तर्भावन करती है उन सब का ग्रहण शिल्प के अंतर्गत होता है।[1]

शिल्प में गत्यात्मकता और परिवर्तन शीलता का गुण होना आवश्यक है। दीर्घ-काल तक अनेक कवियों द्वारा किसी शिल्प विधि के निरन्तर प्रयुक्त होने से शिल्प की भी रूढ़ियाँ बन जाती है, जो कृति की नवीनता को नष्ट कर देती है। अत: प्रतिभा सम्पन्न कवि अपनी नूतन भावानुभूतियों को सशक्त रूप में अभिव्यक्त करने के लिए इन रूढ़ियों में आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी कर देता है। डॉ॰ शिवकुमार मिश्र ने कहा है - " वस्तुत: कोई भी काव्य चेतना अपने साथ नवीनता को लाती है तो वह नवीन अपने लिए नूतन उपकरणों, परिधान अथवा शिल्प-सज्जा का भी आग्रह करता है, बल्कि सत्य तो यह है कि वह उनसे मण्डित होकर ही अपनी अभिव्यक्ति करता है - उस की वाहक काव्य चेतना न केवल नवीन भावों अथवा विचारों को वरन् नई कला और शिल्प को भी साथ ही जन्म देती है। "[2]

1· काव्य शिल्प के आयाम - श्री सुरेश शर्मा - पृ॰ 163·

2· नया हिन्दी काव्य - डा॰ शिव कुमार मिश्र - पृ॰ 331·

शिल्प के अंतर्गत प्रतीक विधान, बिम्ब विधान, भाषा, छन्द, अलंकार, शैली इत्यादि का समावेश होता है । इस शैली के अंतर्गत काव्य के रूप को भी लिया जाता है । काव्य रूपों से यहाँ हमारा तात्पर्य खण्ड काव्यों से ही रहा है क्योंकि नरेश के काव्य इसी रूप में अवतरित है । इनके काव्यों में नवीन भाव बोध की अभिव्यक्ति के लिए परम्परागत शिल्प में आवश्यकतानुसार परिवर्तन दिखाई देता है । अत: आधुनिकता के स्पष्ट प्रभाव को शिल्प के उपर्युक्त अंगों पर देखा जाता है । विशेष रूप से इन्हो का विवेचन प्रस्तुत अध्याय का मुख्य उद्देश्य रहा है ।

1. काव्य के रूप :-

काव्य के श्रव्य और दृश्य दो रूप होते हैं । श्रव्य के भेदों में प्रबन्ध और मुक्तक प्रमुख हैं । ऐसे ही प्रबन्ध के दो भेद हैं महाकाव्य और खण्डकाव्य । यहाँ हमारा तात्पर्य केवल खण्ड काव्यों से रहा है । इन काव्य रूपों पर विचार करना अत्यंत आवश्यक है । क्योंकि खण्डकाव्य के साथ अन्य काव्य रूपों की दृष्टि से भी उनके काव्यों को परखा गया है —

1.1. खण्ड काव्य : प्राचीन एवं अर्वाचीन :-

खण्डकाव्य प्रबन्ध काव्य का दूसरा रूप हैं । भारतीय प्राचीन आचार्यों ने प्रबन्ध काव्य और महाकाव्य का तो उल्लेख किया है और उनके स्वरूप विषयक नियमादि भी निर्धारित किये हैं, किन्तु खण्डकाव्य का स्वतंत्र रूप से कहीं उल्लेख नहीं किया । खण्ड काव्य उनके " सर्गबद्ध काव्य " के अन्तर्गत ही आजाता है चाहे उनका सर्गबद्ध काव्य से तात्पर्य महाकाव्य से ही रहा हो । उन्होंने सर्गबद्ध काव्य के दो रूप - महत्त और लघु अवश्य बतलाये हैं । आचार्य रूद्रट ने निम्नांकित शब्दों में सर्गबद्ध काव्य के दोनों रूपों का अन्तर बतलाया है ।

यत्र महान्तो येषु च विनस्तेष्वभिधीयते
चतुर्वर्ग: सर्वे रसा: क्रियते काव्यस्थानानि सर्वाणि ।
ते लघवो विज्ञेया यत्वन्यतमो भवेच्चतु —
र्वर्गात असमग्रानेकरसा ये च समग्रैकर सयुक्ता: । "[1]

रुद्रट के इस कथन के अनुसार लघु काव्य का उद्देश्य चतुर्वर्ग फलों में से किसी एक फल की प्राप्ति होती है और उसमें अनेक रस असमग्र रूप में होते हैं या कोई एक रस ही पूर्ण रूप में निष्पन्न होता है, जबकि महाकाव्य में चारों फलों की प्राप्ति के उद्देश्य के साथ ही अनेक रस निष्पन्न होते हैं । यहाँ रुद्रट ने जिसे लघुकाव्य कहा है, वही 'खण्डकाव्य' कहा जा सकता है ।

आचार्य आनंदवर्धन ने काव्य-भेदों का निरूपण करते हुए प्रबन्ध के लिए " सर्ग - बन्ध " शब्द का प्रयोग किया किन्तु उनका भी इस शब्द के प्रयोग से महाकाव्य का ही तात्पर्य जान पड़ता है । उन्होंने खण्डकथा, परिकथा और सकल कथा का उल्लेख किया है ।[2] यदि इन कथा रूपों से उनका तात्पर्य सर्गबद्ध प्रबन्ध-काव्य की " कथावस्तु " अथवा कथानक से हो, तो इन कथा-भेदों के आधार पर प्रबन्ध काव्य के भेदों की कल्पना अवश्य की जा सकती है, किन्तु उनके ग्रन्थ " ध्वन्यालोक " में खण्डकाव्य का उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता । सर्व प्रथम खण्डकाव्य का स्पष्ट उल्लेख विश्वनाथ कविराज के " साहित्य दर्पण " में ही मिलता है । उन्होंने लिखा है —

" भाषा विभाषा नियमात्काव्यं सर्ग समुत्थितं
एकार्थ प्रवणै: पद्यै: सन्धि सामग्र्यवर्जितम् ।।
खण्डकाव्य भवेत्काव्यस्यैक देशानुसारि च । "[3]

1· काव्यालंकार - रुद्रट - 815 - 6
2· ध्वन्यालोक - आनंदवर्धन - पृ· 3 - 7·
3· साहित्य दर्पण - विश्वनाथ - पृ· 328 - 29·

तदनुसार किसी भाषा या उपभाषा में सर्गबद्ध तथा एक कथा का निरूपक पद्य ग्रंथ, जिसमें सब सन्धियाँ न हों, काव्य कहलाता है और काव्य के एक अंश का अनुसरण करनेवाला खण्ड काव्य होता है ।

साहित्य दर्पणकार की इस परिभाषा को ध्यान में रखकर पं॰विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अपने " वाङ्॰मय विमर्श " में प्रबन्ध काव्य के तीन प्रकार – महाकाव्य, एकार्थ काव्य और खण्डकाव्य बतलाकर " एकार्थ काव्य " को महाकाव्य और खण्डकाव्य के मध्य की कड़ी कहा है । उनके मतानुसार – " खण्डकाव्य वह है, जिसकी रचना महाकाव्य के ही ढंग पर की गई हो, पर जिसमें पूर्ण जीवन ग्रहण न कर खण्ड जीवन ही ग्रहण किया जाता है । यह खण्ड जीवन इस प्रकार व्यक्त किया जाता है, जिसमें वह प्रस्तुत रचना के रूप में स्वतः पूर्ण प्रतीत होता है । "[1] मिश्र जी की इस परिभाषा के अनुसार " खण्ड जीवन चित्रण " ही खण्ड काव्य का प्रमुख लक्षण है । पहले बताया जा चुका है कि भारतीय आचार्यों के मतानुसार महाकाव्य में आठ अथवा आठ से अधिक सर्ग होते हैं, तदनुसार खण्डकाव्य में आठ से अधिक सर्ग होना चाहिए, किन्तु खण्ड - काव्य रचना में इस प्रकार अनुमान नहीं लगाया जा सकता । इस सर्ग संख्या का संबंध जितना उसके आकार से है, उतना उसके शास्त्रीय स्वरूप से नहीं है । इस सर्ग संख्या पर महाकाव्य और खण्डकाव्य का विभाजन वैज्ञानिक भी नहीं समझा जा सकता । समग्र जीवन चित्रण और खण्ड जीवन चित्रण ही महाकाव्य और खण्डकाव्य के प्रमुख आधार मानना उचित जान पड़ता है ।

रूद्रट ने लघुकाव्य विषयक जो मान्यता व्यक्त की है, उसके अनुसार अनेक रसों की असमग्र निष्पत्ति अथवा किसी एक रस की पूर्ण निष्पत्ति खण्ड काव्य का द्वितीय लक्षण है । उनकी " चतुर्वर्ग " अथवा " एक फल " प्राप्ति वाला उद्देश्य अब बहुत

1॰ वाङ्॰मय विमर्श – विश्वनाथ प्रसाद मिश्र – पृ॰ 39॰

पुराना हो गया है। इस बुद्धि प्रधान और तर्क प्रधान युग में उसका कोई महत्व नहीं रह गया है। अतः आज इस उद्देश्य को महाकाव्य अथवा खण्डकाव्य में जोड़ना व्यर्थ है।

पाश्चात्य विद्वानों ने महाकाव्य का स्वरूप नाटक के बहुत समीप बतलाया है। वह उतना ही उपन्यास के समीप भी समझा जा सकता है। दोनों में मुख्य अंतर उनके पद्यात्मक और गद्यात्मक स्वरूप का ही है। अंग्रेजी में तो काव्यात्मक उपन्यासों (Epic Novels) की भी रचना हुई है। इससे उनके पद्यात्मक और गद्यात्मक स्वरूप का अन्तर भी स्पष्ट हो जाता है या देखते हुए यदि महाकाव्य का स्वरूप बहुत कुछ उपन्यास के समान माना जा सकता है, तो खण्डकाव्य का स्वरूप बहुत कुछ एक बृहद कहानी के समान भी माना जा सकता है। उपन्यास और कहानी में सब से बड़ा अन्तर यही है कि उपन्यास जहाँ समग्र जीवन का चित्रण करता है, वहाँ कहानी खण्ड जीवन का ही चित्रण करती है, किन्तु जब हम आधुनिक महाकाव्यों और खण्डकाव्यों को देखते है, तब हमें उस " समग्र जीवन चित्रण " और " खण्ड-जीवन-चित्रण " के आधार पर काव्य के इन दोनों रूपों के निर्धारण में भी कठिनाई अनुभव होती है। यदि किसी काव्य-कृति में खण्ड जीवन का चित्रण है, किन्तु उसकी गरिमामयी उदात्त शैली के कारण उसमें महाकाव्य के समस्त गुणों का समावेश हो गया है, तो हमें उसे खण्ड काव्य न मान कर महाकाव्य ही मानना पड़ेगा। इसके विपरीत ऐसी काव्य-कृतियाँ भी है, जिनमें समग्र जीवन का चित्रण है, किन्तु वे महाकाव्य के अपेक्षित गुणों से समन्वय नहीं है। अतः केवल समग्र जीवन-चित्रण के कारण ही ऐसी कृतियों को महाकाव्य की संज्ञा से विभूषित नहीं किया जा सकता और वे खण्डकाव्य तो हैं ही नहीं, उन्हें एक सीमा तक " एकार्थकाव्य " ही कहा जा सकता हैं।

कुछ गीति काव्य भी ऐसे है, जिनमें हमें खण्ड जीवन का चित्रण मिलता है। नरेश मेहता कृत संशय की एक रात " को इसके अंतर्गत ले सकते हैं। संस्कृत के आचार्यों द्वारा खण्ड काव्य की स्वतंत्र और स्पष्ट परिभाषा नही देने के कारण ऐसा लगता है कि

उनकी दृष्टि में खण्डकाव्य और गीतिकाव्य में कोई अन्तर नही था ।

लक्ष्य काव्यों के आधार पर ही तो लक्षणों का निर्धारण होता है । आधुनिक काल के लक्ष्यकाव्य तो पुराने लक्ष्य काव्यों से रूप एवं भाव की दृष्टि से बदले हुए हैं । इस बदलते परिवेश में उसके लक्षणों में थोड़ा-बहुत परिवर्तन हो जाना स्वाभाविक है । काव्यगत मूल लक्षण तो सदैव अक्षुण्ण रहेगा ही । यही मूल लक्षण अंधकार में दीपक की ज्योति की भाँति हमारा दिग्दर्शन करता रहता है । यह बात द्रष्टव्य है कि अकविता या नयी कविता के युग में नये प्रयोग के जो खण्डकाव्य रचे गये है उनपर प्राचीन आचार्यों के लक्षण अंशतः ठहरते है । रुद्रट ने बताया है कि उक्त काव्य में चतुर्वर्ग फल में से एक उद्देश्य रूप में अपनाया जाता है तथा अनेक रूप की असमग्र रूप में यह एक रस की समग्र रूप में निष्पत्ति होती है । आधुनिक काव्य में न तो चतुर्वर्ग फल वाले सिद्धांत की उतनी मान्यता है और न रस की । आजकल चित्रांकन की महत्ता बढ़ गई है, लेकिन का मूल्यांकन भी नवीन दृष्टिकोण से होने लगा है । आचार्य विश्वनाथ का काव्य के एकदेश का अनुसरण करने वाले सिद्धांत भी उतना स्पष्ट तो नहीं । काव्य के एक अंश का अनुसरण करके जो भी काव्य रचा जाए, वह तो मात्र इस लक्षण के कारण खण्डकाव्य नही माना जाएगा । खण्डकाव्य का चित्रण एक विशाल दृष्टि-पथ से किया जाता है तथा यदि उसमें महत्ता है और उसकी शैली भी गरिमामयी है, तो वह महाकाव्य की कोटि तक पहुँच जाता है । यही नहीं महाकाव्य का एक अंश खण्डकाव्य भी नहीं कहा जाएगा ।

यह स्पष्ट है कि खण्डकाव्य के लक्षण आधुनिक खण्डकाव्य पर पूर्णतया खरे नही उतरते । इस दशा में आधुनिक खण्डकाव्य साहित्य को भी दृष्टि में रखकर उसका लक्षण निर्धारण अवश्य हो जाता है । आधुनिक काल के आरंभ से लेकर आज तक खड़ी बोली में हिन्दी खण्डकाव्य-धारा निरंतर प्रवाहित हो रही है । द्विवेदी युग से लेक छायावाद एवं छायावादोत्तर काल के खण्डकाव्यों से आलोकित, विभिन्न काव्य - प्रवृत्तियाँ दर्शित होती है । द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मक खण्डकाव्यों के रूप शनैः श

परिवर्तित हो गए । इतिवृत्त की प्रधानता कम होती गई और इतिवृत्तात्मकता के स्थान पर क्षीण कथा तन्तुओं पर काव्य निर्माण होता गया । पौराणिक कथावस्तुएं आधार बनी, पर उनकी युगानुकूल मनोवैज्ञानिक एवं तर्कसंगत नवीन व्याख्याएँ हुई । पात्रों के स्थूल चरित्र-चित्रण के स्थान पर मनोवैज्ञानिक चित्रण शुरू हो गया । मुक्तछन्द रूप के उदय से काव्य का बाह्य रूप भी बदल गया, तो काव्य बाह्य एवं आंतरिक दोनों रूपों में अभिनव हो गया । लेकिन प्राचीनता एवं काव्यतत्त्व के पक्षपाती जो रससिद्ध कवि हुए उन्होंने छन्दोबद्ध एवं लक्षण संयुक्त खण्डकाव्यों की रचना की । आधुनिक युग में ये काव्य प्राचीन-से लगते हैं । अकविता का युग आ गया तो, गीतों की स्फुटता में प्रबन्धतत्त्व बिखरता गया । युग प्रवृत्ति ही ऐसी रही कि चिन्तन के अधिक विषयी ही प्रमुख हो गया । नवयुग में आकर यह काव्य रूप और भी सज गया और बदल गया, उसकी विशेषताओं को भी ध्यान में रखकर खण्डकाव्य के निम्न लिखित लक्षण ठहराते हैं —

1. यह एक प्रबन्ध काव्य है, जिसमें जीवन के किसी एक मार्मिक पक्ष का चित्रण सीमित दृष्टि पथ से होता है ।
2. काव्य कलेवर अपेक्षाकृत लघु रहता है ।
3. कथा का संगठन-चाहे कथावस्तु कम जोर हो-रहता अवश्य हैं ।
4. काव्य अपने आप में सम्पूर्ण रहता है ।
5. चरित्र चित्रण, वातावरण आदि की योजना रहती है ।
6. इसका आरम्भ, मध्य और अन्त क्रमशः विकसित होता हुआ और अन्त में चरमविकास के साथ उद्देश्य की उपलब्धि बताई जाती हैं ।
7. इसमें नाटकीय तत्वों एवं कुछ संधियों का भी समावेश रहता है ।
8. सर्ग-विभाजन अनिवार्य नहीं ।

9. छन्दोबद्धता की आवश्यकता नहीं, मुक्त छन्द में भी काव्य रचना हो सकती है।

10. इसमें एकाधिक रसों का भी स्थान हो सकता है, किन्तु, प्रधानता किसी एक ही रस की होती है। इसके साथ इसमें वस्तु के भाव-प्रधान होने के कारण इसमें गीतिकाव्य की भाव-प्रवणता तथा तीव्र अनुभूति स्वत: दिखाई देती है।

1.2. नरेश मेहता के खण्डकाव्य :-

उपर्युक्त लक्षणों के अनुसार नरेश मेहता के काव्य आधुनिक खण्डकाव्यों की कोटि में आते हैं। उन्होंने पाँच खण्डकाव्य लिखे है - "संशय की एक रात", "महाप्रस्थान, प्रवादपर्व, शबरी एवं प्रार्थनापुरुष। इनमें चार काव्य पौराणिक कथावृत्त पर आधारित है। इन में कथावस्तु कम है। पात्रों के जीवन के किसी एक पक्ष को लेकर उद्घाटित हुए है। पाँचवा खण्डकाव्य ऐतिहासिक प्रधान है। गाँधी जी के जन्म से लेकर मृत्यु तक एवं स्वाधीनता आंदोलन सम्बन्धी घटनाओं का विवरण इसमें दिया गया है। कथावस्तु की परिधि कम होने के कारण काव्य का निर्माण भी लघु किन्तु प्रभावशाली लगता है। कथानक अंश मात्र में होने पर भी उन घटनाओं के वैशिष्ट्य के कारण संवादों द्वारा पूर्व घटनाओं की याद दिलाते हुए समग्र काव्य से परिचय कराते है। हरेक काव्य स्वयं में सार्थकता को प्राप्त किए हुए है। कथानक के अनुकूल पात्र चरित्र-चित्रण एवं वातावरण का सुंदर चित्रण किया गया है। खण्डकाव्य के नियमों के अनुसार सर्ग विभाजन अनिवार्य नहीं है फिर भी सभी काव्य सर्गबद्ध है।

कवि अपनी नवीन दृष्टि के अनुसार सभी काव्य को छन्द के बन्धन से मुक्त कराया है। केवल शबरी में छन्द का कुछ प्रयोग किया है। हरेक काव्य अपनी निजी विशेषताओं को लेकर अपनी उद्देश्य की सिद्धि प्राप्त करने में सफल हुए हैं।

इस तरह सभी काव्य खण्डकाव्य के लक्षणों से समन्वित है। हरेक काव्य अपने लक्ष्य के अनुसार युगीन संवेदनाओं का सफल चित्रण प्रस्तुत करते हैं। प्रबन्ध काव्य के एक भाग होकर, आकार में लघु होने पर भी अपनी वैचारिक परिधि के अनुसार विस्तृत कलेवर को प्राप्त किया है। इनके विशिष्ट गुणों से प्रभावित होकर अनेक आधुनिक कवि इन्हें प्रबन्ध काव्य की कोटि में गिनने लगे हैं। अतः काव्य रूप की दृष्टि से इनके सभी काव्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। संक्षेप में यहाँ उन काव्यों का परिचय देना समीचीन होगा।

संशय की एक रात :-

रामकाव्य परम्परा में नवीन कोटि का काव्य है। नरेश मेहता ने वाल्मीकि रामायण के सेतुबन्ध[1] और युद्ध के बीच की एक रात की कथा को अपने काव्य की कथावस्तु के रूप में स्वीकार किया है। इस काव्य में चार सर्ग है। सर्गों के नाम भी है - साँझ का विस्तार और बालूतट, वर्षा भीगे अन्धकार का आगमन, मध्य रात्रि की मंत्रणा और निर्णय, संदिग्ध मन का संकल्प और सवेरा। इसमें कवि ने पौराणिक आख्यानकों के माध्यम से युगीन समस्याओं का चित्रण किया है। युद्ध या शांति काव्य का मुख्य विषय रहा है। सीता को अपहृत स्वतंत्रता का प्रतीक मानकर युद्ध के औचित्य एवं अनौचित्य पर विचार किया गया है। राम के संशय के माध्यम से आधुनिक मानव की संशय ग्रस्तता, अनिश्चयता, ऊहापोह और डगमगाती आस्थाओं को स्थापित किया है। आधुनिक संदर्भों से जोड़कर "संशय की एक रात" को कवि ने आधुनिक कविता को उपलब्धि बनाया है।

1. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण - युद्धकाण्ड - चतुर्थःसर्ग - पृ. 1057

महाप्रस्थान :-

इसकी कथावस्तु महाभारतख्यान से सम्बन्धित है । महाभारत के महाप्रस्थानिक पर्व के दूसरे अध्याय से 29 वें श्लोक तक की कथा महाप्रस्थान के कथा स्रोत के रूप में रही है ।[1] यह भी सर्ग का काव्य है । इसमें तीन पर्व है - यात्रापर्व, स्वाहापर्व - स्वर्गपर्व । यात्रा पर्व में प्रकृति का सुंदर चित्रण मिलता है । प्रकृति वर्णन के साथ पात्रों की मानसिकता के माध्यम से महाभारत कथा से संबद्ध विभिन्न घटनाओं का परिचय दिया गया है । द्वितीय सर्ग में -युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन के संवादों के माध्यम से राजा-राज्य, राज्य व्यवस्था, व्यक्ति एवं समाजके सम्बन्धों पर विभिन्न प्रकार के विचार प्रस्तुत किये गये हैं । यही इस काव्य का मुख्य विषय है । राज्य व्यवस्था द्वारा व्यक्ति पर लादे गये विविध दबावों की विरोधी गतिविधियों और समस्याओं के उलझे सूत्रों को नरेश मेहता ने इस रचना में बड़ी सतर्कता से प्रस्तुत किया है । स्वर्ग पर्व में श्वान के साथ युधिष्ठिर के स्वर्ग प्रवेश के साथ हिम का एवं प्रकृति का वर्णन किया गया है । युधिष्ठिर की अनासक्त मन:स्थिति के माध्यम से युगीन समस्याओं का सफल चित्रण प्रस्तुत किया गया है ।

प्रवाद पर्व :-

" प्रवादपर्व " का कथा का मूल आधार वाल्मीकि रामायण है । पुरवासी द्वारा सीता के चरित्र पर आरोप लगाना तथा राज्य से सीता का निष्कासन [2] सम्बन्धी घटनाओं को इस काव्य के कथा स्रोत के रूप में लिया है । इस काव्य में

1· महाभारत - महाप्रस्थानिकपर्व - द्वितीय अध्याय - श्लोक - 1 - 29·

2· श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण - उत्तराकाण्ड - श्लोक - 1 - 25 - पृ·1568 - 71·

पाँच सर्ग हैं - इतिहास और प्रतिइतिहास, प्रतिइतिहास और तंत्र, शक्ति एक सम्बन्ध एक साक्षात्, प्रतिइतिहास और निर्णय, निर्वेद विदा आदि । प्रथम सर्ग में इतिहास और इससे टकरानेवाले प्रतिइतिहास को एक साधारण जन की अनाम सर्जनी के रूप में प्रस्तुत किया गया है । इस सर्ग में राम के मन:स्थिति के माध्यम से कर्म के औचित्य अनौचित्य पर विचार करते हुए अंत में उसकी शक्ति एवं महत्व को स्पष्ट किया गया है । दूसरा सर्ग " प्रतिइतिहास और तंत्र " है । इसमें भाषा एवं साधारण जन की अभिव्यक्ति की रक्षा की आवश्यकता पर विचार किया गया है । यही काव्य का मुख्य विषय है । राजा-राज्य एवं अनाम वर्गों के अधिकारों से संबन्धित विषय पर राम तथा अन्य सभा सदस्यों के द्वारा विभिन्न प्रकार के विचार प्रस्तुत किये गये हैं । अंत में न्याय निर्णय के लिए अनाशक्त स्थिति की आवश्यकता स्पष्ट की गयी है । " शक्ति एक सम्बन्ध एक साक्षात् " में - राम और सीता के संवादों के माध्यमसे व्यष्टि एवं समष्टि, राष्ट्र एवं न्याय की सर्वोच्च स्थिति पर विचार किया गया है । राष्ट्र की सुरक्षा के लिए राजा एवं प्रजा के कर्तव्यों को बताया गया है ।

" प्रतिइतिहास और निर्णय " नामक चतुर्थ सर्ग में -- राजा और प्रजा के अधिकारों पर विचार किया गया है । प्रतिइतिहास की असहमति को अभिव्यक्ति की धारणा माना गया है । अपनी वैयक्तिक सुख तक त्याग कर प्रजा की रक्षा करना राजा का कर्तव्य सिद्ध किया गया है ।

अंतिम सर्ग निर्वेद विदा " में - इतिहास को समर्पित व्यक्ति के जीवन में आनेवाले दु:खों का उल्लेख किया गया है । इसे कर्म की लीला सिद्ध किया गया है ।

शबरी :-

शबरी काव्य का कथा स्रोत वाल्मीकि रामायण ही है । शबरी उद्धार प्रसंग इसका आधार है ।[1] इस पौराणिक प्रसंग को नवीन रूप में प्रस्तुत किया गया है । काव्य में पाँच सर्ग है - त्रेता, पम्पासर, तपस्या, परीक्षा एवं दर्शन । " त्रेता " सर्ग में - युग का परिवर्तन, समाज का निर्माण एवं लोगों के जीवन-व्यापार, शबरी के परिवार का वातावरण एवं उसके घर छोड़ने तक का वर्णन किया गया है । पम्पासर सर्ग में शबरी का मतंग आश्रम में पहुँचना, उन दोनों के संवादों के माध्यम से आध्यात्म एवं वर्ग मुक्ति सम्बन्धी कुछ श्रेष्ठ विचार मिलते हैं । तपस्या सर्ग में शबरी की मानसिकता की अभिव्यक्ति के साथ-साथ प्रकृति का सुंदर चित्रण किया गया है । परीक्षा नामक चतुर्थ सर्ग में सामाजिक आग्रह एवं उसकी मन: स्थिति के कारण व्यक्तियों को कठिन परीक्षाओं को सामना करने का चित्रण एवं मतंग शबरी सहित आश्रम छोड़ने का परिचय मिलता है । दर्शन सर्ग में राम लक्ष्मण सहित शबरी के आश्रम में पहुँचना, उनका आतिथ्य स्वीकार करना एवं उसका उद्धार आदि प्रसंग मिलते हैं । वर्ग मुक्ति काव्य का मुख्य विषय रहा है । इस तरह काव्य में वैचारिक उर्वरता और आत्मिक विकास के माध्यम से जन्मगत निम्न वर्गीय स्थिति को प्रधानता दी गयी है । आत्मिक एवं आध्यात्मिक संघर्ष का चित्रण ही काव्य का प्रधान विषय रहा है ।

प्रार्थनापुरुष :-

इस काव्य की कथा वस्तु गाँधी जी का जीवन चरित एवं स्वाधीनता आंदोलन से संबंधित है । कथावस्तु छ: सर्गों में विभाजित है । ये है - जीवन प्रभात, समुद्र का आमंत्रण, जीवन से साक्षात्, तपस्या की ओर, स्वदेश की पुकार एवं स्वाधीनता का मूल्य । प्रथम सर्ग " जीवन से साक्षात् में " गाँधी जी का जन्म एवं सत्य के साक्षात्कार संबंधी विषयों का परिचय है । द्वितीय सर्ग " समुद्र का आमंत्रण " में उच्च शिक्षा के लिए

---

1. श्रीमद् वाल्मीकि रामायण - अरण्य काण्ड - श्लोक - 1 से 35 तक -

पृ- 664 - 66

गाँधी जी का विदेश जाना, विदेशी सभ्यता का मोह, भारतीय संस्कृति की पहचान, बारिस्टर बनकर वापस आने का चित्रण है। "जीवन से साक्षात्" नामक तृतीय सर्ग में दक्षिणाफ्रिका में गाँधी जी को मिले अपमान एवं श्वेत जातियों के अत्याचार का वर्णन किया गया है। चतुर्थ सर्ग "तपस्या की ओर" में गाँधी जी का दक्षिणाफ्रिका जाना, हिन्दुस्तानियों के अधिकारों के लिए सत्ता से लड़ना, अंत में उनके अधिकारों को वापस दिलाना, इसके अंतर्गत किये गये विभिन्न कार्यक्रमों का परिचय संक्षेप में हैं। "स्वदेश की पुकार" में दक्षिणाफ्रिका से गाँधी जी का वापस आना, स्वाधीनता आंदोलन में भाग लेना, सत्याग्रह आश्रम की स्थापना, चम्पारन विजय, रौलट रिपोर्ट का विरोध तथा तदर्थ आंदोलन, जालियान वाला बाग का हत्याकाण्ड एवं देश विभाजन तक की घटनाओं का संक्षिप्त विवरण है। अंतिम सर्ग "स्वाधीनता के मूल्य" के अंतर्गत सांप्रदायिक झगड़े, हिन्दु-मुस्लिम एकता का परिचय तथा गाँधी जी का हत्यासंबंधी विविध घटनाओं का वर्णन किया गया है। इसके पहले के अध्यायों में कथ्य चित्रण के अंतर्गत इन सभी काव्यों विशेषताओं का विश्लेषण किया गया है।

इस तरह नरेश मेहता ने अपने आख्यानात्मक खण्ड काव्यों के माध्यम से युद्ध की समस्या, राज्य व्यवस्था की तानाशाही, व्यक्ति की स्वतंत्रता और वैचारिक उर्वरता को स्थापित करने का प्रयत्न किया है। आधुनिक संदर्भों में इन पौराणिक कथाओं के माध्यम से कवि ने समसामयिक प्रसंगों को उभारा है। वर्तमान संदर्भों में ये रचनाएँ बहुत प्रासंगिक है। कवि की सूक्ष्म कलात्मक दृष्टि इस बात को प्रमाणित करती है कि अपनी काव्य यात्रा के निरंतर विकास पथ से गुजरते हुए उनकी दृष्टि मानव मूल्यों पर केन्द्रित हुई है। उन्होंने धर्म, दर्शन राजनीति, संस्कृति आदि समस्त पक्षों पर विचार कर मानवीय गरिमा और सदाशयता को प्रस्थापित करना चाहा है। उन्हें सुदृढ मानवीय संबंधों की तलाश है और एक अनाम मनुष्य की गरिमा को प्रतिष्ठित करने की आकांक्षा है। कवि

की संवेदनाएँ और अनुभूतियाँ व्यापक और गहरी है और उन्होंने अपनी संवेदनाओं के अनुरूप ही शिल्प को ढाला है उनकी भाषा में गांभीर्य है और वे प्रयोग धर्मिता के सतहीपन में न खोकर भाषा की शालीनता और अभिव्यक्ति की गरिमा को बराबर रख सके है । उनका काव्य संस्कृत निष्ठ शब्दावली के साथ-साथ भाषा की लयात्मकता और सटीक बिम्बात्मकता को कायम रख सका है । केवल संवेदनाओं में ही नहीं भाषिक संरचना और शिल्प विधान में भी नरेश मेहता की काव्ययात्रा निरंतर विकसित परिष्कृत और प्रौढ़तर होती गयी है ।

उपर्युक्त काव्यगत विशेषताओं के विवरण के आधार पर हम यह कह सकते है कि उनका खण्डकाव्य अपने में एक निराला काव्य रूप है। अपनी विलक्षण विशेषताओं के कारण यह काव्य रूप अन्य काव्य रूपों के बीच अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रखता है ।

2. प्रतीक विधान :-

" प्रतीयते अनेन इति प्रतीक " अर्थात् जिससे किसी वस्तु की अभिव्यक्ति हो वह प्रतीक कहलाता है । डा• भगीरथ मिश्र के अनुसार -- " अपने रूप, गुण, कार्य या विशेषताओं के सादृश्य एवं प्रत्यक्षताओं के कारण जब कोई वस्तु या कार्य किसी अप्रस्तुत वस्तु, भाव, विचार, क्रियाकलाप, देश जाति, संस्कृति आदि का प्रतिनिधित्व करता हुआ प्रकट किया जाता है, तब वह प्रतीक कहलाता है । "[1] डा• चन्द्रकला का भी यही मत है कि - " साम्य मूलक अर्थ की ओर संकेत करने के साथ-साथ प्रतीक विशेष भावोद्बोधक अर्थ भी व्यक्त करता है । [2] सच तो यह है कि काव्य का अभिधात्मक स्वरूप और अर्थ प्रतीक के कारण ही प्रभावोत्पादक बनता है । प्रतीक का कार्य काव्य के आभ्यन्तरिक अर्थ

1• काव्यशास्त्र - डा• भगीरथ मिश्र - पृ• 298•

2• आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रतीकवाद - डा• चन्द्रकला - पृ• 2•

सम्बन्धों को अभिव्यक्ति करना भी है । प्रतीक के माध्यम से ही मानव मन के गहन भावों की कलात्मक अभिव्यंजना होती है । इसलिए काव्य रचना में अनंतकाल से प्रतीकों का प्रयोग मिलता है । सिद्धों, नाथों, सन्तों एवं भक्तों आदि की काव्यमयी वाणी में प्रतीकों का अद्भुत प्रयोग हुआ है । युगीन प्रवृत्तियों के अनुसार नये प्रतीकों का जन्म होता है । ज्ञान और अनुभूति के आधार पर सामाजिक जीवन और काव्य सर्जना के क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के प्रतीकात्मक प्रयोग होते हैं ।

नरेश मेहता ने अपने काव्यों में अमूर्त भावों तथा विचारों को प्रकट करने के लिए प्रतीकों का व्यापक प्रयोग किया है । अनेक पौराणिक घटनाओं एवं चरित्रों को प्रतीकों के रूप में प्रस्तुत किया है । पुरावृत्त के आधार पर अनेक सांस्कृतिक प्रतीकों का प्रयोग किया है । अपनी भावानुकूल प्रकृति का सुंदर चित्रण किया है । उपर्युक्त सांस्कृतिक एवं प्राकृतिक प्रतीकों के अंतर्गत विभिन्न प्रतीकों का चित्रण किया है । अतः उनके काव्य में प्रयुक्त प्रतीकों का अध्ययन करना समुचित होगा ।

2.1 शीर्षक की प्रतीकात्मकता :-

" संशय की एक रात " अपने नाम में ही प्रतीकार्थ को लिए हुए है । युद्ध एवं शांति काव्य का मुख्य विषय रहा है । इस कृति में राम के मन में उठने वाले संशय को माध्यम बनाकर युगीन समस्याओं का चित्रण किया गया है ।

युद्ध पूर्व का संशयी राम प्रकारान्तर से आधुनिक प्रजा का प्रतीक बन गया है। वस्तुत: " संशय की एक रात " मानव के मन में उठनेवाले संशय-विकल्प, आस्था-अनास्था एवं द्वन्द्व का प्रतीक है । अत: इसी संकल्प की विकल्प की चक्की में पिसनेवाले जो जन है वे ही काव्य के प्रतीकार्थ को वहन करते हैं। इस शीर्षक की सार्थकता का कारण भी यहीं है । प्रस्तुत कृति में युग के प्रतिनिधि एवं स्वातंत्र्य अपहरण से विकल तथा त्रस्त जन को राम के संशय और संकल्प में स्वयं की प्रतिच्छाया दृष्टिगत होती हैं ।

" महाप्रस्थान " महाभारत के " महाप्रस्थानिक पर्व " का प्रतीक है । इसमें व्यक्ति-प्रजा की खोज ही प्रकारान्तर से हिमालय की ऊर्ध्वमुखी यात्रा का प्रतीक बन गयी हैं । यह यात्रा विश्व को युद्ध स्थितियों से व्यक्ति-मन के विरत होने का प्रतीक सिद्ध हुई है । राजा-राज्यव्यवस्था एवं समाज सम्बन्धों का विचार काव्य का मुख्य विषय रहा है ।

शीर्षक की दृष्टि से प्रवाद-पर्व स्पष्टत: प्रतीकात्मक नहीं है किन्तु राम का प्रवाद प्रकारान्तर से आम जनता का प्रवाद है, जो उसकी तर्जनी के परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति के स्वतंत्र बोध कराता है । " अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता " काव्य का मुख्य विषय रहा है ।

शबरी का शीर्षक शबर जाति के जातिवाचक शब्द का प्रतीक है । शीर्षक के अनुरूप वर्ग मुक्ति का संघर्ष काव्य का मुख्य विषय रहा है ।

" प्रार्थनापुरुष " का शीर्षक गाँधी जी के प्रति कवि की श्रद्धा का प्रतीक है । काव्य के प्रारम्भ में गाँधीजी को संस्कृति के प्रतीक के रूप में स्वीकार करते हुए स्वयं कवि इस प्रकार कहते हैं कि " प्रस्तुत गाँधी गाथा वस्तुत: एक

इतिवृत्तात्मक लघु-कृति है । .... महापुरुष व्यक्ति हुआ नहीं करते वे तो संस्कृति होते हैं । "[1] गांधीजी का जीवन सहित स्वतंत्रता आंदोलन काव्य का मुख्य विषय रहा है ।

2.2 सर्गों की प्रतीकात्मकता :-

" संशय की एक रात " में चार सर्ग है । प्रथम सर्ग का शीर्षक है -- साँझ का विस्तार और बालू तट । यहां " साँझ " शब्द राम के संशयी मन का एवं " बालूतट " नीरसता, अर्थहीनता एवं शुष्कता का प्रतीक है । यह मन के गहन नैराश्य बोध को अभिव्यक्त करता है । द्वितीय सर्ग " वर्षा भीगे अंधकार का आगमन " राम के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का प्रतीक है । तृतीय सर्ग " मध्य रात्रि की मंत्रणा और निर्णय " - गंभीरता और निर्णय का प्रतीक है । इसमें सेतु को मानव विद्रोह भावों का प्रतीक माना गया है । चतुर्थ सर्ग सन्दिग्ध मन का संकल्प और सवेरा " में संदिग्ध, संकल्प जन मानस का एवं " सवेरा " स्थूल निर्णय का प्रतीक है । इस तरह " संशय की एक रात " का सर्ग प्रतीकार्थ की दृष्टि को व्यंजित करने में सार्थकता लिए हुए हैं ।

तीन सर्गों के आधार पर " महाप्रस्थान " की रचना हुई है । जो - यात्रापर्व - स्वाहापर्व एवं स्वर्ग पर्व । मन की ऊर्ध्व यात्रा का प्रतीक है -- " यात्रा पर्व " प्रज्ञा की खोज में स्व के होम होने का प्रतीक है - " स्वाहा पर्व " ऐसे ही महत लक्ष्य सिद्धि का प्रतीक है स्वर्ग । अतः मानव की प्रज्ञा की खोज में प्रारम्भ हुई यह यात्रा युग की समस्त स्थितियों एवं संघर्षों को अपने में स्वाहा करते हुए हरेक स्थिति से विचलित न होकर आगे बढ़ते हुए स्वर्ग में प्रज्ञा-प्राप्त करने के बाद समाप्त हो जाती हैं ।

---

1. प्रार्थनापुरुष - नरेश मेहता - शीर्षबन्ध से उद्धृत

पूर्ववर्ती काव्यों की भाँति " प्रवाद-पर्व " भी एक वैचारिक प्रधान काव्य है । इसमें पाँच सर्ग है । " इतिहास और प्रतिइतिहास " नामक प्रथम सर्ग समकालीन सामाजिक चुनौती का, " प्रति इतिहास और तंत्र " साधारण जनता के प्रति व्यवस्था के व्यवहार का, तृतीय सर्ग " शक्ति: एक सम्बन्ध एक साक्षात् " प्रजा के परतंत्र बोध एवं स्वतंत्रता के लिए सत्ता के विरुद्ध संघर्ष करने का, चतुर्थ सर्ग " प्रतिइतिहास और निर्णय " निरपेक्ष न्याय एवं भाषा - स्वातंत्र्य का एवं " निर्वेद विदा " नामक पंचम सर्ग अंतर्गति का प्रतीक है । इस तरह काव्य के सभी सर्ग प्रतीकात्मकता को लेकर अपने विचारों को अभिव्यक्त करने में सफल हुए है ।

" शबरी " काव्य में त्रेता, पंपासर, तपस्या, परीक्षा और दर्शन नाम के पाँच सर्ग है । " त्रेता " नामक प्रथम सर्ग सामाजिक गतिविधियों का, " पंपा - सर ", संस्कृति का " तपस्या " नामक तृतीय सर्ग धर्म का, " परीक्षा " वर्ग मुक्ति के संघर्ष का " दर्शन " नामक अंतिम सर्ग वर्गमुक्ति का, दार्शनिक एवं सैद्धांतिकता का प्रतीक है ।

" प्रार्थनापुरुष " नामक काव्य में जीवन प्रभात, समुद्र का आमंत्रण, जीवन से साक्षात्, तपस्या की ओर, स्वदेश की पुकार, स्वाधीनता मूल्य आदि के भाग है । जीवन प्रभात को विवेक का, समुद्र का आमंत्रण " को योग्यता एवं वचन पालन का, " जीवन से साक्षात् " अनेक देशों में होनेवाले अन्यायों का " तपस्या की ओर " भिन्न देशों के प्रान्तों को संघर्षों से मुक्ति दिलाने का, " स्वदेश की पुकार " भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का एवं " स्वाधीनता का मूल्य " को भारतीयों के स्वतंत्रता का प्रतीक माना गया है ।

2.3. पात्रगत प्रतीक :-

पौराणिक कथावस्तु के आधार पर कवि सभी पात्रों को प्रतीकात्मक बनाने का सफल प्रयास किया है । कवि के अनुसार —

" संशय की एक रात " के सभी चरित्र प्रकारान्तर से आधुनिक संवेदना के संवाहक है । राम आधुनिक प्रजा का प्रतिनिधित्व करते हैं ।[1] वे युगीन समस्याओं से संघर्षरत संशय एवं संदिग्ध संकल्पी जन के प्रतीक है । हर प्रजावान, शंकाशील इसी यात्रा पर चला है ।[2] लक्ष्मण लघु मानव के अस्तित्व का प्रतीक है —

" कितने ही लघु हो
इससे क्या
सार्थक हैं ।
स्वत्व है हमारा
कर्म । "[3]

हनुमान, नल, नील एवं जामवंत आदि समाज के प्रतीक हैं । ये सभी लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रतीक हैं । विशेषकर हनुमान साधारण जनों के दुःख और अधिकार के प्रतिरूप —

" ये हनुमान
साधारण जनों के दुःख और अधिकार के प्रतिरूप । "[4]

1· संशय की एक रात - नरेश मेहता - भूमिका

2· - वही - पृ· 77 – 78

3· - वही - पृ· 14

4· - वही - पृ· 68

विभीषण अदम्य जिजीविषा का प्रतीक है । सीता साधारण जन की अपहृत स्वतंत्रता का प्रतीक है —

" रावण आँगन की सीता
हम साधारण जन की अपहृत स्वतंत्रता । "[1]

दशरथ और छाया कवि-मन के विचारों के प्रतीक है ।[2]

महाप्रस्थान में युधिष्ठिर मानव-मुक्ति के प्रतीक है —

" मानवता का यह रथ
किस अंधे मार्ग पर बढ़ रहा है
तुम नहीं जानते पार्थ !
संकट कहीं अधिक गहरा है । "[3]

कवि ने युधिष्ठिर के चरित्र में आज के युगीन संवेदना को जोड़कर उन्हें नवीन धरातल पर प्रस्तुत किया है । काव्य में युधिष्ठिर कवि के जीवन-दायित्व-निर्वाह का माध्यम बनकर अवतरित होते हैं । भीम मंद होनेवाले पाण्डवों की वीरता का प्रतीक है —

जो न युद्ध में कभी पराजित
वही भीम —

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 64.
2. - वही - पृ. 41.
3. महाप्रस्थान - " - पृ. 96.

बर्बर वल्कल औ' फटी चर्मपादुका पहने
विकलांगों से पैर घिसटते
आ रहे
आदिम बर्बर मानव जैसे । " 1

अर्जुन थके हुए पुरुषार्थ का प्रतीक के रूप में अवतरित होते हैं --

" अर्जुन के थके स्कन्ध पर
ढीली प्रत्यंचा वाला
गाण्डीव --
ग्रीष्म की तपती विन्ध्य-शिलाओं पर
सूखे प्रपात का चित्रलिखित हो । " 2

नकुल और सहदेव ज्ञान के प्रतीक थे । द्रौपदी सांसारिकता का प्रतीक है --

" वह सांसारिकता थी
पत्नी वह सबकी थी भीम !
किन्तु वह मनसा
प्रिया अकेले पार्थ की ही रही ।
विभाजित व्यक्तित्व
वह किसी का भी हो
धर्म नहीं स्वीकार किया करता भीम ! " 3

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ० 43
2. - वही - पृ० 44.
3. - वही - पृ० 84.

धृतराष्ट्र स्वजनों के प्रति मोहान्धता एवं सत्तालोलुपता का प्रतीक है —

" गाथा सुनते रहे नाश की
पर न प्राप्त हो सकी दृष्टि
साधारण सी भी ।
अन्धापन वह
आत्मा का था,
सामूहिक अन्धेपन के थे
वे प्रतीक । " [1]

गाँधारी पत्नीत्व एवं मातृत्व का प्रतीक है —

" राज्यलक्ष्मी गाँधारी ने
स्वीकारा कृत्रिम
अन्धापन । [2]

x x x

" वर्षों बाद
सायास अन्धता पर से पटल हटाना —
कैसी थी दुर्दान्त
अग्निमय, शस्त्र सरीखी दृष्टि,
क्यों कि वह माँ थी
जिसके सौ-सौ पुत्र

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 44.
2. - वही - - पृ - 44

घावों में अंग-अंग होकर फैले थे
यहाँ-वहाँ
माँस के गिद्ध-ग्रास से । " [1]

अश्वत्थामा आज के युगीन संवेदनाओं से, यांत्रिक सभ्यता से पीड़ित अस्तित्वहीन मानव का प्रतीक है —

अमरता के अभिशाप में धावले
कोढ़ी अश्वत्थामा को नहीं पहचानती द्रौपदी ? " [2]

श्वान निर्मोह का प्रतीक है —

" जीव मात्र के प्रतीक
अयाचित बन्धु
श्वान

x x x

तुम्हें लौट जाने के लिए कहना
सृष्टि को लौट जाने के लिए कहना होगा,
और बिना सृष्टि के तो
स्वयं ईश्वर भी नहीं है । " [3]

इस तरह सभी पात्र पौराणिक होकर भी आधुनिक संवेदना का ग्राहक बन गए है ।

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 51.
2. - वही - पृ. 78.
3. - वही - पृ. 118.

प्रवादपर्व में नायक राम को जन-साधारण की स्वाधीनता एवं अभि - व्यक्ति की स्वतंत्रताबोध का प्रतीक माना गया है । वे आमजन के अंतः कर्म के प्रतीक है —

" कर्म
निर्मम कर्म
केवल अंतः कर्म करता ही चला जाए ? " 1

x x x

कर्म के इस तटस्थ
भागवत - अनुष्ठान से
कोई मुक्ति नहीं
कोई निष्कृति नहीं !! " 2

सीता समस्त नारी जाति के ज्ञान-विवेक एवं चरित्र मर्यादा का प्रतीक है —

" मेरी ओर से
आप को सर्वथा आश्वस्त होना चाहिए आर्यपुत्र ! कि
आसन्न मातृत्व के
इस संकट की स्थिति में भी
मैं आप की राज्य-गरिमा
और अपनी चरित्र-मर्यादा के लिए
कोई भी भी परीक्षा दे सकती हूँ
पर प्रजा के विश्वास की
निर्भय अभिव्यक्ति की रक्षा अनिवार्य है । " 3

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 21.
2. - वही - पृ. 23.
3. - वही - पृ. 81.

अन्य पात्रों में धोबी को अनाम साधारण वर्ग के अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का प्रतीक माना गया है —

" मानवीय स्वातन्त्र्य
मानवीय भाषा और
मानवीय अभिव्यक्ति के
प्रतिइतिहास का सामना
वैसे ही
मानवीय प्रतिगरिमा के साथ
करना होगा लक्ष्मण !
प्रतिइतिहास को इतिहास से नहीं
विनय से स्वीकारना होगा । "[1]

" शबरी " शीर्षक वाले शबरी पात्र वर्ग मुक्ति का प्रतीक है —

" श्रद्धा से भक्ति बनी वह
सम्भव सब कुछ जीवन में । "[2]

मतंग ऋषि समता का प्रतीक है —

" अपने को श्रेष्ठ समझना
यह दम्भ नहीं तो क्या है ?
जिसका जीवन है सात्त्विक
वह आर्य नहीं तो क्या है ? "[3]

---

1. प्रवादपर्व – नरेश मेहता – पृ. 50.
2. शबरी – " – पृ. 92.
3. – वही – पृ. 59.

अन्य ऋषिगण समकालीन वर्ण एवं जातिव्यवस्था के प्रतीक है ।[1]

" प्रार्थनापुरुष " में गाँधीजी को स्वतंत्रता का प्रतीक माना गया है —

" वह नमक नहीं, थी सिन्धु
और पृथ्वी की पावन साक्षी
अब तो स्वतंत्रता का प्रतीक
गाँधी तो केवल साक्षी । "[2]

इन सभी पात्रों को परम्परा से हटाकर नए सन्दर्भ में सुन्दर प्रतीकों के रूप में लिया गया है ।

2.4. सांस्कृतिक प्रतीक :-

संस्कृति किसी देश जाति या समाज का प्राण तत्व होती है । इसलिए इस की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, साहित्यिक एवं संदर्भों में विभिन्न व्याख्याएँ की गयी है । इन प्रतीकों की एक लम्बी परम्परा प्राचीनकाल से चली आ रही है । प्राचीन परंपरा के प्रतीकों में रामायण, महाभारत एवं इतिहास संबंधी प्रतीक प्रमुख होते है । ये प्रतीक प्रधानतः प्राचीन संस्कृति के किसी न किसी आदर्श पर युगीन परिस्थितियों के अनुरूप जीवन की नवीन व्याख्या करते हैं । इन प्राचीन प्रतीकों के अनुरूप युगानुकूल संस्कृति में अनेक नवीन प्रतीकों का प्रयोग किया गया है । सामाजिक जीवन व्यापार से भी कुछ नवीन प्रतीकों को चुना गया है । अतः

---

1. शबरी - नरेश मेहता - पृ. 56.
2. प्रार्थना पुरुष - " - पृ. 46.

संस्कृतिक प्रतीकों के अंतर्गत प्रयुक्त प्रतीकों का क्रम इस प्रकार है — वैदिक कर्मों द्वारा संस्कृति की सुरक्षा की जाती है । ऐसी संस्कृति की सुरक्षा क्या युद्ध द्वारा ही की जायगी ? इसका विवेचन विभिन्न सांस्कृतिक प्रतीकों के सहारे किया गया है —

" ये यज्ञ
ये आश्रम
देवोपासना
मानव एकता
यदि बिना युद्धों के नहीं सत्य । " [1]

यज्ञ, आश्रम, देवोपासना, सत्य आदि संस्कृति के प्रतीक है । संस्कृति को घोतित करनेवाले वातावरण इस प्रकार के हैं —

" पम्पासर मे बड़े-बड़े ऋषि
मुनियों के हैं आश्रम
ज्ञान-ध्यान, तप-आराधन
के तीर्थस्थ है आश्रम । " [2]

पम्पासर, ऋषि, मुनि, आश्रम, ज्ञान-ध्यान, तप-आराधना ये सब संस्कृति के प्रतीक है । यहाँ पम्पासर अपनी प्राचीनता को लेकर पौराणिक ख्याति को प्राप्त किया है ।

---

1. संशय की एक रात – नरेश मेहता – पृ. 23.
2. शबरी – " – पृ. 25.

पौराणिक कथावृत्त पर आधारित होने के कारण ही काव्य में सांस्कृतिक प्रतीक सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है । युधिष्ठिर की मानवीय संवेदना की अभि - व्यक्ति के लिए सांस्कृतिक प्रतीकों का प्रयोग किया गया है —

" कितना कठिन है
व्यक्ति के ये कवच-कुण्डल उतार कर
समय को दे देना ।
हर कोई कर्ण नहीं हो पाता महाराज ! " 1

x x x

मानवता का यह रथ
किस अंधे मार्ग पर बढ़ रहा है
तुम नहीं जानते पार्थ ! " 2

यहाँ कवच-कुण्डल व्यक्ति के अन्तर्व्यक्तित्व का प्रतीक है तथा कर्ण तत्कालीन स्थितियों के मूल्यकर्ता के/रथ प्रगतिशील मानवता का प्रतीक है । " अन्धे मार्ग " गहन नैराश्य बोध के प्रतीक हैं ।

संस्कृति भूमि की भाँति मनुष्य की मानसिक एवं सामाजिक अवस्थाएँ भी विकसित हुआ करती है । संस्कृति मनुष्य की सहज प्रवृत्तियाँ, नैसर्गिक शक्तियाँ तथा परिष्कार का द्योतक है अर्थात् मानव जीवन के आचार-विचारों का शुद्धी करण है जिसका परम उद्देश्य जीवन का चरम उत्कर्ष प्राप्त करना है । जिसका परम उद्देश्य जीवन का चरम उत्कर्ष प्राप्त करना है । मनुष्य और सृष्टि के अभेद

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 74.
2. - वही - पृ. 96.

सम्बन्धों की स्थापना करते हुए, मानवीय अधिकारों में विशेषकर भाषा की रक्षा की आवश्यकता के सम्बन्ध में चर्चा करते समय विभिन्न सांस्कृतिक प्रतीकों का सहारा लिया गया है —

" चाहे वह देव भाषा या हो या
माटी - भाषा
मनुष्य का भाषाहीन हो जाना
सृष्टि का
ईश्वरहीन हो जाना होगा लक्ष्मण !
ये सारे मन्त्र
ये सारे काव्य
ये पुराण, ये उपनिषद
ये इतिहास, ये उपाख्यान
सब सम्बोधन हो जाएँगे लक्ष्मण ! " ¹

यहाँ भाषा, सृष्टि, मन्त्र, काव्य, पुराण, उपनिषद, इतिहास उपाख्यान, लक्ष्मण आदि पौराणिक संस्कृति के प्रतीक हैं ।

जीवन रूपी नाटक के बारे में चर्चा करते समय राम की मानसिक संवेदना के माध्यम से अनेक सांस्कृतिक प्रतीक व्यक्त हुए हैं —

" सीता
यहाँ केवल निमित्त बदलते हैं
और कुछ नहीं ।
एक ही नाटक
व्यक्ति के जीवन में

1· प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ· 52·

बार-बार दुहराया जाता है ।
स्थान बदल सकते हैं
भाषाएँ, मुद्राएँ भी बदल सकती हैं
पर नाटक
वस्तुत: वही रहता है
चाहे वह पंचवटी हो
या अयोध्या का राज भवन । "[1]

यहाँ निमित्त बदलना नाटक का प्रतीक है । भाषाओं एवं मुद्राओं का बदलना उन संदर्भों या कारणों का प्रतीक है । पंचवटी, अयोध्या का राजभवन उस जीवन नाटक के रंगमंच का प्रतीक है ।

जीवन विधान को निर्धारित करने में संस्कृति महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है । उसकी अनुशासन की अभिव्यक्ति इस प्रकार स्पष्ट होती है —

" तब एक गाँव में गाँधी ने
" सत्याग्रह-आश्रम " शुरू किया

x x x

अनुशासन ही है मूल-मन्त्र
है खेल नहीं आश्रम-जीवन
संयम, निग्रह औ सत्य अहिंसा
सत्याग्रह के चार चरण । "[2]

1· प्रवादपर्व – नरेश मेहता – पृ· 64·
2· प्रार्थना पुरुष – " – पृ· 32 – 33·

सत्याग्रह, आश्रम, अनुशासन, संयम, निग्रह, सत्य, अहिंसा आदि संस्कृति के प्रतीक है ।

मानवीय आचार-विचारों के द्वारा संस्कृति अभिव्यक्त होती है । संस्कृति के मूल भूत तत्वों का परिचय यहाँ दिया गया है —

" ये सारे उपवास और व्रत
आत्मा के सात्विक भोजन
और प्रार्थना के सोपानों से
हो प्रभु तक जाता मन ।
मंदिर-सी हो धुली देह
प्रभु-प्रतिमा सा हो मानव-मन
केवल करुणा, दया अहिंसा
और सत्य का आराधन । "[1]

उपवास, व्रत, प्रार्थना, प्रभु, मंदिर, प्रभु-प्रतिमा, करुणा दया, अहिंसा, सत्य आदि संस्कृति के प्रतीक हैं ।

2.5. राम कथा के प्रतीक :-

संशय की एक रात, शबरी एवं प्रवादपर्व रामकथा के प्रतीक है । युद्ध विषयक चर्चा के साथ रामकथा से संबंधित कुछ संदर्भ स्पष्ट होते हैं । लक्ष्मण के कथन के अनुसार —

---

1. प्रार्थना पुरुष - नरेश मेहता - पृ. 20.

प्रभु ! मेरे
यह सेतुबन्ध आयोजन
या कि
युद्ध - आवाहन आदि कहीं
व्यर्थ तो नहीं लगता ? [1]

यह सेतुबन्ध आयोजन, अन्यायों के प्रति मानव विद्रोह भावों का प्रतीक होने पर भी रामकथा के अद्भुत प्रतीक है ।

रामकथा से संबंधित प्रधान विषयों को हनुमान के कथन द्वारा कहलाया गया है —

" रावण अशोकवन की सीता
हम साधारण जन को अपहृत स्वतंत्रता । " [2]

रावण, अशोकवन की सीता, दक्षिण के साधारण जन आदि राम कथा के प्रतीक है । ऐसे ही रावण द्वारा विभीषण का राज्य बहिष्कार तथा राम के पक्ष की ओर से रावण से युद्ध करने के लिए तैयार होना आदि घटनाएँ भी राम कथा से सम्बन्धित है ।

" शबरी " रामकथा प्रधान काव्य है । कथा को आगे बढ़ाने के लिए कवि ने अधिकांश रूप में कल्पना का सहारा लिया है । राम, लक्ष्मण का शबरी के आश्रम में जाना, उसका आतिथ्य स्वीकार करना, उसकी भक्ति से संतुष्ट होना, शबरी अपनी मुक्ति के लिए राम से विनती करना एवं राम द्वारा शबरी का

1· संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ· 6..
2· शबरी - " - पृ· ..

उद्धार आदि घटनाएँ रामकथा के प्रतीक है शबरी की मुक्ति को वर्ग मुक्ति का प्रतीक रूप देना कवि को कल्पना है --

" आकाश भागवत की वह
थी प्रथम श्लोक सी-शबरी
करने कृतार्थ जाती थी
अब स्वर्गलोक शबरी । " [1]

" प्रवादपर्व " रामाख्यान पर आधारित काव्य है । सीता के चरित्र पर धोबी का आरोप, राम द्वारा भरत, लक्ष्मण एवं अन्य मंत्रियों सहित इस पर चर्चा करना, अंत में सीता का प्रवाद आदि प्राचीन रामकथा की घटना के प्रतीक है । धोबी के आरोप को लेकर राम द्वारा सभा सदों के बैठक में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर विचार करना कवि की कल्पना है । राम का निर्णय काव्य की प्रतीकार्थ को व्यंजित करता है --

" कल सूर्योदय के साथ ही
सीता
वनवास के लिए प्रस्थान करेंगी । " [2]

2.6. <u>महाभारत कथा के प्रतीक</u> :-

महाप्रस्थान महाभारत के महाप्रस्थानिक पर्व की घटना है । युधिष्ठिर को द्यूत-क्रीडा भीम का अपमान एवं दु:शासन के हृदय-रक्त पान, तेरहवर्षों का वनवास धृतराष्ट्र का अन्धत्व, गांधारीका कृत्रिम अन्धापन, कर्ण का वैर, कृष्ण का गीता दर्शन,

---

1. शबरी - नरेश मेहता - पृ. 92.
2. प्रवादपर्व - " - पृ. 103.

द्रौपदी वस्त्रापहरण, अश्वत्थामा का अभिशाप, द्रोण चार्य की विवशता, अभिमन्यु का सामूहिक वध, महाभारत युद्ध, पाँडवों का स्वर्गारोहण आदि घटनाओं को प्रतीकात्मक रूप में चित्रित किया गया है । "महाप्रस्थान" में पांडवों के स्वर्गारोहण के समय यात्रापर्व से लेकर स्वर्गपर्व तक के बीच स्मृतियों एवं विभिन्न विषयों की चर्चा के सम्बन्धों में उपर्युक्त घटनाओं का परिचय दिया गया है —

"अभी यह उत्तर द्वार खुलेगा
मैं जानता हूँ
देवताओं को तुम्हारे प्रवेश से आपत्ति होगी
परन्तु विश्वास करो बन्धु
तुम्हि-रश्मा के बदले
मैं स्वर्ग भी नहीं स्वीकारूँगा ।"[1]

2.7. ऐतिहासिक कथा के प्रतीक :-

"प्रार्थनपुरुष" गाँधी जी के जीवन एवं स्वतंत्रता आँदोलन से सम्बन्धित कृति है । इसमें गाँधी जी के जीवन से लेकर मृत्युतक एवं स्वतंत्रता आँदोलन-प्रधानतः प्रथम युद्ध से लेकर स्वतंत्रता प्राप्त होने तक की घटनाएँ हैं - गाँधी का जन्म, उनका विदेश जाना, बैरिस्टर बनना, डरबन न्यायालय से अपमान पाना, रौलट रिपोर्ट का विरोध, जलियनवाला हत्याकांड, साइमन कमीशन का तिरस्कार, नमक सत्याग्रह, भारत छोड़ो आँदोलन, भारत को स्वतंत्र मिलना, गाँधी जी की हत्या आदि प्रमुख हैं —

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 127 - 128.

" यह नमक नहीं थी सिन्धु
और पृथ्वी की पावन साक्षी
अब तो स्वतंत्रता का प्रतीक
गाँधी तो केवल साक्षी । " [1]

नमक आंदोलन यहाँ गाँधी जी के द्वारा स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रयास का प्रतीक है ।

2.8. सैद्धांतिक प्रतीक :-

सैद्धांतिक प्रतीकों के अंतर्गत मानव जीवन संबंधी कुछ विचारों को सैद्धांतिक रूप में चर्चित किया गया है । ऐसे कुछ श्रेष्ठ विचारों को प्रतीकों के रूप में चर्चित किया गया है । अतः ऐसे सिद्धांत क्रमशः आदर्श का रूप भी धारण किया है । जैसे —

" संशय की एक रात " में राम युद्ध करके जनविनाश के कारण बनने के सिवा इतिहास हीन होना या स्वंय दुःख का अनुभव करना उचित समझते हैं —

" इतिहास के हाथों
बाण बनने से अधिक अच्छा है
स्वयं हम
अँधेरे में यात्रा करते हुए
खो जाएँ । " [2]

---

1. प्रार्थनापुरुष - नरेश मेहता - पृ. 46.
2. संशय की एक रात - " - पृ.10.

" महाप्रस्थान " में युधिष्ठिर राजा और राज्य-व्यवस्थाओं को क्रूरताओं और षड्यन्त्रों का प्रतीक मानते हैं । युद्ध करके वह अभी तक जन विनाश का कारक भी बन गया है । इसलिए फिर राजा बनकर उन षड्यन्त्रों में भागीदार बनना नहीं चाहते हैं । अपनी अमानवीय कृत्यों के बदले वह राज्य त्यागकर इतिहासहीन मृत्यु को स्वीकार करना उचित समझते हैं —

" मैं इस षड्यन्त्र का
भागी नहीं बनना चाहता था
इसलिए
एक नितान्त साधारण जन बन कर
अपने अमानवीय कृत्यों के लिए
हिम में गलकर
इतिहासहीन मृत्यु स्वीकार लेना
उचित समझा पार्थ ! "[1]

" प्रवादपर्व " में राम कर्म को ही जीवन धर्म मानते हैं । कर्म से कोई नहीं बच सकते —

" कर्म है यह
अनासक्त
नामदोश स्वस्थ से
सूर्यांगी !
स्वयं सूर्य को भी मुक्ति नहीं
निष्कृति नहीं । "[2]

1· महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ· 100·
2· प्रवादपर्व - " - पृ· 26·

शबरी शाश्वत सत्य को प्राप्त करना ही अपना लक्ष्य सिद्ध करती है —

" सब बन्धन से वहीं श्रेष्ठ है
उस प्रभु का ही बन्धन
कुल-कुटुम्ब की चिन्तन से
उत्तम है प्रभु-आराधन । " [1]

" प्रार्थनापुरुष " में गांधीजी देश तथा प्रजा के रक्षार्थ कर्म की अनिवार्यता को स्वीकार करते हैं —

" सोचा गांधी ने – क्रान्ति तभी
सम्भव है जब यह देश जगे
पुरुषार्थ तभी जगेगा जब
यह देश, हाथ से कर्म करे । " [2]

2.9. दार्शनिक प्रतीक :-

काव्य में विभिन्न दार्शनिक प्रतीकों का समुचित प्रयोग किया गया है । पात्रगत प्रतीकों के माध्यम से दार्शनिक प्रतीकों को अभिव्यक्त किया गया है —

---

1. शबरी – नरेश मेहता – पृ. 20.
2. प्रार्थनापुरुष – " – पृ. 32.

"पंचतत्व की भाँति
यह पाण्डवता
अब अन्तिम रूप से
विघटित होने को है भीम ! "[1]

यहाँ पाण्डवों के रूप में पाँच महातत्वों के दर्शन भी कर सकते हैं। युधिष्ठिर आकाशतत्व का, भीम पवन तत्व का, अर्जुन अग्नितत्व का, नकुल जलतत्व का एवं सहदेव भूमितत्त्व के प्रतीक हैं।

प्रकृति को देखते ही कवि के मन में जिज्ञासा एवं कौतूहल के भाव जागृत होने लगे हैं। यह कौतूहल ही कवि की मूल प्रेरणा है। वे प्रकृति को देखकर कौतूहल प्रकट करते हैं —

" है मन्त्रों के पावन स्वर
किसको सम्बोधन करते ?
हैं कौन घास बन फैला
जिसको पशु तन्मय चरते।

x x x

कोई तो होगा नभ में
जल में, थल में या हममें,
जो गन्ध समीरण बनकर
है घूम रहा कण-कण में। "[2]

1· महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ· 114
2· शबरी - " - पृ· 41·

मन्त्र, घास, पशु, जल, थल, समीरण, कण-कण आदि प्रकृति के प्रतीकों के माध्यम से दार्शनिक भावों को अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया गया है ।

सुख दुख जीवन का प्रतीक है । दुख प्रभु का प्रतीक है । शबरी एवं निषाद सुख का प्रतीक है । प्रभुता सम्पदा का प्रतीक है । जैसे —

सीता !
सुख का एक ही प्रकार होता है

x x x

सम्भवत: दु:ख ही प्रभु है
सुखी है वह निषाद
सुखी है वह शबरी
जो पदार्थ भाव से ऊपर हैं,
परन्तु हम तो
देश और काल को
समस्त प्रभुता
सम्पन्नता और सम्पदा
अपने अंग पर धारण करना चाहते हैं । " 1

2.10. राजनैतिक प्रतीक :-

मानव समाज की रक्षा के लिए निर्मित प्राचीन संस्थाओं में राज्य एक है । कवि राजनीति में निरंकुशता के स्थान पर लोक कल्याण भावना को प्रतिष्ठित करना चाहता है । उनकी राष्ट्रीय भावना विश्वमंगलकारी है । प्रजा की रक्षा के लिए

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ० 68 - 69.

युद्ध के बारे में विचार करते समय कवि ने विभिन्न प्रतीकों का प्रयोग किया है —

" सन्धि या कि युद्ध
टूटे सन्दर्भ की
मात्र विवशता ही नहीं हैं ।
नहीं हैं हम
परिचालित यन्त्र मात्र । " [1]

x x x

धनुष, बाण, खड्ग और शिरस्त्राण
मुझे ऐसी जय नहीं चाहिए
मानव के रक्त पर पग धरती आती
सीता भी नहीं चाहिए । " [2]

सन्धि, युद्ध, यन्त्र, धनुष, बाण, खड्ग, शिरस्त्राण, जय, रक्त, आदि राजनीतिक प्रतीक हैं । अन्य राजनीति से सम्बन्धित प्रतीकों का प्रयोग कवि ने किया है —

" सेनाएँ, रथ, घोड़े हाथी सब
युद्धयात्रा पर चल देंगे । " [3]

x x x

---

1. संशय की एक रात – नरेश मेहता – पृ. 14.
2. – वही – पृ. 32.
3. – वही – पृ. 87.

सेना की पग ध्वनियाँ
रणनिनाद भेरियाँ
युद्धघोष, झाँझरियाँ
युद्ध करो । "[1]

विभिन्न प्रतीकों के सहारे राजा और राज्य व्यवस्था के स्वरूप पर विचार किया गया है । यहाँ राजा और राज्य को क्रूरताओं और षड्यन्त्रों का प्रतीक माना गया है —

" क्रूरताओं और षड्यन्त्रों का प्रतीक
राजा और राज्य
मानवीय उदात्तताओं और करुणा के प्रतीक
धर्म के प्रतिपालक नहीं हो सकते । "[2]

राजनीति पर चर्चा करने के लिए राज्याभिषेक अथवा व्यवस्था के विभिन्न प्रतीकों का सहारा लिया गया है —

" हब मंत्रीवर !
प्रजा का ही
यह कर्तव्य भी है कि
अधिकार में डूबे राज्य और
राजपुरुषों से कहे,
न हो आग्रह करे कि
क्या शुभ है, और
क्या अशुभ । "[3]

---

1. संशय की एक रात – नरेश मेहता – पृ. 91.
2. महाप्रस्थान – " – पृ. 97.
3. प्रवादपर्व – " – पृ. 42.

निरंकुश राज्य व्यवस्थाओं को समाप्त करने के लिए कुछ राजनीतिक प्रतीकों का सहारा लिया गया है । राजा और प्रजा के अधिकारों के बारे में सोचते समय कवि भावानुकूल इन प्रतीकों का प्रयोग करता है —

" यदि किसी
एकान्त
भयावह बावड़ी की
कोई खायी
जर्जर विद्रूप चट्टानों को फोड़कर
प्रतिहारिहास का तेजस्वी
पीपल-पुरुष
हरहराने लगे तो
उसे चुनौती के स्थान पर
सहज सत्य की अभिव्यक्ति
क्यों नहीं माना जाना चाहिए ? " ।

" बावड़ी की कोई खायी चट्टाने, समाज एवं रूढ़िग्रस्त राज्य का प्रतीक है, " तेजस्वी पीपल पुरुष " रूढ़ियों को चुनौती देनेवाला सशक्त व्यक्ति का प्रतीक है" ।

स्वाधीनता के संबंध में चर्चा करने के लिए विभिन्न राजनीतिक प्रतीकों का प्रयोग किया गया है —

---

1. प्रवादपर्व — नरेश मेहता — पृ. 34.

"अब तक तो व्यापार रहा
पर अब थी अधिकारों की बात
अर्जी, तार, पिकेटिंग-मीटिंग
जगे लोग, सब रातों रात ।"[1]

राजनीति के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए कुछ प्रतीकों का प्रयोग किया गया है —

"गोली-लाठी प्राणार्पण
अब आये दिन की बातें
राजनीति के लिए व्यर्थ थी
मानवता की बातें"[2]

x x x

विषय-युद्ध नाजुक क्षण में
रंगरूट चाहिए थे उनको ।"[3]

x x x

तब प्रथम बार राष्ट्र में
गूँजा हड़ताली नारा ।"[4]

---

1. प्रार्थनापुरुष – नरेश मेहता – पृ. 15.
2. – वही – पृ. 28.
3. – वही – पृ. 36.
4. – वही – पृ. 37.

2.11. **प्राकृतिक - प्रतीक :-**

काव्य में प्रयुक्त विभिन्न प्रकार के प्रतीकों में प्राकृतिक प्रतीकों को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है । कुछ काव्यों में आद्यान्त प्रकृति का रमणीय एवं सहचरी रूप दिखाई पड़ती है । उनके काव्य में प्रकृति चैतन्य ज्वार के समान काव्य को नया अर्थवत्ता पहुँचाती चली है । ऐहिक जीवन की संवेदनाओं तथा भावदशाओं को अभिव्यक्ति के लिए एवं आध्यात्मिक चेतना को जगानेवाले के रूप में प्राकृतिक प्रतीकों का प्रयोग किया गया है । इसके साथ प्रकृति का स्वतंत्र रूप भी काव्य में गोचर होती रहती है ।

" संशय की एक रात " में सीता वियोग सहित विभिन्न संवेदनाओं से पीड़ित राम अपनी मानसिक संवेदना को प्रकृति के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं । इस कृति में यात्रा शब्द कर्म और कर्तव्य का प्रतीक बनकर उभरी है —

" मेरी यात्रा
छोटे शंख सी
यही बालू में कहीं गिर
खो गयी है । "[1]

राम की मानसिक वेदना के साथ प्रकृति के स्वस्थ रूप का वर्णन भी यों दिया गया है —

" ओ सिन्धु ।
ओ आकाश !

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 7

नारियल के वन !
समुद्री खारी हवा ।
ओ अनर्पित की भाद्रपद की साँझ ।
वहाँ उस साँझ तारे को नहीं
मुझको दिखोगे । "[1]

सिन्धु, आकाश, वन, समुद्र साँझ आदि प्रकृति के प्रतीक हैं ।

काव्य में प्रकृति मानव की सहचरी बनकर उनके भावों की अभिव्यक्ति की सशक्त वाहिका बन गयी है । उन दोनों के अभेद्य सान्निध्य को विभिन्न प्राकृतिक प्रतीकों के द्वारा सुन्दर चित्रण किया गया है । ऐसे प्राकृतिक प्रयोग यहाँ द्रष्टव्य है —

" व्यक्ति के फूलत्व को कुचल दोगे
तो वन
गन्धमादन कैसे बन पायेगा पार्थ ?
फूल का एकाकीपन
अरण्य की सामूहिकता की शोभा है
विरोधी नहीं । "[2]

x x x

विशाल पोत में
छोटे से छिद्र की ओर ध्यान नहीं जाता
पर

---

1. संशय की एक रात – नरेश मेहता – पृ. 7.
2. महाप्रस्थान – " – पृ. 99 – 100.

एक दिन समुद्र
अपनी विशाल काया उसी छिद्र से
क्रमश: भीतर ले जाता है
और समस्त पोत को
निगल जाता है । "1

यहां फूल व्यक्तिविकास का एवं वन समाज का प्रतीक है । पोत, छिद्र एवं समुद्र क्रमश: समस्त मानव समाज, विवशता एवं राज्य-व्यवस्था के प्रतीक हैं । कवि ने अपनी प्रज्ञा के अनुकूल इन प्रतीकों का सार्थक प्रयोग किया है । मानव जीवन के अनेक प्रश्नों का समाधान प्रकृति में खोजने का प्रयत्न इस प्रकार किया गया है —

" दिशाएँ
उत्तर की प्रतीक्षा में
स्वयं प्रश्न बनीं
आकाश और ब्रह्माण्ड थामे खड़ी-खड़ी
वृद्ध हो रही हैं । "2

यहां दिशाएँ समाधान का खोज करनेवाले अर्थात् अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्ष करनेवाले आधुनिक मानव का, आकाश और ब्रह्माण्ड आस्था और अनास्था का प्रतीक है ।

प्रकृति मानव सत्ता का प्रतीक बनने के साथ-साथ अपने स्वतंत्र रूप का परिचय भी यों स्पष्ट करती है —

1· महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ· 106·
2· प्रवादपर्व - " पृ· 21 - 22·

" तभी तो वह समुद्रजित
तुम्हारे तिनके की ओट नहीं लांघ सका ।
अनाम घास की पत्ती की वह ओट
मन्वतरों की दूरी थी । "[1]

यहाँ घास की पत्ती मर्यादा का प्रतीक है ।

" विशालता और वैराट्य
भिन्न दिशाओं की ओर जानेवाली
भाव-भूमियाँ हैं ।
मैं पृथ्वी और
आप आकाश
हमारी युति
हमारी सन्धि
सदा अप्राप्य क्षितिज ही रहेगी । "[2]

यहाँ भिन्न दिशाएँ, भाव-भूमियाँ, पृथ्वी, आकाश, क्षितिज आदि प्रकृति के प्रतीक है । विशाल भूमि भाव के प्रतीक है । पृथ्वी एवं आकाश क्रमशः प्राप्य एवं अप्राप्य का प्रतीक है । कवि जीवन की समस्त प्रेरणाओं को प्रकृति से ही प्राप्त करते हैं। बादल, वन, सरिता आदि को देखकर मुग्ध भी होते हैं । उस उन्मुक्त रूप पर अपनी नागरीकल्पना और मानवोचित भावों का चार चाँद लगाने से कवि का प्रकृति वर्णन खिल उठा है । अतः वे प्रकृति और मनुष्य के अभेद्य सान्निध्य को इस प्रकार स्पष्ट करते हैं —

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 69 - 70.
2. - वही - पृ.71 - 72.

" लगता है वह स्वयं नदी है
फूलों में कल-कल बहती
कोकिल बन कुंजों-कुंजों
प्रभु नाम टेरती रहती । "[1]

नदी का कल कल बहना एवं कुंजों में कोकिल का कूकना आदि प्रकृति के प्रतीक हैं। प्रकृति के स्वतंत्र रूप का चित्रण इस प्रकार दिया गया है —

" कृष्ण पक्ष, था मन्द हवा थी,
था वृक्षों में कम्पन
एक अकेले नाले का था
शब्द, नहीं तो, निर्जन । "[2]

नदी का कल कल बहना एवं कुंजों में कोकिल का कूकना आदि प्रकृति के प्रतीक हैं ।

अज्ञात सत्ता की खोज करने के लिए भी प्रकृति का सहारा लिया गया है —

" ये मंत्रों के पावन स्वर
किसको सम्बोधित करते ?
है कौन घास बन फैला
किसको पशु तन्मय चरते । "[3]

---

1. शबरी - नरेश मेहता - पृ. 52.
2. - वही - पृ. 22.
3. - वही - पृ. 40.

वातावरण का चित्रण के साथ-साथ किसी होनेवाली घटनाओं की सूचना देने के लिए प्रकृति का वर्णन किया गया है। कवि ने अपने भावों के अनुसार प्रकृति के वातावरण का चित्रण किया है —

" यह नील अरब-सागर तट
विस्तीर्ण बालू की बेला
है महल बालू के रचता
बैठा है कौन अकेला
सागर जल की यह बैठी
जल-गन्ध हवा में फैली
अस्ताचल वाली लाली
पड़ रही क्षितिज में फैली। "[1]

सागर, तट, बालू, जल, जल-गन्ध, हवा, अस्ता चलवाली लाली, क्षितिज आदि प्रकृति के प्रतीक हैं। और उसी संदर्भ में मानव के स्वभाव का प्रतिनिधित्व करते हैं।

" लहरों के उत्ताल पर्वों पर
पीत हिलोरें लेता था
हार मान लहरें हट जातीं
फिर भी सागर लेता था। "[2]

---

1. प्रार्थनापुरुष - नरेश मेहता - पृ. 1.
2. - वही - पृ. 7.

यहाँ लहरें, हिलोरे, फन, सागर आदि प्रकृति के प्रतीक है । जो गांधी की मान सिकता को घोतित करते हैं । कई स्थलों पर कवि अपने भावों की अभि - व्यक्त करने के लिए प्रकृति का सुन्दर चित्रण किया है —

" सिन्धु की ओर थी चली जा रही
राजनीति की गंगा
कैसा था यह महा भगीरथ
जो फकीर था नंगा । " ।

सिन्धु, गंगा आदि प्रकृति के प्रतीक हैं । अत: कहा जा सकता है कि नरेश मेहता के काव्य में प्राकृतिक प्रतीकों का सुन्दर चित्रण विभिन्न रूपों में हुआ है ।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि नरेश मेहता के काव्यों में पौराणिक संस्कृति के प्रतीकों को अधिक ग्रहण किया गया है । अन्य प्रतीकों को भी परम्परागत तथा नवीन रूपों में प्रयोग किया गया है । अत: प्रतीक का महत्व अनुभूति को व्यवस्थित रूप देने और भावाभिव्यक्ति में सहयोग देने में हैं ।

1· प्रार्थना पुरुष - नरेश मेहता - पृ· 45·

3. <u>बिम्ब विधान</u> :-

प्रस्तुत परिवेश की संवेदनाओं और प्रत्यक्ष के अतिरिक्त व्यक्ति के मानस में अतीत की, तथा कभी अस्तित्व न रखने, न घटनेवाली वस्तुओं और घटनाओं की असंख्य प्रतिमाएँ रहती है। बिम्ब शब्द व्यक्ति के मानस की प्रतिमाओं का ही पर्याय है।"[1]

बिम्बों के निर्माण में मनुष्य की स्पर्श, गंधादि अनुभूतियों की ऐन्द्रियता काम करती है। ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त अनुभव का एक मूर्त अंकन मानस पटल पर हो जाता है। डा॰ नगेन्द्र ने कहा है " बिम्ब एक प्रकार का चित्र है, जो किसी पदार्थ के साथ विभिन्न इंद्रियों के सन्निकर्ष से प्रमाता के चित्त में उद्बुद्ध हो जाता है।[2] अत: बिम्ब काव्य की लोचनता का एक महत्वपूर्ण उपादान है। बिम्ब विधान काव्य में स्थाई रूप से विद्यमान रहता है। वह काव्य के शाश्वत तत्व के रूप में कभी उससे नही छूटती है।

कवि अपने अनुभवों द्वारा अपने मानस में जिन बिम्बों को संचित करता है, उन्हें अपनी अभिव्यक्ति में प्रस्तुत करके उसे प्रेषणीय बनाने का प्रयास करता है। कवि कर्म में स्मृतिजन्य बिम्बों की अपेक्षा, विविध स्मृतिजन्य बिम्ब के अनूठे संयोजन से निर्मित, कवि रचित बिम्बों में नूतनता और मौलिकता होती है। इस मौलिक बिम्ब विधान का काव्य में महत्वपूर्ण स्थान होता है।

बिम्बों के प्रयोग के द्वारा काव्य में दो कार्य सम्पन्न होते हैं। एक तो चित्रांकन की वह प्रवृत्ति जो हमारी ऐन्द्रियता को जागृत कर सके। दूसरे काव्यार्थ या काव्य वस्तु के प्रति केन्द्रगामी प्रवृत्ति को उद्बुद्ध करने की चेष्टा जो हमारी रागात्मक वृत्तियों

1· हिन्दी साहित्य कोश - भाग - । - डा॰ धीरेन्द्र वर्मा - पृ॰ 514

2· काव्य बिम्ब - डा॰ नगेन्द्र - पृ॰ 5·

या संस्कारों को आलोकित कर एक हल्का सा आघात दे सके। वास्तव में भावों की चित्रात्मकता संवेदनीयता और अभिव्यक्ति के लिए बिम्बों का प्रयोग किया जाता है।

भारतीय काव्य में बिम्बों की योजना प्राचीन काल से अनेक रूपों में होती है। किन्तु आधुनिक काल में बिम्ब योजना पर अंग्रेजी काव्य के बिम्ब-विधान का प्रभाव दिखाई देता है। पुराख्यान पर आधारित होने के कारण उन के काव्यों में कुछ बिम्बों का प्रयोग नहीं के बराबर है और कुछ बिम्बों को नाममात्र के लिए तथा कुछ बिम्बों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है।

उपर्युक्त विवेचन के अनुसार नरेश मेहता के काव्यों में प्रयुक्त बिम्ब-योजना को हम दो भागों में बाँट सकते है। 1. ऐन्द्रियबिम्ब 2. मानस बिम्ब।

3.1. ऐन्द्रिय बिम्ब :-

ऐन्द्रिय बिम्ब का सम्बन्ध हमारे इन्द्रियों से सम्बन्धित होता है। ऐन्द्रिय बिम्ब को दो भागों में विभक्त कर सकते है - 1. संवेद्य बिम्ब 2. अन्य संवेद्य। पहली कोटि के बिम्बों का सम्बन्ध हमारी आँखों से रहता है। इस बिम्ब के अंतर्गत ऐसे बिम्बों की योजना की जाती है जो हमारी दृश्य संवेदना को उभार सके। इस दृश्य संवेद्य बिम्ब के भी दो रूप हैं — 1. वस्तु बिम्ब 2. व्यापार बिम्ब। वस्तु बिम्ब के दो रूप और हो सकते हैं - सहज बिम्ब एवं अलंकृत बिम्ब। अन्य संवेद्य बिम्बों की कोटि में वे सभी आते हैं जिनका सम्बन्ध ऐन्द्रिय गत अन्य संवेदनाओं से है।

3.1.1. संवेद्यबिम्ब : दृश्य बिम्ब :-

दृश्यात्मकता प्रत्येक बिम्ब का वैशिष्ट्य है। बिम्ब का चाक्षुष संबंध भी उसी दृश्यात्मकता से है। दृश्य बिम्बों का संबंध चाक्षुस गति से होने के कारण उन्हें स्थिर और गतिशील भी माना गया है। स्थिर दृश्य बिम्ब मात्र चित्र बोध कराते हैं जब कि गतिशील बिम्ब क्रिया व्यापार से संबंधित होते हैं। वस्तु बिम्ब के अन्तर्गत इनका विवेचन यों प्रस्तुत किया गया है —

3.1.2. स्थिर बिम्ब :-

स्थिर दृश्य बिम्ब में केवल दृश्यों का चित्र बोध होता है।

राम सीता वियोग में अत्यंत दुःख का अनुभव करते रहते है। वह अपनी वेदना को प्रकृति के सामने व्यक्त करने लगते हैं। राम की वेदना के माध्यम से प्रकृति के स्थिर दृश्य बिम्ब का वर्णन अलंकृत शैली में नरेश मेहता द्वारा इस प्रकार किया गया है —

" उस फाल्गुनी आकाश को
पुन: लौटा दे
जो कि
मिथिला आम्रकुञ्जों पर
झुका था
एक नीले हंस सा। "[1]

इस में अधिकतर स्थिर बिम्बों का संबंध सांझ, आकाश, समुद्र तट मैदान्त, आकाश आदि से हैं।

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ, 4 - 5.

" स्वाहा-पर्व " में युधिष्ठिर प्रकृति की रमणीयता का वर्णन करते हुए द्रौपदी से सदा आगे बढ़ते हुए यात्रा करने के लिए कहते हैं । उनके कथन के द्वारा अनेक स्थिर दृश्य बिम्ब प्राकृतिक परिदृश्य को उभारते हैं —

" भोजपत्रों की आरण्यकता
देवदारुओं की शालीन पंक्तियाँ
चीड़ के वे सुरम्य वन;
औषधियों वाली वनस्पति सम्पन्ना
वे मेधावी वनानियाँ
तुम्हारी वेणी में
शोभित हो जाने को आकुल । " [1]

राम की वेदना को प्रकृति का रूप दिया गया है । प्रतीकात्मकता को लिए हुए प्रकृति के स्थिर एवं विचार बिम्बों के संयुक्त रूपों का वर्णन यों किया गया है —

" ज्वारों के आघात सहते
योजनों विस्तार में फैले
सागरों
समुद्रों को कभी देखा है ?
यह कैसी वैश्वानरी विवशता है
जो वानस्पतियों से लेकर
दीपों की एकान्तता
वनों की आर्द्रता

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 70.

आकाश की अगम्यताओं तक
अनासक्त भाव से व्याप्त है । "[1]

गांधी के बचपन के माध्यम से स्थिर बिम्ब का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है —

" प्रतिदिन जो शिशु-पैरों से
बालू पर चिन्ह पड़ेंगे,
तब किसे पता था, ये ही
युग का इतिहास बनेंगे । "[2]

3.1.3. गतिशील बिम्ब :-

चिन्तन की क्रियाशीलता काव्य में गतिशीलता को लाती है । नरेश मेहता के काव्यों में अनेक क्रियाशील भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति के हेतु प्रकृति का सहारा लिया गया है । उसी के माध्यम से राम के अन्तर्मन को गतिशील रूप में बिम्बात्मक चित्रण किया गया है —

" सारे के सारे
स्निग्ध तथा उग्र वर्चस्व
संकल्प जलों की भाँति
नदियों, प्रपातों के रूप में
इस महाकाली
कर्म-शिला का अभिषेक कर रहे हैं । "[3]

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 25.
2. प्रार्थना पुरुष - " - पृ. 3.
3. प्रवादपर्व - " - पृ. 25 - 26.

कवि ने अपने भावों को क्रियाशील रूप देते हुए प्रकृति का सहारा लिया है —

" सागर-जल की यह शैली
जल-गन्ध हवा में फैली
अस्ताचल वाली लाली
पड़ रही क्षितिज में मैली । " ¹

3.1.4. व्यापार बिम्ब :-

यह दृश्य बिम्ब का रूपांतर है । इस प्रकार के बिम्ब विधान के अंतर्गत विभिन्न व्यापार या दैनिक जीवन के विभिन्न क्रिया कलापों का वर्णन किया जाता है जैसे - पशुचारण, कृषि, दैनिक जीवन और संस्कृति सम्बन्धी बिम्ब आते हैं । दैनिक जीवन के बिम्बों में ही मनोरंजन पक्ष सम्बन्धी बिम्ब भी होते है - इसमें द्यूत, शतरंज, पतंग, घुड़ दौड़ आदि सम्बन्धी बिम्ब प्रयुक्त होते हैं । आधुनिक काव्यों में इस प्रकार के बिम्बों का प्रयोग कम मात्रा में मिलता है । दैनिक व्यापार सम्बन्धी बिम्बों में प्रणय-व्यापार-सम्बन्धी बिम्ब भी होते हैं । इस प्रकार के बिम्ब रोमाण्टिक प्रणय-संबंधी क्रिया-कलापों या व्यापारों से प्रभाव ग्रहण करता है । व्यापार बिम्ब के अंतर्गत एक और प्रकार के बिम्ब भी होते हैं जिन्हें सांस्कृतिक बिम्ब कहते हैं । इनके कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है —

3.1.5. दैनिक जीवन बिम्ब :-

इसके अंतर्गत दैनिक जीवन सम्बन्धी विभिन्न कार्य कलापों का परिचय दिया गया है । शबरी काव्य में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं । यहाँ समाज के अनेक व्यक्ति के जीवन-दर्शन का परिचय दिया गया है —

---

1. प्रार्थनापुरुष - नरेश मेहता - पृ. 1.

" व्यापारी गण सार्थ बना कर
सीमान्तों तक जाते
सिन्धु तटों से माल, लाद
नौकाओं में ले जाते । " [1]

× × ×

" हिंसा लूट पाट, हत्याएँ
इनका जीवन - धर्म । " [2]

शबरी के दैनिक जीवन बिम्ब का चित्रण इस प्रकार किया गया है —

" शबरी की दिन चर्या अब
पूजा - प्रबन्ध था करना,
अब थी अभिभावक पूरी
सब पर निगरानी रखना । " [3]

3.1.6.सांस्कृतिक बिम्ब :-

सांस्कृतिक बिम्ब के अंतर्गत उत्सव, समारोह, पर्व, पूजा पाठ, वेदपाठ सम्बन्धी बिम्बों को ले सकते हैं ।

राम की मानसिक वेदना के माध्यम से ये बिम्ब स्पष्ट होते हैं —

---

1. शबरी - नरेश मेहता - पृ. 15.
2. - वही - पृ. 17.
3. - वही - पृ. 51.

" ये यज्ञ
ये आश्रम
देवोपासना
मानव एकता
यदि बिना युद्धों के नहीं है तत्त्व ! " 1

यहाँ आश्रम का वर्णन विभिन्न सांस्कृतिक बिम्बों द्वारा किया गया है --

" ज्ञान - ध्यान, तप-आराधना
के तीर्थ रूप है आश्रम । " 2

x x x

" यज्ञ-वेदियाँ सुलग चुकी थी
वेदपाठ था जारी,
कितनी दिव्य और भव्य थी
शान्ति यहाँ की सारी । " 3

3.1.7. दार्शनिक बिम्ब :-

दार्शनिक बिम्बों के माध्यम से यहाँ वास्तविक तत्त्व का उद्घाटन करने का प्रयत्न किया गया है । दशरथी छाया राम को युद्धोन्मुख बनाने के प्रयत्न में विभिन्न तर्क प्रस्तुत करती है । उनके कथन द्वारा अनेक दार्शनिक बिम्ब स्पष्ट होते हैं --

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 23.
2. शबरी - " - पृ. 25.
3. - वही - पृ. 27.

" तुम्हें अपनी अनास्था से नहीं
संशयी व्यक्तित्व से भी नहीं
तुम्हें लड़ना युद्ध है
असत्य से ।

× × ×

इस सत्या सत्य का
निर्णय करेगा कौन

× × ×

उस अजन्मे अमर्त्य महाकाल को
न जन्म से
न मृत्यु से
न सम्बन्धों से
योजित या विभाजित किया जा सकता ? " [1]

असत्य, अनास्था, संशय, सत्यासत्य, जन्म-मृत्यु, आदि दार्शनिक बिम्ब हैं ।

3.1.8. अन्य संवेद्य बिम्ब :-

इन संवेद्य बिम्बों का सृजन भी ऐन्द्रिय संवेदना के आधार पर ही होता है । इसमें स्पर्श, घ्राण, नाद, वर्ण एवं आस्वादन आदि ऐन्द्रिय वृत्तियाँ होती हैं । कवि इन वृत्तियों को संवेदना का विषय बनाकर काव्य में रूपांतरित करता है । वस्तुतः संवेदन में बोधात्मकता को प्रधानता रहती है । इसलिए वह चित्रात्मकता से भिन्न हो जाती है । काव्य में इन बिम्बों का प्रयोग कम मात्रा में किया गया है । इनका सम्बन्ध अधिक तर प्रकृति से रहता है —

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 47 - 48.

3.1.9. स्पर्श बिम्ब :-

इसके विभिन्न भावों के प्रति स्पर्श के अनुभव की प्रधानता होती है। राम सीता वियोग से अत्यंत वेदना का अनुभव करते हैं। वे प्राकृतिक दृश्यों को देखकर सीता स्पर्श का अनुभव करते हैं। प्रतीकात्मकता को लिए हुए उनकी अनुभूति को स्पर्श बिम्ब द्वारा वर्णन किया गया है —

" प्रति साँझ
साँझाता आकाश
नैनों में लिये
भीगते बैठे रहे खारी हवाओं में। "[1]

" स्वर्ग पर्व " में द्रौपदी हिमयातना का अनुभव करती है। वह बार-बार तिल-तिल कर हिम में गलने लगती है। अपनी रक्षा के लिए पतियों को पुकारती रहती है। सभी सुनते हुए आगे बढ़ते हैं लेकिन कोई भी उसकी रक्षा करने के लिए तैयार नहीं होते हैं। क्रमशः वह अपने पतियों से सहयात्रा का सूत्र काटने का अनुभव करती है। उसकी मानसिक वेदना को मार्मिक रूप में स्पर्श बिम्ब द्वारा चित्रण किया गया है —

" अब मेरे और तुम्हारे बीच
हिम का यह अभेद्य
थरथीर ठण्डापन
सहयात्रा का सूत्र काट रहा है। "[2]

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 6.
2. महाप्रस्थान - " - पृ. 76.

भीम की क्रियात्मकता के माध्यम से स्पर्श संवेद्य बिम्ब को उपमा के द्वारा वर्णन किया गया है —

" बन्धु !
अब नहीं चला जा रहा ।
आँखों, कानों
सम्पूर्ण देह में
जैसे हिम भर गयी है ।
हिम केवल प्राणों को ही काट रही है
बल्कि शिरा-उपशिराओं को
घोड़े के बाल की तरह
कड़ा चीर रही है ।
प्रत्येक पग में
हिमालय बँधा हुआ है बन्धु !

x x x

श्वास
आकाश में विलीन पक्षी सी
आभास देती है
पर लौटती नहीं । "[1]

राम सृष्टि की समस्त क्रियाओं को मानव के सामने गौण मानते हैं । उन दोनों के आपसी संस्पर्शिता को स्पष्ट करते हुए वे प्रश्न करते हैं कि —

1· महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ· 115·

" राज्य या न्याय
धर्म या नैतिकता
इतिहास या पुराण
ज्ञान या दर्शन
इन सब को
दृष्टियों का, मन्तव्यों का
अर्थ और प्रयोजन
क्या मनुष्यता से ऊपर या इतर
हो सकता है । "[1]

पवित्रता के औचित्य को सिद्ध करने के लिए स्पर्श बिम्ब का सहारा लिया गया है —

" मैं समर्थ प्रभु है अग्नि रूप
सब सांसारिकता से ऊपर
अन्त्यज भी हो जाते पावन
जिनको पवित्रता को छूकर । "[2]

3.1.10. घ्राण बिम्ब :-

घ्राण बिम्ब को पहचानने में नाक और बुद्धि की प्रधानता होती है । प्राकृतिक उपमानों के द्वारा घ्राण बिम्ब का चित्रण किया गया है —

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 95.
2. शबरी - " - पृ. 31.

" ये मन्द हवा के झोंके
कैसे चन्दन-गन्धी हैं
क्या प्रभु-दुकूल को छूकर
ये इतने मृदु - गन्धी हैं । " 1

3.1.11. नाद या श्रव्य बिम्ब :-

इसमें प्राकृतिक उपादानों की ध्वनि को चित्रांकन के रूप में उभारा गया है ।

यात्रापर्व में कवि प्रकृति का सुंदर चित्रण प्रस्तुत किया है । अपने भावों के अनुकूल प्रणय सम्बन्धी क्रियाओं को जोड़कर प्राकृतिक उपमानों के द्वारा श्रव्य बिम्ब का परिचय दिया है --

" कहीं कहीं
कहते हैं हंस-वाणियां सुन पड़ती हैं,
कहो कहो तो धूप-यान में
सूर्य-प्रियाएँ मानस-जल पीने आती हैं । " 2

युधिष्ठिर के मानसिक भावों को प्राकृतिक बिम्बों द्वारा चित्रित किया गया है --

" हिम
पिता की गोद में
पार्वती की देहवाली
सारस्वत वीणा है
सुनोगे युधिष्ठिर ! इसका गान

---

1. शबरी - नरेश मेहता - पृ. 48.

2. महाप्रस्थान - " - पृ. 28.

आकाश और पृथ्वी की गंगाओं में
यह काल वीणा बज रही है,
ब्रह्म मुहूर्त का यह
तेजस्वी आकाश
इसके स्वरों में झंकृत होकर
प्रणव हो गया है
सुनोगे युधिष्ठिर ।
इस सारस्वत वीणा का गान ?? "[1]

काव्य में रावण के व्यक्तित्व एवं सामर्थ्य का वर्णन किया गया है । उनकी भाषा एवं बोलने के विधान के माध्यम से ध्वनि संबंधी नाद एवं श्रव्य बिम्ब को उभारा गया है —

" समुद्र घोष की भाँति
जब वह बोलता था, तो
आज्ञा पालन करती
दिशाएं
प्रतिध्वनित होती थीं ।
पूरे साम्राज्य । "[2]

शबरी अपनी तपस्या के कारण स्वयं प्रकृति बनती है । प्रकृति के स्वरूप को यों चित्रण किया गया है —

1· महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ· 128·

2· प्रवादपर्व - " - पृ· 44 - 45·

" लगता है वह स्वयं नदी है
फूलों में कल-कल बहती
कोकिल बन कूंजों-कूंजों
प्रभु नाम टेरती रहती । " ।

3.2. मानस बिम्ब :-

मानस बिम्ब का सम्बन्ध बुद्धि या मन से होता है । ये बिम्ब मन को चिन्तन करने के लिए प्रेरित करने के द्वारा प्रकट होते हैं । कहीं-कहीं इन बिम्बों में बौद्धिक आग्रह इतना प्रबल हो जाता है कि उसमें क्लिष्टता और दुरूहता के तत्व भी उभर आते हैं । ये बिम्ब पाठकों से विशेष ज्ञान व शिक्षा की अपेक्षा रखते हैं । ये सर्व साधारण की समझ से परे होते हैं ।

नरेश मेहता के काव्यों को दृष्टि में रखकर हम मानस बिम्ब को तीन प्रकारों में विभाजित कर सकते है - प्रथम भाव या विचार बिम्ब, दूसरा वैज्ञानिक एवं यांत्रिक बिम्ब । पहले प्रकार के भाव या विचार बिम्ब उनके सभी काव्यों में मिलते हैं । द्वितीय प्रकार के यांत्रिक बिम्ब का परिचय हमें प्रार्थना पुरुष में मिलता है । आज की यांत्रिक सभ्यता से पीड़ित युगीन संवेदना को उनके सभी काव्यों में वर्णन किया गया है ।

3.2.1 भाव बिम्ब :-

युगीन संवेदनाओं से पीड़ित होते हुए राम अत्यंत शंकाकुल है । उनके मन को सांत्वना देते हुए लक्ष्मण उनको युद्ध के लिए प्रेरित करते हैं । उनके मानस गत प्रतीकों को रूप देनेवाले भाव बिम्ब का सुंदर चित्रण इस प्रकार किया गया है —

---

1. शबरी - नरेश मेहता - पृ. 52.

हम सबके
नैनों के उत्सव हैं।
अवधि हैं अयोध्या की
सीता की प्रतीक्षा हैं। "[1]

द्रौपदी सांसारिकता का प्रतीक है। "महाप्रस्थान" की यात्रा में निकली हुई द्रौपदी को बारम्बार उसके जीवन की बीती हुई घटनाएँ याद आकर उसे सताने लगती है। उन स्मृतियों से वह ऊपर नहीं उठ सकती है। उनके बारे में सोचते हुए वह चलने में असमर्थ होकर हिम में गिरने लगती है। इसलिए युधिष्ठिर समस्त दुःखों को भूलकर आगे की यात्रा करने के लिए द्रौपदी को प्रेरणा देते हैं। क्यों कि उनकी दृष्टि में यह विधि की लीला मात्र है। उनके भावों को अभिव्यक्त करनेवाला बिम्ब द्रष्टव्य है —

"मकड़ी की भाँति
इस मृत संसार को
बारम्बार अपने ही चारों ओर
बुनते रहने से क्या होगा ?
यह वह भस्म नहीं कृष्णा !
जो कि हमारे ललाट पर
त्रिपुण्ड बन सके। "[2]

सर्ग की सार्थकता पर विचार करते समय राम के मानसगत भाव बिम्ब इस प्रकार उभर आते हैं —

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 11 - 12.
2. महाप्रस्थान - " - पृ. 72.

" क्या यही है मनुष्य का प्रारब्ध ? कि
कर्म
निर्मम कर्म
केवल असंग कर्म करता ही चला जाए ?
भले ही वह कर्म
धारदार अस्त्र की भाँति
न केवल देह
बल्कि
उसके व्यक्तित्व को
रागात्मिकताओं को भी काट कर रख दे । "[1]

शबरी के भाव बिम्ब का एक सुन्दर उदाहरण देखिए —

" पाप-कर्म ही लिखा हुआ है
क्या मेरे जीवन में ? "

x x x

प्रभु ने कितने मधुर बनाये
वन, सरिता, यह धरती ।

x x x

पर मनुष्य यह कितना पापी
वैर सभी जीवन से
नहीं जानता क्या होगा
उसका इस आत्म हनन से । "[2]

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 19.
2. शबरी - " - पृ. 19.

3.2.2. विचार बिम्ब :-

विचार बिम्ब में मानवीय विचारों के प्रभाव को दृष्टि में रखा जाता है। युद्ध विमुख राम को युद्धोन्मुख बनानेवाली दशरथी छाया के विचार अत्यंत महत्वपूर्ण है। वह समस्त स्थितियों को अपने अनुकूल बनाकर कर्तव्य निभाने के लिए राम को प्रेरणा देती है। दशरथ का विचारात्मक कथन की दृष्टि से, यह बिम्ब अत्यन्त महत्वपूर्ण है —

" ओ विकल्पित पुत्र मेरे।
परिस्थितियाँ धेनु हैं,
दुहो इनको
निष्ठुर अंगुलियों से दुहो इनको। "[1]

प्रतीकात्मक रूप में अभिव्यक्त राम के विचारों को पर्याय रूप में बिम्ब का चित्रण इस प्रकार किया गया है —

" दिशाएँ
उत्तर की प्रतीक्षा में
स्वयं प्रश्न बनी
आकाश और ब्रह्माण्ड थामे खड़ी-खड़ी
चुप हो रही है,
और उत्तर
स्वयं प्रश्न बना
एकान्त गरुड़ सा
अपर ब्रह्माण्ड के पार
व्योम सिद्ध भाव से चला जा रहा है। "[2]

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 46.
2. प्रवादपर्व - " - पृ. 21 - 22.

3.2.3. वैज्ञानिक एवं यांत्रिक बिम्ब :-

आज के वैज्ञानिक एवं यांत्रिक युग का प्रभाव आधुनिक काव्यों पर अधिक है। जिनमें मोटर, रेल, यान, टेलीविजन एवं जहाज आदि वैज्ञानिक प्रगति के परिचायक बिम्ब कहीं कहीं उपलब्ध होते हैं —

" तभी प्रिटोरिया जाते उनको
ट्रेन छोड़कर चली गयी ".[1]

अत: कह सकते हैं कि प्रतीक या बिम्ब काव्य का सर्वस्व नहीं है, परन्तु शिल्प-विधान में उनका महत्वपूर्ण स्थान है। अमूर्त अनुभूतियों को मूर्त करने में सहायक बनते हैं। आधुनिक जीवन की संश्लिष्ट अनुभूतियों को अभिव्यक्ति देने के लिए काव्य में भाव, द्रव्य, वस्तु एवं प्रकृति आदि से सम्बन्धित वैविध्यपूर्ण बिम्बों को विस्तृत रूप में प्रयोग किया है।

4. भाषा :-

" भाषा अभिव्यक्ति का अन्तिम साधन है। भाषा भावों की वाहिका है। इसलिए जिन भावों का स्पष्टीकरण भाषा को करना है, उनका स्पष्ट और प्रभावशाली प्रयोग भाषा पर ही अवलम्बित है। "[2] भाषा बहता नीर है, अत: परिवर्तनशील है। उसमें परिवर्तन की प्रक्रिया धीरे धीरे होती रहती है और इस क्रम को कवि रुचि और प्रतिक्रियात्मक रचना दृष्टि अलग-अलग आयाम प्रदान करने का कार्य करती है। इस दृष्टि से काव्य संरचना के भावात्मक एवं वैचारिक स्तरों पर परिवर्तन का उद्देश्य कभी भी जनभाषा से अलगाव या कटाव नहीं होना चाहिए। भाषा बलवती है तो

---

1. प्रार्थना पुरुष - नरेश मेहता - पृ. 13.
2. साहित्य शास्त्र - डा. रामकुमार वर्मा - पृ. 116.

भाषा के परिवर्तन भाषा से निकलते है, भाषा एक सामाजिक और प्राचीन समय है, जिससे आगे बढ़ा तो जा सकता है, पर सीढ़ी-दर-सीढ़ी और समाज को अपने साथ लिए हुए ही । भाषा को समूल उखाड़कर उसकी जगह नई भाषा हम नही दे सकते, नये शब्द, नये मुहावरे, नये प्रयोग हम कर सकते है तो एक जाने हुए उभयपक्ष द्वारा स्वीकृत ढांचे के भीतर ही । कहने का तात्पर्य यह है कि काव्य भाषा में सदैव आ अनुशासन आवश्यक है, जो जनभाषा से सम्पृक्त हो तथा उसे उपेक्षित न करें ।

नरेश मेहता के काव्यों में भाषा का प्रयोग संवेदन को सटीक अभिव्यक्ति में हुआ है । कवि का विशिष्ट आग्रह भाषा की रूप सज्जा की अपेक्षा उसकी अभि कौशल की ओर अधिक रहा है । इसलिए कवि का भाषा विधान कृत्रिम आलंकारि और आग्रह सुनियोजित शैली विधान से सर्वथा मुक्त है । वह अपनी काव्य भाषा साधारण बोलचाल की भाषा से भिन्न नही मानते हैं । वह अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति और संवेदना स्तरों को स्थापित करने के लिए काव्य में विभिन्न प्रकार तत्सम, तद्भव, देशी, विदेशी, वैदिक, नाटकीय एवं नवीन शब्दावली का प्रयोग कि है । प्रार्थना पुरुष के सिवा अन्य सभी काव्य पौराणिक इतिवृत्त पर आधारित फलत: इतिवृत्त के अनुरूप सभी काव्यों में संस्कृत निष्ठ तत्सम शब्दावली का अधिक प्रयोग किया गया है किन्तु उसमें दुरूहता नहीं आई है । वैविध्यमय शब्दावली का प्रयोग कवि की भाषात्मक संरचना के सामर्थ्य को प्रकट करती है । भाषा में मुहाव का सुंदर प्रयोग किया गया है । अत: उनके काव्य में प्रयुक्त भाषात्मक संरचना के वैशिष्ट्य पर दृष्टिपात करना समुचित होगा ।

4.1. शब्द विधान :-

भाषा के वैभव को बढ़ाने में शब्दों का महत्वपूर्ण स्थान होता है । भाषा शब्द विधान द्वारा ही अपना रूप ग्रहण करती है । कवि ने शब्द ब्रह्मा के रूप में भाषा के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है । वास्तव में हिन्दी एक संरचनात्मक भाषा है । इससे अन्य भाषाओं की अपेक्षा वह कुछ विशिष्टता रखत

भाषा के परिवर्तन भाषा से निकलते है, भाषा एक सामाजिक और युगीन समय है, जिससे आगे बढ़ा तो जा सकता है, पर सीढ़ी-दर-सीढ़ी और समाज को अपने साथ लिए हुए ही । भाषा को समूल उखाड़कर उसकी जगह नई भाषा हम नही दे सकते, नये शब्द, नये मुहावरे, नये प्रयोग हम कर सकते है तो एक जाने हुए उभयथा द्वारा स्वीकृत ढाँचे के भीतर ही । कहने का तात्पर्य यह है कि काव्य भाषा में सदैव आंतरिक अनुशासन आवश्यक है, जो जनभाषा से सम्पृक्त हो तथा उसे उपेक्षित न करें ।

नरेश मेहता के काव्यों में भाषा का प्रयोग संवेदन की सटीक अभिव्यक्ति के रूप में हुआ है । कवि का विशिष्ट आग्रह भाषा की रूप सज्जा की अपेक्षा उसकी अभिव्यंजना कौशल की ओर अधिक रहा है । इसलिए कवि का भाषा विधान कृत्रिम आलंकारिकता और आग्रह सुनियोजित शैली विधान से सर्वथा मुक्त है । वह अपनी काव्य भाषा को साधारण बोलचाल की भाषा से भिन्न नही मानते हैं । वह अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति और संवेदना स्तरों को स्थापित करने के लिए काव्य में विभिन्न प्रकार के तत्सम, तद्भव, देशी, विदेशी, वैदिक, नाटकीय एवं नवीन शब्दावली का प्रयोग किया है । प्रार्थना पुरुष के सिवा अन्य सभी काव्य पौराणिक इतिवृत्त पर आधारित है । फलत: इतिवृत्त के अनुरूप सभी काव्यों में संस्कृत निष्ठ तत्सम शब्दावली का अधिक प्रयोग किया गया है किन्तु उसमें दुरूहता नहीं आई है । वैविध्यमय शब्दावली का प्रयोग कवि की भाषात्मक संरचना के सामर्थ्य को प्रकट करती है । भाषा में मुहावरों का सुंदर प्रयोग किया गया है । अत: उनके काव्य में प्रयुक्त भाषात्मक संरचना के वैशिष्ट्य पर दृष्टिपात करना समुचित होगा ।

4.1. शब्द विधान :-

भाषा के वैभव को बढ़ाने में शब्दों का महत्वपूर्ण स्थान होता है । भाषा शब्द विधान द्वारा ही अपना रूप ग्रहण करती है । कवि ने शब्द ब्रह्मा के रूप में भाषा के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है । वास्तव में हिन्दी एक संरचनात्मक भाषा है । इसके अन्य भाषाओं की अपेक्षा यह कुछ विशिष्टता रखती

है । नरेश मेहता के काव्यों में भाषागत प्रयोग में शब्दों की विविधता है । उन्होंने कहीं तत्सम, तद्भव, विदेशी, नाटकीय शब्दों का प्रयोग है तो कहीं देशज एवं नवीन शब्दों का भी प्रयोग किया है । जैसे --

4.1.1. तत्सम शब्द :-

संस्कृत हिन्दी शब्दों का मूल एवं मुख्य स्रोत है । संस्कृत के अनेक शब्द सीधे संस्कृत से आए है । संस्कृत से ज्यों के त्यों के रूप में आनेवाले शब्दों को तत्सम शब्द कहा जाता है । हिन्दी में ऐसे शब्द अधिकांश रूप में मिलते हैं । हिन्दी के शब्द समूह में आधे से अधिक शब्द संस्कृत के शब्द है । अतः नरेश मेहता के काव्यों में तत्सम शब्दावली का प्रयोग इस प्रकार हुआ है --

" संशय की एक रात " में तत्सम शब्दावली का प्रचुर प्रयोग हुआ है - सिन्धुवेला, आम्रकुंज, वैश्वानर, ऋतम्भरा, परिताप, आंगिरस, वैराग्य, निस्सार, निर्माल्य, वंचना, पदचिह्न, धमनियाँ, शंका, अमर्त्य, त्रिपुण्ड, व्रत, कुलिश, महर्णव, पृथुजन, सैन्धवों, वर्चस्व एवं मरीचा आदि प्रमुख है ।[1] उदाहरणार्थ --

" कितनी बार
कितनी साँझ
सिन्धुवेला तट
बितायी । "[1]

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 3.

महाप्रस्थान में – धर्म ग्रन्थ, उर्ध्व, उर्ध्वतम, श्वेताक्षर, उपत्यकाएँ, हिमनद, धूमाग्नि, अरणि, धूल ग्रन्थ, शिलालाख, श्लथ, शिरा-उपशिरा, दुकूल, वितस्ता, शिव-संकल्प-ग्रन्थि, परिवेष्ठित, त्रिपुण्ड, तर्क-मोह, आर्तीप्रिया, अक्षय, अकिंचन, वर्चस्व, दीक्षान्तर्त आदि का प्रयोग हुआ है। इनका एक उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य है –

हिमालय-धर्मग्रन्थ का पाठ कर रहा

x x x

हिम, केवल हिम
केवल चलना उर्ध्व
उर्ध्वतम ही है चलना
मेरे पृथ्वी चलकर गौरी शंकर बनती। [1]

"प्रवादपर्व" में अग्नित्रिपुण्ड, अभिषेक, अहोरात्र, हर्जनी, पिपीलिका, राजाज्ञा, राजदण्ड, शिलालेख, वैजयन्ती, सम्राज्ञी, परात्पर तत्व, क्षत, समदर्शी, तत्वदर्शी, श्रेयस, अप्रतिम, निरंकुश, विद्याधर, वेदपाठ, जाज्वल्य, प्रज्ञा, उद्भट, कदापि, उद्विग्न, शस्त्रागार, मुद्रा, दुर्दान्तमूल्य, नीति श्री, दुरिष्ट, विडम्बना, साम्राज्ञी, तूणीर, अग्नि परीक्षा, आस्था, नतमस्तक, अनुत्तरदायित्वपूर्ण, अपेक्षात्मकवाणी, जननी, गरिमा, सर्वोपरि, स्वेच्छया, अक्षुण्ण, अराजक, कपोलकल्पना, दुर्वहस्थिति, निर्वेदविदा, निर्वेद-पीठिका, निष्प्राण आदि का प्रयोग हुआ है। उदाहरण के लिए –

" यह कैसा लीलामय अभिषेक
सम्पन्न हो रहा है।
यही है वह
स्तूपात

1. महाप्रस्थान – नरेश मेहता – पृ. 28.

जो सृष्टि के
मन्वन्तर स्वरूप में
अहोरात्र उच्चरित है । "[1]

" शबरी " काव्य में - संहिता, धरणी, भक्ष्या-भक्ष्य, धरित्री, मृगशावक, सप्त द्वीप, दिव्य भव्य, यज्ञ-धूम, दृष्यत, प्रवंचन, योग-अग्नि एवं सत्वर आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है । जैसे —

" श्रेणियाँ अधिक नहीं थी
बनी संहिता आधारों की

x x x

धन धरनी से दूर नहीं थी । "[2]

x x x

" भक्ष्या भक्ष्य किस बात का
का विवेक था उन में । "[3]

" प्रार्थनापुरुष " में प्रयुक्त तत्सम शब्दावली में - साक्षात, आम्रकुंज, मूल, प्रभात, शिविर, दर्शन, जमींदार, दुःसाध्य, बस्ती, मुस्कान, आज्ञाकारी, व्यसन, श्रद्धा, उदात्त, प्रबल, संयम, निग्रह, सत्य-अहिंसा, सत्याग्रह, स्वीकृति, सदस्य, शिलान्यास, एकत्रित, त्राहि-त्राहि, सदाशयता, पूजा, जीवनदर्शन, जगत, गाथा आदि प्रमुख है । इसका कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया गया है —

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 24.
2. शबरी - " - पृ. 15.
3. - वही - पृ. 17.

" थी उसे व्यसन पढ़ने का
आज्ञाकारी गुरुजन का । " [1]

× × ×

" काशी में विश्वविद्यालय के
शिलान्यास के अवसर पर
एकत्रित राजा - महाराजा
वाइसराय औ' मन्त्रीवर । " [2]

1.1.2. तद्भव :-

जब संस्कृत से आए हुए कुछ शब्द प्राकृत से प्रभावित होकर अपने मूल भाषा से भिन्न दिखाई पड़ते है तब ऐसे शब्द तद्भव कहलाते हैं । जैसे —

" संशय की एक रात " में हाथी, दीठि, भीतर, बेला, अनुखन, माथ, हाथ, दुहना, पाखी, जेठा ऐंठी, भिखमंग, हड्डी, बहरे आदि शब्द है —

" समाहित व्यक्तित्व की
यह ज्वाल
अनुखन दाती है बन्धु ! " [3]

× × ×

" उर्मिला की परि प्रतीक्षित दीठि । " [4]

---

1. प्रार्थनापुरुष - नरेश मेहता - पृ॰ 4.
2. - वही - पृ॰ 33.
3. संशय की एक रात - " - पृ॰ 21.
4. - वही - पृ॰ 43.

" महाप्रस्थान " में साँझ, सूना, सुधि, पाखी, पत्र, बध, बधनख, धुँआ आदि का प्रयोग हुआ है —

" वे पाखी दल
और साँझ का देवदार – वनवाला उनका
वह आकुल आरण्यक – कूजन
जैसे आश्रम कन्याओं की गोपन बातें । " [1]

x x x

" उस पर राज्य प्राप्ति का अनुभव

x x x

भीम के अन्तर्मन में
धुँआ दे रही । " [2]

" प्रवादपर्व " में दिन-रात, आज, फूल, टूटते, तपते जैसे अनेक तद्भव शब्द मिलते हैं । जैसे —

" आज आप उद्विग्न क्यों आर्य पुत्र ! "[3]

x x x

प्रत्येक क्षण
हमें कोई
झरे पत्रों

---

1. महाप्रस्थान – नरेश मेहता – पृ. 29.
2. – वही – पृ. 42.
3. प्रवादपर्व – " – पृ. 57.

खिले फूलों
टूटे प्रपातों और
तपते मरुस्थलों पर लिख रहा है । "[1]

शबरी में – धरती, आग, थौला, अम्भ, पाखों, पोखर, दूभर, मारग, जग आदि तद्भव शब्दों का प्रयोग हुआ है —

"जब अँधियारे पाखों को । "[2]

x x x

"कर स्नान आदि पोखर से

x x x

प्रभु का आश्रम सूना । "[3]

प्रार्थना पुरुष में भी – पाखी, बेला, सागर, धरती, तीर्थ ऐसे अनेक शब्द मिलते हैं —

"यह नील अरब-सागर तट
विस्तीर्ण बालू की बेला

x x x

लम्बी यात्राओं वाले
पाखी दल की ध्वनियाँ । "[4]

---

1. प्रवादपर्व – नरेश मेहता – पृ. 61.
2. शबरी – " – पृ. 20.
3. – वही – पृ. 48.
4. प्रार्थना पुरुष – " – पृ. 1.

व्यवहार और वैष्णवता
वाली, गुजराती धरती । " 1

x x x

इस धर्मतीर्थ में यह कैसा
फैला आनन्दी अनाचार ? " 2

4.1.3 **देशी** :-

काव्यों में कुछ देशी शब्द भी मिलते हैं - पोर-पोर,[3] छोर-छोर,[4] हरहरा,[5] धैस-धैस,[6] बार-बार,[7] नस-नस,[8] छोटे-छोटे[9]।

4.1.4 **ग्रामीण शब्द** :-

" औ
राधा " 10

4.1.5 **विदेशी** :-

विदेशी भाषा से हिन्दी में आए हुए शब्दों को विदेशी शब्द कहते हैं। नरेश मेहता के काव्यों में उर्दू, फारसी, अरबी एवं अंग्रेजी जैसे अनेक विदेशी शब्द मिलते हैं जिनमें अंग्रेजी शब्दों की संख्या अधिक है --

---

1. प्रार्थना पुरुष - नरेश मेहता - पृ. 2.
2. - वही - पृ. 31.
3. संशय की एक रात - " - पृ. 13.
4. - वही - पृ. 13.
5. - वही - पृ. 31.
6. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 43.
7. - वही -
8. - वही - पृ. 47.
9. शबरी - " - पृ. 17.
10. संशय की एक रात - " - पृ. 64.

" संशय की एक रात " में – बदले (अरबी), गुलाम (अरबी), बेहोश (उर्दू)[1], घायल (उर्दू) आदि विदेशी शब्द मिलते हैं —

" बदले में
नर नहीं
वानर पद प्राप्त किये । "[2]

× × ×

" ये गुलाम हैं
इनका केवल यही नाम है । "[3]

" प्रवादपर्व " में — दस्तक (फारसी), तारीख (अरबी) बन्दी (फारसी) दरबार (फारसी)[4] बावजूद (फारसी)[5] एवं तलाश आदि विदेशी शब्दों का प्रयोग किया गया है —

मनुष्य की आदिम जिज्ञासा का उत्तर
किसी भी दिशा पर
कभी भी दस्तक देकर देखो ।[6]

× × ×

1· संशय की एक रात – नरेश मेहता – पृ· 65·
2· – वही – पृ· 65
3· – वही – पृ· 73·
4· प्रवादपर्व – " पृ· 84·
5· – वही – पृ· 89·
6· – वही – पृ· 21·

पौराणिक उपाख्यान बनना श्रेयस होगा
अथवा ऐतिहासिक <u>तारीखें</u>।[1]

× × ×

मन्त्री-परिषद एवं सभासद वर्ग की ओर से
की अनुपस्थिति में
जिसे महाराज की इच्छा के विरुद्ध
न्याय को बाध्य होकर बन्दी बनाना पड़ा।[2]

शबरी में - कब्जा (अरबी), बिस्तर (फारसी), खिड़की (फारसी), आफत (अरबी), दरवाजा (अरबी), मुश्किल (अरबी) आदि प्रमुख हैं —

काट वनों को लोगों ने
खलिहान-खेत पसारे,
जोड़ पथों से विकट दूरियाँ
<u>कस्बे</u> नगर बसाये।[3]

× × ×

भिनसार ब्राह्मवेला में
बिस्तर से वह उठ जाती।[4]

× × ×

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 70
2. - वही - पृ. 85
3. शबरी - " - पृ. 13.
4. - वही - पृ. 41.

खिड़की से कोई वन पशु
कुछ ताक - झाँक कर जाता ।[1]

x x x

जाग गये और पता चल गया
चीज़ तो है आफ़त ।[2]

x x x

दरवाजा उढ़का था, खेला
पहुँचे वे तब अन्दर ।[3]

" प्रार्थना पुरुष " में प्रयुक्त विदेशी शब्दों में — आमादा (फारसी), फकीर (अरबी), जब्त (अरबी), करबा (फारसी)[4] ट्रेन, टिकट, कुली (अंग्रेजी) कत्ल (अरबी)[5] एवं पिस्तौल आदि प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त रेल, मिल, फर्म, स्कूल, टैक्स, वोट, मीटिंग, होटल, कालर, रेलिंग, केबिन आदि अंग्रेजी शब्द मिलते हैं —

" आजादी दो, नहीं अवज्ञा
पर आमादा भारत ।[6]

---

1. शबरी – नरेश मेहता – पृ. 45.
2. – वही – पृ. 66.
3. – वही – पृ. 69.
4. – वही – पृ. 72.
5. प्रार्थना पुरुष – नरेश मेहता – पृ. 56.
6. – वही – पृ. 44.

कैसा था यह महाभागीरथ
जो फकीर था नंगा [1]

x x x

कुर्क हुई सम्पत्ति और घर
जब्त बैंक का पैसा । [2]

x x x

प्रथम श्रेणी का टिकट कुली
था, ट्रेन छोड़कर चली गयी । [3]

4.1.6. नवीन शब्द :-

भाषा के नवीन प्रयोगों के कारण तत्सम, तद्भव, विदेशी जैसे शब्दों के अतिरिक्त कुछ नवीन शब्दों का निर्माण भी हुआ है —

" संशय की एक रात " में — निमाते रहे, साँझता आकाश, [4] छिपाते [5], प्रज्ञित [6], पितात्मा [7], अपात्री [8], क्वचित [9], उत्सर्जित [10], प्रदत्तो, प्रशान्त आदि शब्द मिलते हैं —

---

1. प्रार्थना पुरुष - नरेश मेहता - पृ. 45.
2. - वही - पृ. 49.
3. - वही - पृ. 13.
4. संशय की एक रात - " - पृ. 6.
5. - वही - पृ. 18.
6. - वही - पृ. 77.
7. - वही - पृ. 41.
8. संशय की एक रात " नरेश मेहता - पृ. 22.
9. - वही - पृ. 92.
10. - वही - पृ. 15.

" बालुओं को
स्वर्ण के पदचिह्नों रूहों से
घिरे बैठे रहे
दुर्ग निर्माति रहें । "[1]

" प्रवादपर्व " में – उपलेपन, आकाशवर्णी पुरुष, अनसोचे[2] अवमानना करना[3] वल्कलों संचयिता[4] अस्वीकारती[5] प्रकम्पित[6], स्वकीय, अनामिता आदि नवीन शब्द मिलते हैं –

" एक घटना
एक व्यक्ति
फिर हमें तूफानों के उबलते
उपलेपन में फेंक जाता है । "[7]

x x x

प्रथम बार पुष्पवाटिका में
आप के आकाशवर्णी पुरुष को देखा था ।[8]

---

1. संशय की एक रात – नरेश मेहता – पृ. 3.
2. प्रवादपर्व – " – पृ. 89.
3. – वही – पृ. 94.
4. – वही – पृ. 96.
5. – वही – पृ. 107.
6. – वही – पृ. 49.
7. – वही – पृ. 59.
8. – वही – पृ. 71.

नरेश मेहता ने कुछ नाटकीय शब्दों का भी प्रयोग किया है। जैसे —

आर्यपुत्र [1], पटाक्षेप [2] आदि। उनके काव्य में यत्र-तत्र कुछ यज्ञ के चस्पात्र [3] जैसे वैदिक शब्द भी मिलते हैं।

ऐसे ही उन्होंने काव्यों में लाक्षणिक एवं व्यंजक शब्दों का भी प्रयोग किया है। इनमें अन्धेरा जल [4] बोलते जल [5] आदि प्रमुख हैं।

यत्र-तत्र विरोधाभासी शब्दावली का भी परिचय मिलता है। इनमें दुर्भाग्यपूर्ण सौभाग्यी क्षण [6] अस्वीकृता स्वीकृति [7] आदि उल्लेखनीय हैं। अनेक क्रियाविशेषण एवं समास भी मिलते हैं।

इस तरह काव्य भाषा का शब्द-भण्डार विपुल एवं विशाल बन गया है। कवि ने विदेशी शब्दों को उदारतापूर्वक अपनाकर अपने शब्द-भण्डार की भी वृद्धि की है तथा अपने संरचनात्मक रूप को अक्षुण्ण रखा है। उनकी उदारता-पूर्वक शब्द-ग्रहण करने की प्रकृति के कारण ही उनकी भाषा अत्यंत गतिशील एवं प्रभावशील बन सकी है।

---

1. प्रवादपर्व – नरेश मेहता – पृ. 75.
2. – वही – पृ. 75.
3. – वही – पृ. 108.
4. संशय की एक रात – " – पृ. 5.
5. – वही – पृ. 5.
6. – वही – पृ. 71.
7. – वही – पृ. 84.

4.2 छन्द :-

लघु-गुरु नियम के अनुसार मात्रिक छन्द होते हैं। वर्ण संख्या के अनुसार वर्ण छन्द होते हैं जिनमें केवल अक्षरों की गिनती होती हैं इसे वर्णवृत्त भी कहते हैं। नरेश मेहता के संशय की एक रात, महाप्रस्थान, प्रवादपर्व, प्रार्थनापुरुष आदि काव्यों में न मात्रिक छन्द है न वर्णिक छन्द। इन काव्यों में केवल भाव की प्रधानता है छन्द की नहीं। केवल "शबरी" नामक काव्य में आनंद नामक छन्द का प्रयोग हुआ है जिसके अनुसार प्रत्येक पंक्ति में चौदह मात्राएँ होती है इसमें अंत्यानुप्रास भी होते हैं। कहीं-कहीं कुछ छन्दों को आनंद छन्द नहीं कह सकते हैं क्योंकि कहीं-कहीं मात्राओं का आधिक्य दृष्टिगत होते हैं जो हो उनके कृतियों में छन्द की दृष्टि से शबरी एक सफल कृति हैं। उदाहरण के लिए इस कविता में आनंद छन्द का प्रयोग किया गया है —

"कुछ तो ही अवश्य होगा
अपने इस परिवर्तन पर,
जैसे चिड़िया थी मन से
घर वालों के जीवन पर।"[1]

4.3 मुहावरें :-

मुहावरें और लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा में लालित्य, चमत्कार और प्रौढ़ता आती है। वास्तव में मुहावरे भाषा की जान है।

---

1. शबरी - नरेश मेहता - पृ. 39.

कोई भी ऐसा वाक्यांश जिसका शब्दार्थ न लेकर कोई विलक्षण लिया जाए तब वह मुहावरा कहलाता है। मुहावरों की तरह लोकोक्तियों का भी प्राय: वाच्यार्थ नहीं ग्रहण किया जाता अपितु उससे मिलता-जुलता अर्थ लिया जाता। मुहावरों एवं लोकोक्तियों में यह अंतर है कि मुहावरे वाक्यांश होते हैं एवं स्वतंत्र रूप से व्यवहृत नहीं होते हैं। लोकोक्तियाँ तो वाक्य होती हैं एवं स्वतंत्र रूप से अपना अर्थ रखती हैं। अपने कथन को सबल करने के लिए या किसी बात को साफ-साफ शब्दों में न कहकर वक्रता से अभिव्यक्त करने के लिए लोकोक्तियों का प्रयोग किया जाता है। कभी-कभी चमत्कार-प्रदर्शन केलिए भी इनका प्रयोग होता है। यहाँ नरेश मेहता के काव्य में प्रयुक्त कुछ मुहावरों का विश्लेषण किया गया है। काव्य में इन मुहावरों का प्रयोग चमत्कार प्रदर्शन हेतु नहीं हुआ वरन् अभिव्यंग्य की सटीक अभिव्यक्ति केलिए इनका अधिग्रहण किया है। काव्य में प्रयुक्त कुछ मुहावरों का क्रम इस प्रकार है —

" संशय की एक रात " में - जय भेरियाँ गूंगी होना [1] ऐसी देह से नंगे पड़ना [2] हाथ पैसारे खड़े होना [3], रौंद डाला जाना [4], सौंप देना [5], भूकम्प बहरा हो जाना [6], आग्रह करना [7], सौंप चुकना [8] आदि मुहावरों का प्रयोग इस प्रकार किया गया है —

1·	संशय की एक रात	- नरेश मेहता	-	पृ· 74·
2·	-	वही	-	पृ· 73·
3·	-	वही	-	पृ· 73·
4·	-	वही	-	पृ· 74·
5·	-	वही	-	पृ· 83·
6·	-	वही	-	पृ· 90·
7·	-	वही	-	पृ· 74·
8·	-	वही	-	पृ· 91·

"मेरे देश की जब भीरयाँ
गूँगी हो गयी है।"[1]

x x x

"राजपथ
बेहोश, ऐसी देह से भी पड़े है।"[2]

x x x

खड़े और क्षीणतर भवन
जिह्वाहीन भिखमंगे सरीखे
हाथ फैलाये खड़े हुए है।"[3]

x x x

"मेरा राष्ट्र
इस युद्ध में
रौंद डाला जाएगा"[4]

x x x

---

1. संशय की एक रात – नरेश मेहता – पृ. 74.
2. – वही – पृ. 73.
3. – वही – पृ. 73.
4. – वही – पृ. 74.

" मैंने अपने को सौंप दिया
प्यारों को
विवश धरती का सौंप दिया । "[1]

" महाप्रस्थान " में - दाँव पर लगाना,[2], निकल पड़ना[3], मेदनी को मुट्ठी में लालेना[4], पहाड़ हो जाना[5], ढेला हो जाना[6], यात्रा को पैरों से दाबे रखना[7], चका चौंध होना[8], जल को मुट्ठी से बल लेना[9], घुटनों के बल पर चलना[10], संकल्प पाल रे रहना[11], तिल-तिल गल जाना[12],

---

1.	संशय की एक रात	- नरेश मेहता	- पृ. 83.
2.	महाप्रस्थान	- "	- पृ. 40.
3.	-	वही	- पृ. 40.
4.	-	वही	- पृ. 89.
5.	-	वही	- पृ. 92.
6.	-	वही	- पृ. 109.
7.	-	वही	- पृ. 113.
8.	-	वही	- पृ. 48.
9.	-	वही	- पृ. 42.
10.	-	वही	- पृ. 61.
11.	-	वही	- पृ. 66.
12.	-	वही	- पृ. 75.

स्वाहा हो जाना [1], और अंतिम सांस टूटना [2], परिक्रमा करना [3], आदि का सुंदर समावेश है —

" युग प्रताड़ित
अंतर का यह सत्य —
अश्वमेध औ राजसूय यज्ञों से भी
जब धोया न पाये
तब पुनः दाँव पर लगा
स्वत्व
वल्कल पहने निकल पड़े । " [4]

× × ×

" हिम में सेंके पैरों से
तिल-तिल चढ़ना भी पहाड़ हो रहा है । " [5]

× × ×

1· महाप्रस्थान — नरेश मेहता — पृ· 77·
2· — वही — पृ· 79·
3· — वही — पृ· 121·
4· — वही — पृ· 113·
5· — वही — पृ· 48·

"मैं ने अपने वैचारिक व्यक्तित्व को
कभी ढीला नहीं होने दिया।"[1]

"प्रत्येक क्षण
यात्रा को
अपने पैरों से दाबे रखना पड़ता है पार्थ।"[2]

* * *

"दृष्टियाँ
हिम की इस दारुणी-दर्पणी चकाचौंध से
टकरा-टकरा नष्ट हो रहीं"[3]

"प्रवादपर्व" में - काटकर रख देना[4] दस्तक देना[5] तर्जनी उठाना[6], वंचित कर दिया जाना[7], आग्रह करना[8], मस्तक झुकाना[9], परिक्रमा करना[10], निष्कासित कर दिया जाना[11], तिनके की ओट लाँघना[12], नत मस्तक होना[13],

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 109.
2. - वही - पृ. 113.
3. - वही - पृ. 48.
4. प्रवादपर्व - " - पृ. 19.
5. - वही - पृ. 21.
6. - वही - पृ. 27.
7. " वही - पृ. 30.
8. - वही - पृ. 42.
9. - वही - पृ. 45.
10. - वही - पृ. 73.
11. - वही - पृ. 48.
12. - वही - पृ. 70.
13. - वही - पृ. 89.

आँच आना [1], आहत होना [2], फेंक दिया जाना [3], आदि का आकर्षक प्रयोग देखा जा सकता है —

" वह कर्म
धारदार अस्त्र की भाँति
न केवल देह
बल्कि
उसके व्यक्तित्व को
रागात्मकताओं को भी <u>काट कर रख दे</u> । " [4]

× × ×

" मनुष्य की इस आदिम जिज्ञासा का उत्तर
किसी भी दिशा पर
कभी भी <u>दस्तक देकर देखो</u>, " [5]

× × ×

" राम
आज फिर
एक साधारण जन ने
तुम्हारी राजसी-गरिमा

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 92.
2. - वही - पृ. 96.
3. - वही - पृ. 102.
4. - वही - पृ. 19.
5. - वही - पृ. 21.

और चरित्र-मर्यादा की ओर
अपनी अनाम तर्जनी उठायी है । "[1]

x x x

"संभव है
इस इतिहासहीन साधारण जन को
उसके केवल नाम के
छोटे से संज्ञा-इतिहास से भी
वंचित कर दिया जाए । "[2]

शबरी में – घुटनों पर सिर धरना [3] नाक कटना [4] लोचन भर आना [5] आँखें भर आना [6] कान पकड़ना [7] दीया बत्ती करना [8] आँसू झरना [9] हिचकी बंध जाना [10] मनुहार भरना [11] निगरानी रखना [12] समाज बिखरना [13] वर्जित होना [14] आदि मुहावरों का भाव गर्भित समायोजन काव्याभिव्यक्ति में हुआ है ।

---

1. प्रवादपर्व – नरेश मेहता – पृ. 27.
2. – वही – पृ. 30.
3. शबरी – " – पृ. 20.
4. – वही – पृ. 22.
5. – वही – पृ. 29.
6. – वही – पृ. 33.
7. – वही – पृ. 42.
8. – वही – पृ. 43.
9. – वही – पृ. 44.
10. – वही – पृ. 44.
11. – वही – पृ. 47.
12. – वही – पृ. 51.
13. – वही – पृ. 55.
14. – वही – पृ. 58.

" पकता रहता माँस आग में
घुटनों पर वह सिर धर । " 1

× × ×

" एक बार फिर कुटिया में
जाकर देखा, सब सोये,
नाक बज रही थी सब की । " 2

× × ×

" ऋषि की जिज्ञासा-वाणी सुन
भर आये शबरी के लोचन । " 3

× × ×

" बहिनों के देखते ही वे
सब कान पका देते थे । " 4

× × ×

" आश्रम की दीया-बत्ती
करने पर ही घर आती । " 5

× × ×

---

1. शबरी – नरेश मेहता – पृ. 20.
2. – वही – पृ. 22.
3. – वही – पृ. 29.
4. – वही – पृ. 42.
5. – वही – पृ. 43.

" मर्यादाएँ हटने से
सारा समाज बिखरेगा । "[1]

" प्रार्थनापुरुष " में – बिजली सी करक जाना, लोचन भर आना , आह निकलना[4], वचन निभाना[5], लाठियाँ पड़ना[6], अपनी टेक न छोड़ना[7], मुँह पर ताला डालना[8], चौकन्नी रहना[9], दूध का जला छाछ भी फूँक-फूँक कर पीना[10], आदि उपयोग हुआ है —

" यह मनुज-मनुज की दूरी
बिजली-सी करक गयी थी । "

x x x

" पल, पल, यह महापतन !!
चीत्कार कर उठा मोहन
परितापित हो करुणा से
भर आये दोनों लोचन । "

x x x

1· शबरी – नरेश मेहता – पृ· 55·
2· प्रार्थना पुरुष – " – पृ· 5·
3· – वही – पृ· 7·
4· – वही – पृ· 9·
5· – वही – पृ· 23·
6· 7· – वही – पृ· 27·
8· – वही – पृ· 29·
7· – वही – पृ· 42·
10· – वही – पृ· 55·

उदास मोहन के मुँह से
कभी निकल पड़ती थी आह ।

x x x

" पुन: चले नेटाल और
गांधी ने वचन निभाया । [1]

x x x

" किन्तु नहीं जब गांधी माने
पड़ी लाठियाँ उन पर ।

x x x

क्षमा कर दिया आलाम को
पर टेक न अपनी छोड़ी । " [2]

x x x

" पर उसी रात शासन ने
उनको बंदीघर में डाला
लगा कि जैसे जन-जीवन
के मुँह पर डाला ताला " [3]

x x x

1· प्रार्थनापुरुष - नरेश मेहता - पृ· 23·
2· - वही - पृ· 27·
3· - वही - पृ· 29·

" सरकार बहुत चौकन्नी थी
ऐसा आंदोलन शान्त हुआ । " 1

4.4. उपमान-योजना :- अलंकार

काव्य का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अध्ययन करनेवाले आचार्यों ने काव्य के उत्कर्षक अथवा प्रभावक धर्म को " अलंकार " 2 की संज्ञा दी, क्यों कि उस धर्म की परम परिणति अलंकरण या अभिव्यक्ति को समग्रता देने में थी । प्राचीन आचार्यों के अनुसार अलंकार के तीन भेद है -- शब्दालंकार, अर्थालंकार एवं उभयालंकार । शब्दालंकार में - अनुप्रास, यमक, श्लेष एवं वक्रोक्ति आदि प्रमुख है । अर्थालंकार में उपमा , रूपक, स्मरण एवं दृष्टांत आदि आते हैं । उभयालंकार में शब्दों और अर्थ दोनों की सार्थकता होती है । काव्य की सहज अभिव्यक्ति में सहायक होने - वाले अलंकार ही आधुनिकता की प्रक्रिया में प्रचुर मात्रा में हैं । अमूर्त और संश्लिष्ट भावों की अभिव्यक्ति में सहायक होनेवाले सादृश्य मूलक अलंकार, उपमा, रूपक उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का प्रयोग आधुनिक कवि आज भी करते हैं । विशेषण विपर्यय, मानवीकरण एवं मूर्त के लिए अमूर्त उपमान का प्रयोग आधुनिक है । प्रतीक और बिम्बों का प्रयोग आज विपुलता से होता है । नरेश मेहता की काव्य भाषा के अलंकरण में भाषा का शृंगार ही नहीं, अभिव्यक्ति की सजगता का भी दर्शन होता है । काव्य में भावाभिव्यक्ति के लिए प्राचीन एवं नवीन अलंकारों का प्रयोग किया गया है । कवि ने भावात्मक एवं मानसिक अभिव्यक्तियों से जुड़ी हुई अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने के लिए अनेक उपमानों का सहारा लिया है । चमत्कार का आग्रह न होने के कारण श्लेष, यमक आदि का सर्वथा अभाव रहा है ।

---

1. प्रार्थना पुरुष - नरेश मेहता - पृ. 42.
2. हिन्दी साहित्यकोश - भाग - 1, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा - पृ. 71.

4.4.1. उपमालंकार :-

साम्यमूलक अलंकारों में उपमा सबसे प्रधान है। जब किसी वस्तु का वर्णन करके उससे अधिक प्रसिद्ध किसी वस्तु से उसकी समानता की जाती है तब उपमा अलंकार होता है।[1] साधारणतया रूप, वर्ण और गुण इन तीनों में कम से कम एक को दृष्टि में रखकर समता की जाती है। जब दो या तीनों में समता हो जाती है तब वह और अद्वितीय होती है।

पूर्णोपमा :-

जहाँ उपमेय, उपमान, वाचक और साधारण धर्म आदि होते हैं उसे पूर्णोपमा कहते हैं। नरेश मेहता के काव्य में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं। जैसे —

" मिथिला आम्रकुंजों पर
झुका था
एक नीले हंस सा
मैथिली - हंसिनी "[2]

मैथिली-हंसिनी हंस के समान मिथिला के आम्रकुंजों पर झुकती है। काव्य में लक्ष्मण राम के पीछे सदा छाया सा लगा रहा है।

" छाया सा
अनुज यह सदा पीछे लगा रहा। "[3]

---

1. काव्य प्रदीप - राम बहोरी शुक्ल - पृ. 146 - 47.
2. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 5.
3. - वही - पृ. 12.

समाज की ओर से युद्ध करने के लिए निर्णय लिया गया है । उनका निर्णय ज्वालामुखियों को लगा दिया है । मणि छीने साँप के समान समय युद्ध के लिए ललकार रहा है —

" मणि छीने साँप सा
समय
क्वचित
युद्ध के लिए ललकार रहा । "[1]

" महाप्रस्थान " में सूर्योदय का वर्णन के लिए पूर्णोपमा का प्रयोग किया गया है । जैसे – पोड़ फूल सा सूर्योदय उदित हो रहा है —

पोड़ फूल सा कैसा सूर्योदय होता था । "[2]

यहाँ पूर्णोपमा द्वारा प्रकृति वर्णन किया गया है — विनयी वनानियाँ वल्कलवस्त्रों के समान उतर रही है —

" छूट गयीं औ अभिमन्या
सत्कारप्रिया विनयी वनानियाँ
अब तो वल्कल-वस्त्रों सी उतर रही । "[3]

द्यूत-क्रीड़ा में युधिष्ठिर द्रौपदी को हार गया है । दुर्योधन के आज्ञानुसार दुःशासन उसे भरी सभा में खींच कर लाया है । उस समय वह एक बलिपशु के समान घसीट कर लायी गयी है —

---

1. संशय की एक रात – नरेश मेहता – पृ. 90.
2. महाप्रस्थान – " – पृ. 29.
3. – वही – पृ. 30 – 31.

"द्रौपदी
बलिपशु सी आबद्ध
घिसटती शेष भाग में । "[1]

भरी सभा में अपमानित होती हुई द्रौपदी का आर्तनाद सुनकर कृष्ण दौड़ कर आते हैं। वस्त्रदान करके उसका मान बचाते हैं। उस समय पूर्ण पुरुष वह कृष्ण आकाश पक्षी के समान दिखाई पड़ते हैं —

"पूर्ण पुरुष ने
आकाश-पक्षी सा दिखा "[2]

द्रौपदी को अपना सारा जीवन एक दुर्भाग्यपूर्ण यात्रा सा लगा है —

"सारा जीवन ही
दुर्भाग्यपूर्ण यात्रा सा लगता । "[3]

" महाप्रस्थान " की यात्रा के समय द्रौपदी बार-बार हिम में गलने लगती है। वह अपनी रक्षा के लिए सभी पतियों को पुकारती है। उसका आर्तस्वर अर्जुन को पुकारते हुए आँधियों में घिरे एकाकी पक्षी के समान पंख फड़फड़ाता हुआ आया था —

"मुझे पुकारते हुए
आँधियों में घिरे एकाकी पाखी सा
पंख फड़ाता यह

1• महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 44•
2• - वही - पृ• 56•
3• - वही - पृ• 56•

विवश प्रिया का
आर्तस्वर आया था ।[1]

अर्जुन को अपनी प्रिया की पुकार विद्युत सी चीर करने लगी है —

" मेरे व्यक्तित्व के भोजपत्र को
प्रिया की पुकार
विद्युत सा चीर गयी । "[2]

स्वर्ग की ओर यात्रा करते समय भीम असामायिक मृत्यु को स्वीकार करते हैं । इसके सम्बन्ध में युधिष्ठिर कहते हैं कि - तुम्हारी देह प्रस्तर के समान अज्ञात शिला लेख के समान हिम में पड़ी रहेगी —

" तुम्हारी यह देह
अज्ञात शिलालेख के प्रस्तर सी अनबाँची
यहाँ पड़ी रहेगी । "[3]

" प्रजादपर्व " में कर्म पर विचार करने के लिए पूर्णोपमा का प्रयोग किया गया है । इसमें प्रश्न किया गया है कि मनुष्य प्रत्यंचा सा तना हुआ कर्म के बाणों को संधान करने के लिए क्या केवल साधन है इसमें पूर्णोपमा है —

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ॰ 82॰
2. - वही - पृ॰ 83॰
3. - वही - पृ॰ 117॰

" मनुष्य

x x

प्रत्यंचा सा तना हुआ
कर्म के बाणों को वहन करने के लिए

x x x

केवल साधन है । " 1

मानवीय भावों को प्रकृति पर आरोपित करने के लिए पूर्णोपमा का सहारा लिया गया है —

" उत्तर —

स्वयं प्रश्न बना
एकान्त गरुड़ सा
ऊपर ब्रह्माण्डों के पार
व्योमातीत भाव से चला जा रहा है । " 2

यहाँ उत्तर स्वयं प्रश्न बनकर एकान्त गरुड़ के समान ब्रह्माण्ड के पार चला जा रहा है । अत: इसमें पूर्णोपमा है । यहाँ मानवीय भावों की अभिव्यक्ति पूर्णोपमा द्वारा की गयी है । राम और सीता के बीच एक अमानुषी लीला अन्धी, मूक, बुभुक्षित प्राचीर, प्रतिहार सी आकर खड़ी होती है । राम के कथन के द्वारा यह व्यक्त होती है —

" यह कितनी दूर और
अमानुषी लीला है प्रिये !

x x x

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 19.
2. - वही - पृ. 22.

हमारे और तुम्हारे बीच

x x x

अन्धी

मूक, बुभुक्षित प्राचीर

फिर प्राचीर सी आ खड़ी होती है । " [1]

"शबरी " काव्य में रहस्यानुभूति की पूर्णोपमा द्वारा अभिव्यक्त किया गया है । शबरी को हरेक फूल प्रभु संकीर्तन के समान लगते हैं —

" हो फूल कहीं भी कोई
प्रभु संकीर्तन सा लगता । " [2]

वातावरण का वर्णन पूर्णोपमा में किया गया है । शबरी की कुटिया के चारों ओर सर्वत्र अन्धकार है । छोटी सी प्रकाश में कुटियाँ पुतली के समान है —

" खिड़की से छनते प्रकाश में
पुतली सी थी कुटियाँ । " [3]

शबरी के भावों के चित्रण में पूर्णोपमा स्पष्ट होती है । शबरी निर्मल प्रकृति को देखकर आनंद विभोर हो जाती है । अपनी आनंदातिरेक से धूप के समान हँसती है तथा शिशु सा व्याकुल हो जाती है —

1· प्रवादपर्व – नरेश मेहता – पृ· 60·
2· शबरी – " – पृ· 52·
3· – वही – पृ· 68·

" यह हँसती धूप सरीखी
शिशु सी व्याकुल हो जाती । "[1]
— — — — — —

" प्रार्थनापुरुष " में गांधीजी के जीवन वर्णन में पूर्णोपमा है । देह मंदिर के समान धुली है —

" मंन्दिर सी ही धुली देह "[2]

प्रकृति के मानवीकरण के संदर्भ में इसका प्रयोग यों किया गया है —

" विहग वह थी सारी दुनिया
आत्मा के उतरे वस्त्रों सी
म्लान पड़ी थी सब दुनिया । "[3]

इस तरह काव्य के विभिन्न संदर्भों में पूर्णोपमा का सफल प्रयोग कियागया है ।

4.4.2. संदेहालंकार :-

जब उपमेय और उपमान में रूप, आकार, आदि की समता देखकर यह निश्चय नहीं हो पाता कि उपमान वास्तव में उपमेय है या नहीं, दुविधा बनी ही रहती है, तब संदेहालंकार होता है । "[4]

---

1. शबरी - नरेश मेहता - पृ. 53.
2. प्रार्थना पुरुष - नरेश मेहता - पृ. 20.
3. - वही - पृ. 60.
4. काव्य प्रदीप - राम बहोरी शुक्ल - पृ. 181.

बहुधा किसी वस्तु को देखकर उसके वास्तविक रूप का निश्चय नहीं होता । उसमें अनेक वस्तुओं की दुविधा बनी रहती है । कभी कुछ समझ लिया जाता है, कभी कुछ । इस अवस्था में संदेह होता है।यह संदेह अनेक प्रकार से होता है —

" संशय की एक रात " में संदर्भ की व्याख्या करते समय संशय व्यक्त किया गया है । उस संदेह के द्वारा संशय की सार्थकता को भी व्यक्त किया गया है —

" संन्धि या कि युद्ध
टूटे सन्दर्भ को
मात्र विवशता ही नहीं है । " [1]

" महाप्रस्थान - में युद्ध में पाण्डवों को विजय प्राप्त हुई । लेकिन उन्हें वह विजय ऐसा लगा कि —

" वह राज्यारोहण था
या था स्वर्गारोहण । [2]

-" महाप्रस्थान " की यात्रा में निकली द्रौपदी को स्वाहापर्व में अश्व - त्थामा की आत्मा से मुलाकात होती है । तब उसे संदेह होता है वह अश्वत्थामा है या नहीं । अतः उसके भ्रम में संदेह है —

" पता नहीं वह तुम थे
या कि तुम्हारा भ्रम । " [3]

1· संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ· 14·
2· महाप्रस्थान - " - पृ· 42·
3· - वही - पृ· 81·

अश्वत्थामा के कथन में यातना के प्रति संदेह है —

" यातना
अग्नि की हो
या हिम की । "[1]

राजद्रोह किसके प्रति होता है ? इसका निर्धारण करने के विषय में राम के द्वारा संदेह प्रकट किया गया है कि —

" राजद्रोह
व्यक्ति के विरुद्ध होता है
राष्ट्र के ? "[2]

व्यक्ति या राष्ट्र इस में संदेह निहित है ।

राष्ट्र के स्वरूप का निर्धारण करने के प्रति अपने संदेह को यों व्यक्त किया गया है —

" मैं या सीता राष्ट्र है । "[3]

शबरी अपनी तपस्या के कारण स्वयं शिव का रूप धारण कर लेती हैं । अब उन दोनों के बीच के अंतर को पहचाना कठिन हैं । यहाँ शबरी और शिव इन दोनों के रूपों के प्रति संदेह प्रकट किया गया है —

1· महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ· 81·
2· प्रवादपर्व - " - पृ· 97·
3· - वही - पृ- 97

" वह श्यामा थी या शिव थी "[1]

4.4.3. अन्त्यानुप्रास :-

छन्द के चरण के अन्तिम वर्ण या वर्णों की मैत्री से अंत्यानुप्रास होता है। हनुमान के कथन से यह स्पष्ट होता है —

" ओ "
राघव !
हे लाघव
अब होंगे न पराभव । "[2]

" महाप्रस्थान " के युधिष्ठिर के कथन में यह द्रष्टव्य है —

" मैं राज्यान्वेषी नहीं
मूल्यान्वेषी रहा हूँ । "[3]

आज की वैज्ञानिक सभ्यता का विरोध करनेवाले युधिष्ठिर के कथन में यह भासित होता है —

" ये वस्तुएँ
ये सत्ताएँ
एक दिन उसका पर्याय बन जाती है । "[4]

---

1. शबरी - नरेश मेहता - पृ. 73.
2. संशय की एक रात - " - पृ. 64.
3. - वही - पृ. 86.
4. - वही - पृ. 93.

प्रवादपर्व में भी अनेक अंत्यानुप्रास के उदाहरण मिलते हैं — मानव जीवन विधान के बारे में चर्चा करनेवाले राम के कथन में एक उदाहरण देखिए —

" स्थान बदल सकते हैं
भूमिकाएँ, मुद्राएँ भी बदल सकती हैं
पर नाटक
वस्तुतः वही रहता है । "[1]

सीता के द्वारा राम के व्यक्तित्व निर्वचन को अनुप्रास के द्वारा अनुरंजित किया गया है —

" उस व्यक्तित्व की गन्ध में
फूलों की कमनीयता तथा
मन्त्रों की पवित्रता थी "[2]

" शबरी " काव्य में विभिन्न संदर्भों में अनेक प्रकार के अंत्यानुप्रास मिलते हैं —

आश्रम का वर्णन का एक चित्र लीजिए —

" जल-कलशी ले ऋषि-कन्याएँ
पोखर आतीं जातीं "[3]

x x x

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 84.
2. - वही - पृ. 72.
3. शबरी - " - पृ. 26.

कितनी दिव्य और भव्य थी
शान्ति यहाँ की सारी । " 1

* * *

" दूर किसी एकान्त विजन में
मुग्ध मयूरी तन्मय
देख रही अपने प्रिय का
रास नृत्य को रसमय । " 2

* * *

शबरी के संशय को अनुप्रास में कहा गया है —

" सीता की जिज्ञासा-वाणी सुन
भर आये शबरी के लोचन,
कैसे बतलाये अन्त्यज है
शबर जाति की दुःख मोचन । " 3

आश्रम की गायों के वर्णन के संदर्भ में इसका प्रयोग स्पष्ट होता है —

" वह पहुँची तब गोशाला में
देखी धौला, कपिला, श्यामा
वे गायें थी या काम धेनु
चित्रित लोगों की अभिरामा । " 4

---

1. शबरी - नरेश मेहता - पृ. 27.
2. - वही - पृ. 27.
3. - वही - पृ. 29.
4. - वही - पृ. 34.

गायों के साथ शबरी के स्नेह के वर्णन में भी अनुप्रास की छटा है —

" विचर मतंग ने देखी
पशु-शबरी की यह लीला,
सोचा-किस घर बही थी
निर्मल, पुण्या यह सलिला ।" [1]

शबरी को आश्रमवासिनी बनाने पर मतंग के विचार को अनुप्रास से अलंकृत किया गया है —

" सम्भव है आश्रम के जन
या अन्य तपोवन वासी,
आपत्ति करें शबरी के
बनने पर अन्तेवासी " [2]

"प्रार्थना पुरुष " में गाँधीजी के स्वभाव का वर्णन प्रसंग में भी अनुप्रास विधान का समावेश है —

" एकान्त, शान्त-प्रकृति का
वह अलग-थलग ही रहता ।" [3]

x x x

" था उसे व्यसन पढ़ने का
आज्ञाकारी गुरुजन का
सेवा-स्वभाव का मोहन
अनुचर था सभी स्वजन का ।" [4]

---

1. शबरी - नरेश मेहता - पृ. 35.
2. - वही - पृ. 36.
3. प्रार्थना पुरुष - " - पृ. 4.
4. - वही - पृ. 4.

नेटाल प्रदेश में लोग न्याय के लिए लड़ रहे थे। ब्रिटीश शासन के विरुद्ध वे अर्जों, तार, पिकेटिंग मीटिंग आदि करते हैं। इसमें अनुप्रास की योजना देखिए —

" अर्जों, तार पिकेटिंग-मीटिंग
जगे लोग सब रातों रात "[1]

4.4.4. रूपकालंकार :-

" रूपक " शब्द का अर्थ होता है रूप धारण करना। इस अलंकार में उपमेय उपमान का रूप धारण करता है।

" इतिहास-वस्त्र "[2]

यहाँ वस्त्र ने इतिहास के रूप को धारण किया है।

4.4.5 स्मरणालंकार :-

कुछ देखकर, कुछ सुनने पर, तथा अन्य संदर्भों में कुछ याद आये तो उसे स्मरणालंकार कहा जाता है। काव्य में ऐसे अनेक स्मरणालंकार मिलते हैं —

" संशय की एक रात " में युद्ध से संबन्धित विचार विमर्श करते समय राम को कुछ पूर्व घटनाएँ याद आती हैं —

" लक्ष्मण !
राम की इस विवशता को
सोच सकते हो ?
अन्य प्रायश्चित करें मेरे लिए

---

1. प्रार्थना पुरुष - नरेश मेहता - पृ. 15.
2. महाप्रस्थान - " - पृ. 36.

दुःख भोगे
वनों में भटके अकारण ही
बिना वनवास की आज्ञा मिले
पिछली जननियाँ
कौन है इनका निमित्त ? "[1]

" महाप्रस्थान " की यात्रा में निकले द्रौपदी को अपना सारा जीवन जल चित्रों के समान याद आने लगी है —

" भरी सभा में
उस दिन —
कुल-कुटुम्ब, पाँच पतियों के सम्मुख
नाम मात्र को परिधानित
मैं
रजस्वला
विवस्त्र की जाने को बाधित
मुझ को घसीट कर
बलि पशु सा लाया था
पामर दुःशासन
दासी से करता सम्बोधित
कौन नहीं था वहाँ ? "[2]

---

1 संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ० 19 - 20.
2. महाप्रस्थान - " - पृ० 57.

राम की राजसी गरिमा और चरित्र मर्यादा पर एक धोबी ने अपनी तर्जनी उठायी है । इससे उनके वैयक्तिक जीवन में संघर्ष पैदा हो गया है । उत्पन्न इस संकट स्थिति के माध्यम से इसके पहले भोगी या अनुभव की गयी स्थितियों का स्मरण करते हुए और याद दिलाते हुए वे सीता से कहते हैं कि —

" वनों में
एकान्त उपत्यकाओं में
वानरों-राक्षसों के बीच
इस नियति को
संभाव्य - असंभाव्य
किस-किस रूप में नहीं भोगा है प्रिये ?
तभी तो मैं चिन्तित हूँ कि
यह कैसा विधान है । "[1]

4.4.6. उदाहरणालंकार :-

जिनके दो वाक्य का साधारण धर्म भिन्न हो उसमें वाचक शब्द द्वारा समता दिखाने पर उदाहरणालंकार होता है । जैसे —

"ये पाखीदल
और साँझ का देवदार-वन वाला उनका
वह आकुल आरण्यक-कूजन,
जैसे आश्रम-कन्याओं की गोपन बातें । "[2]

1· प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ· 58·
2· महाप्रस्थान - " - पृ· 29·

यहाँ पारयोदल और आरण्यक क्रुन को आश्रम कन्याओं को गोपन बातों से समता को गयो है । यहाँ दोनों का धर्म एक नहो है परन्तु " जैसे " वाचक शब्द के द्वारा दोनों में समता प्रकट किया गया है । इस कारण यहाँ उदाहरण अलंकार है । इसी प्रकार आगे के लिखे उदरणों में भी उदाहरण अलंकार है —

" परियों को खोकर
प्रताड़िता एकाको हो गयो हूँ —
जैसे यज्ञ सम्पन्न हो जाने के बाद
अकेला यज्ञयूप
उपेक्षित
गड़ा हुआ छोड़ दिया गया हो ।" [1]

द्रौपदो के एकाकोपन को यज्ञयूप से समता को गयो है ।

4.4.7. <u>उत्प्रेक्षा</u> :-

जब उपमान से भिन्नता जानते हुए भी उपमेय में उस (उपमान) की सम्भावना को जातो है, तब उत्प्रेक्षा [2] अलंकार होता है । जैसे —

" देखा, सम्मुख भव्य व्यक्ति था
मानों तप हो आया " [3]

1· महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ· 77·
2· काव्य प्रदोप - पं· राम बहोरो शुक्ल - पृ· 185·
3· शबरो - नरेश मेहता - पृ· 28·

यहाँ मतंग की तपस्या का रूप दिया गया है ।

भक्त शिरोमणि शबरी को परम सती के रूप में स्वीकारा गया है —

" अब कभी-कभी प्रवचन में
उल्लेखित होती शबरी
मानों वह परम सती हो
हो भक्त शिरोमणि शबरी । " ¹

4.4.8. उल्लेखालंकार :-

जब किसी वस्तु का अनेक प्रकार से वर्णन (उल्लेख) किया जाय तब उल्लेखालंकार होता है । यह दो प्रकार से हो सकता है - 1. एक ही व्यक्ति या पदार्थ अनेक लोगों द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार से देखा, समझा या वर्णन किया जाय अथवा 2. एक ही पदार्थ को विषय भेद से एक ही व्यक्ति अनेक प्रकार से देखे । नरेश मेहता के काव्य में उक्त दोनों संदर्भों में अनेक उल्लेखालंकार मिलते हैं —

" संशय की एक रात " में राम को विभिन्न संदर्भों में देखा गया है —

" यदि मैं मात्र कर्म हूँ
तो यह कर्म का संशय है ।
यदि मैं मात्र क्षण हूँ
तो यह क्षण का संशय है ।

---

1. शबरी - नरेश मेहता - पृ. 51.

यदि मैं मात्र घटना हूँ
तो यह घटना का संशय हैं। "[1]

कर्म, संशय, आदि में उल्लेखालंकार है। सीता को भी माता, वधू, दुहिता एवं अपहृत स्वतंत्रता आदि रूपों से उल्लिखित किया गया है —

"सीता माता
भले ही राम की पत्नी हो
किसी की वधू
किसी की दुहिता हो
पर
हम कोटि कोटि-कोटि जनों की तो केवल
प्रतीक है
रावण अभिलषन की सीता
हम साधारण जन की अपहृत स्वतंत्रता।"[2]

युधिष्ठिर अर्जुन को अपने वैचारिक सखा एवं पाण्डवता के मेरुदण्ड के रूप में यों उल्लेख करते हैं —

"सव्य साची
मेरे वैचारिक सखा !
पाण्डवता के मेरुदण्ड।"[3]

---

1. संशय की एक रात – नरेश मेहता – पृ॰ 51॰
2. – वही – पृ॰ 64॰
3. महाप्रस्थान – " – पृ॰ 113॰

4.4.9. तद्गुणालंकार :-

" तजि गुन अपनो, संगति को गुन लेई " अर्थात् जहाँ कोई वस्तु अपना गुण त्याग कर अपने पास की किसी दूसरी वस्तु का गुण ग्रहण कर लेती है वहाँ तद्गुण (उसका गुण ग्रहण करना) अलंकार होता है । [1]

" धर्मपादुकाएँ चिपक कर
स्वयं पैर हो गयी है । " [2]

यहाँ धर्मपादुकाएँ अपना स्वधर्म को छोड़कर दूसरे के धर्म को धारण कर स्वयं पैर हो गयी है ।

4.4.10. स्वभावोक्ति :-

किसी की जाति, स्वभाव, धर्म, कर्म, दशा आदि के अनुरूप यथावत् और प्राकृतिक वर्णन में स्वभावोक्ति अलंकार होता है । प्रकृति के सहज चित्रण को उदाहरण के रूप में ले सकते हैं —

" हिम, केवल हिम
दसों दिशाओं के हाथों में
सुगन्ध वाले दिन-चामर
नील पड़ गये
लौट आ गये मेघों के परिवार
अपने - अपने शैल-शिखर में । " [3]

---

1. काव्य प्रदीप - राम बहोरी शुक्ल - पृ. 231 - 232.
2. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 115.
3. - वही - पृ. 37.

यहाँ सामाजिक जीवन विधान या व्यापार स्वाभाविक चित्रण किया गया है —

" व्यापारी गण सार्थ बनाकर
सीमान्तों तक जाते
सिन्धु तटों से माल, लाद
नौकाओं में ले जाते । " [1]

x x x

" वन्य जातियाँ अब भी थीं
आखेटे आदि ही करतीं,
पशु-पक्षी-मछली पर
अपना, जीवन-यापन करती । " [2]

4·5· नवीन उपमानों का प्रयोग :-

इस का तात्पर्य – विभिन्न अलंकारों में नवीन उपमानों के प्रयोग से है । नरेश मेहता ने अपने नवीन दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए अपने काव्य में प्रयुक्त अलंकारों के अंतर्गत अनेक सुंदर नवीन उपमानों का प्रयोग किया है । इससे उनकी भाषा का वैभव तथा कवि की सृजनात्मक कल्पना स्पष्ट होती है ।

लंका पर आक्रमण के लिए तैयारियाँ पूरी हो गई है । फिर भी राम युद्ध के पक्ष में नहीं है । युद्ध की अनेक समस्याएँ उन्हें घेरी हुई हैं । वे अत्यंत शंकाकुल है । उनकी शंका को दूर करते हुए अपने पौरुष पर विश्वास रखकर काम करने के लिए प्रेरणा देते हुए लक्ष्मण राम से कहते हैं —

1· – [illegible] शबरी – नरेश मेहता – पृ· 15·
2· – वही – पृ· 17·

" आज्ञा करें राम
देखें फिर पौरुष इस बन्धु का ।
दूसरी बार होगा
सागर का मन्थन अब ।
यदि यह बाधा है सिन्धु
अगस्त्य के आचमन सा
सोखेंगे । "1

यहाँ अगस्त्य का आचमन एक नवीन उपमान के रूप में प्रयुक्त हुआ है ।

राम शिव निर्माल्य रूपी अपनी संशयाग्नि को उत्तर दिशाओं को सौंपना चाहते हैं —

" शिव-निर्माल्य सी
इस अग्नि को
उत्तर दिशा को सौंप दो । "2

अग्नि को शिव निर्माल्य सा बताना यहाँ नवीन उपमान है ।

राम के मन में उत्पन्न अनुत्तरित संशय को, उपमान देते हुए इस प्रकार कहा गया है —

" एक
अनुत्तरित संशय का सर्प युग
हरहरा रहा मुझ में

1· संशय की एक रात – नरेश मेहता – पृ· 17·
2· – वही – पृ· 22·

पीपल सा

अहोरात्र । " 1

संशय को पीपल से उपमित करना ही इसमें नवीनता है ।

युद्ध द्वारा प्राप्त होनेवाली विजय को राम स्वीकार करना नहीं चाहते हैं । इसे नवीन उपमान देते हुए यों कहा गया है कि —

" मुझे ऐसी जय नहीं चाहिए
आघविद्ध पाखी सा विवश
साम्राज्य नहीं चाहिए । " 2

यहां साम्राज्य की उपमा विवश पक्षी से दी गयी है ।

अस्पष्ट दिखाई पड़ने वाली दशरथ की छाया के बारे में नील इस प्रकार राम से कहते हैं —

" एक अदृश्य छाया
दीपक की लौ सी
अस्पष्ट घूमती दीखती है । " 3

दीपक की ज्वाला को अदृश्य छाया से उपमित किया गया है ।

नवीन उपमानों के द्वारा प्रकृति का सुंदर वर्णन इस प्रकार किया गया है —

1· संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ· 30·
2· - वही - पृ· 32·
3· महाप्रस्थान - - पृ· 33·

"शिव की गौर-प्रलम्ब भुजाओं सी
पर्वत – मालाएँ
नभ के नील पटल पर
पृथिवी-सूक्त लिख रही । "[1]

शिव की प्रलम्ब भुजाएँ नवीन उपमानों से युक्त है ।

एक और स्थान पर धूप का वर्णन देव कन्याओं से किया गया है —

" सुवर्णाएँ धूप
देव कन्याओं सी हिम पिघला रही है । "[2]

सीता की पवित्रता को यज्ञ के पत्र्पात्र से उपमित करते हुए राम के स्वगत कथन शैली में कहा गया है कि —

" राम ! यह कैसा दृश्य तुम देख रहे हो ??
यज्ञ के पत्र्पात्र सी पवित्र तथा
मांगलिक सीता को
लक्ष्मण
तुम्हारी राज्य-सीमा पर
तुम्हारे ऐतिहासिक निर्णय के
प्रतीक स्वरूप
काग-ग्रास सा रख आएँगे । "[3]

1· महाप्रस्थान – नरेश मेहता – पृ· 27·
2· – वही – पृ· 33·
3· प्रवादपर्व – " – पृ· 108·

स्वर्ग की ओर जानेवाली शबरी को उपमान देते हुए कहा गया है कि —

" आकाश-भागवत की वह
थी प्रथम श्लोक सी-शबरी
करने कृतार्थ जाती थी
अब स्वर्गलोक शबरी । " [1]

आकाश-भागवत को नवीन उपमान के रूप में लिया गया है ।

गाँधीजी की मानसिक वेदना को जिन उपमानों द्वारा व्यक्त किया गया है । वे नवीन ही है —

पहली दरार थी, जो उस
x x x
बिजली सी करक गयी थी ।

दरार को करक यहाँ नवीन उपमा के रूप में प्रयुक्त हुई है ।

इस तरह कहा जा सकता है कि नरेश मेहता के काव्यों में प्राचीन और नवीन अलंकारों को कुशलता से प्रयोग किया गया है । अलंकारों की विविधता और नवीनता काव्य में सर्वत्र दिखाई पड़ती है । अलंकार योजना की दृष्टि से उपर्युक्त काव्य महत्वपूर्ण है । अलंकार में वैविध्य और समृद्धि दोनों दृष्टियों से भी उनका काव्य अत्यंत प्रशंसनीय है ।

---

1. शबरी - नरेश मेहता - पृ. 92.

5· शैली :-

काव्य रचना में भावपक्ष एवं कलापक्षों का समान महत्व होता है। कलापक्ष की दृष्टि से काव्य व्यवस्था का भी अत्यंत महत्व रहता है। व्यवस्था का तात्पर्य उसकी शिल्पगत विधि काव्य रूप, भाषा-शैली, छन्द, अलंकार आदि से होता है। भावों की सशक्त अभिव्यंजना एवं सम्प्रेषण के विधान के द्वारा शैली की श्रेष्ठता व्यक्त होती है। शैली की भव्यता के अनुरूप ही कथ्य अपना वैशिष्ट्य प्राप्त करता है। इसीलिए ही भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने शैली को काव्य रचना का महत्वपूर्ण अंग माना है। आधुनिक कवि नरेश मेहता ने कथ्य की अभिव्यक्ति हेतु अपने काव्यों में अपनी एक शैली का विधान बना लिया है। यत्र-तत्र नई काव्य शैलियों के दर्शन भी होते हैं। स्वीकृत शैलियों के अंतर्गत इतिवृत्तात्मक, नाटकीय तथा संवाद शैलियों के दर्शन होते हैं। पुनः संवाद शैली के अंतर्गत प्रश्न एवं तर्क शैलियों को देख सकते हैं।

5·1· इतिवृत्तात्मकता और शैली :-

इतिवृत्त का सम्बन्ध सीधा कथावस्तु से होता है। नरेश मेहता का काव्य " संशय की एकरात ", महाप्रस्थान ", शबरी एवं प्रवादपर्व आदि में इतिवृत्तात्मक शैली का प्रयोग किया गया है। " प्रार्थनापुरुष " में भी इतिवृत्तात्मकता का दर्शन होता है। इतिवृत्तात्मकता का संबंध आख्यानात्मक शैली से होता है।

5·2· नाटकीय शैली : संवादात्मकता :-

नाटकीय शैली में कथा का विकास पात्र के द्वारा होता है। इस के लिए समर्थ संवादों का सहारा लिया जाता है। " संशय की एक रात ", " महाप्रस्थान एवं " प्रवादपर्व " आदि में रंगमंचीय गुणात्मकता का पूर्ण समावेश है। संवाद योजना के द्वारा कृतियों में पूर्ण नाटकीयता लायी गयी है। यहाँ तक कि सर्ग योजना को हटा दिया जाय तो काव्य पूर्ण नाटक हो सकते हैं। वातावरण की सृष्टि में भी

इस शैली ने योगदान दिया है । काव्यों में नाटकीयता को दूषित करनेवाले कुछ उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य है —

राम : " नील ?
इस दृष्टि में ?
कुशल तो है सब ?

नील : जय हो ।
प्रभु के शिविर भी गया था ।

राम : कारण

नील : पूरब के सेतुबुर्ज पीछे
एक अदृश्य छाया
दीपक की लौ सी
अस्पष्ट घूमती दिखती है
कभी-कभी ।

राम : छाया ?
कैसी ?
किसकी छाया ?

नील : यह तो पता नहीं देव !
लेकिन वह छाया
निश्चय ही माया है । " [1]

" महाप्रस्थान " में राजा एवं राज्य व्यवस्था के सम्बन्ध में अनेक विचार प्रस्तुत किया गया है । युधिष्ठिर भीम और अर्जुन के संवादों को नाटकीय शैली में प्रस्तुत किया गया है —

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 31 - 32.

भीम : " बन्धु क्या अर्थ है इसका ?

युधिष्ठिर : किसका ?

भीम : हिम-यातना के इस आत्मावरण का !

युधिष्ठिर : भीम ! क्या कुछ अर्थ था
उस मणि-मुकुट धारण का ?
कौरवों से युद्ध का ?

भीम : क्यों नहीं ?

युधिष्ठिर : क्या ??

भीम : कौरव दुष्ट थे ।

युधिष्ठिर : केवल हमारे ही लिए तो । "[1]

"प्रवाद पर्व" में सीता के चरित्र के प्रति धोबी के द्वारा आरोपण किया गया है । इसके संबंध में राज सभा में गंभीर विवाद चला है । उनके बीच के संवादों को नाटकीय शैली में व्यक्त किया गया है —

राम : क्या हुआ ?
सभा ने क्या निर्णय लिया ?

भरत : उचित कार्यवाही आवश्यक है ।

मन्त्री : प्रभु से यही निवेदन करना था ।

राम : उचित कार्यवाही ?
कैसी ?

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 85.

मन्त्री : पता चला
यह साधारण धोबी

राम : व्यक्ति वह साहसिक है ।

लक्ष्मण : यह साहस नहीं
दुस्साहस है । [1]

काव्य में नाटकीय संयोग के लिए संवादात्मक शैली का प्रयोग किया जाता है । नरेश मेहता के काव्यों में भी संवादों का स्वतंत्र स्थान है । संवादों के अंतर्गत प्रश्नोत्तर शैली तर्क-शैली, मतपरता, पात्रानुकूलता, वचनवक्रता एवं रोचकता आदि का संयोग किया गया है ।

5·3· प्रश्नोत्तर शैली :-

नरेश मेहता के काव्य में इस प्रश्नोत्तर शैली का सफल प्रयोग किया गया है । पात्रों के द्वारा विभिन्न समस्याओं को प्रश्नों के रूप में प्रस्तुत किया गया है और उनके समाधान प्रस्तुत किया गया है । फलत: जहाँ एक ओर प्रश्नोत्तर शैली कथ्य विकास में सहायक हुई है वहीं समस्याओं के समाधान ढूँढने के लिए पूरे युग को बाध्य करती है । काव्य में प्रयुक्त इस शैली को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं — एक तो किसी अन्य व्यक्ति से प्रश्न पूछने की शैली, [पर प्रश्न शैली] दूसरी अपने आप से भावों की उलझन में प्रश्न पूछना [स्व प्रश्न शैली] । नरेश मेहता ने अपने काव्यों में स्वप्रश्न शैली का अधिकांश प्रयोग किया है ।

" संशय की एक रात " में लक्ष्मण सहित सारा समाज युद्ध का समर्थन करती है । राम युद्ध के पक्ष में नहीं हैं । इसके अंतर्गत लक्ष्मण विभिन्न तर्क प्रस्तुत करते हैं । उनके तर्कों के समाधान देते हुए राम अपने संशयों को प्रश्न शैली में

1· प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ· 39·

इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं —

"मैं केवल युद्ध को बचाना चाहता रहा हूँ बन्धु !
मानव में केवल जो विराजा है
उसको ही
हाँ, उसको ही जगाना चाहता रहा हूँ बन्धु !
क्या यह सम्भव है ?
क्या यह नहीं है ?"[1]

"महा प्रस्थान" के द्वितीय सर्ग में राजा और राज्य-व्यवस्था के संदर्भ में अनेक प्रश्न उठाये गये हैं। सर्गान्त तक प्रश्न शैली का प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिए अर्जुन और युधिष्ठिर के संवाद को ले सकते हैं —

अर्जुन : बन्धु !
व्यक्ति के पुरुषार्थ और संकल्प का
तब कोई अर्थ नहीं

युधिष्ठिर : पुरुषार्थ और संकल्प
क्या सच ही कुछ होते हैं ?
तब क्यों नहीं
गाण्डीव के होते
अपनी प्रिया को हिमपात से मुक्त करा सके ?"[2]

सीता के चरित्र पर राज्य के एक धोबी द्वारा आरोपण किया गया है। राज्य सभा के सदस्य इसे राजद्रोह मानते हैं। राम अपनी स्वगत-प्रश्न-शैली द्वारा इस समस्या का समाधान ढूँढने का प्रयत्न करते हैं —

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 19.
2. महाप्रस्थान - " - पृ. 89 - 90.

" कैसे है ?
राजनीति पर प्रश्नचिह्न लगाना
विरोधी संकल्प कैसे है ??
क्या गरिमा
क्या चरित्र
क्या अधिकार
केवल राज्य
राजपुरुषों या
इतिहास-पुरुषों के ही होते है ?
अनाम साधारणजन के कुछ नहीं होते राम ? "[1]

" शबरी " में प्रश्न शैली का सार्थक प्रयोग हुआ है - अत्यंज होने के कारण मतंग उसे आश्रम में स्थान देने के लिए संकोच करते हैं। दोनों के बीच कुछ संवाद होते हैं। तब शबरी अपने विचारों को प्रश्न शैली में इस प्रकार प्रस्तुत करती है —

" क्या आत्मा की उन्नति केवल
है उच्च वर्ग तक ही सीमित ?
प्रभु तो हैं सबके पिता, भला
उनका आराधन क्यों सीमित ? "[2]

भगवान के सत्कार सम्बन्धी शबरी के विचारों को स्वागत-शैली में प्रस्तुत किया गया है —

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 29 - 30.
2. शबरी - " - पृ. 31.

प्रभु को कैसे बैठाये
परिधान कौन सा लाये ?
किन मन्त्रों से आवाहन
वह गान कौन सा गाये ? "[1]

देश को जागृत करने के सम्बन्ध में गांधीजी के विचार स्वगत-प्रश्न-शैली के माध्यम से व्यक्त होते हैं --

"किस अन्धकार में डूबा है
यह महादेश, मेरा भारत ?
वे सत्तायें है कौन, किये
चिन्मय स्वरूप को जो गारत ?"[2]

5.4. तर्क शैली :-

कवि ने अपने काव्य में विभिन्न समस्याओं का समाधान देने के लिए तर्क शैली का प्रयोग किया है । "स्वाहापर्व" में भीम और अर्जुन को राजा-राज्य-व्यवस्था, व्यक्ति एवं समाज सम्बन्धी जिज्ञासाओं का समाधान तर्क पूर्ण शैली में प्रस्तुत हुआ है --

भीम : बन्धु ! क्या अर्थ है इसका ?
युधिष्ठिर : किसका ?
भीम : हिम यातना के इस आत्मावरण का !

---

1. शबरी - नरेश मेहता - पृ. 87.

2. प्रार्थना पुरुष - " - पृ. 32.

युधिष्ठिर : भीम ! क्या कुछ अर्थ था
उस मणि-मुकुट धारण का ?
कौरवों से युद्ध का ?

भीम : क्यों नही ?

युधिष्ठिर : क्या ??

भीम : कौरव दुष्ट थे

युधिष्ठिर : केवल हमारे ही लिए तो !

भीम : हम
प्रजा को एक सुचारु प्रशासन देना चाहते थे ।

युधिष्ठिर : क्या सच ही दे सके ?
बन्धु ! तुम्हारा कथन मिथ्या नहीं ?
क्या दुर्योधन कुशल प्रशासक नहीं था ? " [1]

ऐसे ही अर्जुन और युधिष्ठिर के संवाद के लिए भी इसी प्रश्न शैली का प्रयोग किया गया है —

अर्जुन : यदि राज्य न होगा
तो समाज का क्या होगा ?

युधिष्ठिर : राज्य के नहीं
धर्म के नियमों पर समाज आधारित है ।
राज्य पर अंकुश बने रहने के लिए

1· महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ· 85·

धर्म और विचार को
स्वतन्त्र रहने दो पार्थ !
अन्यथा यह समाज
रहने के योग्य नहीं रह जायगा ।
किसी भी व्यक्ति को
इतना प्रतिष्ठित मत करो कि
शेष सब के लिए
वह अलंघ्य विन्ध्याचल हो जाए । "[1]

राम और सीता के संवादों के द्वारा व्यक्ति और सामाजिकता से संबंधित विचारों को तर्क शैली में प्रस्तुत किया गया है —

राम : व्यक्ति
राजनीति और राज्य
इन्हें पृथक कर पाना
इतना सरल है सीता ?

सीता : लेकिन
व्यक्ति वह कोई हो
उसे इतना अधिक सामाजिक नहीं होना चाहिए ।

राम : कितना अधिक ?

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 97.

सीता : इतना कि
वह वैयक्तिक क्षणों में
एक सामाजिक समस्या लगे
और सामाजिक अवसरों पर
वैयक्तिक मुद्रा । "[1]

5·5· मनोवैज्ञानिक शैली :-

संदेह के बाद किसी निष्कर्ष पर पहुँचने को वितर्क कहते हैं । इसे मानसिक अन्तर्द्वन्द भी कहते हैं । मानसिक अन्तर्द्वन्द एवं वितर्क को दिखलाने के लिए नरेश मेहता के काव्यों में मनोवैज्ञानिक शैली का प्रयोग किया गया है । राम की गहरी मानसिक वेदना के माध्यम से इसे व्यक्त किया गया है —

" कितनी बार
कितनी साँझ
इस सिन्धुवेला तट
बितायीं
काट दी - पर व्यर्थ,
कितनी बार तुम्हारा
बाहुओं को
स्वर्ण के पद चिह्नों व्यूहों से
घिरे बैठे रहे
दुर्ग निर्माते रहे
सीतामुख बनाते

1· प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ· 57·

सदा कांपी अंगुलियाँ
पर हाय —
यह बालुकाली जानकी
प्रति साँझ
ज्वार जल में समर्पित होती रहीं ।"[1]

"प्रवादपर्व" में भी राम के मानसिक संघर्ष को मनोवैज्ञानिक शैली में व्यक्त किया गया है —

"क्या
निर्मम कर्म
केवल असंग कर्म करता ही चला जाए ?
भले ही वह कर्म
धारादार अस्त्र की भाँति
न केवल देह
बल्कि
उसके व्यक्तित्व की
रागात्मिकताओं को भी काट कर रख दे ।"[2]

उपर्युक्त विवेचन से यह विदित होता है कि नरेश मेहता के काव्यों में विषयानुकूल विभिन्न शैलियों का सार्थक प्रयोग किया गया है । काव्यगत विशेषताओं को सुंदर शैली में अभिव्यक्त किया गया है ।

1· संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ· 3 - 4·
2· प्रवादपर्व - " - पृ· 19·

5.6. निष्कर्ष :-

नरेश मेहता के शैल्पिक प्रतिमानों का समष्टिपरक मूल्यांकन करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर सहज ही पहुँच सकते हैं कि उनके काव्यों में शिल्प संरचना के प्रतिमान न केवल कविता की संरचनात्मक शैल्पिक गरिमा के परिचायक हैं, अपितु कवि की असाधारण सृजन सामर्थ्य के प्रतिपादक है। उनके काव्य में प्रतीक - विधान, बिम्ब योजना, भाषा, मुहावरे, छन्द, उपमान योजना, नवीन उपमानों का प्रयोग एवं शैली आदि सभी शैल्पिक प्रतिमानों के सार्थक प्रयोग के साथ-साथ अपेक्षित मौलिकता का भी यथास्थान निदर्शन है। शिल्प संरचना के इन तत्वों के माध्यम से कवि ने अनेक नवीन रचनाधर्मी आयामों का भी संधान किया है जो निश्चयत: अनुकरणीय एवं अभिनंदनीय है।

उपसंहार

उपसंहार

नरेश मेहता के खण्डकाव्यों में वर्णित कथ्य और शैल्पिक प्रतिमानों के समष्टि परक मूल्यांकन के पश्चात इन काव्यों की कथा योजना, मौलिक संकल्पनाओं से सम्बद्ध चरित्र दृष्टि, उदात्त एवं गरिमापूर्ण शैल्पिक प्रतिमान तथा वैभव सम्पन्न जीवन दर्शन के आयामों को पा सके हैं। उन्होंने अपने खण्ड काव्यों के माध्यम से समकालीन जीवन और परिवेश की जिन व्यापक अनुभूतियों को अभिव्यक्त किया है वह समग्र हिन्दी खण्डकाव्य परम्परा के लिए भी अमूल्य निधि बन गई है।

नरेश मेहता का काव्य पूर्ण स्वेच्छा स्वतंत्र युग की देन है। फलत: उसमें नयी पीढ़ी को विशिष्ट श्रेणी प्राप्त होती है। भाव संघटन से विचारों की अनुभूतिक परिणति और शिल्प योजना सभी में कवि के " आत्म स्वातंत्र्य मूलक " चेतना दिखाई देती है। कवि अपने मदधर्म को व्यापक संवेदनाओं को ग्रहण कर उन्हें संश्लिष्टता प्रदान करने में सक्षम रहा है। उनके काव्यों की सृजनात्मक प्रेरणाओं का परिप्रेक्ष्य युग जीवन के ज्वलंत प्रश्नों और मानव अस्मिता के समक्ष गहराते हुए संकट की स्थितियों से जुड़े रहने के कारण उनमें कवि की विराट् रचना दृष्टि स्वत: ही प्रतिबिम्बित हुई है

कवि ने युग की विभीषिका बौद्धिक अस्तिवाद विज्ञान की असंगतियों और मूल्यगत संक्रमण की प्रतिक्रियाओं को अपने रचनात्मक उपक्रम की धुरी बनायी है। इन काव्यों में रचनाकार के एक महान संकल्प, एक महान भावबोध, एक विराट चेतना और एक अप्रतिम काव्यानुष्ठान के सहज ही साक्षात्कार होते हैं। प्रकारान्तर से यह कहना अत्युक्ति पूर्ण न होगा कि नरेश मेहता के खण्डकाव्य पुराख्यानों की पुनरावृत्ति अथवा परम्परित आदर्शों का आलेख न होकर मानवीय चेतना के ऐसे प्रामाणिक दस्तावेज है, जिनके माध्यम से विभिन्न स्तरों पर संघर्षरत मानव की दुर्धर्ष जिजीविषा और अस्मिता के संकट की पहचान करायी गयी है। इन काव्यों के सृजनात्मक उपक्रम में कवि का

लक्ष्य प्रयोगधर्मी सृजनात्मकता न होकर वैशिष्ट्यपूर्ण रचनाधर्मी आस्था रही है। इसी आस्था के माध्यम से मानवीय विश्वासों, संकल्पों, आकांक्षाओं और आग्रहों की सम्पूर्ति का प्रयास सचेतन स्तर पर हुआ है। यही कारण है कि इन काव्यों का कथापट पौराणिक आख्यानों और आधुनिक ऐतिहासिक आधारों पर बुना हुआ होने पर भी उनमें युग जीवन के यथार्थ को चित्रित करने की श्लाघनीय सामर्थ्य है। समकालीन यथार्थ को पुरावृत्तों के माध्यम से प्रतिबिम्बित करने के कारण ही इन काव्यों को विस्तृत परिधि में बाँधा गया है। " संशय की एक रात " युद्ध की विभीषिकाओं से उत्पन्न मानसिक क्रियाकलापों का काव्य है। महाप्रस्थान में राज्य और व्यक्ति के संतुलित सम्बन्धों को उद्घाटित किया गया है। प्रवादपर्व में राजाप्रजा के अधिकारों की चर्चा की प्रधानता है। इन काव्यों में प्रायश्चित्त और परिताप आद्यांत दिखाई देता है। " शबरी " आत्मिक और आध्यात्मिक संघर्ष प्रधान काव्य है। " प्रार्थना पुरुष " में आदर्श पुरुष के जीवन चरित्र एवं स्वाधीनता आँदोलन सम्बन्धी घटनाओं का चित्रण है। निश्चय ही सृजनात्मक प्रेरणाओं की दृष्टि से आलोच्य काव्य एक महती उदात्त रचना भूमि पर प्रतिष्ठित हैं।

कवि अपने काव्यों का इतिवृत्त पौराणिक एवं ऐतिहासिक कथासूत्रों के आधार पर लिया है। उनके कथासूत्रों में कल्पना के रंग भरकर तथ्य प्रस्तुति में मौलिकता के साथ-साथ युग जीवन के समुन्नत बोध का भी समाहार किया है। इन काव्यों के इतिवृत्तात्मक विनियोजन में पुराख्यानों की असंगतियों के परिष्कार का भी प्रशंसनीय प्रयास है।

नरेश मेहता के काव्यों में युग बोध का स्पष्ट निरूपण हुआ है। विभिन्न समस्याओं का निरूपण युगाभिव्यक्ति का सशक्त आयाम है। कवि अपने काव्यों के द्वारा युगीन जीवन के अनेक ज्वलंत प्रश्नों एवं समस्याओं से संवेदना के स्तर पर जूझते हुए दिखाई पड़ते है। युग बोध की दृष्टि से इनका काव्य पारम्परित दार्शनिक तत्वों [यथा ब्रह्म, जीव, जगत, माया आदि] की अपेक्षा युग जीवन के समुन्नत बोध को प्रतिफलित करनेवाली विचारधाराओं एवं सांस्कृतिक उच्चादर्शों को स्थापित करनेवाली

कृतियों के रूप में अधिक सिद्ध हुए है । कवि का रचनात्मक प्रयास रहा है कि विश्वयुद्धों के आंतक और मूल्यगत संक्रमणशीलता के घटाटोप में वे मानवीय आस्थाओं, विश्वासों और संकल्प की संरक्षा में सहायक किस प्रकार बने ? व्यक्ति, समाज, राष्ट्र, और विश्व जीवन रूपी इकाइयाँ आज विभाजित होकर नही अपितु सुसंगठित होकर ही मानवता का हित संरक्षण कर सकती है । संकुचित मानवीय मनोवृत्तियाँ, स्वार्थ साधक सामाजिक संघटक, संकीर्ण राष्ट्रवादी चेतना और सर्व प्रभुत्व की भावना, विश्व शक्ति संगठन के बदले स्वहित चिन्तन ने मानवता को ध्वंस के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है । फलस्वरूप आतंक, अविश्वास, अराजकता और असमंजस-भरे वर्तमान में जी रहे हम अनागत के प्रति अविश्वास और निराश होते जा रहे हैं । ऐसी विडम्बनापूर्ण स्थिति में मानव नियति निरंतर अनिश्चय और अनागत की ओर वैसे ही बढ़ती चली जा रही है, जैसे महाभारत काल में तथा प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्धों की वेला में थी । मानव नियति आतंक की खूँटी से आक्रांत की ओर कुंज-पुंज हो गई है । इसके समक्ष गहराते हुए संकट की इस वेला में सचेतन साहित्यकार का दायित्व यह है कि वह काव्य सृजन को कल्पना विलास, प्रयोग धर्मिता या पुराख्यानों की अरचना का माध्यम न मानकर उसे एक विराट वैभव एवं मानव हित संवर्द्धक अनुष्ठान के रूप में ग्रहण करें ।

युग बोध में मिथक की सामाजिक भूमिका के अंतर्गत काव्य से संबंधित विभिन्न सामाजिक समस्याओं का विश्लेषण किया गया है । इन समस्याओं के चित्रण के साथ समाधान भी प्रस्तुत किया गया है । " व्यष्टि एवं समष्टि " मूल्यों के संदर्भ में समष्टि मूल्यों को महत्व दिया गया है । युग की बाहरी स्थितियों के कारण जब व्यक्ति किंकर्तव्य विमूढ हो जाता है तब उन्हें वास्तविक स्थितियों के अनुसार कर्तव्य निर्वाहण करने का " यथार्थ बोध " किया गया है ।

सामाजिक प्राणी के रूप में व्यक्ति को उसे सुसंगठित रखने के लिए " सामाजिक आग्रह " के पालन की आवश्यकता को स्पष्ट किया गया है । किसी एक महान लक्ष्य प्राप्ति के लिए व्यक्ति को समष्टि में मिलने की आवश्यकता को " समष्टि से मिलने की चाह " के द्वारा व्यक्त किया गया है । अस्पृश्यता को समाज के लिए कोढ़ मानते

हुए उसे दूर करने की आवश्यकता को स्पष्ट किया गया है । इस प्रकार सामाजिक धरातल पर उत्पन्न अनेक समस्याओं को दूर करके " समष्टि कल्याण " के लिए प्रयत्न करना हरेक का कर्तव्य घोषित किया गया है ।

मिथक की राजनैतिक भूमिका के द्वारा समाज राजा और राज्य व्यवस्थाओं द्वारा उत्पन्न समस्याओं पर विचार किया है । क्योंकि स्वातंत्र्य के अपूर्व चेतना के इस युग में मनुष्य को सभी वस्तुओं का प्रतिमान माना गया है । उनकी स्वाधीनता के लिए वैयक्तिक एवं राष्ट्रीय धरातल पर " स्वाधीनता की चेतना का जागरण " की आवश्यकता को स्पष्ट किया गया है । प्रजापीड़ित राज्यों के बदले प्रजारंजक लोकतंत्र का समर्थन किया गया है । अपनी स्वाधीनता के लिए प्रजा द्वारा स्वीकृत युद्ध और हिंसा का समर्थन किया गया है । " उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद " का विरोध करते हुए उन राज्य व्यवस्थाओं का अंत होने की आकांक्षा व्यक्त किया गया है । द्वितीय विश्वयुद्ध जनित स्थितियों से पीड़ित जनता के सम्मुख " युद्ध और शांति " की समास्या पर विचार प्रस्तुत किया गया है । समय के अनुसार इन स्थितियों को कर्तव्य रूप में अपनाने का संदेश दिया गया है । " लघुमानव की प्रतिष्ठा " के द्वारा मनुष्य के व्यापक लघु अस्तित्व की सार्थकता पर विचार किया गया है । राष्ट्र की सुरक्षा के लिए राजा को जनतांत्रिक भावों को आदर करने की आवश्यकता को स्पष्ट किया गया है नहीं तो आने वाले परिणामों के बारे में भी उदाहरण सहित बताया गया है । मनुष्य को सृष्टि की जिह्ना मानते हुए उनकी " अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता " की रक्षा करने की आवश्यकता को स्पष्ट किया गया है ।

" सांस्कृतिक चेतना " शीर्षक से ही मानवीय चेतना को जगाने में कवि का उद्देश्य स्पष्ट होता है । आज धर्म, आध्यात्म, राष्ट्रीय भावना जैसे क्षेत्रों में समन्वित दृष्टिकोण का अभाव दिखाई दे रहा है । इन सभी के पीछे निहित समाज और राष्ट्र के संकुचित स्वार्थ भावों को कवि दूर करना चाहते हैं । इन दोषों के निवारण के लिए

आवश्यक सुझाव भी देते हैं । आज की यांत्रिक सभ्यता के प्रभाव के कारण मानवीय सम्बन्ध विच्छिन्न हो रहे हैं । अपने स्वहित के आगे उन सम्बन्धों को महत्वपूर्ण नही मानते हैं । इन सम्बन्धों में संतुलन लाने के लिए अनेक उदाहरण प्रस्तुत करते है । उन सम्बन्धों को विच्छिन्न करनेवाली शक्तियों का विच्छेद करने का मार्ग दिखाते हैं। समाज में नारी की दशा एवं उसके स्वतंत्र चेतनशील व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है । उसके द्वारा सामाजिक चैतन्य संभव होने का मार्ग दिखाया गया है । मानवीय संस्कृति को या उसकी चेतना को भंग करनेवाली यांत्रिक सभ्यता एवं अतिशय बौद्धिकता का विरोध किया गया है । विभिन्न तर्कों के माध्यम से इनके दोषों का निवारण किया गया है । इस तरह समाज के अंदर रहकर विभिन्न धरातलों पर संस्कृति को बिगाड़नेवाले आदर्शों की स्थापना होने की आकांक्षा व्यक्त की गयी है । समाज एवं राष्ट्रीय धरातल पर होनेवाले विभिन्न समस्याओं को दूर करने के लिए संस्कृति को एक सूचक शक्ति के रूप में प्रयोग किया गया है । अतः मनुष्य की सहज प्रवृत्तियों, नैसर्गिक शक्तियों एवं आचार-विचारों के शुद्धीकरण के लिए सांस्कृतिक चेतना को जगाने की आवश्यकता को स्पष्ट किया गया है । मानव जीवन के चरमोत्कर्ष को इस चेतना का लक्ष्य घोषित किया गया है ।

काव्य के " वैचारिक पृष्ठ भूमि " के केन्द्र में मानव कल्याण को रखकर युगीन समस्याओं पर विचार किया गया है । संशय, संत्रास, अपमान आदि युगीन मूल्य संक्रमण जन्य स्थितियों पर विचार किया गया है । अस्तित्ववाद के द्वारा मानव अस्तित्व की समस्या पर विचार किया गया है । जीवन के हरेक क्षण को कर्म विधान के द्वारा सार्थक बनाने का संदेश दिया गया है । मृत्यु भय से पीड़ित युग को उस पर विजय पाने का मार्ग दिखाया गया है एवं उसे एक उदार सहयात्री के रूप में स्वीकारने का संदेश दिया गया है । आधुनिकता को आधुनिक जीवन के नये ज्ञान-विज्ञान के आलोक में देखने के संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है । संकट का निवारण पलायन से नहीं जीने से होता है यही उनके द्वारा सूचित आधुनिकता का मूल मंत्र है । समाज, राष्ट्र एवं संस्कृति के स्वस्थ रूप

के निर्माण के लिए एवं जीवन दर्शन के चित्रण के संदर्भ में प्रगतिशील एवं मानववादी विचारधाराओं का स्थान दिया गया है ।

रूढ़ि बद्ध संस्कारशीलता, जर्जरित विश्वासों, पतनशील मूल्यों और डिगती आस्थाओं के उन्मूलन हेतु असंख्य विद्रोह स्वर इनके काव्यों में उभरे हुए हैं । जीवन यापन की कृत्रिम प्रविधियों और मुखौटे धारण किए हुए मानवीय आचरण पद्धतियों के प्रति कवि का आक्रोश उनके काव्यों में प्रकट हुआ है ।

उपर्युक्त कथ्य प्रवृत्तियों के परिप्रेक्ष्य में सुविकसित सम्वेदना क्षितिजों के स्वरूप को एकांगी नहीं कहा जा सकता है, क्यों कि आस्था, आक्रोश और विद्रोह के साथ-साथ अटूट-आस्था, अदम्य विश्वास और समकालीन जीवन के प्रति सहज स्वीकृति का भावोन्मेष भी इनके काव्य में दृष्टिगोचर होता है । कुंठित आत्म-चेतना और दमित वासनाओं से युक्त भेदस चित्रण का इन कृतियों में सामान्यतः अभाव है । मानवीय संवेदनाओं के गोपन स्तरों और और सचेतन मनः स्थितियों के तलस्पर्शी चित्रण में कवि ने अपनी सृजन-सामर्थ्य का प्रभूत परिचय दिया है ।

आलोच्य काव्यों की शिल्प-संरचना के विभिन्न प्रतिमानों के सोदाहरण विवेचन के आधार पर यह प्रतिपादित हो जाता है कि ये काव्य अनेक नवीन रचनाधर्मी-आयामों और शैल्पिक-प्रतिमानों से संपृक्त हैं । प्रतीक, बिम्ब, भाषा, उपमान-विधान एवं शैली आदि सभी शैल्पिक प्रतिमानों के विनियोजन में असाधारण रचना-सामर्थ्य का निदर्शन हुआ है ।

जहाँ तक काव्य की सृजनात्मक संभावनाओं का प्रश्न है यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि इनका काव्य अपरिमित सृजन-संभावनाओं से संपृक्त है । सम्वेदना का उदात्त स्वरूप और शैल्पिक प्रतिमान इन काव्यों के सृजनात्मक गौरव का जीवन्त प्रमाण है । कथ्य और शिल्प की दृष्टि से अनेक मौलिक प्रयोगों और रचनाधर्मी

आयामों का विकास काव्य की अपरिमित सृजन संभावनाओं का ही परिचायक है । काव्य का रचनात्मक स्तर न केवल अभिनंदनीय है अपितु सृजन की असंख्य संभावनाओं से संभूत भी है । यही कारण है कि इसमें स्वाभाविकता, विश्वसनीयता और यथार्थता का गुण विद्यमान रहता है । काव्य के रचाव और सोच में आद्यन्त चिरन्तन मानवीय मूल्यों और विश्व जनीन आदर्शों के प्रति प्रतिबद्धता का ऐसा विरल समर्पित भाव बोध है । जिसके कारण ये सभी काव्य कृतियाँ न केवल हिन्दी खण्ड काव्य परम्परा की उपलब्धियाँ हैं अपितु कवि की अक्षय कीर्ति के स्रोत भी बन गये हैं ।

परिशिष्ट : आधार तथा सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

परिशिष्ट

आधार तथा सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

[क] आधार ग्रन्थ :

1. महाप्रस्थान - लोकभारती प्रकाशन, 15 - ए - महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद - 1, प्रथम संस्करण - 1975
2. शबरी - लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद - 1 प्रथम संस्करण - 1961
3. संशय की एक रात - लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद - 1, द्वितीय संस्करण 1989
4. प्रवाद पर्व - लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण - 1977
5. प्रार्थना पुरुष - नेशनल पब्लिशिंग हाउस 23 - दरिया गंज, नयी दिल्ली - 110 002 प्रथम संस्करण - 1988

[ख] सहायक ग्रन्थ :

हिन्दी

6. अशोक के फूल - हजारी प्रसाद द्विवेदी लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद - 1, बारहवाँ संस्करण - 1976
7. अस्तित्व वाद [हेडगर] - डा॰ महावीर दाधीच शब्द लेखा प्रकाशन बिकानेर, प्रथम संस्करण - 1965
8. आधुनिक हिन्दी कविता - सुधाकर गोकाकर नेशनल पब्लिशिंग हाउस - दिल्ली - 7, प्रथम संस्करण - 1965

9· आधुनिक हिन्दी कविता का मूल्यांकन : गीति काव्य – इन्द्रनाथ मदान
विद्या विहार, देहरादून, प्रथम संस्करण – 1957

10· आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ — डा· नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग
हाउस, दिल्ली – 7 तृतीय संस्करण – 1966

11· आधुनिक हिन्दी कविता में विचार – बलदेववंशी, प्रकाशक – एस·जी·वसानी
मैकमिलन – इंडिया लिमिटेड 2/10, अंसारी रोड़, नई दिल्ली – 110 002
प्रथम संस्करण – 1982

12· आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प – डा· कैलाश वाजपेयी आत्माराम, एण्ड
सन्ज़, दिल्ली-प्रथम संस्करण – 1965

13· आधुनिक हिन्दी काव्य में परम्परा तथा प्रयोग – डा· गोपालदत्त सारस्वत,
सरस्वती प्रकाशन मन्दिर, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण – 1961

14· आधुनिक हिन्दी खण्डकाव्य – डा· एस·तंकमणि अम्मा, सूर्य प्रकाशन, नई सड़क,
दिल्ली, प्रथम संस्करण – 1987

15· आधुनिक हिन्दी नाटकों में नायक – डा· श्याम शर्मा, अभिनव प्रकाशन,
21 – ए – दरिया गंज नयी दिल्ली – 110 002· प्रथम संस्करण – 1978

16· आधुनिक हिन्दी साहित्य – डा· रामगोपाल सिंह चौहान, विनोद पुस्तक मंदिर,
हास्पिटल रोड़, आगरा, प्रथम संस्करण – 1985

17· आधुनिक हिन्दी काव्य में नवीन जीवन मूल्य — डा· हुकम चन्द राजपाल
भारतीय संस्कृत भवन, माई हीरा गेट, जलन्धर शहर, दिसम्बर – 1970·

18· आधुनिक भावबोध की संज्ञा – अमृत राय हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम – संस्करण – 1972

19· आधुनिकताबोध और विद्रोह – डा· हरदयाल, राजेश प्रकाशन, कृष्णा नगर, दिल्ली – 110 051, प्रथम संस्करण – 1979

20· आत्मनेपद – अज्ञेय, भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन, दिल्ली – प्रथम संस्करण – 1971

21· काव्य प्रदीप – रामबहोरी शुक्ल, हिन्दी भवन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1958

22· काव्य बिम्ब – डा·नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली – 7, प्रथम संस्करण – 1967

23· काव्य के रूप – गुलाबराय, आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, नई दिल्ली 110 006, प्रथम संस्करण – 1975

24· काव्य शिल्प के आयाम – सुरेश चन्द्र शर्मा, आदर्श साहित्य प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण – 1971

25· कांग्रेस का इतिहास – सं· हरिभाऊ उपाध्याय, सस्ता मण्डल, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण – 1948

26· कांग्रेस का इतिहास – पट्टाभि सीतारामय्या, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण – 1954·

27. कुछ नीति : कुछ राजनीति - भवानी प्रसाद मिश्र, प्रभीरत प्रकाशन, पावड़ी बाजार, नई दिल्ली - 110 006, प्रथम संस्करण 1983

28. गाँधी जी की दिल्ली डायरी [तथा दिल्ली का स्वतंत्रता संग्राम] - ब्रजकृष्ण चाँदीवाला, पुरुषोत्तमलाल, ज्ञानदीप प्रकाशन, मल्का गंज, दिल्ली-7, प्रथम - 1969

29. छायावादी काव्य की प्रगतिशील चेतना - डा. संतोष कुमार तिवारी, भारतीय ग्रन्थ निकेतन 133, लाजपतराय मार्केट, दिल्ली - 110 006, प्रथम संस्करण - 1974

30. छायावादोत्तर काव्य - सिद्धेश्वर प्रसाद, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जवाहर नगर, दिल्ली - 7, प्रथम संस्करण - 1966

31. छायावादोत्तर काव्य में शब्दार्थ का स्वरूप - डा. सुधागुप्ता, बापना प्रकाशन, चौड़ा रास्ता, जयपुर - 3, प्रथम संस्करण - 1972

32. छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि - डा. कमला प्रसाद पाण्डेय, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण - 1972

33. तीसरा सप्तक - कीर्ति चौधरी, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण - 1968

34. त्रिशंकु - अज्ञेय, बिकानेर, प्रथम संस्करण - 1973

35. दूसरा सप्तक - अज्ञेय, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण - 1951

36. नई कविता - देवराज, वाणी प्रकाशन, 4697/5, दरियागंज, नई दिल्ली - 110 002, प्रथम संस्करण - 1981

37. नई कविता के प्रतिमान - लक्ष्मीकांत वर्मा, भारती प्रेस, प्रयाग, प्रथम संस्करण - 1959,

38. नई कविता उद्भव और विकास - रामवचन राय, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, कदम कुआँ, पटना, 800 003, प्रथम संस्करण - 1974

39. नई कविता की प्रबन्ध चेतना - डा. महावीर सिंह चौहान, गिरनार प्रकाशन, पिलाजी गंज, गुजरात - 384 002, प्रथम संस्करण - 1981

40. नई कविता में राष्ट्रीय चेतना - डा. देवराज पथिक, कादम्बरी प्रकाशन, ए - 55 / 5, सुदर्शन पार्क, नई दिल्ली - 110 015. प्रथम संस्करण - 1985

41. नया काव्य : एक परिदृश्य - डा. हरिचरण शर्मा, आशा प्रकाशन गृह, नई दिल्ली प्रथम संस्करण - 1972.

42. नया हिन्दी काव्य - डा. शिव कुमार मिश्र, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर प्रथम संस्करण - 1962

43. नये प्रतिमान पुराने निकष - लक्ष्मीकांत वर्मा, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण - 1966

44. नयी अनुभूति - नरेश मेहता, राम मेहरा एण्ड कम्पनी, हास्पिटल रोड आगरा, प्रथम संस्करण - 1978

45. नयी समीक्षा नए संदर्भ - डा. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण - 1974.

46. नयी कविता का आत्म संघर्ष तथा अन्य निबन्ध - गजानन माधव मुक्तिबोध विश्व भारती प्रकाशन, धनवटे चेम्बर्स, नागपुर - 12, प्रथम संस्करण - 1964

47. नयी कविता के प्रबन्ध काव्य शिल्प और जीवन दर्शन - डा. उमाकान्त गुप्त, वाणी प्रकाशन, दरिया गंज, नई दिल्ली - 2, प्रथम संस्करण - 1985

48. नयी कविता की नाट्य मुखी भूमिका - हुकमचंद राजपाल, वाणी प्रकाशन, 61-एफ, कमलानगर, दिल्ली - 110 007, प्रथम संस्करण - 1976

49. नयी कविता में मूल्य बोध - शशि सहगल, अभिनव प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, दिल्ली - 110 006, प्रथम संस्करण - 1976

50. नयी कविता स्वरूप और समस्याएं - डा. जगदीश गुप्त, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण - 1977

51. नयी कविता संवेदना और शिल्प - मंजुला पुरोहित, पंचशील प्रकाशन, फिल्म कालोनी, जयपुर - 3, प्रथम संस्करण - 1973

52. नैतिक जीवन सिद्धान्त - जानड्यूई - अनुवादक, कृष्णचन्द, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण - 1959

53. नरेश मेहता - कविता की ऊर्ध्वयात्रा - रामकमल राय, लोक भारतीय प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद - 1, प्रथम संस्करण - 1982

54. नवमानववाद [स्वातन्त्र्य और लोकतन्त्र का दर्शन] - वी. एम. तारकुण्डे वाग्देवी प्रकाशन, सुगम निवास, बीकानेर, प्रथम संस्करण - 1986

55· पौराणिक काव्य : आधुनिक संदर्भ – डा·गो·रा· कुलकर्णी, विद्याविहार, 87 / 336, आचार्यनगर, कानपुर – 2, प्रथम संस्करण – 1978

56· प्रसादोत्तर कालीन नाटक – डा· भूपेन्द्र बलसी, विक्रम प्रकाशन, दिल्ली 110 051, प्रथम संस्करण – 1989

57· प्रेमचन्दोत्तर कथा साहित्य में अस्तित्ववाद – डा· शुक देव सिंह, अनुपम प्रकाशन, पटना – 800 004, प्रथम संस्करण – 1982

58· बीसवीं शताब्दी हिन्दी साहित्य : नए संदर्भ – डा· लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, साहित्य भवन प्रा,लि, इलाहाबाद – 3, प्रथम संस्करण – 1966

59· बोलने दो चीड़ को – नरेश मेहता, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्रा·लि, हीरा बाग, बम्बई, प्रथम संस्करण – 1961

60· भारत का राजनीतिक इतिहास – राज कुमार, हिन्दी पुस्तकालय, वाराणसी, द्वितीय संस्करण – 1975

61· भारतीय संविधान और राजनीति – वेद दान सुधीर, प्रिन्टवैल पब्लिशर्स, तिलक नगर, जयपुर – 302 004, प्रथम संस्करण – 1987

62· भारतीय संस्कृति की रूपरेखा – बाबू गुलाब राय, रवीन्द्र प्रकाशन, पाटनकर बाजार, ग्वालियर, प्रथम संस्करण – 1952

63· भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता – डा· प्रसन्न कुमाराचार्य, वाणी प्रकाशन, कमला नगर, दिल्ली – 110 007, प्रथम संस्करण – 1956

64· भारतीय साहित्य कोश – डा; नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, के·एल·मलिक एण्ड सन्स प्रा·लि· 23,दरिया गंज, नयी दिल्ली – 110 002, प्रथम संस्करण–1981·

65· मार्क्सवाद का विकृत रूप तथा साम्राज्यवादी अर्थवाद – लेनिन, हिन्दी अनुवाद-प्रगति प्रकाशन, 17 – जूबोव्स्की बुल्वार, मास्को, सोवियत संघ, प्रथम संस्करण – 1982

66· मानक हिन्दी कोश – रामचन्द्र वर्मा – प्रकाशक – मोहनलाल भट्ट, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम संस्करण – 1966

67· मानव मूल्य और साहित्य – डा,धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्रथम संस्करण – 1960

68· मानववाद और साहित्य – डा: नवल किशोर, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2, अन्सारी रोड़, दरिया गंज, दिल्ली – 6, प्रथम संस्करण – 1972·

69· मिथक और आधुनिक कविता –शंभुनाथ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस 23 – दरिया गंज, नयी दिल्ली – 110 002, प्रथम संस्करण – 1985

70· मिथक उद्भव और विकास तथा आधुनिक हिन्दी साहित्य – डा· उषापुरी विद्या वाचस्पति, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23 – दरिया गंज, नयी दिल्ली – 110 002, प्रथम संस्करण – 1986

71· मिथकीय कल्पना और आधुनिक हिन्दी साहित्य – डा· जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वारणासी,प्रथम संस्करण – 1985

72· मृत्यु [अरविन्द के लेखों से संकलित] – अरविन्द सोसाइटी, पांडिचेरी – 605 002, प्रथम संस्करण – 1982

73· मृत्यु रहस्य – वेदाचार्य श्री वेणीरामशर्मा गौड़- चौखम्भा ओरियन्टालिया, प्रो· आर· चौखम्भा, गोपाल मन्दिर लेन, वारणासी – 221 001, प्रथम संस्करण – 1978·

74• मैथिली शरण गुप्त का काव्य : सांस्कृतिक अध्ययन – लेखिका आशा गुप्ता, अन्नपूर्णा प्रकाशन, 106/154, गांधी नगर, कानपुर – 12, प्रथम संस्करण 1979

75• वैशेषिक दर्शन एक अध्ययन – श्री नारायण मिश्र, चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, गोपाल मंदिर लेन, चौक, वाराणसी – 1, प्रथम संस्करण – 1969

76• हिन्दी कविता में युगान्तर – सुधीन्द्र, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण – 1950

77• हिन्दी कविता और लोक संस्कृति (1870 ई० से 1970 ई०) श्रीमति सर्वेश कुल श्रेष्ठ, ओशन प्रकाशन, शास्त्री नगर, नई दिल्ली – 110 032, प्रथम संस्करण – 1977•

78• हिन्दी गीति काव्य – डा० रामेश्वर प्रसाद द्विवेदी, आराधना प्रकाशन, स्वरूप नगर, कानपुर – 208 002, प्रथम संस्करण – 1982

79• हिन्दी नाटक – बदलते आयाम – डा० नरेन्द्र नाथ त्रिपाठी, ई –5/13, कृष्णा नगर, दिल्ली – 110 051, प्रथम संस्करण – 1987

80• हिन्दी रामकाव्य का स्वरूप और विकास : (बदलते युग बोध के परि – प्रेक्ष्य में) – प्रेमचन्द महेश्वरी, वाणी प्रकाशन, 61–एफ–कमलानगर, दिल्ली 110 007, प्रथम संस्करण – 1983

81• हिन्दी साहित्य कोश – भाग – 1, सं०डा० धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञान मण्डल, लिमिटेड, संत कबीर रोड, वाराणसी, द्वितीय संस्करण – 1985•

82· हिन्दी साहित्य कोश : तृतीय खण्ड - डा· धीरेन्द्र वर्मा, भारतीय हिन्दी परिषद, प्रयाग, प्रथम - 1969

83· हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास - डा· हरवंशलाल शर्मा , काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्रथम संस्करण - सं· 2028 वि·

84· हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ - शिवकुमार वर्मा, अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली - 6, प्रथम संस्करण = 1961

85· हिन्दुस्तान की कहानी - जवाहरलाल नेहरू - अनुवादक - रामचंद्र टंडन, सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली, प्रथम संस्करण - 1947

86· समकालीन हिन्दी कविता - डा· रवीन्द्र भ्रमर, राजेश प्रकाशन, ए - 7 / 46, कृष्णनगर, दिल्ली - 110 051, प्रथम संस्करण - 1984

87· समकालीन हिन्दी कविता - संवाद - डा· विनय, सन्मार्ग प्रकाशन, 16, यू·बी· बैंगलोरोड, दिल्ली - 110 007, प्रथम संस्करण - 1983

88· समीक्षा के नए प्रतिमान - डा· सुखबीर सिंह, तक्षशिला प्रकाशन, 23/4762 - अन्सारी रोड, दरिया गंज, नई दिल्ली - 110 002, प्रथम संस्करण - 1980

89· सह चिन्तन - अमृत राय, सर्जना प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण - 1967·

90· साकेत में काव्य संस्कृति और दर्शन ‖ संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण ‖ डा· द्वारका प्रसाद सक्सेना, विनोद पुस्तक मन्दिर, रंगेय राघव मार्ग, आगरा - 2, द्वितीय संस्करण - 1973·

91. साठोत्तर हिन्दी कहानी : मूल्यों का तलाश - डा० वासुदेव शर्मा, शारदा प्रकाशन, अन्सारी रोड, दरिया गंज, नई दिल्ली - 110 002, प्रथम संस्करण - 1986

92. साहित्य दर्पण - विश्वनाथ - संपादक - डा० सत्यव्रत सिंह, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी - 1, तृतीय संस्करण (सं० 2026 वि०)

93. संस्कृति के चार अध्याय - डा० रामधारी सिंह दिनकर, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण - 1956

(ग) विशिष्ट सन्दर्भ

94. अथर्व वेद - सं० विश्वबंधु - प्रकाशक - विश्वेश्वरानंद, वैदिक शोध संस्थान होशियार पुर - 1960

95. ध्वन्यालोक - आनंद वर्धन, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, प्रथम संस्करण - 1917.

96. श्रीमद् भागवद्गीता - विद्या प्रकाशानंद स्वामि, गीता प्रेस - गोरखपुर, इक्कीसवा संस्करण - सं० 2029 वि०

97. महाभारत - गीता प्रेस - गोरखपुर, तृतीय संस्करण - सं० 2029 वि०

98. राम चरित मानस - गोस्वामी तुलसीदास, गीता प्रेस - गोरख पुर, बीसवा संस्करण - 1973

99. सं० सतीश चन्द्रपाल, इंडियन रिसर्च इन्स्टीट्यूट, कलकत्ता - प्रथम - 1933

100. श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण – गीता प्रेस, गोरखपुर, द्वितीय संस्करण – 2024.

॥ घ ॥ पत्र – पत्रिकाएँ

101. आजकल – संपादक – नरेन्द्र सिन्हा, पटियाला हाउस, नई दिल्ली – 110 001. अक्तूबर – 1986.

102. आलोचना – सं. यादवेन्द्र शर्मा, अप्रैल – जून – 68

103. कविता – ॥ सं. ओम प्रभाकर ॥ शंभुनाथ

104. दस्तावेज – साहित्यिक त्रैमासिक पत्रिका, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, गोरखपुर – 3.

105. दार्शनिक – त्रैमासिक पत्रिका – श्री चन्द्रमल, अक्तूबर – 1965.

106. संभावना – अंक – 2 – सं. दामोदरलाल खण्डेलवाल

E N G L I S H

107. Encyclopaedia of Religion and Ethics - Muller - Vol.XI.

108. The Discovery of India - Jawaharlal Nehru, Asia Publishing House - 1965.

109. The Story of Philosophy - Will Durant

110. Hindu Social Organisation - Pandarinadh Prabhu.